ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत प्रवचन

भाग-1

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
बहिनश्री के वचनामृत पर धारावाही शब्दशः प्रवचन
(प्रवचन क्रमांक 01 से 30, वचनामृत 01 से 90)

हिन्दी अनुवाद :
देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400056
फोन : (022) 26130820

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ
वीर निर्वाण 2539 विक्रम संवत् 2068 ईस्वी सन् 2012

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846–244334
2. **श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई–400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ–कुन्दकुन्द–कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़–आगरा मार्ग, सासनी–204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए–4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान–302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली–422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर–कुन्दकुन्द–कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट–360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप–सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक : **देशना कम्प्यूटर्स,** जयपुर

प्रकाशकीय

भारत की भव्य वसुन्धरा अनादि से सन्त-रत्नों की पवित्र भूमि रही है। यहाँ तीर्थंकर परमात्मा, वीतरागी सन्त एवं ज्ञानी धर्मात्मा होते रहे हैं। इस देश का सौराष्ट्र प्रान्त भी अध्यात्मप्रधान जैन गगन मण्डल में चमकीले नक्षत्र श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञसन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूतिप्रकाशक साधक धर्मात्माओं की भेंट प्रदान कर पुण्य भूमि बना है।

परम देवादिदेव चरम तीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा प्रवाहित और गुरु परम्परा से प्राप्त परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परमागम श्रीसमयसार आदि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महाविदेहक्षेत्र में विराजमान शाश्वत् भगवन्त श्री सीमन्धरस्वामी के दर्शन एवं दिव्यध्वनि श्रवण का महान सौभाग्य भी प्राप्त किया है, जो इस पंचम काल की एक अविस्मरणीय घटना है। आचार्यश्री द्वारा प्रवाहित वीतरागी तत्त्वज्ञान के पुनीत प्रवाहरूप अमृत का पान करके अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरातसहित सम्पूर्ण देश तथा विदेशों में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन प्रसारित करके वर्तमान शताब्दी के भौतिक युग में दु:खी जीवों का उद्धार किया है - शाश्वत् शान्ति का मार्ग उपलब्ध कराया है - ऐसे जिनशासन प्रभावक करुणामूर्ति परमोपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म सुधारस मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ से चमत्कृत ध्येयनिष्ट सहज वैराग्य, उत्तम बाल ब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्ग-दर्शक सदुपदेश तथा अन्य अनेकानेक उपकारों का वर्णन कितना भी संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी अशक्य है।

आपश्री के विविध उपकारों में से एक महान उपकार यह है कि आपने पूज्य बहिनश्री की पहिचान जगत् को प्रदान की है। पूज्य बहिनश्री के परिणमन में से निकले हुए शब्द अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत'; इन वचनामृतों में अनुभव का सार, समयसार का सार, समस्त शास्त्रों का सार आ गया है। सादी भाषा में परम सत्य प्रकाशित हुआ है। जैन-जैनेतर सबको समझ में आ

सकने योग्य अध्यात्ममार्ग का खजाना वचनामृत में है। जगत् का भाग्य है कि यह अलौकिक पुस्तक प्रसिद्ध हुई।

विशिष्ट ज्ञानविभूषित स्वानुभूतिपरिणत बहिनश्री चम्पाबेन की पवित्र मुद्रा ही मानो साधकदशा का मूर्तरूप हो तथा सम्यक् मोक्षमार्ग का मूक उपदेश प्रदान कर रही हो! शास्त्रोपम गम्भीर, तथापि सादी सरल भाषा में उनके वचनामृत विविध कोटि के सर्व जीवों को अति उपकारक होते हैं। वस्तुस्वरूप को शुद्धात्म द्रव्यसामान्य की मुख्यतापूर्वक, अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्व को हस्तकमलवत् दर्शाता है और साधक जीवों की अटपटी अन्तर परिणति की अविरुद्धरूप से स्पष्ट समझ प्रदान करते हैं।

कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री भी, सभा में पूज्य बहिनश्री की स्वानुभवविभूषित अन्तर परिणति; अनेक भवसम्बन्धी धर्म विषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और वचनामृत की विशिष्टता का मुक्त कण्ठ से प्रकाश करते थे। पूज्य गुरुदेवश्री की प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओं के स्मृति-पटल में स्पष्टरूप से आज भी तैरती है।

पूज्य बहिनश्री, गुणगम्भीर, देव-गुरु के परम भक्त, अन्तरंग में अत्यन्त महान और पवित्र तथा बाह्य में अत्यन्त निर्लेप थीं। उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्‌भुतदशा परखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने उन्हें 'भगवती', 'जगदम्बा' जैसे असाधारण विशेषण प्रदान किये हैं।

जैनधर्म की गीता अर्थात् बहिनश्री के वचनामृत और मुमुक्षु जगत के लिये अमृत की बेल! पूज्य बहिनश्री लघुवय से ही उग्र पुरुषार्थी, इस भव में ही आत्मप्राप्ति कर लेने योग्य है - ऐसी तीव्र धगश, खटक, पुरुषार्थ, सतत् पुरुषार्थ, गुरु की महिमा, मुमुक्षु की भूमिका, भेदज्ञान, ज्ञानी पुरुष की अन्तर्बाह्यदशा, आत्मा-प्राप्त करने की रुचि, मुनिदशा का वर्णन, वचनामृत के बोल में दिखता है।

इस वचनामृत में 432 बोल हैं, उन पर पूज्य गुरुदेवश्री के 181 प्रवचन हुए हैं, उन प्रवचनों को अक्षरशः छह भाग में प्रकाशित किये जायेंगे। उनमें से यह प्रथम भाग है। पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. टेप प्रवचन सुनते समय शब्दशः वाचन पद्धति मुमुक्षुओं को अत्यधिक अनुकूल और सुगम हुई है; इस कारण यह शब्दशः प्रवचन-ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

बहिनश्री के वचनामृत में समाविष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयों पर पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रवचन ग्रन्थ में जो अद्‌भुत छनावट की है-तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किया है, उसे पढ़कर आश्चर्य होता है कि आहा...हा...! ऐसे गम्भीर भाव भरे हैं! यह वचनामृत अमृत है और पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन भी अमृत हैं; इसलिए इस प्रवचन ग्रन्थ का नाम 'अमृत प्रवचन' रखा गया है। एक ओर दिव्य-देशना का प्रपात बहानेवाला तीर्थंकर का द्रव्य हो और दूसरी ओर दिव्य-देशना को ग्रहण

करनेवाला गणधर का द्रव्य! कैसा भव्य सुयोग! इस दिव्य-देशना का मूल्यांकन किस प्रकार हो सकता है!! परम पूज्य गुरुदेवश्री ने यह अमृत सागर प्रवचनों की भेंट प्रदान करके समस्त मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया है।

पूज्य बहिनश्री के वचनामृत ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का बारम्बार अमृतपान कर लेने योग्य है। एक-एक बोल में अर्थ गम्भीरता, तत्त्वविषय की गहरायी, तलस्पर्शी अनुभव-पूर्ण मार्गदर्शन, जगत के जीवों के प्रति करुणापूर्ण पवित्रता की भावना-इत्यादि अनेकानेक गुणों का दर्शन कराते हुए ये प्रवचन, मुमुक्षु जीव को आत्महित में निश्चित ही निमित्तभूत होंगे।

इन प्रवचनों को शब्दशः लिखकर गुजराती भाषा में तैयार करने हेतु श्री नीलेशभाई जैन, भावनगर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. प्रवचन से मिलान करके इस हिन्दी प्रकाशन में व्यक्तिगत नाम एवं सम्बोधन आदि भी यथावत् रखे गये हैं। जहाँ आवाज की अस्पष्टता से वाक्य समझ में नहीं आया, वहाँ .... करके स्थान छोड़ दिया गया है। ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए श्री दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में पूज्य बहिनश्री के वचनामृत के अमृत प्रवचनों का स्वाध्याय करके सभी आत्मार्थी परम शान्ति को प्राप्त हों, इसी भावना के साथ।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

मुम्बई

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजम्बा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो

उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970 - 07 दिसम्बर 1913) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद तुरन्त ही महात्मा कानजीस्वामी ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य क्षण में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के हस्तकमल में आया, जिसका अध्ययन और चिन्तन करते हुए अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रस्फुटित हुआ। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी।

www.vitragvani.com

सत्यधर्म का स्वरूप प्रकाशित करने में हिचकना पड़ता था; अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

यहाँ ग्रन्थाधिराज समयसार पर प्रवचन प्रारम्भ करने के पश्चात् दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1961 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व

में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। **सुवर्ण-सन्देश** नामक साप्ताहिक पत्रिका अक्टूबर 1960 से अप्रैल 1962 तक प्रकाशित हुई। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। मूल दिगम्बर जैनों को भी आपने सच्चा दिगम्बर बनाया।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। ईस्वीं सन् 1980 तक पूज्य कृपालु कहान गुरुदेव की उपस्थिति तक बाईस लाख पुस्तकें प्रकाशित हुईं। श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर की ओर से भी इस समय तक आठ लाख पुस्तकें प्रकाशित हुईं। सत्साहित्य द्वारा इस वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो अनवरतरूप से अभी भी चल रही है।

वर्तमान में सत्साहित्य का प्रकाशन सोनगढ़ के उपरान्त भावनगर, राजकोट, मुम्बई, देवलाली, जयपुर, अलीगढ़, सोनागिर, इत्यादि अनेक स्थानों से हो रहा है। अब तो पूज्य गुरुदेवश्री की रिकार्डिंग वाणी के अक्षरशः प्रकाशन भी प्रारम्भ हुए हैं। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने हम सब पर अमाप करुणा बरसायी है, तत्त्व जिज्ञासु जीवों के लिए यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, जो अनवरतरूप से चल रहा है। ईस्वीं सन् 1967 से श्री वीतराग-विज्ञान परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा प्रतिवर्ष सम्पूर्ण भारत में वीतराग-विज्ञान पाठशाला के सैकड़ों केन्द्रों पर धार्मिक परीक्षा का आयोजन किया जाता है। जिसमें बालकों के साथ-साथ छोटे-बड़े जिज्ञासु भाई-बहिन

हजारों की संख्या में मूल तत्त्वज्ञान सिखते हैं। बालकों के तत्त्वज्ञान का बीजारोपण करने हेतु प्रशिक्षित अध्यापक तैयार करने के लिये, शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस शृंखला की अविस्मरणीय कड़ी है, जो पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर का विनम्र प्रयास है।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज (28 फरवरी 1941) के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई और आज भी यह प्रवृत्ति अनवरतरूप से चल रही है।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत्

2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था। दिनांक 29 नवम्बर 1980 शुक्रवार (कार्तिक कृष्ण 7, संवत् 2037) के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके यहाँ से अध्यात्म युग सृजक बनाकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको

www.vitragvani.com

तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१	०६-०६-१९७८	१-३	१
२	०७-०६-१९७८	४-६	१५
३	०८-०६-१९७८	७-१२	२८
४	०९-०६-१९७८	१२-१४	४५
५	१०-०६-१९७८	१५-१८	५९
६	११-०६-१९७८	१९-२१	७४
७	१२-०६-१९७८	२२-२६	८९
८	१३-०६-१९७८	२७-३०	१०७
९	१४-०६-१९७८	३१-३३	१२३
१०	१५-०६-१९७८	३४-३६	१३९
११	१६-०६-१९७८	३६-३९	१५५
१२	१७-०६-१९७८	३९-४०	१७०
१३	१८-०६-१९७८	४१-४४	१८८
१४	१९-०६-१९७८	४५-४७	२०३
१५	२०-०६-१९७८	४८-५१	२१८
१६	२१-०६-१९७८	५१-५३	२३३
१७	२२-०६-१९७८	५४-५८	२४८

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१८	२३-०६-१९७८	५९-६१	२६१
१९	२४-०६-१९७८	६२-६४	२७६
२०	२५-०६-१९७८	६४-६६	२८९
२१	२६-०६-१९७८	६७-७०	३०४
२२	२७-०६-१९७८	७१-७४	३२०
२३	२८-०६-१९७८	७५-७६	३३५
२४	२९-०६-१९७८	७६-७८	३५२
२५	३०-०६-१९७८	७८-७९	३६८
२६	०१-०७-१९७८	७९-८१	३८४
२७	०२-०७-१९७८	८२-८३	४००
२८	०३-०७-१९७८	८४-८५	४१५
२९	०६-०७-१९७८	८६-८९	४३०
३०	०७-०७-१९७८	८९-९०	४४६

पूज्य गुरुदेवश्री का उपकार कीर्तन

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महा-मंगलकारी, आनन्द उत्पादक थी - ऐसी वाणी का श्रवण जिन्हें हुआ, वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल का एक अचम्भा था। बाहर का अभ्यास तो जीवों को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत वर्षों तक कराया है। उनकी वाणी रसदार-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा-आश्चर्यकारी मुखमुद्रा, शान्तरस झरती-उपशमरस से भरपूर थी। अहो! पूज्य गुरुदेवश्री तो भरत का सौभाग्य थे। भरतक्षेत्र भाग्यशाली है कि पूज्य गुरुदेवश्री यहाँ विदेह से सीधे पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली! पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं प्रगट किया, प्रसिद्धरूप से समझाया और ऐसा काल तो किसी काल में आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो पैंतालीस वर्षों तक मूसलाधार वर्षा की तरह, मिथ्यात्व के चिकने शैवाल की तरह पापभाव को उखाड़ डालनेवाली झनझावात् हवा की तरह पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक् श्रुत की प्रभावना की थी, उनकी कृपा अपने पर सदैव थी। हम तो उनके दास हैं। अरे, दास तो क्या? दासानुदास ही हैं।

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भारत को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के समस्त जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है। पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। तथा उन्हें वाणी का योग अद्भुत-अनुपम और अपूर्व था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान तो सबका अपना-अपना है परन्तु गुरुदेवश्री का निमित्तपना प्रबलतम था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहती ही नहीं। उनकी वाणी का ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी उकता कर खड़ा होकर उनका वक्तव्य सुनना छोड़कर उठ गया हो — ऐसा नहीं बनता - ऐसा परम कल्याणकारी उपदेश था।

- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत प्रवचन

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर धारावाहिक प्रवचन)

भाग-१

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा॥ १॥

जेठ शुक्ल १, मंगलवार, दिनाङ्क ०६-०६-१९७८
प्रवचन-१ वचनामृत- १-२-३

'भावनगर' में वाँचन हो गया है, यहाँ शुरुआत करते हैं। वहाँ हो गया है, परन्तु यहाँ पहले से शुरुआत करते हैं। सादी भाषा और मर्म बहुत! यह (पुस्तक) बहुत-सों को प्रिय हो गयी है। वेदान्तवाले पढ़ते (हैं), उन्हें भी प्रिय हो गयी है। यह क्या! सादी भाषा है और अस्ति की है।

देखो! पहला शब्द है — **हे जीव!** यहाँ से शुरु किया है। **जीवो चरित्तंदंसणणाण ठिदो** — जीवत्वशक्ति! जीवत्वशक्ति से जीवे, वह जीव। पहला बोल यह है न?

www.vitragvani.com

(समयसार की) दूसरी गाथा। **जीवो चरित्तदंसणणाण ठिदो।** वहाँ से जीवत्वशक्ति निकाली। वैसे यह (कहते हैं) **हे जीव!** तू जीवत्वशक्ति से जीनेवाला प्रभु है! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य इत्यादि। मूल चतुष्टय! मूल!

तुझे कहीं न रुचता हो तो.... तुझे कहीं (अर्थात्) पर में, राग में, एक समय की पर्याय में (न रुचता हो), क्योंकि पर्याय में प्रगट आनन्द नहीं है ; इससे तुझे कहीं न रुचता हो, **तो तेरा उपयोग पलट दे....** जो पर्याय, राग में रुकी है, वहाँ नहीं रुचता (क्योंकि) वहाँ दुःख है। जो पर्याय-वर्तमान अवस्था — चाहे तो शुभ हो या अशुभ (हो), उसमें रुकी हुई है, इससे दुःख है। इसलिए यह बात सिद्ध करके (ऐसा कहते हैं कि) तेरा उपयोग पलट दे। अर्थात् उपयोग पर में है अवश्य — ऐसा सिद्ध किया न? अर्थात् कि तेरा जो वर्तमान उपयोग है, वह राग और पुण्यादि के विकल्प में रुका हुआ है, वहाँ उसे नहीं रुचेगा, क्योंकि वहाँ दुःख है, राग है। उस उपयोग को पलटा। आहा...हा...! उस उपयोग को पलटा, अर्थात् गुलांट खाकर, जैसे राग की तरफ दशा ढली हुई है, वह तो भले वहाँ हो (परन्तु) बाद की दशा को अन्तर में झुका — ऐसा इसका अर्थ है।

मुमुक्षु : वह भी कठिन है, क्योंकि एक समय का उपयोग है....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय का उपयोग, राग में है, वह तो झुक नहीं सकता। यह तो कहा न? यह तो कहा 'पलटा दे' — ऐसा कहा न? है तो सही; राग में (उपयोग) है तो सही। अब उसे पलटा दे। पलटा दे (— ऐसा कहा तो) जो है, उस समय तो पलटा खायेगा नहीं।

कहीं न रुचता हो तो.... न रुचता हो तो अर्थात्? तुझे कहीं सन्तोष न लगता हो, आकुलता लगती हो तो — ऐसा (कहना है।) समझ में आया? सादी गुजराती भाषा में (कहते हैं।) **तो तेरा उपयोग....** तेरी दशा का व्यापार-उपयोग, तेरा उपयोग। ऐसा। **पलटा दे....** आहा...हा...! शुद्ध चैतन्य जीव आनन्दस्वरूप प्रभु; वहाँ उपयोग को पलटा दे, वहाँ उपयोग को झुका। आहा...हा...! है?

और आत्मा में रुचि लगा.... उपयोग पलटाकर आत्मा में रुचि लगा, ऐसा। ऐसे राग में जो रुचता नहीं.... आहा...हा...! पुण्य और पाप के विकल्प में (रुचता नहीं), उसके उपयोग को पलटा दे। जहाँ स्वरूप-जीवस्वरूप शुद्ध ध्रुवस्वभाव के भाव से पूर्ण

www.vitragvani.com

भरा है, वहाँ उपयोग को पलटा दे। यह ऐसी बात है। वहाँ **आत्मा में रुचि लगा।** उस उपयोग को वहाँ आत्मा में लगा, (उस) ओर झुका। आहा...हा... !

आत्मा में रुचे ऐसा है। क्योंकि वहाँ आनन्द है। आहा...हा... ! और राग में दुःख है; इसलिए वर्तमान उपयोग को पलटाकर आत्मा में रुचि लगा। तुझे रुचेगा। रुचि लगा, रुचेगा। (आत्मा में) रुचि लगा। **आत्मा में रुचे ऐसा है।** आहा...हा... ! बहुत सादी भाषा ! लड़कियों ने तो लिख लिया। हिम्मतभाई ने इकट्ठा किया तो हीराभाई ने उन्हें कल दिया। यहाँ अपनी संस्था की तरफ से, नो लड़कियों ने लिखा था, उन्हें दिया। २१६-१६ रुपये की वह चाँदी की फ्रेम ! (हीराभाई ने) १७० रुपये का (एक) चाँदी का प्याला (— ऐसे) दश प्याले बनाये। जिन लड़कियों ने लिखा था, उन प्रत्येक को दिया और (हिम्मतभाई ने) एकत्रित किया, इसलिए एक इन्हें दिया — (हीराभाई की) ओर से (दिया)। यह तो जिनने लिखा, उन्हें भी दिया ! ऐसा। यह अभिनन्दनीय है — ऐसा कहा था न ? आता है न ? पहले शुरुआत में लिखा था।

यहाँ कहते हैं, बहुत ही संक्षिप्त ! वर्तमान दशा परसन्मुख झुकी हुई है; नहीं — ऐसा नहीं; इसलिए पलट दें, क्योंकि पर्याय है, वह पलटेगी। ध्रुव हो, वह नहीं पलटेगा; पर्याय है, वह पलटेगी; इसलिए परसन्मुख जो उपयोग है, उसे इस ओर झुका — आत्मा में झुका; आत्मा में रुचि लगा, वहाँ तुझे रुचेगा। आहा...हा... ! बहुत संक्षिप्त ! व्यवहार से होता है और व्यवहार से नहीं होता — यह सब झगड़ा उड़ गया। आहा...हा... !

आत्मा में रुचे ऐसा है। क्यों ? कि **आत्मा में आनन्द भरा है....** उपयोग, राग में है; वहाँ दुःख है और जो उपयोग, आत्मा में जाता है; वहाँ तुझे रुचेगा। रुचि लगा, रुचेगा। क्यों ? वहाँ आनन्द भरा है। कान्तिभाई ! यह तो सादी भाषा है। (ये सब... हीराभाई) पैसे उड़ाने में बाहर पड़ गये हैं। इसमें भी, हाँ ! यह शास्त्र क्या है ? — इसका प्रचार (होवे), लोगों को सस्ता कैसे देना ? लोग कैसे पढ़े ?

दो बातें ली हैं — उपयोग पलट दे, अर्थात् पुरुषार्थ से (पलट दे ऐसा) कहा। पलट दे (कहा), इसलिए कहीं कर्म हटे और पलटे ऐसा नहीं है। तूने स्वयं ही उपयोग पर में जोड़ा है, वह तेरा ही अपराध है, उस उपयोग को ऐसा जोड़ दे, पलटा दे। जहाँ आत्मा

है, वहाँ आत्मा में रुचि लगा। **आत्मा में रुचे ऐसा है।** वहाँ रुचे ऐसा है, आत्मा में रुचे ऐसा है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : अन्यत्र कहीं रुचे ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं रुचे ऐसा नहीं। राग, व्यवहाररत्नत्रय (आदि में) कहीं रुचे ऐसा नहीं। आहा...हा... ! ऐसा है।

बहिन को तो अनेक स्थानों पर तो अभिनन्दन दिया है — मद्रास, मुम्बई, उमराला, भावनगर। यह सब शास्त्र बाहर आया न ? वरना तो कहीं (पता पड़े ऐसा नहीं है।) आहा...हा... ! बहुत सादी भाषा ! और अकेला सिद्धान्त का अकेला मर्म ! समझे उसे समझने में सरल, समझे उसे समझने में सरल ! आहा... !

आत्मा में आनन्द भरा है.... 'है' ऐसा भी नहीं कहा वापस ! भरा है ! यह आनन्दस्वरूप ही प्रभु है ! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर तत्त्व ही है। आनन्दवाला है ऐसा भी नहीं; आनन्द से भरपूर है। वह स्वयं ही अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। आहा...हा... ! **वहाँ अवश्य रुचेगा।** वहाँ अवश्य रुचेगा। आहा...हा... ! यह मांगलिक है ! शुरुआत है। **हे जीव!** ऐसा कहकर कहा।

जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है.... जगत् में कहीं (अर्थात्) राग और दया-दान आदि विकल्प तथा पर में कहीं रुचे ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! पहले अस्ति की, फिर नास्ति की। **जगत् में कहीं रुचे ऐसा नहीं है....** आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कहीं रुचे ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! **परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है।** जगत् में कहीं (रुचे ऐसा) नहीं है परन्तु एक यहाँ (आत्मा में रुचे ऐसा) है। **एक आत्मा में अवश्य....** (रुचे ऐसा है) भाषा क्या है ? जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है, इसलिए सब लिया। एक आत्मा में, अर्थात् इस ओर एक ही आत्मा रहा। राग नहीं, पर्याय नहीं। समझ में आया ? एक ओर राम और एक ओर गाँव। वहाँ तुझे नहीं रुचेगा प्रभु ! यहाँ एक आत्मा है वस्तु है न ! मौजूदगी (धारक) चीज है, आनन्द से भरपूर है। आहा...हा... ! कोई मानधाता होवे तो एक बार तो सुनकर उसे ऐसा लगता है कि .... बात तो कुछ सच्ची लगती है ! यह सब मानते हैं, व्यवहार से होता है और इससे होता है और निमित्त से होता है.... आहा...हा... !

www.vitragvani.com

इसमें (इस ग्रन्थ में) मात्र दो शब्द नहीं आये — क्रमबद्ध और कारणपर्याय। यह ख्याल है, बाकी सार बहुत आ गया है।

एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है... एक आत्मा, जिसमें आनन्द भरा है, वहाँ अवश्य रुचे ऐसा है। **इसलिए.... रुचे ऐसा है इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।** वहाँ रुचे ऐसा है, इसलिए वहाँ रुचि लगा। अन्यत्र कहीं रुचे ऐसा नहीं है, इसलिए वहाँ से हट जा। आहा...हा...! यह एक बोल हुआ। अन्दर बोल (नम्बर) लिखें हैं? ३८१ तो लिखें हैं, बाकी दूसरे किसी ने लिखे हैं? इसमें ३८१ लिखे हैं। बाकी के लिखने हैं। है?

श्रोता : साहिब! ४३२ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४३२ है। इसमें तो ऐसा नहीं। इसमें ३८१ तक लिखे हैं, दूसरे नहीं लिखे। यह एक बोल (पूरा हुआ)।

अन्तर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्मा की सच्ची लगन लगे और अन्तर में मार्ग न हो जाए - ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्मा की लगन लगनी चाहिए; उसके पीछे लगना चाहिए। आत्मा को ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिए। 'मेरा हित कैसे हो?' 'मैं आत्मा को कैसे जानूँ?' — इस प्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे॥ २॥

दूसरा (बोल) **अन्तर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ....** क्या कहा? **अन्तर की गहराई से....** (अर्थात्) ऊपर-ऊपर से कल्पना करे - ऐसा नहीं। अन्तर की गहराई से, अर्थात् ध्रुव-सन्मुख ढलने के लिये। **अपना हित साधने को....** अपना गहराई में से हित साधने को.... बाहर के किसी प्रकार से हित साधना नहीं हो सकता। **अन्तर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ....** जो आत्मा जागृत हुआ.... गहराई में से जो आत्मा जागृत हुआ, आहा...हा...! (आत्मा)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अपना हित साधने को (जागृत हुआ)। दुनिया का हित कुछ कर नहीं सकता, कोई पर का हित कर नहीं सकता।

अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ, आहा...हा...! भगवान आत्मा! उसका हित साधने जो प्रभु जागृत हुआ। आहा...हा...! और **जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी,....** जिसे अन्तर में — गहराई में आत्मा का (हित) साधने की सच्ची लगन लगी... आहा...हा...! (अर्थात्) किसी को दिखाने के लिए या किसी को बताने के लिए, सच्ची ऐसा नहीं।

अपने आत्मा में हित को गहराई से साधने के लिए.... आहा....हा...! आत्मा जागृत हुआ। **और जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही....** उसकी आत्मलगन ही... उसे आत्मा की लगन लगी, उसकी आत्मा की लगन ही उसका मार्ग कर देगी। आहा...हा...! जिसे अन्तर भगवान आत्मा की लगन (लगी है), गहराई से हित साधने की जिसे (लगन) लगी है... आहा...हा...! उसे सच्ची लगन लगी, **उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।** व्यवहार और निमित्त उसे मार्ग नहीं कर देगें — ऐसा उसका अर्थ है।

प्रश्न : एक पर्याय दूसरी पर्याय का मार्ग कर दे ?

समाधान : यह कोई कर नहीं सकता। (एक) पर्याय, दूसरी पर्याय का नहीं करती।

यहाँ तो जिसे अन्दर लगन लगी.... आहा...हा...! उसकी आत्मा की लगन ही — अन्तर की लगन ही — उसकी लगन ही.... आहा...हा...! उसका मार्ग कर देगी, अर्थात् कोई दूसरे विकल्प या कोई निमित्त तुझे साधन हों और कृपा मिल जाये — ऐसा नहीं है। यह तेरी लगन ही तुझे मार्ग करा देगी — (कर देगी)। भाई! किसी गुरु की कृपा हो जाये — ऐसा नहीं है (ऐसा) कहते हैं। तेरी लगन ही तुझे मार्ग कर देगी। आहा...हा...! भगवान आत्मा में जिसे रुचा है और जिसे उसमें लगन लगी है, (उसकी लगन ही) मार्ग कर देगी। आहा...हा...!

(आत्मा की सच्ची) लगन लगे और अन्तर में मार्ग न हो जाए — ऐसा हो ही नहीं सकता। आहा...हा...! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान की जिसे विश्वास से लगन

www.vitragvani.com

लगी.... आहा...हा... ! जिसे अन्दर में भरोसा चढ़ गया, उसे मार्ग मिले बिना नहीं रहेगा। आहा...हा... ! **अन्तर में मार्ग न हो जाए — ऐसा हो ही नहीं सकता।**

आत्मा की लगन लगनी चाहिए;.... इस आत्मा की (लगन, हाँ!) व्यवहार के विकल्प और निमित्तों का बहुमान और महिमा वह नहीं। **आत्मा की लगन लगनी चाहिए; उसके पीछे लगना चाहिए।** ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... शुद्ध! उसके पीछे लगना चाहिए, उसके समीप में जाना चाहिए — ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! भाषा तो देखो ! संक्षिप्त परन्तु (कैसी गम्भीर) !

प्रश्न : पीछे लगना चाहिए — ऐसा व्यवहार तो सही न ?

समाधान : एक भी नहीं, इसके पीछे लगना चाहिए — ऐसा कहते हैं। इसके पीछे अर्थात् ? पहले (और पीछे) ऐसा यहाँ शब्द नहीं है। इसके पीछे लगना चाहिए। इसके सन्मुख (होना चाहिए)। पीछे, अर्थात् पहले और पीछे ऐसा यहाँ नहीं है। आहा...हा... !

प्रश्न : इस प्रकार का अभ्यास किये बिना (किस प्रकार हो) ?

समाधान : नहीं, यह यहाँ कुछ नहीं। यह वस्तु है इसके पीछे (लगना चाहिए)। पीछे अर्थात् ? इसके समीप में जाना चाहिए। पीछे का अर्थ ऐसा नहीं है कि पहले यह और पीछे यह — ऐसा यहाँ अर्थ है ही नहीं। लोग ऐसा नहीं कहते ? इसके पीछे लगा है... इसके पीछे लगा है ! वह यहाँ है ही नहीं। लगनी कहो या पीछे कहो, यह सब एक ही है लगन लगी वह अन्दर पीछे लगा है।

प्रश्न : लगन किस गुण की पर्याय है ?

समाधान : वह लगन की पर्याय पीछे लगी (यह) इसकी ही है। आहा...हा... !

आत्मा की लगन लगनी चाहिए; उसके पीछे लगना चाहिए। पीछे का अर्थ ? - उसके सन्मुख लगना चाहिए — ऐसा पीछे का अर्थ है। उसके पीछे... उसके पीछे... पीछे... आहा...हा... ! अकेला ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ध्रुव पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु के समीप में.... उसके पीछे, अर्थात् उसके समीप में लगना चाहिए।

प्रश्न : चित्तशुद्धि की बात चलती है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

समाधान : चित्तशुद्धि की नहीं, यहाँ तो सीधी बात है। आत्मा के पीछे लगना चाहिए। यहाँ पीछे का अर्थ ऐसा नहीं है कि बाद में। आत्मा के पीछे, अर्थात् आत्मा के समीप में लगना चाहिए। वहाँ लगन लगानी चाहिए। आहा...हा...! ऐसी बात है। कमाने की कैसी रटन लगती है ? सपने में आवे, उसके स्वप्न (आते हैं)।.... *

आहा...हा...! उसके पीछे लगना चाहिए। उसका पल्लू छोड़ना नहीं चाहिए — ऐसा कहते हैं। ऐसा इसका अर्थ यह है। आहा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अस्तिरूप है, मौजूद है, चीज है, उसके समीप में ही जाना चाहिए। उसके पीछे, अर्थात् समीप जाना चाहिए। मूल (बात यह कि)बाहर से हटना चाहिए। आहा...हा...! **आत्मा को ध्येयरूप रखकर....** लो, यह फिर पीछे की व्याख्या की। भगवान आत्मा को ध्येय रखकर — ध्रुव के धाम को ध्येय बनाकर, आहा...हा...! ध्रुव का धाम है प्रभु! उसे ध्येय बनाकर...।

हमने तेरह बोल कहे हैं न ? पत्र (आत्मधर्म में) आ गये हैं। है कहीं, इसमें नहीं ? कहीं है। है न ? यह कागज रहा। (इन भाई को) वहाँ कहा था। आहा...हा...!

रात-दिन! (आत्मा को) **ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिए।** आहा...हा...! दिन और रात।

मुमुक्षु : यह शर्त कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है, भाई! वस्तु की स्थिति है। आहा...हा...! इसकी धुन लगना चाहिए, धुन! इसके पीछे पागल हो जाना चाहिए। सतत् प्रयत्न करना चाहिए। सतत्-निरन्तर। आहा...हा...! दिन और रात्रि, ध्येयरूप रखकर — ध्रुव को ध्येयरूप रखकर सतत् प्रयत्न करना चाहिए। अकेले टुकड़े हैं, अकेला मक्खन है। आहा...हा...! समझ में आया ?

'मेरा हित कैसे हो ?' मेरा हित कैसे हो ? पर का हित तो कर नहीं सकता। यह प्रश्न है नहीं। पर की चिन्ता.... यह पर तो जहाँ होगा, वहाँ रहेगा। तेरी चिन्ता निरर्थक जायेगी। आहा...हा...! परद्रव्य तो जिस प्रकार से जहाँ शरीर, वाणी, कर्म या पर जिस क्षेत्र में और जिस स्थिति में जैसे हैं, वैसे वे रहेंगे; मात्र तेरी चिन्ता निरर्थक जाएगी। आहा...हा...!

* आवाज स्पष्ट नहीं है।

www.vitragvani.com

यह वस्तु जहाँ है, उस प्रकार से वह रहेगी, तू चिन्ता करना चाहेगा तो उस वस्तु (की) स्थिति जिस प्रकार है, वहाँ उस प्रकार ही वह होगी। आहा...हा...! जो जहाँ है, वह वहाँ रहेगी, तेरी चिन्ता से जो जहाँ है, वह वहाँ से फेरफार होगी, ऐसा नहीं है। आहा...हा...! **'मेरा हित कैसे हो?' 'मैं आत्मा को कैसे जानूँ?'** मैं आत्मा को किस विधि से जानूँ? आहा...हा...!

(समयसार में) छठवीं गाथा में यह प्रश्न किया है न? छठवीं गाथा! यह आत्मा शुद्ध कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए? उपोद्घात (है न?) अन्य सबकी बात छोड़कर शिष्य का यह प्रश्न है। छठी गाथा शुरु करते हुए ऐसे शिष्य को लिया है कि जिसने अन्तर में धगश से (पूछा है कि) ऐसा शुद्ध आत्मा कौन है? प्रभु! दूसरी कुछ बात नहीं पूछी। छह द्रव्य और उनके गुण, पर्याय तथा देव-गुरु-शास्त्र (की व्याख्या नहीं पूछी)। आहा...हा...!

ऐसा शुद्धात्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए? ऐसा है न? वह है कौन? (शुद्धस्वरूप) कहना किसे? और उसका स्वरूप क्या है? ऐसी जिसे धगश हुई है, उसे प्रभु अमृतचन्द्राचार्य प्रभु ऐसा कहते हैं कि उसे यह उत्तर दिया जाता है। साधारण सुनने आवे **बैठ** रूप या कुछ सुनते हैं (उसे उत्तर नहीं दिया जाता)। आहा...हा...! गजब किया है न! उसे उत्तर दिया जाता है। है इसमें? जिसे अन्तर में से (धगश हुई है।)

शरीर कौन है? वाणी कौन है? कर्म कौन है? यह प्रश्न नहीं। अशुद्ध कौन है? यह प्रश्न नहीं? वह शुद्ध जीव कौन है? कि जिसका स्वरूप शुद्ध है, उसका स्वरूप जानना चाहिए? ऐसी जिसे अन्तर की लगन (और) धगश से जिसे जिज्ञासा उत्पन्न हुई है; अमृतचन्द्राचार्य उसका स्पष्टीकरण करते हैं कि उसे यह गाथा उत्तररूप कही जाती है। आहा...हा...! गजब करते हैं न! कितना भरते हैं!! उसे उत्तर देते हैं — ऐसा कहते हैं। ऐसे का ऐसा कहते हैं और यह चलता है न, ऐसा नहीं। आहा...हा...! वैसे ही वह सुनने आया है, और समीप में आकर पूछता है, उसे उत्तर दिया जाता है। आहा...! गजब बात है न! ऐसे कि पृष्ठ लिखते हैं और उसका उत्तर ऐसा दिया है ऐसा नहीं। आहा...हा...! क्या उनकी गम्भीरता! क्या सिद्धान्त के भाव का गम्भीरपना। ओ...हो...!

www.vitragvani.com

जो जीव गुरु के पास आया है। आया है परन्तु उसकी जिज्ञासा ऐसी है। आया है, उसे सुनाने जाना है – ऐसा भी नहीं। आहा...हा...! ऐसा जो जीव, जो अन्तर से शुद्धस्वरूप, वह क्या है? ओहो...! कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए? जिसे जानना, ऐसा भी नहीं कहा, आहा...हा...! जिसका स्वरूप, जिसका वास्तविक स्वरूप — ऐसा भी नहीं कहा, यह उसका स्वरूप ही ऐसा है – ऐसा जानना चाहिए। आहा...हा...! इसमें व्यवहार को जानना चाहिए और निमित्त को जानना चाहिए और पर्याय को जानना चाहिए, यह बात शिष्य के मुख में नहीं रखी है और ऐसा शिष्य नहीं लिया है। आहा...हा...! गजब बात है! समयसार! उसका एक-एक श्लोक! उसमें से यह मक्खन बहिन ने (निकाला है)! आहा...हा...!

यहाँ कहा **'मेरा हित कैसे हो?'** वहाँ छठवीं (गाथा में) ऐसा प्रश्न है न! उसका उत्तर है। जागता जीव खड़ा है न! यह उसका उत्तर है। है न पीछे? जिसे ऐसा प्रश्न अन्तर में से (उठा है)। छह द्रव्य, परमाणु और देव-गुरु कौन? यह भी नहीं। आहा...! वह शुद्धस्वरूप कौन है? कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए — ऐसी जिसे धगश से जिज्ञासा, शुद्धस्वरूप को समझने की-जानने की धगश हुई है; गुरु कहते हैं कि उसके लिए हमारा उत्तर है। आहा...हा...! उसके लिए यह उत्तर दिया गया है, अर्थात् उसके लिए विकल्प उठा है। इस प्रकार आया और यहाँ विकल्प भी इस प्रकार उठा है। आहा...हा...! उत्तर कहा जाएगा। आहा...! यह ज्ञायक है, वह शुद्ध है। शुद्ध क्या है? वह हित है। शुद्ध को साधना वह हित है, बाकी सब बातें हैं। आहा...हा...! शब्दों में कदाचित् विशेष कहना भी न आवे, दुनिया को समझाना भी न आवे, इससे कहीं वस्तु (चली नहीं जाती) आहा...! मात्र मेरा नाथ शुद्ध है, उसका क्या स्वरूप है? बस! यह मुझे जानना है। हमें कहना आवे और किस पद्धति से उपदेश करना और.... आहा...हा...! यह कुछ बात नहीं। हमारा प्रभु अन्दर शुद्ध! जो यह एकत्व-विभक्त शुद्ध आत्मा की व्याख्या करते हो, कौन है प्रभु वह? कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए।

यहाँ यह कहते हैं **'मेरा हित कैसे हो?'** यह इसमें ही आ गया। **'मैं आत्मा को कैसे जानूँ?'** है न? दूसरी बात (पूछी) नहीं। आहा...हा...! **'मैं'** – अस्ति सिद्ध की —

www.vitragvani.com

ऐसा जो 'मैं' — ऐसा जो 'आत्मा', उसे कैसे जानूँ? आहा...हा... ! है? थोड़े में बहुत भरा है। लोगों की माँग थी परन्तु सबके हाथ में पुस्तक हो तो उन्हें अधिक ठीक पड़े। अब तो बहुत पुस्तकें छप गयी हैं। ओहो...हो... !

वह पुस्तक आयी है या नहीं? 'अध्यात्म पीयूष'! पाँच हजार छपाई है, आयी नहीं? यह बड़ी है, इसमें से छाँटकर छोटी बनायी है। 'अध्यात्म पीयूष' नामक (पुस्तक) पाँच हजार (छपाई है) यह अपने कैसे? राजकोटवाले नहीं? नाम क्या क्या? चन्द्रकान्त चन्द्रकान्त, नवचंदभाई प्रवीणभाई तीनों ने इकट्ठे होकर पाँच हजार छपाई है, चार हजार रुपये की! अस्सी पैसे की एक पड़ी। घाटकोपर दी है, बहुतों को दे दी गयी है। उसे अध्यात्म पीयूष नाम दिया है। अध्यात्म अमृत! आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं '**मैं आत्मा को कैसे जानूँ?**' मेरा स्वरूप है, वह मैं किस प्रकार जानूँ? बस ,एक ही बात! आहा...हा... ! शास्त्र कोई आवे, न आवे। आहा...हा... ! बोलना आवे, समझाना आवे, वह कुछ नहीं। मैं आत्मा को किस प्रकार जानूँ? आहा...हा... ! समझने में भी इसी प्रकार लक्ष्य रहे कि कुछ पकड़ में आये तो फिर यह बात हम दुनिया के सामने रखें तो अपनी बात उसे ठीक लगे तो प्रसन्न हो - यह हेतु नहीं है। आहा...हा... ! है न यह? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। आहा...हा... ! यहाँ तो कहते हैं कि मैं आत्मा को - मेरा नाथ शुद्धस्वरूप है, उसे किस प्रकार जानूँ? उसकी विधि क्या? वहाँ भी विधि क्या? (ऐसा) पूछा है। आहा...हा... ! उसकी विधि क्या है?

(समयसार, गाथा) ७३ में ऐसा पूछा है — आस्रव से निवृत्त होने की विधि क्या है? ७३ (गाथा में) शिष्य का यह प्रश्न है। प्रश्न में ही यह है कि जितने पुण्य-पाप के भाव — आस्रव हैं, उनसे लाभ होता है, यह तो प्रश्न है ही नहीं। आहा...हा... ! इतना तो शिष्य तैयार होकर पूछता है.... आहा...हा... ! परन्तु इन आस्रवों से निवृत्त होने की विधि, फिर कोष्ठक में रीति कहा है, रीति! उसकी विधि-रीति क्या है? आहा...हा... !

विकार के — पुण्य-पाप के भाव, जो आस्रव, उनसे निवृत्त होने की विधि क्या है? करने की विधि क्या है? करने से होता है, उसका यह प्रश्न तो उड़ गया है। अभी इसमें बड़ा विवाद हो गया है। आहा...हा... ! उनसे निवृत्त होने की विधि क्या है? तब फिर कहा

www.vitragvani.com

कि 'ऐसा मैं' (ऐसा) विकल्प से निर्णय कर! फिर विकल्प को छोड़ दे। क्यों? कि सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा — ऐसा आत्मा अन्य में किसी ने नहीं देखा। असंख्य प्रदेशी है, वह तो सर्वज्ञ ने ही देखा है। यह बात किसी जगह, भगवान सर्वज्ञ के सिवाय कहीं नहीं आती है। आहा...हा...! इसलिए सर्वज्ञ ने जो आत्मा देखा — है ऐसा — उसे प्राप्त करने की (और) आस्रव से निवृत्ति की विधि क्या है? तो कहा, प्रभु ने कहा (ऐसे) आत्मा (का) पहले विकल्प से निर्णय कर। दूसरे कहते हैं, उससे अलग करने के लिए (पहले ऐसा निर्णय कर), वरना आत्मा दूसरे कहें और यह भगवान कहे, इन दो में अन्तर क्या है? और यह कहते हैं उस आत्मा का स्वरूप कैसा है? अनन्त गुण हैं, असंख्य प्रदेश हैं, प्रदेश-प्रदेश में अनन्त गुण हैं, उनकी अनन्त पर्याय है — ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है।

इसलिए भले पहले आत्मा (में) एकदम अन्दर प्रविष्ट न हो सके परन्तु यह वस्तुस्थिति ऐसी है — ऐसा (निर्णय करे)। इसमें विशिष्टता क्या है? पाँचों इन्द्रियों के विषय बन्द कर दिये, अकेले मन की कल्पना से ही अन्दर निर्णय करने लगा है। यह क्या कहा? यह बात ऐसे साधारण नहीं रखी है। एकदम पाँच इन्द्रिय की ओर का (लक्ष्य) बन्द करके और अन्दर से मन के सम्बन्ध से, राग के सम्बन्ध से, मन के सम्बन्ध से अन्तर में 'ऐसा आत्मा.... ! ऐसा आत्मा.... !' ऐसा विकल्प से निर्णय अन्तर के मन के सम्बन्ध से करता है। अन्दर कितनी निवृत्ति है? क्या कहा? समझ में आया इसमें? आहा...हा...!

पाँच इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य छूट गया है। उस ओर का विचार नहीं। अब अन्दर मन में (उसका) सम्बन्ध है और इससे राग का सम्बन्ध है परन्तु अकेले राग के-विकल्प के सम्बन्ध का मन के संग से 'ऐसा आत्मा है' यह कितनी निवृत्ति से, विकल्प से निर्णय करता है। समझ में आया इसमें? आहा...हा...! एकदम पाँचों ही इन्द्रियों (की ओर का लक्ष्य) सब बन्द हो गया। एक आत्मा और विकल्प-मन बस! इसके साथ यह सब निर्णय करने लगा — 'मैं एक हूँ' और 'मैं शुद्ध हूँ' इत्यादि-इत्यादि लम्बा बहुत है। आहा...हा...! आहा...हा...! जिसने ऐसे आत्मा का अपने हित के लिए ऐसा निर्णय किया है, वह विकल्प तोड़कर अन्दर प्रविष्ट होगा। आहा...हा...! समझ में आया? यह उपदेश की शैली दूसरे प्रकार की है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

श्रोता : जिस विकल्प से निर्णय करता है, उस विकल्प का भी अभाव कर डालता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव के लिए ही उस विकल्प से निर्णय करता है। कारण एकदम सब बन्द करके अन्तर से अकेला विचार आया — एक हूँ अखण्ड हूँ अनादि-अनन्त हूँ; कर्ता, कर्म, करण, (ऐसे) पर्याय के भेद हैं, उनसे भी भिन्न हूँ। आहा...हा...! पर्याय के कर्ता-कर्म से भी अनुभूति भिन्न है। अनुभूति अर्थात् त्रिकाली (स्वभाव); पर्याय की बात वहाँ नहीं है। आहा...हा...! गजब काम किया है न! सन्तों ने तो जगत् को निहाल कर दिया है!! आहा...हा...! ऐसे हथेली में बताया है — 'देख यह... देख यह...' तेरी एक नजर तो कर, आहा...हा...! तेरी नजरें पर में हैं, उसे पलटा दे, भाई! तू पलटा दे, अर्थात् वह क्या? आहा...हा...! जो करने का है, वहाँ (करने का है)। आहा...हा...! पलटा करके वहाँ (नजर कर)। आहा...हा...! यहाँ है न? '**मैं आत्मा को कैसे जानूँ?**' — **इस प्रकार लगन बढ़ाकर.....** वहाँ है तो भले विकल्प, है न? **प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे।** आहा...हा...!

प्रश्न : विकल्प से साध्य होता है?

समाधान : होता है, विकल्प है परन्तु फिर भी वह अन्दर छोड़ता है, जरूर अन्दर हाथ आयेगा। विकल्प है, लगन लगती है, यह... यह... यह... यह... इतना भेद है न? आहा...हा...! आत्मा में लगन लगाऊँ, इतना भी अभी भेद का विकल्प है न? सूक्ष्म बहुत सूक्ष्म! आहा...हा...! इसे (विकल्प को) छोड़कर **अवश्य मार्ग हाथ हाथ लगे।** तुझे मार्ग अवश्य हाथ आयेगा। आहा...हा...! दो बोल हुए।

ज्ञानी की परिणति सहज होती है। हर एक प्रसङ्ग में भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता, परन्तु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है — आत्मा में धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है॥ ३॥

ज्ञानी की परिणति सहज होती है.... अर्थात् राग से भिन्न पड़कर चैतन्य का ज्ञान हुआ-भेदज्ञान हुआ, उसे अब भेदज्ञान करना रहता नहीं। सहज ज्ञान की परिणति, राग से भिन्न धारा वर्तती है। आहाहा! धर्मी की दशा; परिणति... शब्द....

www.vitragvani.com

ज्ञानी की परिणति.... धर्मी की दशा। परिणति अर्थात् उसकी पर्याय। आहा...हा...! राग से छूटकर वस्तु के स्वरूप को लगकर दशा हुई है; इसलिए समकिती की परिणति — पर्याय सहज होती है। उसे राग से भिन्न करना नहीं पड़ता। (पृथक्) पड़ गया है, वह प्रयत्न स्वभावसन्मुख हुआ ही करता है। राग से भिन्न पड़कर जो परिणति हुई, वह प्रयत्न स्वभावसन्मुख हुआ ही करता है; प्रयत्न का जोर-पुरुषार्थ का जोर स्वभावसन्मुख हुआ ही करता है। आहा...हा...! है ?

हर एक प्रसङ्ग में भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता,.... कि यह राग नहीं और यह (मैं) नहीं। आहा...हा...! जहाँ राग और भगवान दो भिन्न पड़े; बिजली जहाँ पड़ी, वहाँ पर्वत के दो टुकड़े हो गये, वे अब साँधने से एक नहीं होंगे, वे भिन्न ही रहते हैं। इसी प्रकार राग और आत्मा को भेदज्ञान की बिजली अन्दर डाली.... आहा...हा...! उसे 'यह राग और यह मैं' ऐसा अब करना नहीं पड़ता — ऐसा कहते हैं। है ? **हर एक प्रसङ्ग में भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता, परन्तु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है....** स्वाभाविकदशा होती है।

आत्मा में धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है। जानना और आनन्द की दशा; राग होने पर भी वह वर्तती ही रहती है। उसे भेद नहीं करना पड़ता कि यह राग (मैं नहीं)। (ज्ञान) स्वभावसन्मुख हुआ है और राग से विमुख हुआ है, (तब से) इस ओर का प्रयत्न शुरु ही है, अब नया (प्रयत्न) करना नहीं पड़ता, उसे यहाँ वास्तविक भेदज्ञान कहा जाता है। लो! पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देनेवाले हैं। ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है किन्तु रुंधा हुआ कषाय है। परन्तु ज्ञान न होने से जीव, कषाय को पहिचान नहीं पाता। ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है, और वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता किन्तु सबसे निस्पृह एवं स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है। ज्ञान सहित जीवन नियम से वैराग्यमय ही होता है॥ ४॥

जेठ शुक्ल २, बुधवार, दिनाङ्क ०७-०६-१९७८
प्रवचन-२ वचनामृत- ४-५-६

यह वचनामृत का चौथा बोल है। कल तीन बोल चले हैं। कल शुरुआत की थी न? (आज) चौथा बोल है। **ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देनेवाले हैं।** क्या कहा? कि यह आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु (है), इसका ज्ञान और राग का अभाव — ऐसा जो वैराग्य (— ऐसी) अस्ति-नास्ति है। अस्ति का ज्ञान (अर्थात्) पूर्ण शुद्ध चैतन्यवस्तु का, स्वसन्मुख होकर ज्ञान (होना) और पर-रागादि का अभाव (होना), वह वैराग्य है; ये (दोनों) एक-दूसरे को प्रोत्साहन देनेवाले हैं। अस्ति है, वहाँ राग की नास्ति है, वह पुष्टि देता है और धर्मी को ज्ञान और वैराग्य दोनों एकसाथ होते हैं। स्वरूप का ज्ञान और राग का अभाव एकसाथ होता है। (समयसार में) निर्जरा अधिकार में आता है न? ज्ञान और वैराग्य दोनों शक्ति एकसाथ होती है। सूक्ष्म बात है।

अभी तो (लोग) ऐसा कहते हैं कि यह शुद्ध उपयोग, शुभ उपयोग से होता है। शुभ उपयोग करते-करते शुद्ध होता है — यह अनेकान्त है और शुभ से शुद्ध नहीं होता — यह एकान्त है — ऐसा (लोग) कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि जो शुद्धस्वरूप वस्तु है, उसका उपयोग, वह शुद्ध उपयोग है। पर की ओर के झुकाववाला भाग, वह अशुद्ध उपयोग है;

www.vitragvani.com

फिर वह शुभ हो या अशुभ हो परन्तु (वे दोनों) हैं अशुद्ध। परद्रव्य के आश्रय से होनेवाला उपयोग, अशुद्ध है और स्वद्रव्य के आश्रय से होनेवाला उपयोग, शुद्ध है। इस शुद्धपने का ज्ञान अर्थात् त्रिकाली का ज्ञान, वह शुद्ध उपयोग है और उस काल में राग का अभाव (हुआ है, वह) वैराग्य है। दोनों एक-दूसरे को मदद करनेवाले हैं — प्रोत्साहन देनेवाले हैं। प्र + उत्साहन = विशेषरूप से एक-दूसरे को मदद करनेवाले हैं। आहा...हा...! जहाँ शुद्ध चेतन पूर्ण पवित्रता का, सन्मुख (होकर) ज्ञान होता है, वहाँ पर तरफ के राग के अभावरूप वैराग्य साथ होता ही है; इसलिए एक-दूसरे को प्रोत्साहन करनेवाले हैं। समझ में आया? आहा...हा...!

ज्ञानरहित वैराग्य.... अब यह (बात) सूक्ष्म है। शुद्ध चेतन, अकषायस्वरूप सर्वोत्कृष्ट परमात्मस्वरूप के ज्ञानरहित वैराग्य, **वह वास्तव में वैराग्य नहीं है....** क्योंकि शुद्ध चेतन महाप्रभु सर्वोत्कृष्ट परमात्मस्वरूप का ही ज्ञान जहाँ नहीं, वहाँ वैराग्य नहीं होता। आहा...हा...! वहाँ पर की ओर के राग का अभाव नहीं होता; इसलिए कहते हैं कि **ज्ञान रहित वैराग्य, वह वास्तव में वैराग्य नहीं है....** शुद्ध-शुद्ध चैतन्य के उपयोग के परिणाम के अतिरिक्त — इसके बिना वैराग्य, वैरागयरूप है ही नहीं। आहा...! कठिन बातें!

(यह) स्त्री-कुटुम्ब छोड़े, परिवार छोड़े, जाति छोड़े, व्यापार छोड़े, अशुभभाव छोड़े, परन्तु वस्तुस्थिति — अस्ति मौजूदगी (धारक) चीज जो पूर्ण है, उस पूर्ण के ज्ञान बिना वैराग्य (अर्थात्) राग का अभाव इसे हो ही नहीं सकता। वह वैराग्य नहीं, **किन्तु रुँधा हुआ कषाय है।** (अर्थात्) रोका हुआ कषाय है, दबाया हुआ कषाय है। मिथ्यात्व सहित है न? (इसलिए रुँधा हुआ कषाय है।) आहा...हा...! कषाय की मन्दता दिखे... सम्यक् चेतनस्वरूप के — पूर्ण स्वरूप के ज्ञान बिना राग की मन्दता दिखे, मानो राग घटा है (परन्तु वह राग) घटा नहीं; राग रुँधा हुआ है, रोका हुआ है; वह फटेगा तब मिथ्यात्व के कारण तीव्र कषाय होगी। आहा...हा...! समझ में आया? यह तो एकदम सार वस्तु है। आ...हा...!

रुँधा हुआ कषाय है। रोकी हुई कषाय है; अकषायपरिणाम नहीं। राग की मन्दता (हुई वह) सम्यक् अनुभव के बिना, वह अकषायभाव नहीं है। आहा...हा...! चेतन त्रिकाली अकषायस्वरूप पूर्ण शुद्ध चेतन के ज्ञान बिना राग की मन्दता का भाव, वह रुँधी

हुई कषाय है, (वह) मन्द नहीं हुई है। आहा...हा... ! क्योंकि जहाँ स्वरूप की दृष्टि ही नहीं है, त्रिकाल वैराग्यमूर्ति सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा का जहाँ ज्ञान नहीं है, जिनस्वरूपी प्रभु का ज्ञान नहीं है; वहाँ राग का अभाव है ही नहीं; वहाँ राग को रोका है, इसलिए वह राग फटेगा, इस शुभ में से वापस अशुभ होगा। आहा...हा... ! ऐसा कठिन काम !

चेतन शुद्धस्वरूप पूर्ण अस्ति ! पूर्ण स्वरूप सर्वोत्कृष्ट प्रभु ! स्वयं के लिए जगत में इससे उत्कृष्ट कोई चीज ही नहीं है। परमात्मा, परमात्मा उत्कृष्ट हों, वे उनके लिए, परन्तु यहाँ तो सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से परिपूर्ण स्वभावस्वरूप, ऐसा जो सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा का स्वरूप, वह सर्वोत्कृष्ट है। आहा...हा... ! इसके (ज्ञान) बिना कषाय की मन्दता को रुँधा हुआ — दबाया हुआ कषाय कहा जाता है। अशुभ गया, इसलिए शुभ है — ऐसा इसे नहीं कहा जाता। जरा भी कषाय गयी नहीं — ऐसा कहना है।

(आत्मा) सम्यक् चेतनस्वरूप है। उसकी दृष्टि और ज्ञान होने के बाद शुभ होवे तो उसमें से अशुभ गया है — इतना व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु इसे तो सम्यक् चेतन जिनस्वरूपी प्रभु-वीतरागस्वरूप ही दृष्टि में नहीं आया, उसकी राग की मन्दता को शुभ (है) अथवा अशुभ गया है — ऐसा नहीं कहा जाता। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं !

प्रभु ! तू अकषायस्वरूप है न ! वीतराग शान्तरस से भरपूर, उपशमरस का कन्द प्रभु ! ऐसा उपशमरस का — अकषायस्वभाव का रसकन्द प्रभु ! उसका जिसे ज्ञान नहीं है, उसे तो वीतरागी अकषायस्वभाव का ज्ञान नहीं है, उसे राग की मन्दता में अशुभ (भाव) गया है — ऐसा नहीं है। उस राग को रोंधा है — रोका है। आहा...हा... !

व्यवहारवालों को कठिन लगता है (ऐसा कहते हैं कि) ये लोग (सोनगढ़वाले) शुद्ध उपयोग को ही धर्म मानते हैं। शुभ साधन है (— ऐसा मानना नहीं और) जीवन असंयम में व्यतीत करना ! परन्तु बापू ! असंयम में व्यतीत करना, यह तो वस्तु की दृष्टि (और) अनुभव होने पर भी स्वरूप की स्थिरता का पुरुषार्थ न हो तो क्षायिक समकिती असंयम में भी रहे... समझ में आया ? क्योंकि उसे चेतन शुद्धस्वरूप का उपयोग - शुद्ध स्वरूप का व्यापार (तथा) अनुभव दृष्टि तो हुई है; इस कारण वह असंयम में रहे तो भी वह मोक्षमार्ग में है। आहा...हा... ! और जिसे अकषायस्वरूप शान्त... शान्त... शान्तरस से

www.vitragvani.com

भरपूर भगवान का ज्ञान नहीं, उसके स्वभाव की मौजूदगी-अस्ति की प्रतीतिस्वरूप कारण प्रभु है — ऐसा जहाँ ज्ञान होकर प्रतीति नहीं, उसके कषाय की मन्दता को रुँधा हुआ कषाय कहा जाता है — रोका हुआ कषाय कहा जाता है; जरा भी घटा है — ऐसा वहाँ नहीं कहा जाता। आहा...! ऐसा है।

परन्तु ज्ञान न होने से.... अस्ति पूर्ण शुद्ध प्रभु! जो वस्तु है, जो पूर्ण अस्ति है, मौजूद है, अनन्त-अनन्त परमात्मा की पर्याय का पिण्ड प्रभु है — ऐसे स्वरूप के ज्ञान बिना.... **परन्तु ज्ञान न होने से जीव, कषाय को पहिचान नहीं पाता।** यह राग मन्द (होवे) या तीव्र (होवे परन्तु) उसे स्वरूप का ज्ञान-अकषायस्वभाव का ज्ञान नहीं होने से (वह) कषाय को पहचान नहीं पाता। आहा...हा...! (लोग तो) तीव्र पाप होवे उसे अशुभकषाय (कहते हैं) परन्तु अन्दर सूक्ष्म... शुभ तो ठीक किन्तु गुण-गुणी के भेद का सूक्ष्म विकल्प उठता है, वह भी कषाय है। उस अकषाय (स्वरूप) के ज्ञान के बिना इस कषाय को पहचान नहीं सकता — ऐसी बात है।

जो उपशमरस — अकषायस्वरूप है, स्वरूप ही इसका (ऐसा है कि) 'घट घट अन्तर जिन बसै' — जिनस्वरूपी ही प्रभु आत्मा है! आहा...हा...! ऐसा जिनस्वरूपी अर्थात् अकषायस्वरूपी वीतरागस्वरूपी (अर्थात्) जिसमें कषाय का अंश भी नहीं और वीतरागता से परिपूर्ण भरा पदार्थ है, उसके ज्ञान बिना (वह) कषाय को पहचान नहीं सकता। आहा...हा...! इस राग की मन्दता को भी आत्मा की स्थिति में (शान्ति में) खतौनी कर डालेगा। आहा...हा...! है न?

ज्ञान न होने से जीव, कषाय को पहिचान नहीं पाता। आहा...हा...! **ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,....** ऐसा लेना। 'वैराग्य की मस्ती...' और इतना निकाल डालना। है इसमें यह? निकाल दिया है? (श्रोता - नयी आवृत्ति में नहीं है) **ज्ञान स्वयं....** अर्थात् वस्तु जो आत्मा! सर्वोत्कृष्ट अनन्त शक्ति का सागर, उसका ज्ञान, मार्ग को पहचानता है। **ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,....** शुद्धपर्याय है - जो शुद्ध चेतन का ज्ञान हुआ.... है न? (वह) **ज्ञान स्वयं....** सम्यक् चेतन, परमानन्द का ज्ञान स्वयं, जो मोक्षमार्ग की परमानन्द की दशा (प्रगटी) उसे वह जानता है। त्रिकाली शुद्ध चेतन का ज्ञान

www.vitragvani.com

(हुआ), वह वर्तमान अकषाय की (अर्थात्) मोक्षमार्ग की परिणति को वह (ज्ञान स्वयं) जानता है। यह तो अकेला तत्त्व भरा है। आहा...हा...! समझ में आया?

ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,.... स्वयं मार्ग को जानता है, उसे किसी पर की अपेक्षा (या) सहायता की आवश्यकता नहीं है। शुद्ध आत्मवस्तु का ज्ञान हुआ,... वह ज्ञान हुआ वह तो पर्याय हुई, उसका ज्ञान हुआ, वह उसकी पर्याय को (अर्थात्) मोक्षमार्ग को ज्ञान भलीभाँति जानता है। समझ में आया? जो वस्तु है, उसे जिसने जानी (तो) जानने में तो निर्मलपर्याय आ गयी। जो वस्तु है, उसे (जो जाने) जानी वह ज्ञान, मोक्षमार्ग को जानता है क्योंकि जानना, वही पर्याय है। वह पर्याय को — वह मोक्षमार्ग को जानता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

और वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता.... राग से भिन्न (ऐसा) वैराग्य है कि जिसकी दृष्टि का आसन उदास है, राग से भी जिसका आसन उदास है। जहाँ अन्तर शुद्ध स्वरूप है, वहाँ जिसका आसन है, वहाँ जिसकी दृष्टि और ध्येय है, ध्रुव का जहाँ ध्येय है — ऐसी जो दृष्टि, ऐसा जो वैराग्य, वह वैराग्य स्वयं ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता। राग का अभाव — ऐसा जो वैराग्य, वह ज्ञान को कहीं (किसी भी) राग में अटकने नहीं देता। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा मार्ग है!

किन्तु सबसे निस्पृह.... क्योंकि पूर्ण शुद्धस्वरूप के ज्ञान से वर्तमान मोक्षमार्ग को जाना, उसे राग के अभावस्वरूप वैराग्य तो सदा ही वर्तता है, इसलिए वह **सबसे निस्पृह एवं स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है।** पर से निस्पृह और स्व की मौज में टिकाता है। आहा...! राग आदि पर से निस्पृह.... जिसे रागादि की स्पृहा नहीं है, क्योंकि पूर्ण ज्ञायकस्वरूप का भान और राग के अभावस्वरूप वैराग्य, वह वैराग्य, ज्ञान को कहीं रुकने नहीं देता। वैराग्य रुकने नहीं देता; वैराग्य, आत्मा के ज्ञान को राग में कहीं रुकने नहीं देता। वैराग्य है न? आहा...हा...! ऐसी वस्तु है।

ज्ञानसहित जीवन नियम से वैराग्यमय ही होता है। आत्मा के ज्ञानसहित जीवन!.... चाहे तो भले आठ वर्ष की बालिका हो! (यह तो) शरीर (की उम्र है)। वस्तुरूप से तो प्रभु पूर्ण है, उसका जहाँ ज्ञान हुआ.... आहा...हा...! उस ज्ञानसहित जीवन,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

नियम से राग के अभावरूप वैराग्यसहित होता है। आहा... ! राग उसका जीवन नहीं है। धर्मी जीव का (जीवन) ज्ञानसहित (और) रागरहित (ऐसा) वैराग्यमय जिसका जीवन है। ज्ञानसहित वैराग्य जिसका जीवन है। आहा...हा... ! **ज्ञानसहित जीवन नियम से....** ऐसा कहा है। **नियम से....** कहा है न ? (अर्थात्) निश्चय से **वैराग्यमय ही होता है।** आहा...हा... !

जहाँ पूर्णानन्द के नाथ का पर्याय में ज्ञान हुआ,... वस्तु तो वस्तु है परन्तु उसका जहाँ ज्ञान-श्रद्धान पर्याय में हुआ, उस ज्ञानसहित का जीवन नियम से राग के अभावस्वरूप वैराग्यमय जीवन होता है। आहा...हा... ! यह तो अकेला टुकड़ा (बोल) है ! **वैराग्यमय ही होता है।** क्योंकि आनन्द का-परमानन्दस्वरूप का ज्ञान हुआ, वह राग के अभावस्वरूप ही उसका परिणमन है; इसलिए वह ज्ञान, वैराग्यमय ही होता है — ऐसी बात है। यह चौथा बोल हुआ।

अहो! इस अशरण संसार में जन्म के साथ मरण लगा हुआ है। आत्मा की सिद्धि न सधे, तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहेगा। ऐसे अशरण संसार में देव-गुरु-धर्म का ही शरण है। पूज्य गुरुदेव के बताये हुए चैतन्यशरण को लक्षगत करके उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें — यही जीवन में करने योग्य है॥ ५॥

पाँचवाँ (बोल) **अहो! इस अशरण संसार में....** प्रभु स्वयं तो शुद्ध चैतन्यवस्तु होने पर भी, अरे... ! **अशरण....** यह अशरण संसार। संसार की अस्ति है। जैसे एक ओर पूर्ण (स्वरूप की) अस्ति है, वैसे अनादि से एक ओर पर्याय में संसार की अस्ति है; नहीं — ऐसा नहीं है। अनादि से (है।)

अहो! इस अशरण संसार में जन्म के साथ मरण लगा हुआ है। जन्म होता है तो मरण होगा ही। संयोग हुआ, उसका वियोग होगा ही। आहा...हा... ! जिसे जन्म का योग हुआ (अर्थात्) देह का संयोग (हुआ)। आत्मा कहीं जन्मता नहीं है। जिसे देह का संयोग हुआ, उसे मरण का वियोग होगा ही। यह जन्म और मरण की कतार लगी है। अज्ञान में अनादि से जन्म और मरण की कतार-धारा (चली आती है)। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

अनन्त काल में कोई एक समय भवरहित गया (हो) — ऐसा नहीं है। इसलिए अनादि से अशरण संसार में... आहा...हा...! वहाँ कोई शरण नहीं है। भगवान (आत्मा) शरण है, उसमें तो आया नहीं। आहा...हा...! **अशरण संसार में....** जैसे कन्या पहले पीहर में रहती है (वैसे) इसका (जीव का) पीहर निगोद है — ऐसा शास्त्र में आया है। वहाँ अनन्त काल रहा है। अशरण संसार में जन्म और मरण का चक्र अनादि से चला ही करता है। जहाँ तक आत्मा की सिद्धि नहीं करे तो (यह चक्र चलने ही वाला है) आहा...हा...! क्योंकि आत्मा स्वयं जन्म-मरण और जन्म-मरण के भावरहित चीज है। उसका (आत्मा का) शरण नहीं ले और उसकी सिद्धि नहीं साधेगा — भगवान आत्मा की सिद्धि नहीं साधेगा, तब तक अशरण संसार में जन्म-मरण का चक्र चलने ही वाला है। आहा...हा...!

एक के बाद एक भव, एक के बाद एक भव...! आहा...हा...! निगोद के एक श्वाँस में अठारह भव (धारण करता है)। भले इसे शुभ-अशुभभाव होते हैं, तथापि वे सब भव हैं, चक्र के भव हैं। आहा...हा...! अशुभ से उकता गया फिर शुभ में आया, उसमें भी उकता गया, यह सब संसार है। इससे जन्म-मरण का चक्र (चलने ही वाला है) चक्र है न? वह घूमता है, (ऐसे ही) शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ उनके फलरूप शुभ-अशुभ आदि गति, यह चलने ही वाला है। आहा...हा...! ऐसा है न? **चलता ही रहेगा।**

ऐसे अशरण संसार में देव-गुरु-धर्म का ही शरण है। निमित्त से (शरण है) पहले व्यवहार लिया है। सच्चे देव-गुरु का शरण, यह उसका व्यवहार से शरण है। पहले इसे निमित्त ऐसा मिलता है न? वह व्यवहार से शरण है। फिर बहिन ने स्वयं की विनय से (हमारा) नाम कहा है।

पूज्य गुरुदेव के बताये हुए चैतन्यशरण को लक्ष्यगत करके.... चैतन्यशरण को लक्ष्यगत करके.... अशरण (कहा) था न अन्दर? पहला शब्द अशरण संसार (कहा) है। यहाँ चैतन्यशरण को लक्ष्यगत करके (ऐसा कहा है) आहा...हा...! अन्दर चैतन्य प्रकाश का पुँज प्रभु, चैतन्य प्रकाश का पुँज, उसे लक्ष्यगत करके; पर्याय की और राग की पर्याय बुद्धि है, उसे छोड़कर, चैतन्यस्वरूप अन्दर.... आहा...हा...! (उसे लक्ष्यगत करके) यह कहीं भाषा का काम है?

www.vitragvani.com

(चैतन्यशरण को) **लक्ष्यगत करके उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें....** आहा...हा... ! मैं आत्मा ज्ञायक चैतन्य.... ज्ञायक चैतन्य... ज्ञायक चैतन्य हूँ। पर्याय भी नहीं और राग भी नहीं। 'चैतन्य' ऐसा शब्द लिया है न ? **चैतन्यशरण को....** लो ! शरण आया ! पहले कहा कि देव-गुरु-धर्म का शरण है। फिर देव-गुरु ने बताया क्या है ? कि चैतन्यशरण को लक्ष्य कर। व्यवहार से देव-गुरु-धर्म का शरण कहा अवश्य परन्तु उन्होंने कहा क्या ? उन्होंने चैतन्य के शरण को (लक्ष्यगत करने को) कहा है। आहा...हा... !

चैतन्यशरण को लक्ष्यगत करके (अर्थात्) ध्येय में लेकर, वर्तमान पर्याय के ध्यान में चैतन्य को ध्येय में लेकर; लक्ष्यगत अर्थात् लक्ष्य में लाकर-उसकी ओर का लक्ष्य करके। आहा...हा... ! **उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें....** जिसे अन्दर से राग से भिन्न प्रभु और चैतन्यस्वभाव से परिपूर्ण ऐसे (स्वरूप के) दृढ़ संस्कार बारम्बार अन्दर जाये और दृढ़ संस्कार जम जाये... आहा...हा... ! **यही जीवन में करने योग्य है।** लो ! व्यवहार करने योग्य है ? व्यवहार से पहले लिया (कि) देव-गुरु-धर्म का शरण है। वे मार्ग बतलाते हैं इतना.... परन्तु वे फिर बतलाते हैं — चैतन्यशरण का लक्ष्य (कर)।

भगवान पूर्ण स्वरूप की दृष्टि और उसे लक्ष्यगत कर, उसे लक्ष्यगत कर! उसे लक्ष्य में ले ऐसा (कहते हैं)। लक्ष्यगत अर्थात् उसे लक्ष्य में ले। लक्ष्य में अनादि से राग और पर्याय का (जो) लक्ष्य किया है, वे तो दृढ़ संस्कार पड़े ही हैं... आहा...हा... ! (अब) यह लक्ष्यगत करके — चैतन्य को लक्ष्य और गत (करके), लक्ष्यगत (करके) उसकी ओर के लक्ष्य के संस्कार पाड़कर... आहा...हा... ! **उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में जम जायें - यही जीवन में करने योग्य है।** जीवन में यह करने योग्य है। तब यह व्यापार कब करना ? आहा...हा... ! चेतनमय प्रभु का लक्ष्य करके उसके पक्के दृढ़ संस्कार डालना, जिससे उसे भविष्य में भी आत्मा प्राप्त हो जाएगा। समझ में आया ? आहा...हा... ! उसकी डोर बाँधना। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... वस्तु को लक्ष्यगत (करके अर्थात्) डोर बाँधकर, उसके संस्कार करना, वह जीवन में करने योग्य है।

लोगों को निश्चय लगता है। पूजा करना, मन्दिर बनाना, गजरथ चलाना, शिविर लगाना, और शिक्षण-शिविर ! यह बीच में विकल्प हो परन्तु करने योग्य यह है। बातें (सब) आती हैं।

www.vitragvani.com

प्रश्न : शिविर में ऐसा समझाया जाता है कि करने योग्य यह है ?

समाधान : शिविर में यह समझाया जाता है। सबको यह बाधक है न! शिविर में जहर पिलाया जाता है। लड़कों को, बालक को शुभ के संस्कार का निषेध करते हैं, शुभ से (धर्म) नहीं होता, इसलिए शुभ को रोके अर्थात् देव-दर्शन को बन्द कराते हैं। आज ऐसा आया है। जैनदर्शन (तत्कालिन सामाजिक समाचार-पत्रिका) है न ? पत्र! उसमें ऐसा आया है। पण्डितजी का विरोध हुकमचन्दजी का किया है। स्वयं जहर पीते हैं, वीतराग-विज्ञान, बालपोथी बनाकर जहर (पिलाते हैं)। यह सब जहर-साहित्य है - ऐसा है। उसे न जँचे तो उसका क्या करे ? अरे... ! मूलवस्तु रह जाती है, जिसे देखना-जानना चाहिए - जाननेवाले को जानना चाहिए, वह रह जाता है, यह बात लक्ष्य में न रहे, वहाँ तक बाहर से हटता नहीं।

आत्मा जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेयोग्य है। जाननेवाला जाननेयोग्य है। इस जीवन का कर्तव्य है — ऐसा रस न आवे, तब तक बाहर के रस से नहीं छूटता। 'रुचि अनुयायी वीर्य' — जहाँ रुचि होती है, वहाँ उसका वीर्य-पुरुषार्थ काम करेगा, वहाँ गति करेगा। आहा...हा... ! क्या हो ? अनन्त... अनन्त काल ऐसे का ऐसा बिताया है। कोई शरण नहीं हुआ। शरण है, उसे लक्ष्यगत नहीं किया और शरण नहीं है, उसे लक्ष्यगत करके जन्म-मरण का चक्र खड़ा किया है। देखो न! छोटी-छोटी उम्र में मर जाते हैं, देह छूट जाती है। आहा...हा... ! यह पाँचवाँ बोल हुआ।

स्वभाव की बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाए। 'स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीर को चीरता हुआ हृदय में उतर जाए, रोम-रोम उल्लसित हो जाए — इतना हृदय में हो, और स्वभाव को प्राप्त किए बिना चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े। यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है॥ ६॥

स्वभाव की बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाए। यह क्या कहते हैं ? एक प्रभु आत्मा स्वभावस्वरूप है! शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्वभाव है, वह त्रिकाली स्वभाव है, जिसकी अस्ति आनन्द के और ज्ञान के स्वभाववाली है — ऐसे स्वभाव की बात सुनते ही इसे (सुनते हुए जीव को) राग, निमित्त और पर्याय में से हट जाये, सीधी अन्दर (चोट

www.vitragvani.com

पड़ जाये) अन्दर प्रभु बड़ा है! ऐसे स्वभाव की बात सुनते ही....

जैसे बिजली तार में उतरती है न? ताँबे का तार करते हैं न? तोड़े नहीं और उतर जाये, एकदम! इसी प्रकार चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द प्रभु स्वभाव! स्वभाव अर्थात्? आहा...हा...! जिसका आनन्द और ज्ञानस्वभाव नित्यानन्द प्रभु! ऐसे नित्यस्वभाव की बात सुनते ही हृदय पर सीधी चोट लग जाये। आहा...हा...! अर्थात्? इसे स्वभाव की ओर का लक्ष्य हो जाये। बाहर की ओर से हटकर अन्दर में चला जाये, तब सीधे स्वभाव पड़ा है — ऐसा जानने में आया। आहा...हा...!

स्वभाव की बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाए। 'स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीर को चीरता हुआ हृदय में उतर जाए,.... अर्थात्? इस ओर में (राग और परपदार्थ की ओर में) नहीं और इस तरफ अन्दर में (स्वभाव तरफ) चला जाये – ऐसा कहते हैं। स्वभाव! ध्रुव प्रभु! भगवत्! जिसका भगवत्स्वरूप स्वभाव! जिसका त्रिकाली स्वभाव, यह बात सुनते ही हृदय में चोट लग जाये अर्थात् भिन्न पड़ जाये और शरीर से भी भिन्न पड़ जाये। है न? **शरीर को चीरता....** अर्थात् शरीर से भिन्न पड़कर सीधे हृदय में (अर्थात्) ज्ञान में अन्दर चोट आ जाये। यह स्वभाव! आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

(पहले एक बार) कहा था न? परमार्थवचनिका में है न? परमार्थवचनिका में! कि आगम का व्यवहार सरल है, इसलिए (अज्ञानी को) ठीक पड़ता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा (यह) आगम व्यवहार है। यह परमार्थवचनिका में है और प्रवचनसार की गाथा (९४) में है कि दया, दान, व्रत आदि मनुष्यव्यवहार है। मानसिक कल्पना का मनुष्यव्यवहार है। लोगों को (वह) सरल पड़ता है। आगम का व्यवहार — दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह उन्हें ठीक पड़ता है और आत्मव्यवहार अर्थात् अध्यात्म-व्यवहार को तो जानता भी नहीं। (परमार्थ) वचनिका में है और यह वहाँ प्रवचनसार में है।

आगमव्यवहार को सरल जानकर वह करता है और अध्यात्म का व्यवहार अर्थात् शुद्धचैतन्यद्रव्य की प्रतीति ज्ञान और रमणता — ऐसी जो निर्विकल्प पर्याय, उसे तो वह जानता भी नहीं। है तो वह भी व्यवहार। पर्याय है न? (इसलिए वह भी व्यवहार है) आहा...हा...! उसे वह जानता ही नहीं। व्यवहार को भी नहीं जानता! आगम व्यवहार को

www.vitragvani.com

(अर्थात्) असद्भूत रागादि को जानता है परन्तु अध्यात्म का व्यवहार जो शुद्ध चैतन्यवस्तु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता — जो वीतरागी पर्याय, जो निर्विकल्प मार्ग (मोक्षमार्ग) वह अध्यात्म व्यवहार है। अध्यात्म का निश्चय तो द्रव्य है। अध्यात्म का निश्चय सत् तो द्रव्य है परन्तु उसकी निर्विकल्प परिणति है, वह उसका व्यवहार है। आहा...हा...! लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है।

मुमुक्षु : (आपने) सरल कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सरल ही है। बाहर में सब हो-हा लगी है न! व्रत करो, उपवास करो, प्रतिमा लो! धमाल... धमाल लगी है। कहते हैं कि यह आगमव्यवहार लोगों को (सरल पड़ता है)। मिथ्यात्वसहित शुभराग है, उसे सरल पड़ता है। अध्यात्म का व्यवहार (अर्थात्) शुद्धपर्याय की-व्यवहार की तो खबर भी नहीं है। है तो वह भी व्यवहार; त्रिकाली भगवान है, वह निश्चय ध्रुववस्तु है, उसका श्रद्धा-ज्ञान और रमणता में स्वीकार (होवे), वह तो राग से रहित निर्विकल्पदशा है। निर्विकल्पदशा, वह अध्यात्म का व्यवहार है और वह आत्मा का व्यवहार है। प्रवचनसार (में ऐसा कहते हैं) वह आत्मव्यवहार है। आगमव्यवहार, वह मनुष्यव्यवहार है। आहा...हा...! यह करना और यह खाना और यह पीना और ऐसा लेना और यह लेना... आहा...हा...! ऐसी क्रिया में रुकना, वह आगमव्यवहार लोगों को सरल लगता है परन्तु अध्यात्म के व्यवहार को तो जानते भी नहीं। आहा...हा...!

यहाँ कहा न? **शरीर को चीरता हुआ हृदय में उतर जाए, रोम-रोम उल्लसित हो जाए....** शुद्धस्वरूप! यह नित्य ध्रुवस्वभाव है; स्व अर्थात् अपना भाव है। वस्तु जैसी नित्य है, प्रभु! वैसे उसका स्व-भाव ध्रुव है। यह सुनते ही शरीर को चीरता हुआ अर्थात् शरीर से भिन्न हृदय में चोट लग जाये। ओहो...हो...! ऐसा स्वभाव मैंने कभी सुना नहीं!! आहा...हा...!

परन्तु यह सब करना — इसका साधन क्या? ऐसा लोग कहते हैं परन्तु यही साधन है। राग से भिन्न प्रज्ञाछैनी, यही साधन है। यह साधन इसे समझ में नहीं आता, इसलिए बाह्य साधन में झपट्टे मारा करता है, यह व्रत ले लें और तपस्या करें और अपवास करें और

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भक्ति करें, देव-शास्त्र-गुरु को पूजें, उनका बहुमान करें, और अष्ट द्रव्य से पूजा करें, यह सब तो शुभविकल्प है। आहा...हा...! हैं? हैं? यह वस्तुस्थिति है। लोग एकान्त... एकान्त... कहते हैं। भाई! एकान्त ही है, निश्चयनय है, यह नय का विषय सम्यक् एकान्त है। प्रमाण का विषय द्रव्य और पर्याय (दोनों हैं) परन्तु निश्चयनय — सम्यक्नय का सम्यक् एकान्त विषय तो ध्रुव ही है। आहा...हा...! एकान्त ही है। आहा...हा...! नय है न? नय का विषय अंश है, नय का विषय अंशी-सम्पूर्ण चीज नहीं है। निश्चयनय भी अंश है न? और उस अंश का विषय सम्यक् एकान्त ऐसा त्रिकाल (स्वभाव) है।

एक चैतन्य स्वभाव, आनन्द का धाम प्रभु, ज्ञान का-सुख का सागर, अतीन्द्रिय शान्ति का समुद्र — ऐसा जो स्वभाव; शरीरप्रमाण क्षेत्र होने पर भी, उसके भाव की — शक्ति की अपरिमितता!! स्वभाव का माप क्या? उसकी हद क्या? ऐसे आत्मा के ज्ञान, आनन्द और शान्ति के अपरिमित स्वभाव को सुनते ही हृदय पर चोट लगे और शरीर से एकदम भिन्न पड़ जाये, कहते हैं। आहा...हा...! आहा...! ऐसी बाते हैं। क्या हो? लोगों को एकान्त लगता है।

'कुरावड़'! यह हमारे ब्रह्मचारी है, इन्होंने वहाँ सब किया था न? लोग ऐसा कहते हैं देखो! वहाँ एकान्त था, इसलिए लोग (दूसरे वर्तमान मुनि) के पास जाते थे, साथ में एक (शहर) था न? क्या कहलाता है वह? 'भिण्डर'! वहाँ आते वे लोग प्रसन्न होते कितने ही तो भूखे (आते थे) वहाँ आहार मिलता नहीं था और सुनते ही प्रसन्न होते थे परन्तु लोग सुनें... सुनें... साठ घर इस ओर थे, चालीस घर बीस पंथी के थे वे वहाँ चले गये। कोई विरोध नहीं, दो-चार रह गये होंगे, वे सुनने आये होंगे, सुनने आये तो उन्हें ऐसा लगा कि ओ...हो... ऐसी बात! मध्यस्थता होवे तो यह बात तो (जम जाये ऐसी है) — ऐसा सुना था कि कोई एक-दो बीस पंथी आये थे। आहा...हा...! बापू! यह तो (वीतराग का) मार्ग, भाई!

स्वभाव अर्थात् क्या?! भाई! आहा...हा...! जिसका स्वभाव वस्तु, प्रभु! और उसका स्वभाव, उसे हद क्या? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता, अनन्त जीवत्व.... आहा...हा...! अनन्त कर्ता की शक्ति,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अनन्त कार्य की शक्ति, अनन्त साधन की शक्ति... आहा...हा... ! ऐसा जो स्वभाव, वह स्वभाव है, पर्याय हुई वह बाद की बात है। ऐसा स्वभाव सुनते ही हृदय में चोट लगे और सुनते हुए **शरीर को चीरता हुआ हृदय में उतर जाए, रोम-रोम उल्लसित हो जाए....।**

रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है न ? विकल्प से निर्विकल्प होने का उसमें (आता है) पहले ऐसा कि रोम ऐसा होता है, फिर विकल्प टूटे (ऐसा आता है) अन्दर ऐसी वस्तु यह क्या है ! इसकी महिमा आती है; इसलिए रोमांचित होता है — ऐसा है। फिर विकल्प तोड़ता है — ऐसा आता है। पहले महिमा आती है, वह क्या चीज है यह ! अनादि से पर्दे में पड़ी हुई चीज क्या है ! पर्दे में रहनेवाली रानी भी जब बाहर निकलती है तो लोग देखने निकलते हैं, कौतुहल होता है। पचास वर्ष से रानी साहब बाहर नहीं निकले थे। रानी साहब निकले ! मोटर में ! खुली गाड़ी होती है न ? देखने निकलते हैं ! भावनगर में पहले (निकलते थे) आहा...हा... ! यह (भगवान आत्मा) अनादि का पर्दे में-राग और पर्याय की बुद्धि के प्रेम में प्रभु, ओझल (पर्दे) में रह गया। आहा...हा... ! ओझल (समझे) ? पर्दे में ! आहा...हा... ! इसी प्रकार प्रभु, महास्वरूप, सर्वोत्कृष्ट परमात्मा स्वयं ही है, आगे आयेगा। स्वयं सर्वोत्कृष्ट परमात्मा अनजाना रह गया। जो जानने जैसा है, वह अनजाना रह गया और जिसकी कुछ जानने की जरूरत नहीं है, उसे जानने में समय व्यतीत किया। आहा...हा... ! इसलिए कहते हैं **रोम-रोम उल्लसित हो जाए — इतना हृदय में हो,....** आहा...हा... ! **और स्वभाव को प्राप्त किए बिना चैन न पड़े,....** स्वभाव को प्राप्त किए बिना चैन न पड़े। कहीं **सुख न लगे,....** स्वभाव प्राप्त किये बिना कहीं सुख न लगे, कहीं चैन न पड़े। है ? अर्थात् (कहीं) सुख न लगे। आहा...हा... ! **उसे लेकर ही छोड़े।** उसे लेकर ही छोड़े। **यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है।** पहले ऐसी भूमिका में ऐसा होता है। स्वरूप की प्राप्ति की यथार्थ भूमिका — इसकी वर्तमान दशा-इस भूमिका में ऐसा होता है। है ? **यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है।** उसकी लगन लगे, स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... जिसकी छटपटी में दूसरी बात न रुचे ऐसी छटपटी हो.... आहा...हा... ! ऐसी भूमिका प्राप्त हो उसे आत्मा प्राप्त हुए बिना नहीं रहता — ऐसी वस्तु है। यह छह बोल हुए।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

www.vitragvani.com

जगत में जैसे कहते हैं कि कदम-कदम पर पैसे की जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार आत्मा में पग-पग पर अर्थात् पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ ही आवश्यक है। पुरुषार्थ के बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती अर्थात् रुचि से लेकर ठेठ केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है॥ ७॥

जेठ शुक्ल ३, गुरुवार, दिनाङ्क ०८-०६-१९७८
प्रवचन-३ वचनामृत- ७-१२

वचनामृत का तीसरा पृष्ठ, सातवाँ बोल। छह चले न ? सातवाँ — **जगत में जैसे कहते हैं कि कदम-कदम पर पैसे की जरूरत पड़ती है,....** लोग ऐसा कहते हैं न ? **उसी प्रकार आत्मा में पग-पग पर अर्थात् पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ ही आवश्यक है।** आत्मसन्मुख ढलने का पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ चाहिए। जो पुरुषार्थ परसन्मुख ढला है, वह तो अनादि से है। अब, अपने स्वभावसन्मुख पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ की गति राग से भेदज्ञान करने में होती है। राग से भेदज्ञान हुआ तो भी पर्याय-पर्याय में स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ होता है — ऐसी बात है। **पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ ही आवश्यक है।** वीर्य ही काम (करता है।) जो स्वभाव है, उसकी रुचि हुई तो 'रुचि अनुयायी वीर्य' (अर्थात्) पुरुषार्थ काम किया ही करता है। वीर्य अन्तर्मुख ढला करता है — ऐसा पुरुषार्थ होता ही है। आहा...हा...!

पुरुषार्थ के बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती.... वीर्यगुण बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती। **अर्थात् रुचि से लेकर ठेठ केवलज्ञान....** देखा ? शुद्ध चैतन्य आनन्दघन ज्ञानपिण्ड, स्वरूप की रुचि से लेकर **केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है।** अन्तर सत् का झुकाव, इसका नाम पुरुषार्थ। स्वभाव की रुचि से लेकर केवलज्ञान तक का पुरुषार्थ चाहिए।

www.vitragvani.com

कोई ऐसा कहे कि उल्टी-सीधी पर्याय तो होती नहीं तो पुरुषार्थ चाहिए — अर्थात् क्या? (प्रत्येक पर्याय) क्रमबद्ध तो होती है। (इसका उत्तर ऐसा है कि) क्रमबद्ध में अकर्ता का पुरुषार्थ है और अकर्ता का पुरुषार्थ, नास्ति से है; अस्ति से ज्ञाता का पुरुषार्थ है। समझ में आया? क्रमबद्ध में जिस समय, जिस द्रव्य की (जो) पर्याय होती है, वह होती है। इस क्रमबद्ध में अकर्ता-अकर्तापने का पुरुषार्थ है। इसे अस्ति से ज्ञाता का पुरुषार्थ है। अकर्ता अर्थात् करना नहीं; यह करना — ऐसा नहीं अर्थात् ज्ञातापने का पुरुषार्थ है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है। आहा...हा...! जाननेवाला.... जाननेवाला.... जाननेवाला... जगा। यह जाननेवाला जाननेवालेरूप ही पुरुषार्थ करता है। चाहे तो उदय हो, उसे जाने; निर्जरा हो, उसे जाने; बन्ध हो, उसे जाने; मोक्ष हो, उसे जाने। यह तो वहाँ ज्ञाता का ही पुरुषार्थ वर्तता है, हुआ करता है। आहा...हा...!

आज कल पूज्य गुरुदेव की बात ग्रहण करने के लिए अनेक जीव तैयार हो गए हैं। गुरुदेव को वाणी का योग प्रबल है; श्रुत की धारा ऐसी है कि लोगों को प्रभावित करती है और 'सुनते ही रहें' ऐसा लगता है। गुरुदेव ने मुक्ति का मार्ग दर्शाया और स्पष्ट किया है। उन्हें श्रुत की लब्धि है॥ ८॥

फिर (आठवें बोल में) स्वयं बहिन ने, जरा डाला है कि अभी जो यह वाणी निकलती है, उसे (ग्रहण करने को) बहुत जीव तैयार हो गये हैं। समझने के लिये, सुनने के लिये लाखों मनुष्य ऐसे (तैयार) हो गये हैं और वाणी योग तो ओंकार के कारण जो आता है, इस प्रकार श्रुत की धारा ऐसी है, (इसलिए) लोगों को असर करती है। **'सुनते ही रहें'**..... यह तो स्वयं की बहिन की विनय की बात है।

मुमुक्षु : एकदम सत्य वचन हैं, साहेब!

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सुनते ही रहें' ऐसा लगता है। ऐसा **मुक्ति का मार्ग दर्शाया और स्पष्ट किया है।** इस प्रकार श्रुत के उघाड़ का भाव है — ऐसा अपना विनय प्रसिद्ध करते हैं। बहिन स्वयं अपना विनय प्रसिद्ध करते हैं।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पुरुषार्थ करने की युक्ति सूझ जाए तो मार्ग की उलझन टल जाए। फिर युक्ति से कमाये। पैसा पैसे को खींचता है — धन कमाये तो ढेर हो जाये, तदनुसार आत्मा में पुरुषार्थ करने की युक्ति आ गई, तो कभी तो अन्तर में ढेर के ढेर लग जाते हैं और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है॥ ९॥

अब, नौवाँ आता है। **पुरुषार्थ करने की युक्ति सूझ जाए.....** आहा...हा...! अन्दर चैतन्य अमृत का सागर प्रभु! उसकी ओर की रुचि हो तो पुरुषार्थ की युक्ति सूझ जाए। आहा...हा...! जिसके पोषाण में शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा आया, उसका जिसे पोषाण हुआ, उसे पुरुषार्थ की कला की युक्ति हाथ आ गयी। आहा...हा...! आत्मा के स्वभाव की ओर ही जिसका पुरुषार्थ झुका है, यह उसकी युक्ति है।

प्रश्न : युक्ति अर्थात् क्या?

समाधान : युक्ति अर्थात् उस प्रकार की दशा। आहा...! भाई गये? प्रवीणभाई, करने का तो यह है... बापू!

प्रश्न : फिर रोटियाँ कमाना कहाँ से?

समाधान : यह तो साथ ही होता है, विकल्प होता है परन्तु उसके साथ यह समझने का अन्दर प्रयत्न चाहिए। मैं तो ज्ञानस्वरूप ही हूँ। ज्ञान क्या करे? ज्ञान क्या करे? राग करे? ज्ञान में राग करे, वह ज्ञान में कहाँ से आवे? ज्ञान तो ज्ञान करे। आहा...हा...!

ऐसी पुरुषार्थ की युक्ति सूझ जाए; युक्ति अर्थात् अन्तर तरफ (की) दशा। (वह सूझ जाए।) **तो मार्ग की उलझन टल जाए।** अन्तर में पुरुषार्थ की कला जग जाए और सूझ जाए (अर्थात्) कला की सूझ पड़ जाए। सूझ पड़े अर्थात् अन्तर्मुख होने अन्दर सूझ पड़े तो सब उलझन टल जाए। बहुत सादी भाषा!

इसका जो स्वरूप अस्तित्व है (अर्थात्) ध्रुव में अनन्त शान्ति और अनन्त आनन्द है — ऐसी यदि सूक्ष्म पड़ जाए तो पुरुषार्थ की कला हाथ में आ जाए; उसका ओर ढला ही करे — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! एकदम मक्खन है! आहा...हा...! जिसका प्रेम हो, वहाँ पुरुषार्थ ढले बिना नहीं रहता। यह कला है — ऐसा (कहते हैं।) आहा...!

www.vitragvani.com

फिर युक्ति से कमाये। अन्तर्सन्मुख की युक्ति हो, उस युक्ति से कमाये (अर्थात्) शुद्धि बढ़े। आहा...हा...! **पैसा पैसे को खींचता है....** अर्थात् पैसा होवे तो पैसे के कारण पैसा बढ़े। वहाँ कोई बुद्धि का काम नहीं है। पैसे-पैसे से पाँच-दश लाख हुए तो उसमें आमदनी चलती जाए। **पैसा पैसे को खींचता है — धन कमाये तो ढेर हो जाये,....** आहा...हा...! यह लक्ष्मी का ढेर हो, पाँच-पच्चीस लाख (होवे) तो इसे दो-पाँच-दस लाखका ढेर पैदा हुआ ही करे। आहा...हा...!

अपने (यहाँ) 'धन कमाये तो ढेर हो जाये' — ऐसा कहते हैं। 'पंड रले तो पेट भराय।' शान्तिभाई! ऐसा कहते हैं या नहीं? शरीर कमाये तो पेट भरे, ऐसा। पंड रले तो आजीविका मिले — ऐसा कहते हैं, परन्तु यह भी व्यवहार है। वैसे धन कमाये तो ढेर हो, शरीर कमाये तो पेट भरे। तीसरी भाषा (भी) है। शरीर कमाये तो पेट भरे, फिर कुछ है, नौकर और मुनीम कमाये तो अमुक स्थिति खड़ी हो और धन कमाये तो ढ़ेर हो। अब, यहाँ तो आत्मा में उतारना है, हाँ! आहा...हा...!

तदनुसार आत्मा में.... ओ...हो...! **आत्मा में....** आत्मा-महाप्रभु! सर्वोत्कृष्ट परमात्मा भगवान स्वरूप जिसे नजर में-दृष्टि में आया.... आहा...हा...! नमः समयसार में मूल यह है; वस्तुतः तो अपना स्वरूप है, हाँ! भले व्यवहार प्रगट करके डाला है, (बाकी) वस्तुतः तो स्वयं ही शुद्ध चैतन्य समयसार (है)! उसे नमते हैं, वहाँ ढल जाते हैं; फिर इस पूर्वक परमात्मादशा की प्रार्थना है। परमात्मदशा होगी, उसकी प्रार्थना है और होगी उसकी भक्ति है। है उसकी भक्ति-वन्दन है।

यहाँ भी यह कहते हैं। आहा...हा...! अन्दर में **आत्मा में पुरुषार्थ करने की युक्ति आ गई,....** अन्दर में से पर की मीठास गयी। पुण्य की, पाप की, पर्याय की, पुण्य के फलरूप सामग्री की मिठास गयी और स्वरूप की मिठास हुई। आहा...हा...! **आत्मा में पुरुषार्थ करने की युक्ति आ गई, तो कभी तो अन्तर में ढेर के ढेर लग जाते हैं....** अर्थात् क्या? अन्तर पुरुषार्थ एकदम काम करे तो अन्दर आनन्द की उग्रता बढ़ जाए। 'धन कमाये तो ढेर हो' — (यह दृष्टान्त है) अर्थात् जो जागृतदशा हुई है, वह उग्र-बढ़ जाए तो आनन्द का ढेर दिखायी दे। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का (ढेर हो)! धन कमाये तो ढेर हो, वह यह। स्वरूप का धन जिसकी दृष्टि और रुचि में आया है....

आहा...हा... ! उसे किसी समय अन्तर्मुख में एकदम पुरुषार्थ-स्वाभाविक अन्दर सहसा जागृतदशा जम जाए तो ढेर होता है। आहा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की धारा बढ़ जाती है। आहा...हा... !

और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है। अन्तर्मुख की जो रुचि है और परिणमन है, (वह) इतना भी रहता है। पुरुषार्थ, स्वभावसन्मुख है, (वह) इतना भी रहता है और किसी समय उग्र होकर ढेर भी होता है, दो बात है। आहा...हा... ! एकदम अन्दर में उग्रता जाए, एकदम साहसिक पुरुषार्थ (होवे तो) ढेर होवे, वरना शुद्ध चैतन्य की दृष्टि का सहजरूप परिणमन है, उस-प्रमाण उसे (रहता है।) **और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है।** ऐसा (कहते हैं)। आहा...हा... ! यह तो अन्दर की बातें हैं, बाहर के साथ कोई सम्बनध नहीं होता। आहा...हा... !

बात क्या है ? कि जिसे विभक्त (ऐसे) राग की एकता टूटी है और स्वभाव की एकता हुई है तो दृष्टि में स्वभाव ही ज्ञात होता है। शुद्ध चैतन्य भगवान! शुद्ध चैतन्य भगवान! यही दृष्टि का विषय है और इसलिए यही ज्ञात होता है। इसमें अशुद्धता है, वह (दृष्टि का) विषय नहीं। आहा...हा... ! अशुद्धता आदि है, उसका ज्ञान होता है परन्तु उसका आश्रय नहीं होता। आहा...हा... ! इस कारण पवित्र भगवान, पूर्ण शुद्ध चैतन्य अपरिमित आनन्द आदि शक्तियों का दल, वह जहाँ नजर में, प्रतीति में, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय होकर ज्ञात हुआ तो वही अस्तित्व (दृष्टि में) रहा।

(यह नौवाँ बोल पूरा हुआ।)

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं। वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है॥ १०॥

इसी अस्तित्व को देखनेवाले धर्मी, **हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,....** आहा...हा... ! हम सिद्धरूप हैं — ऐसा जो देखा (वहाँ सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं)।

www.vitragvani.com

स्वरूप शुद्ध है, वह सिद्धस्वरूप (ही है); पर्याय में अशुद्धता होने पर भी वस्तु तो शुद्ध ही है, त्रिकाल शुद्ध ही है। उस त्रिकाल शुद्ध (स्वरूप को) सिद्धस्वरूप जहाँ देखा, (वहाँ) सबकी ऐसी चीज है, सब भगवान (है ऐसा दिखता है)। आहा...हा...!

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,.... हमने आत्मा को सिद्धस्वरूप देखा, जाना; इसलिए वह वस्तु सिद्धस्वरूप ही है, वही आत्मा है — ऐसा देखनेवाला, दूसरे आत्मा को भी सिद्धस्वरूप देखता है। उसकी दशा के पुण्य-पाप हैं, वे तो विकार में जाते हैं, वे कहीं आत्मा में नहीं आते। आहा...हा...!

हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। आहा...हा...! जहाँ सम्यग्दर्शन (हुआ) — सत्य का दर्शन हुआ... पूर्ण सत्य, पूर्ण अस्तित्व, भूतार्थ, सत्यार्थ वस्तु का अनुभव हुआ और वह 'है' ऐसा हुआ तो इसी प्रकार समस्त आत्माएँ ऐसे ही हैं (ऐसा देख रहे हैं) (जिसकी) पर्यायबुद्धि गयी, वह दूसरे की पर्यायबुद्धि को नहीं देखता, दूसरे को भी द्रव्यबुद्धि से देखता है। आहा...हा...! पण्डितजी! ऐसी बात है। यह तो करना और यह करूँ और वह करूँ, इसमें रुक गया (परन्तु) यह करना जिसमें है ही नहीं; वह तो ज्ञायक का पिण्ड प्रभु, राग और उदय के भाव का अकर्ता स्वभावस्वरूप अर्थात् ज्ञाता-दृष्टास्वरूप अपनी चीज को ऐसा देखा-अनुभव किया तो ऐसे ही सबकी आत्माएँ हैं — ऐसा देखता है। आहा...हा...!

हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। इसका अर्थ? स्वयं चैतन्य ही है — ऐसा अनुभव हुआ। चैतन्य ज्ञानमूर्ति, ज्ञानस्वरूप, ज्ञान के प्रकाश का पूर, वह जहाँ अनुभव में आया तो यह मैं आत्मा हूँ (और) सभी आत्मा ऐसे ही हैं। आहा...! वस्तुदृष्टि से ऐसे ही हैं। 'सर्व जीव हैं सिद्ध सम'।

प्रश्न : यह तो द्रव्य की अपेक्षा की बात की, पर्याय अपेक्षा का ज्ञान है या नहीं?

समाधान : उस पर्याय को यहाँ निकाल दिया। (जिसे) पर्यायदृष्टि गयी और द्रव्यदृष्टि हुई, वह दूसरे को भी द्रव्यदृष्टि से ऐसा ही देखता है। पर्याय का ज्ञान करे परन्तु आदरणीय में तो द्रव्यदृष्टि ही उसे आदरणीय है। इस प्रकार वह आत्मा भी साधर्मीरूप से आदरणीय गिना है। शुद्ध आत्मा आदरणीय है। आहा...! जैसे अपना शुद्ध आत्मा आदरणीय है, वैसे सबका शुद्ध आत्मा साधर्मीरूप से वह आदरणीय ही है। पर्यायबुद्धि गयी, वहाँ

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पर्याय का आश्रय नहीं लेता; इसलिए दूसरे की पर्याय को भी नहीं गिनता। आहा...हा... ! अब ऐसी बातें लोगों को (कठिन) लगती है।

मुमुक्षु : यह बात सुनी ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सुनी नहीं। (जगन्मोहनलालजी ने) ऐसा लिखा है कि अध्यात्म की बात सुनते हुए स्वामीजी का परिचय हुआ। सुनते हुए मेरी रुचि अध्यात्म में बलवान हुई। (कैलाशचन्द्रजी ने भी लिखा है। फूलचन्द्रजी ने एक पुस्तक की) प्रस्तावना में ऐसा लिखा है कि तीन दशक से अध्यात्म प्रवर्तन सोनगढ़ से हुआ है और मैंने भी नजदीक में (रहकर) जानकर मेरी भी अध्यात्म की रुचि बलवती हुई है — ऐसा लिखा है, हाँ!

पहली बात यह कि यदि क्रमबद्ध (की) बात न बैठे तो उसका अकर्तापना नहीं होता, अकर्तापना नहीं हो तो ज्ञातापने का वस्तुस्वभाव है (उसकी दृष्टि नहीं होती)। दृष्टि का विषय वह ज्ञाता है, उसका अर्थ ही यह हुआ कि क्रमबद्ध है, उसे वह जानता है, (उसका) कर्ता नहीं है, यह बात उस दिन (एक विद्वान् को) नहीं जमती थी परन्तु अब कैलाशचन्द्रजी ने स्वीकार की है। भाई! मार्ग तो यह है। जब स्वीकार करो परन्तु मार्ग यह है। भले ही कठिन लगे। आहा... !

यहाँ तो कहते हैं — स्वयं ही शुद्ध चैतन्यघन अस्तिरूप था, उसे जैसे राग को-पुण्य को मेरा मानकर नास्तिरूप माना था; उसे राग और पुण्य मैं नहीं; मैं तो पूर्ण आनन्द हूँ — ऐसा जाना और माना, यह अस्ति से अपनी दृष्टि हुई, ऐसे ही सभी आत्माएँ अस्तिरूप हैं (— ऐसा देखता है)। आहा...हा... ! है न ? आहा... ! **हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं।** वस्तुदृष्टि से (ऐसा देखते हैं) पर्याय से (राग-द्वेष) हैं, वे तो जाननेयोग्य हैं। यह तो (स्वभाव तो) आदरणीय में (जाता है) आहा...हा... !

यह तो भाई रतनचन्दजी कहते थे, कलकत्तावाले रतनचन्दजी, रतनलालजी गंगवाल! यह पुस्तक ऐसे पढ़कर (वर्तमान में कहे जानेवाले) मुनिराजों में भी विरोध मिटेगा, क्योंकि इसमें अस्ति से मुनि का ऐसा स्वरूप सिद्ध किया है कि मुनि ऐसे होते हैं बापू! भाई! (पक्ष की कहाँ बात है) आत्मा के आनन्द में लीन होते हैं; मुनि तो आत्मा के आनन्द में लीन होते हैं। बाहर आ जाये तो शुभ चिन्तवन का विकल्प (होता है) और फिर अन्दर

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

में चले जाते हैं — ऐसी उनकी स्थिति है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहा...हा...! यहाँ तो अभी चौथे गुणस्थान की बात ली है, मुनि की तो बात क्या करना!! ओ...हो...हो...! सच्चे सन्त! ज्ञायक जिनका वेश है, ज्ञायक जिनका वेश है! जिनका संवर, निर्जरा, मोक्ष यह भी वेश नहीं है! आहा...हा...!

पूर्णस्वरूप चैतन्यस्वभाव, यह ज्ञायकपने का अस्तिपना, शुद्ध, पवित्र, अनाकुल आनन्द का पिण्ड और कन्द, यह जो वस्तु है — ऐसा जिसने अन्तर से देखा तो (वह) दूसरे के जीव को भी इस प्रकार देखता है। वस्तुदृष्टि से (ऐसा देखता है)। पर्याय से तो जैसा है, वैसा जानता है। वह तो जानने के लिए है। आहा...हा...!

हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं। 'ही' डाला है। वस्तु है वह राग -द्वेषवाली कहाँ है? आहा...हा...! सर्वोत्कृष्ट प्रभु! मुम्बई में (एक व्यक्ति) ऐसा कहता — ओहो! जगत् में सर्वोत्कृष्ट आत्मा होवे तो एक प्रभु यह सर्वोत्कृष्ट (आत्मा) एक ही है। सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा एक ही है। व्याख्यान में ऐसा कहता था। आहा...हा...! वस्तुस्थिति (ऐसी है)। वस्तु है न? वस्तु है तो उसमें बसी हुई (अनन्त... अनन्त... शक्तियाँ हैं) जैसे वस्तु त्रिकाल है, वैसे उसकी शक्तियाँ और स्वभाव — गुण त्रिकाल है। त्रिकाल है — ऐसा जो भान, अनुभव हुआ (कि) यह वस्तु तो शुद्ध-पवित्र है, ऐसे सभी आत्माएँ पवित्र ही हैं। आहा...हा...! है?

वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य-आत्मा प्रकाशित हुआ..... देखा? चैतन्य-आत्मा प्रकाशित हुआ। अकेला पड़ा है — ऐसा नहीं। आहा...हा...! आहा...हा...! प्रभु चैतन्य आत्मा शक्तिरूप स्वभाव तो त्रिकाल है परन्तु प्रकाशित है, वह व्यक्ति में — व्यक्त में (पर्याय में) उसका भान हुआ है। वर्तमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान में — व्यक्त में उसका भान हुआ है कि ओ...हो...! यह आत्मा नहीं था, यह आत्मा हुआ — ऐसा श्रद्धा में आया। आहा...हा...! (आत्मा) सर्वज्ञ नहीं था, वह श्रद्धा से सर्वज्ञ माना, (आत्मा को) जाना कि यह तो सर्वज्ञस्वरूप ही है। आहा...हा...!

यह तो भाई! अन्तर का काम है, आत्मार्थी का काम है बापू! फिर व्यवहार के झगड़े खड़े करे — शुभ से होता है और (शुभभाव) साधन है और अमुक है और.... (ऐसे झगड़े खड़ा करता है)।

www.vitragvani.com

जिसे चैतन्य.... अर्थात् चैतन्य अर्थात् आत्मा, ऐसा। चैतन्यस्वभावी, ज्ञानस्वभावी ज्ञान-दर्शन प्रकाशस्वरूप आत्मा **प्रकाशित हुआ....** अर्थात् पर्याय में अनुभव में आया है, पर्याय में उसका अनुभव हुआ है। **उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है।** आहा...हा....!

यह पुस्तक तो कुदरत ही ऐसी बाहर निकल गयी है कि जरा मध्यस्थ जीव जो होंगे तो उन्हें (ऐसा लगेगा कि) वस्तु स्थिति तो यह है। भले व्यवहार आवे, (बीच में) आता है, वह होता है परन्तु वह सब हेय है। तब वे लोग आलोचना करते हैं कि देव-शास्त्र-गुरु भी हेय? तो लड़के, देव-शास्त्र-गुरु को हेय मानकर पूजा ही नहीं करेंगे... अरे प्रभु! उसे छोड़कर पाप करे, इसमें यह कहना है? मात्र उसकी रुचि छोड़कर, कि भाई! वह धर्म नहीं है। (शुभभाव) आते अवश्य हैं (वह) भाव होता है, अशुभ से बचने के लिए, अस्थान से छूटने के लिए शुभभाव हो परन्तु वह स्वयं धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। होता अवश्य है, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, (तब तक) ऐसी चैतन्यदृष्टिवन्त को भी, व्यवहार आता है परन्तु वह हेयरूप है। हेयरूप से ज्ञेय है और भगवान (आत्मा) उपादेयरूप से ज्ञेय है। दोनों में इतना अन्तर है। आहा...हा...!

आहा...हा...! इसमें झगड़े का काम भी नहीं, बापू! और 'वाद-विवाद करे सो अन्धा।' भाई ने नहीं कहा? नियमसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? स्व और पर के साथ में वाद-विवाद करना नहीं, भाई! जैसे किसी मनुष्य को लक्ष्मी मिले तो वह देश में आकर ढिंढोरा नहीं पीटता कि 'मैं करोड़पति हूँ और करोड़ रुपये लेकर आया हूँ' (वह तो) अकेला-अकेला खाता है; इसी प्रकार जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ है, वह वाद-विवाद में नहीं चढ़ता, क्योंकि वाद-विवाद से यह पार नहीं पड़ता।

मुमुक्षु : वाद-विवाद न करे परन्तु ऐसा तो कहे न कि मुझे सम्यग्दर्शन हुआ है, तो मेरे पैर पड़ो तो तुम्हारा कल्याण होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे इसका क्या काम है? पैर पड़वाने का उसे क्या काम है? वे पैर पड़ें, उसमें इसे क्या लाभ है?

मुमुक्षु : इसे कल्याण होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका वह जाने। (इसमें) कल्याण भी कहाँ था? वह तो पुण्य

www.vitragvani.com

है। दूसरा पैर पड़े और आदर करे इसमें तुझे क्या लाभ? इसमें तुझे हित क्या? वह तो उसे शुभभाव हो तो वह पुण्य बाँधे। आहा...हा...! ऐसी स्थिति है।

चैतन्य — आत्मा प्रकाशित हुआ, उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है। चैतन्य के प्रकाश का पुंज प्रभु! सभी चैतन्य के प्रकाश के पुंज हैं। दूसरी चीजें हैं, वे तो मात्र भिन्नरूप ज्ञेय है, इसका स्वरूप नहीं; इसका स्वरूप तो ज्ञानमय चैतन्यमय आत्मा है। आहा...हा...! यह दसवाँ (बोल) हुआ।

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके उस मार्ग को ग्रहण करते हैं किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है॥ ११॥

ग्यारह। **मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता,....** अर्थात् क्या? कि स्वरूप में स्थिर होना है, वही मूल तो उत्सर्गमार्ग है परन्तु (स्वरूप में) स्थिर न रहा जा सके तो आग्रह करके विकल्प शुभ आते हैं, वे शुभविकल्प नहीं ही आवे — ऐसा आग्रह करे, ऐसा नहीं होता है। स्वरूप में स्थिर नहीं रह सके तो अपवादमार्ग आये बिना नहीं रहता। उत्सर्ग का अकेला आग्रह करके अपवाद न लावे तो यह हठ है। आहा...हा...! है?

अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का.... अपवादमार्ग का भी (आग्रह नहीं होता)। अपवाद — राग आया, उसका आग्रह नहीं है कि यही है, यह ठीक है — ऐसा नहीं है। उसे जाना तो है उत्सर्ग में, परन्तु अन्दर में स्थिर नहीं रह सकता — शुद्धोपयोग में नही रह सकता; इसलिए अपवाद-शुभराग आये बिना नहीं रहता। परन्तु फिर भी उत्सर्ग का भी आग्रह नहीं (और) अपवाद का (भी) आग्रह नहीं। जिस-जिस काल में जिस प्रकार का अपवाद आता है, उसे जानता है; उत्सर्ग में जाये तो शुद्ध उपयोग में रमे — ऐसा मार्ग है। आहा...हा...!

विशेष, मुमुक्षुओं को (अर्थात्) धर्म की पिपासावालों को अथवा धर्मी को अपवाद

www.vitragvani.com

अर्थात् शुभराग का भाग आये (परन्तु) उसका आग्रह नहीं होता कि यही होवे तो ठीक है। (शुभराग) आवे, निर्बलता–कमजोरी के कारण आवे और उत्सर्गमार्ग का आग्रह (अर्थात्) अन्दर उपयोग में रमना, यही चीज है (इसलिए) शुभराग में आना ही नहीं — ऐसा भी आग्रह नहीं होता। (स्वरूप में) स्थिर नहीं हो सकता (परन्तु अन्दर) भान है, (मैं) शुद्ध चैतन्य हूँ, आनन्द हूँ परन्तु उपयोग उसमें स्थिर नहीं हो सकता तो आग्रह नहीं करना चाहिए कि 'अब शुभराग लाना ही नहीं, शुभ आवे तो ठीक नहीं और उसमें मैं भ्रष्ट हो जाता हूँ' — ऐसा आग्रह नहीं करना। आहा...हा... !

प्रवचनसार में उत्सर्ग और अपवाद की गाथा है, यह उसकी बात है। जहाँ चरणानुयोग की व्याख्या है, वहाँ यह उत्सर्ग (की बात आती है) आहा...हा... ! परन्तु यह तो मार्ग (प्राप्त) हुए की बात है। शुद्ध चैतन्यवस्तु का सम्यग्दर्शन हुआ है, ज्ञान हुआ है, शुद्ध उपयोग भी अन्दर होता है परन्तु यदि शुद्ध उपयोग न होवे तो उस काल में आग्रह नहीं करना चाहिए कि अरे! शुभ आयेगा, अर...र... ! शुभ आयेगा तो मैं भ्रष्ट हो जाऊँगा — ऐसा आग्रह नहीं करना चाहिए। (बीच में) अपवाद आवे, परन्तु वह अपवाद है, हाँ! आहा...हा... !

अपवाद आया इसलिए शुद्ध से (स्वरूपदृष्टि से) भ्रष्ट हो गया — ऐसा न जाने और शुद्ध में (शुद्धोपयोग में) न रह सके तो अपवाद आये बिना नहीं रहता — ऐसा भी वह जानता है। अपवाद आया, तथापि उत्सर्ग में जाने की भावना तो उस काल में भी होती है। अपवाद में रहना ही है — ऐसा आग्रह उसे नहीं होता। अरे... ! अरे... ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : बहुत कठिन!

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है। प्रवचनसार में आती है।

अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके उस मार्ग को ग्रहण करते हैं.... स्वरूप में ठहर सके तो उत्सर्ग में जाये, न ठहर सके तो शुभ में आवे। वीतराग नहीं हुआ, इसलिए (बीच में राग आये परन्तु) जानता है कि वह बन्ध का कारण है परन्तु वह अपवाद आये बिना नहीं रहता। आहा...हा... ! तथापि वह अपवाद, उत्सर्ग का कारण है — ऐसा नहीं है। अपवाद — शुभ आया है, इसलिए अब इसके कारण शुद्ध उपयोग होगा — ऐसा नहीं है। अब ऐसी बातें! वाद–विवाद कहाँ (करना) ? बापू! वस्तुस्थिति ऐसी है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

चरणानुयोग के अधिकार में ऐसा कहते हैं। अकेले उत्सर्ग में ही रहना, क्योंकि साधक है, वहाँ बाधकपना आये बिना नहीं रहेगा। सिद्ध, सर्वज्ञ हुआ उसे अब बाधकपना नहीं है, वह सिद्ध हो गया परन्तु साधक है, शुद्ध उपयोग की दृष्टि है, शुद्ध उपयोग हुआ है, तथापि शुद्ध उपयोग में रह नहीं सकता और जोर करने जाये कि इसमें रहूँ तो ऐसा हो नहीं सकेगा; अतः उसे शुभराग में आये बिना छुटकारा नहीं है। आहा...हा...!

इसलिए ऐसा नहीं माने कि अपवाद किया, अपवाद अर्थात् निन्दनीय वस्तु है — ऐसा कहा न? (अपवाद) आता अवश्य है। मुझे अन्दर में ही रहना है — ऐसा एकान्त आग्रह करने जाये तो भ्रष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार शुभ में आकर (ऐसा करे कि) मुझे वहीं रहना है (— ऐसा) एकान्त आग्रह करेगा तो भी भ्रष्ट होगा। आहा...हा...! ऐसा है।

कितने ही महीनों से बहुत (लोगों) की माँग थी कि यह पढ़ो! परन्तु कहा कि सबके हाथ में जाये (तो ठीक रहे) परन्तु अभी हिन्दी बहुत सों के हाथ में नहीं आया, कहो! यहाँ तो मैंने पहले से बहुत कहा था कि सवा तीन महीने हो गये तो भी अभी सबको हिन्दी (पुस्तक) हाथ नहीं आयी। कितना समय हो गया! बहुत फेरफार हो गया। कितना कहा था। यहाँ उठने से पहले कहा था। यद्यपि बाहर में (इस पुस्तक का) कहीं विरोध नहीं है, भले कोई कदाचित् आवे नहीं परन्तु विरोध का नाम नहीं है, नहीं तो दो गाँवों में.... क्या कहलाता है तुम्हारा? कुरावड़! वहाँ बीसपंथी के चालीस घर थे, (वहाँ) कदाचित् (विरोध होगा ऐसा लगता था) परन्तु कुछ (हुआ) नहीं, शान्ति...! और यह उदयपुर! इसमें सामनेवालों के बहुत घर थे — तेरहपंथी, बीसपंथियों के (बहुत थे) परन्तु कोई विरोध नहीं। भले आवे नहीं (परन्तु) उसका कुछ नहीं, परन्तु यदि यह पुस्तक सबके हाथ में गया हो, जो आत्मधर्म मँगाते हैं, उन्हें (गया हो) तो उनके ख्याल में यह बात रहा करे कि कुछ है। यह बात तो (अलग प्रकार की है) परन्तु विचारा हुआ नहीं हुआ। सवा तीन-तीन महीने तो बाहर गये तो भी अभी पुस्तक बाहर (सबको नहीं पहुँची) पण्डितजी को पूछा तो अभी (उन्हें) भी हाथ में नहीं आयी। कहो! हिन्दी!

मुमुक्षु : बाइडिंग बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाइडिंग में भी कितना समय? थोड़े से आदमी बढ़ाना चाहिए

— ऐसा करके करना चाहिए, ऐसा काम कभी किया नहीं। इतने बीस लाख पुस्तकें (बाहर) प्रकाशित हुई, उसमें इस पुस्तक के लिए कहा तो उसमें ऐसा निकला! तो भी सवा तीन महीने में कहीं विरोध नहीं। धीरे-धीरे जायेगा तो सब लोग पढ़ेंगे, पढ़ेंगे तो जरा ढीले पड़ जायेंगे। उन्हें ऐसा लगेगा कि बात तो भाई! यह तो अच्छी लगती है। बहुत आग्रही होंगे वे भी जरा ढीले पड़ जायेंगे — ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ढीला पड़े तो उसका कल्याण होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वहाँ कुरावड़ में भी एक-दो बीसपंथी आये थे। वे सुनकर नरम पड़ गये ओ...ये...! हमें तो मध्यस्थता से कहना है। कोई व्यक्तिगत (बात) तो (कहते नहीं) तत्त्व यह है.... तत्त्व यह है (ऐसा कहते हैं कि) भाई! यह तो सर्वज्ञ की वाणी है। यह कोई घर की वाणी नहीं; यह तो सर्वज्ञ अनुसारिणी कथन है। इसमें पक्षपात को अवकाश ही कहाँ है? इसलिए यहाँ कहा न? कि अपवाद आवे; अन्तर धर्मी जीव को, मुनि को भी (अपवाद आता है)। मुनि छठे गुणस्थान में हों, वहाँ से सातवें (गुणस्थान में) जाना चाहते हैं और एकदम न आवे तो आग्रह नहीं करते। उन्हें तो अन्तर्मुहूर्त पश्चात तुरन्त छठवें से सातवाँ (गुणस्थान) आयेगा ही। सच्चे मुनि को छठे-सातवें... छठे-सातवें में झूलते ही होते हैं। सच्चे मुनि को तो सदा ही छठा-सातवाँ... छठा-सातवाँ होता ही है, तथापि एकदम उसका आग्रह उन्हें नहीं होता कि छठवें में आना ही नहीं, छठवें में आना ही नहीं — ऐसा आग्रह नहीं होता। विकल्प आये बिना नहीं रहता, वह अपवादमार्ग है, तथापि वह हेय है परन्तु आये बिना नहीं रहता है।

प्रवचनसार में शुरुआत में नहीं कहा? शुभराग आता है परन्तु वह हेय है। आता है न? प्रवचनसार! अन्तर में स्थिर नहीं हो सके (इसलिए यह अपवाद) आता है, होता है। वह (पूर्ण) वीतराग कहाँ है? वह केवली नहीं कि (पूर्णरूप से) स्थिर हो सके, वह साधक जीव है, अन्तर्मुहूर्त में सातवाँ आवे। अप्रमत्तदशा का आनन्द (कैसा होता है)! जिसे विकल्प की भी कुछ खबर नहीं। विकल्प है नहीं। अबुद्धिपूर्वक (का विकल्प) जरा रहा है, वह उसे ख्याल में है। उसे क्षण में वापस छठवाँ (गुणस्थान) आता है। आहा...हा...! परन्तु वह छठवें में ऐसी हठ नहीं करता कि इसी-इसी में मैं सातवें में (ही)

रहूँ। वह रह नहीं सकता, वह छद्मस्थ की दशा नहीं; इसलिए उसे छठे गुणस्थान में पञ्च महाव्रत, श्रवण आदि का विकल्प आता है; उस अपवाद का आग्रह नहीं, उत्सर्ग का आग्रह नहीं कि मुझे इसी में (शुद्ध) उपयोग में ही रहना है और बाहर नहीं आना है, वैसे ही अपवाद लिया है, उसका भी आग्रह नहीं कि मुझे अपवाद में ही रहना है, उत्सर्ग में नहीं (रहना)। अन्दर स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए अपवाद में आया है परन्तु उसका ध्येय तो अन्दर स्थिर होने का है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है।

मुनि का मार्ग अर्थात्, बापू! आहा...हा...! जिन्हें छठे और सातवें.... क्षण-क्षण में एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठा-सातवाँ (गुणस्थान) आता है! और जिनकी निद्रा पौन सेकेण्ड के अन्दर होती है! अब विचार तो करो कि भावलिंगी क्या है? और उनका द्रव्यलिंग कैसा होता है? आहा...हा...! जो ऐसे भावलिंगी हैं, उनका द्रव्यलिंग नग्न ही होता है और अपवाद आवे तो वे पंच महाव्रत (और) भक्ति आदि का राग ही आता है। वस्त्र ग्रहण करने का उनके लिए बनाया हुआ आहार-चौका लेने का, वह (परिणाम) नहीं होता।

मुमुक्षु : मुनियों को भूखे रहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ! भूखे रहना! भूखा कब था? अन्दर भरपूर भगवान है न! आनन्द का भोजन करे न! ऋषभदेव भगवान को छह महीने तक उपवास था। उपवास, उप-वास था, हाँ! (आहार का) विकल्प उठता था फिर (आहार) नहीं मिलता तो अन्दर आनन्द में रहते थे। विकल्प आये तो जाते, न आये तो आनन्द में रहते। आनन्द में रहना, वह उनका स्वरूप है। आहा...हा...! भूखा, नहीं भूखा — वह तो जड़ की दशा है। आहा...हा...! जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द में कल्लोल करते होते हैं! आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द की लहर जिन्हें छठे गुणस्थान में (होती है)! आहा...हा...! जिन्हें आनन्द का-अतीन्द्रिय आनन्द का उफान (उभरा) आता है! उभरा, समझे? उफान! उफान आता है! आहा...हा...!

ऐसा मार्ग है, बापू! उसमें दूसरे प्रकार मानेगा तो कुछ हित हो जायेगा? हित बिना तेरा आत्मा जागृत कहाँ से होगा? आहा...हा...! फिर हठ करके कहे कि बस! शुभ है और शुभ से होगा, शुभ करते-करते होगा, (परन्तु) इसमें तेरा हित कहाँ आया? और (लोग)

www.vitragvani.com

ऐसा भी कहते हैं कि शुभ से किसे (हित) नहीं होता ? (तो कहते हैं) यह अभव्य की बात है। बन्ध अधिकार में अभव्य को रखा है न ? (उसका आधार देते हैं) (परन्तु) अभव्य का तो दृष्टान्त दिया है कि अभव्य इतना करता है, तथापि वह मिथ्यादृष्टि है। इसलिए व्यवहार चाहे जितना करे, तथापि मिथ्यादृष्टि है — ऐसा सिद्ध करना है। तो यह कहता है नहीं, अभव्य के शुभ व्यवहार का निषेध किया है।

मुमुक्षु : अभव्य के लिए शुभ का एक प्रकार और भव्य के लिए शुभ का दूसरा प्रकार — ऐसा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जैनदर्शन (एक पत्रिका में ऐसा) आया है। यहाँ प्रवचनसार में ७७ गाथा में तो ऐसा कहा — शुभ और अशुभ दो में विशेष है — ऐसा भेद डाले, वह मिथ्यादृष्टि 'घोर हिण्डति' — संसार में भटकेगा। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि अशुभ से शुभ ठीक है परन्तु वह संसार है, बन्धन है। वह तो अशुभ से छूटा; अशुभ नहीं तो उसे जरा ठीक कहा जाता है परन्तु निश्चय में शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है — ऐसा माने तो संसार में 'घोर हिण्डति' (परिभ्रमण करेगा)। प्रवचनसार ७७ गाथा में ऐसा पाठ है। आहा...हा... ! अब वे लोग कहते हैं 'नहीं, समकिती के शुभभाव को तो लाभ का ही कारण है, वह साधन है। (शुभ से हित नहीं होता) यह अभव्य के लिए कहा है।' अरे रे ! ऐसा आग्रह करते हैं ! प्रभु ! तुझे अन्दर लाभ-शान्ति का लाभ नहीं दिखता और तू ऐसा आग्रह करता है ? (तुझे) अन्दर शान्ति दिखनी चाहिए न ?

प्रभु ! (आत्मा) तो शान्त, अविकारी, अकषायस्वरूप है। अकषायस्वरूप है, इसकी यदि प्रतीति और अनुभव होवे तो शान्ति... शान्ति... शान्ति... अलौकिक शान्ति (होती है) !! आहा...हा... ! उसमें भी सर्वार्थसिद्धि के देव को जो शान्ति (होती है), उसकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान की शान्ति और छठवें (गुणस्थान की) शान्ति तो बहुत ही होती है। आहा...हा... ! (अन्दर में) शान्ति है नहीं और प्रभु का जो मूल अकषायी स्वरूप है, उसकी शान्ति का भाग तो आया नहीं और मानता है कि इस राग से (लाभ-शान्ति) होते हैं, इसका अर्थ क्या ? राग तो अशान्ति है। उस अशान्ति से शान्ति होगी ? राग आवे अवश्य, मुनि को भी अपवाद आता है परन्तु वह अपवाद-राग, वह अशान्ति है, (कोई कहे कि) किसलिए ऐसा (अपवाद) आता है ? (तो कहते हैं) भाई ! (अभी) साधक

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। अकेले उत्सर्ग में नहीं रह सकता, अकेले आत्मा में स्थिर नहीं हो सकता, उसका काल ही थोड़ा है। उसमें (स्वरूप में) स्थिर होकर श्रेणी माँड दे तो हो गया! (अर्थात् केवलज्ञान हो जाये) परन्तु श्रेणी नहीं माँडे अर्थात् धीरता की धारा न बहे तो उसे विकल्प आये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! है न?

जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके, उस मार्ग को ग्रहण करते हैं किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है। आहा...हा...! मुझे तो शुद्ध उपयोग में ही रहना है, ऐसी हठ करे तो (उसे) वस्तु के स्वरूप का पता नहीं है। शुद्ध उपयोग लम्बे काल नहीं रह सकता। आहा...हा...! और शुद्ध उपयोग आये बिना शुभ उपयोग को व्यवहार से निमित्त भी नहीं कहा जाता। आहा...हा...! शुद्ध उपयोग है, वही (वास्तविक) वस्तु है परन्तु उसका इतना आग्रह नहीं होता कि बस, शुद्ध उपयोग में ही (रहना है) हठ करके भी वहीं रहना है। (ऐसे) नहीं रह सकता। शुभराग आयेगा ही, तथापि उसकी भी हठ नहीं कि शुभ (भाव) आया, इसलिए अब मुझे इसमें रहना है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है! इसमें किसके साथ वाद (करना)? आहा...हा...!

(एकान्त उत्सर्ग या एकान्त) **अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है।** आहा...हा...! ग्यारहवाँ (बोल) हुआ।

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूति के काल में या बाहर उपयोग हो, तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधना की सहज दशा साधी हुई है॥ १२॥

बारहवाँ — **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** क्या कहा? आत्मवस्तु है — ऐसा सम्यग्दर्शन, द्रव्यदृष्टि-द्रव्य की दृष्टि हुई; पर्यायदृष्टि नाश हुई.... द्रव्य तो त्रिकाल ध्रुव है। यह तो पर्याय से आगे पाताल में ध्रुव पड़ा

www.vitragvani.com

है। पूरे आत्मा ऊपर पर्याय है। यहाँ असंख्य प्रदेश है, वहाँ भी प्रदेश पर पर्याय तो है परन्तु उस पर्याय के अन्दर में-पाताल में, अन्दर में पाताल है वहाँ ध्रुव है — ऐसी बात है। यह उसका तल है, पर्याय का तल ध्रुव है, पर्याय ऊपर-ऊपर है। आहा...हा...! ऐसी भाषा भी कहीं नहीं मिलती। आहा...हा...!

आत्मा में दो प्रकार — एक ध्रुवपना और एक पर्याय — पलटनापना। इस पर्याय का तल ध्रुव है, वह इसका तल है। आहा...हा...! तल में पहुँचे बिना द्रव्य की दृष्टि नहीं हो सकती। यह **द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** देखा ? अर्थात् क्या ? ध्रुव पर ही दृष्टि है। आहा...हा...! जगत् का भाग्य कि ऐसी भाषा बाहर आयी!! आहा...हा...! एकदम संक्षिप्त और सादी गुजराती भाषा।

द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई.... भाषा देखो! द्रव्य अर्थात् वस्तु; पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान ध्रुवस्वरूप है, उसकी दृष्टि प्रगट हुई **उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** चैतन्य के ध्रुव पर (दृष्टि है)। तल अर्थात् ध्रुव। पर्याय का तल ध्रुव। पर्याय तो ऊपर-ऊपर है। वह तल में नहीं जाती। आहा...हा...! ध्रुवरूप तल में पर्याय प्रवेश नहीं करती। आहा...हा...! जैसे पानी का दल आधे मण दल हो (उसमें) तेल की दो-चार-पाँच बूँदें हों वे अन्दर तल में-पानी के दल में वह तेल नहीं जाता, वह ऊपर ही रहेगा। आहा...हा...! इसी प्रकार द्रव्यदृष्टि होने पर, चैतन्य के तल पर ही दृष्टि है।

चैतन्य का तल (अर्थात्) ध्रुव। दृष्टि (स्वयं) पर्याय है परन्तु पर्याय की जो दृष्टि है, (उसका) विषय है, वह तल है — ध्रुव है। अन्दर वह तल है। आहा...हा...! **उसमें परिणति एकमेक हो गई है।** तल पर दृष्टि है, इसलिए ध्रुव में पर्याय अभेद हो गयी है। अभेद अर्थात् एकमेक तो नहीं परन्तु उसके साथ ऐसे एकमेक (हो गयी है)। राग के साथ (जैसे) भिन्न पड़ती है, उस (ध्रुव से) भिन्न नहीं पड़ती, एकमेक हो गयी है।

विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

जेठ शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनाङ्क ०९-०६-१९७८
प्रवचन-४ वचनामृत- १२-१४

वचनामृत, बारहवाँ बोल है, एक लाईन चली है। **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** क्या कहते हैं? मूल जो करने योग्य है, (वह) जो ध्रुव (तत्त्व है, उस पर दृष्टि करनी की है) यह उसका तल है। वर्तमान पर्याय है, वह ऊपर है, उसका तल है, वह ध्रुव है; उस ध्रुव पर दृष्टि गयी और द्रव्यदृष्टि हुई, उसकी तल पर दृष्टि रही। शुरुआत में यह करनेयोग्य है। द्रव्य अर्थात् वस्तु; वह त्रिकाल शुद्ध, परिपूर्ण, पर्यायरहित चीज, अशुद्धतारहित — ऐसी परिपूर्ण वस्तु की दृष्टि प्रगट हुई, उस द्रव्य पर दृष्टि जाने से द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, अर्थात् सम्यग्दर्शन हुआ। जितना पूर्ण सत्यस्वरूप है, वह ध्रुव सत् है। तल अर्थात् पर्याय के अन्दर तल में है, उस पर दृष्टि पड़ने से चैतन्य के तल पर दृष्टि गयी। द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई अर्थात् चैतन्य के अन्तरतल में (अर्थात्) अन्तरस्वभाव, ध्रुवस्वभाव जिसका तल है, वहाँ दृष्टि गयी — ऐसा है। एकदम तत्त्व की बात है न? करना क्या? कि यह करना।

मुमुक्षु : यह करना अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली सामान्य है, वह तल में है — पर्याय में नहीं। एक समय की पर्याय में वह नहीं। पर्याय की समीप में उसका ध्रुवपना है, वह उसका तल है, उसकी द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी तल पर दृष्टि गयी — ऐसी बात है। **द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई....** ऐसा कहा न? **उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** किसी भी जगह उपयोग बाहर में जाने पर भी दृष्टि तो ध्रुव पर ही है, उस तल पर ही दृष्टि है। सामान्य पर ही दृष्टि है। एकरूप त्रिकाली परिपूर्ण वस्तु है, वही ध्येय है, वही ध्यान का ध्येय है; उसमें

www.vitragvani.com

किसी व्यवहार की अपेक्षा से ध्रुव की दृष्टि होती है या द्रव्यदृष्टि होती है या तल में जाया जाता है — ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है।

उसमें परिणति एकमेक हो गई है। जो वर्तमान पर्याय है, वह ध्रुव-तल पर गयी अर्थात् उस ओर अभेद हुई — एकमेक हुई। एकमेक (हुई) अर्थात् जो ध्रुव की पर्याय रागादि में बाहर ऐसी थी, वह पर्याय ध्रुव में गयी। अन्तर में जो ध्रुव तल है, वहाँ गयी।

मुमुक्षु : आप बात करते हो, वह घर में बात करें, तब समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सादी भाषा है। आहा...हा... !

आत्मा है, उसके दो अंश हैं। यहाँ अभी परवस्तु की बात नहीं है। एक पर्याय अंश है — पलटता अंश है (और) एक, एकरूप तल ध्रुवरूप अंश है कि जिस पर्याय में ध्रुव आता नहीं; इसलिए उस ध्रुव को तल अथवा द्रव्य कहा जाता है। आहा...हा... !

उसमें परिणति.... परिणति अर्थात् पर्याय — वर्तमान अवस्था, ध्रुव पर गयी। द्रव्यदृष्टि हुई, दृष्टि तल पर गयी, इसलिए उस पर्याय को, उसमें अभेद हुई — एकमेक हुई — ऐसा कहा जाता है। पण्डितजी ! आहा...हा... ! मूल बात में ही पूरा बदलाव हो गया है। मूल शुरुआत ही वहाँ से होती है।

परपदार्थ के साथ तो कोई सम्बन्ध है नहीं। परपदार्थ में तो उसके समय में — जन्म-क्षण में उसकी वह पर्याय होती है। ध्रुव, ध्रुवरूप भले रहे, वह तो उसके सम्बन्ध से उसमें उसके कारण से रहे। अब यहाँ तो आत्मा में एक त्रिकाली अंश है, जो पर्याय की दशा में नहीं आता और वह ध्रुव द्रव्य पलटता नहीं, बदलता नहीं। ऐसा जो बदलता नहीं, ऐसी जो चीज है, उसकी दृष्टि होने पर पर्याय ने तल को देखा, उसका जो ध्रुवतल था, उसे देखा। अब ऐसा तो अभी कहीं वाड़ा में मिले, ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! लोगों को कठिन लगता है। आहा...हा... !

मूल चीज ही यहाँ से शुरु होती है। परम सत्यार्थ जो है, जो त्रिकाली ध्रुवतल है, वही भूतार्थ है, वह सत्यार्थ है, वह हित है और हितरूप है। पर्याय में उसे हितरूप मानना चाहिए परन्तु वस्तु स्वयं ही हितरूप है। पर्याय में हितरूप माने। क्यों ? (कि) वह वस्तु स्वयं ही हितरूप है। वस्तुस्थिति भूतार्थ है, सत्यार्थ है, मौजूद है, हित है, आहा...हा... !

www.vitragvani.com

हितोपदेश! आहा...हा...! पर्याय का हितोपदेश तो है परन्तु यह वस्तु अस्ति तत्त्व है। बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष ये सब तो जड़ के लक्षण और पर्यायें हैं।

जिसे धर्म करना है, उसे द्रव्य पर दृष्टि जाने से जो पर्याय प्रगट होती है, उसे धर्म कहा जाता है। **'प्रगट हुई'** — कहा न? **द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई....** प्रगट हुई! आहा...हा...! दृष्टि प्रगट हुई; द्रव्य प्रगट हुआ — ऐसा नहीं। द्रव्य है, वह तो वस्तु है ही परन्तु उसकी दृष्टि प्रगट हुई, उसकी ओर की दृष्टि हुई; अर्थात् द्रव्य का स्वीकार हुआ, इसलिए दृष्टि प्रगट हुई (- ऐसा कहा है)। इसकी पर्याय में द्रव्य प्रगट हुआ — ऐसा भी कहा जाता है, क्योंकि (पहले) द्रव्य को माना नहीं था और (अब) माना; इसलिए उसकी पर्याय में द्रव्य माना, द्रव्य की जो सामर्थ्य है, उसकी सामर्थ्य पर्याय में आ गयी। आहा...हा...! ऐसी बात है।

फिर सोनगढ़ के (नाम से) लोग विवाद करते हैं, यह एकान्त है, इनका साहित्य ऐसा है। बापू! तू व्यवहार और निमित्त से लाभ करने जायेगा तो यह वस्तु हाथ नहीं आयेगी। वस्तु को पर की अपेक्षा नहीं है क्योंकि इस वस्तु में अकार्यकारण नाम की शक्ति — त्रिकाल गुण है कि जिसे कार्य के लिए राग और व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! और जो वस्तु है, वह राग का-शुभराग का कारण नहीं है — ऐसी वह चीज है। आहा...हा...! प्रवीणभाई! कहीं सुना नहीं था... में भी सुना नहीं था। तुम्हारे पिता के पिता ने सुना नहीं था। आहा...हा...! आहा...हा...!

भाई! प्रभु! तू वस्तु है या नहीं? सब रखकर यह वस्तु है या नहीं? वस्तु है वह एक समय की पर्याय में आती है? पलटती पर्याय में आती है? एकरूप रहे ऐसी वस्तु — एकरूप रहे ऐसी चीज, इस पलटती (पर्याय) में कैसे आये? पलटती (पर्याय में) उसकी श्रद्धा और ज्ञान आता है। ठीक है? आहा...हा...! इसलिए उसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई — ऐसा कहते हैं; द्रव्य प्रगट हुआ — ऐसा नहीं है। (इसने) पर्याय में द्रव्य को माना नहीं था, इसलिए इसके (लिए) द्रव्य नहीं था। उसकी पर्याय में माना नहीं था तो इसके लिए द्रव्य नहीं था। द्रव्य है भले ही परन्तु इसके लिए कहाँ था? आहा...हा...! इसने तो पर्याय है इतना माना था; इसलिए द्रव्य है, वह नहीं माना। कठिन बात... प्रभु! जैनमार्ग बहुत कठिन है। वीतरागमार्ग अभी लोगों ने कुचल दिया है। अभी अन्यमत जैसा कर दिया है।

www.vitragvani.com

सर्वत्र ऐसा हो गया है। आहा...हा...! तो भी अभी तो हमें लाखों (लोग) सुनने, विचार करने के लिए तैयार हो गये हैं (कि) यह क्या चीज है? भाई!

प्रमाण का विषय (ऐसा) आत्मा जिसे कहते हैं, वह प्रमाण का विषय जो आत्मा है, उसमें तो पर्याय और द्रव्य दोनों आते हैं परन्तु प्रमाण का विषय है, वह सद्भूत व्यवहारनय का विषय है; इसलिए वास्तव में वह प्रमाण का विषय भी आदरणीय नहीं है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : प्रमाण अस्त हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण अस्त हो जाता है, यह बाद में। प्रमाण है, वह द्रव्य और पर्याय दोनों को जानता है और दो को जानता है, इसलिए वह प्रमाण सद्भूत व्यवहारनय हो गया। व्यवहारनय हो गया। उसमें से एकरूप त्रिकाली वस्तु जो है (वह निश्चयनय का विषय है) आहा...! इसलिए नयचक्र में कहा है कि प्रमाण पूज्य नहीं है क्योंकि प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं आता। निश्चयनय है, (वह भले) एक अंश है परन्तु वह त्रिकाली जो ध्रुव है, तल है, तल में पूरी चीज पड़ी है, उसे जो नय स्वीकार करता है, वह नय सत्य है। आहा...हा...! इस कारण उसे (पर्याय को) **ववहारोऽभूदत्थो** कहा है। पर्यायमात्र असत्यार्थ है, क्योंकि उसकी प्रतीति करना नहीं, वह तो एक जाननेयोग्य है — ऐसा जानना। अशुद्धता है , भेद-गुणभेद है, वह सब जाननेयोग्य भले हो परन्तु आश्रय करनेयोग्य तो एकरूप चीज जो तल में, जो पर्याय के पीछे, पर्याय के पास.... पर्याय के पास (है वह आश्रय करनेयोग्य है) पर्याय से अन्दर में आगे जाने पर अन्दर तल में ध्रुव में दृष्टि जाये, तब ध्रुव और द्रव्य, पर्याय में प्रतीति होती है, वह दृष्टि प्रगट हुई। आहा...हा...! समझ में आया?

उसमें परिणति.... अर्थात् अवस्था **एकमेक हो गई है।** जो पर्याय, राग में भेद डालकर राग में रुकती थी, वह पर्याय ध्रुव में रुकी। इस अपेक्षा से एकमेक हुई — ऐसा कहा जाता है। पर्याय और द्रव्य कोई एक नहीं होते और पर्याय में द्रव्य नहीं आता, तथापि पर्याय में दृष्टि-द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई अर्थात् पर्याय में द्रव्य जितना है, उतना उसका ज्ञान (हुआ) और उसकी श्रद्धा हुई। आहा...हा...! अब ऐसा कहाँ करना? पहला तो सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो (इसलिए मानो कि धर्म हो गया)। श्वेताम्बर में फिर

www.vitragvani.com

यह सिद्धचक्र की पूजा करो, अमुक मन्दिर बनाओ, (उसमें धर्म मानते हैं) अरे... बापू! इन सब बातों के साथ वस्तु को क्या सम्बन्ध है? जिसे पर्याय का सम्बन्ध नहीं, उसे परवस्तु का सम्बन्ध कहाँ है? आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

मूल तत्त्व.... वीतराग जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ प्रभु ने देखा हुआ जो तत्त्व है, वैसा किसी ने देखा नहीं। सर्वज्ञ जिनेन्द्र के अतिरिक्त जितने मत हैं; जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं है, उनके मत में सर्वज्ञस्वभावी जीव की प्रतीति भी नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? सर्वज्ञस्वभाव यह इसका तल है। आहा...हा...! जिसके मत में पर्यायरूप से प्रगट ऐसे सर्वज्ञ नहीं हैं, उसे सर्वज्ञस्वभावी जो तल-ध्रुवद्रव्य उसकी उसे प्रतीति नहीं होती। आहा...हा...! यह तो गम्भीर वस्तु है भाई!

अन्य कहें कि दया पालो, और यह करो, अहिंसा करो। यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया पालन नहीं कर सकता, परन्तु पर की दया का भाव आता है, वह राग है, हिंसा है। वह आत्मा की वस्तु नहीं है। इतना तो नहीं परन्तु उस हिंसा को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय है; उस पर्याय जितना तत्त्व नहीं है। तत्त्व तो महाप्रभु सर्वात्कृष्ट तत्त्व अपरिमित स्वभाव का पूर — ऐसा अरूपी प्रभु है, उसकी दृष्टि होने पर वह दृष्टि तल पर गयी — ध्रुव पर गयी; इसलिए वह पर्याय उसमें एकमेक हो गयी — ऐसा कहा जाता है। पण्डितजी! ऐसी बात है।

इस (वचनामृत की) हिन्दी (पुस्तक) अभी बाहर नहीं आयी। हिन्दी मँगाते हैं, आत्मधर्म? आता है आत्मधर्म? आया नहीं? कितना समय हो गया! सवा तीन महीने तो बाहर हुए! तीन-चार दिन तो यहाँ होने आये तो भी हिन्दी बाहर नहीं आयी। कहो! आहा...हा...!

चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। आहा...हा...! चैतन्यस्वरूप जो ध्रुव, वह चैतन्य तल अर्थात् ध्रुव में ही सहज दृष्टि (अर्थात्) उसमें भी स्वाभाविक दृष्टि है। आहा...हा...! कृत्रिम करना है और ऐसा है, यह नहीं। दृष्टि भी सहज है। जैसे वस्तु सहज है, वैसे उसकी दृष्टि भी सहज है। आहा...हा...! फिर लोग यहाँ का (निश्चय है ऐसा) कहकर उड़ा देते हैं, ये व्यवहार से तो कुछ बात करते नहीं.... परन्तु क्या करें? सुन न! व्यवहार होता है, व्यवहारनय का विषय है, संसार है, अशुद्धता है, पर्याय है, भेद है, अनेक

गुण है; वे हैं यह तो जानने योग्य विषय है। आहा...हा...! व्यवहारनय का विषय नहीं है — ऐसा कहे (तो) वह एकान्त है और व्यवहारनय से ध्रुव ज्ञात होता है, (ऐसा कहे तो) वह भी मिथ्या एकान्त है। आहा...हा...! ऐसी बातें, अब क्या (होवे)?

चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूति के काल में.... अर्थात्? कि जब उपयोग आनन्द की अनुभूति में हो **या बाहर उपयोग हो....** (अर्थात्) विकल्प में आ जाये। शुभ और अशुभ कोई राग भी आ जाये। समझ में आया? आहा...हा...! होता है न? शुभ और अशुभ विकल्प होता है। **तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती,....** ध्रुव की दृष्टि नहीं हटती; ध्रुव पर ही उसका पूरा परिणमन हो गया है। आहा...हा...!

आत्मा, तल में ध्रुवस्वरूप प्रभु (विराजमान है) उसका अनुभूति का उपयोग लागू पड़ा कि जो उपयोग अब बाहर में नहीं है, उस काल में भी दृष्टि तो ध्रुव पर ही है। है? और **बाहर उपयोग हो तब भी तल पर से दृष्टि....** (अर्थात्) ध्रुव ऊपर की दृष्टि **नहीं हटती....** आहा...हा...! ज्ञानी को शुभ या अशुभराग आने पर भी, ध्रुव की दृष्टि कभी नहीं हटती है। आहा...हा...! जो ध्रुव को पकड़ा है, वहाँ वह रह गया, बस! आहा...हा...! ऐसा है। कहो, पूर्वभाई!... कभी कुछ (ऐसा) सुना है? आहा...हा...!

दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। उपयोग भले ही शुभाशुभ में जाये परन्तु दृष्टि बाहर नहीं जाती। दृष्टि का विषय जो ध्रुव है, वह तो ध्येय में लिया, वह लिया। (फिर वह दृष्टि में से हटता नहीं है)। आहा...हा...! अब यहाँ तो अभी बाहर में विवाद (चलता है) — निमित्त से होता है, क्रमबद्ध से नहीं होता, उल्टी-सीधी पर्याय भी होती है, पुरुषार्थ सुलटा करे तो अल्प काल में मोक्ष करे। अल्प काल में (मोक्ष करे) परन्तु वह क्रमबद्ध में आता है, वह अल्प काल है। आहा...हा...! क्योंकि यहाँ क्रमबद्ध में तो ज्ञातादृष्टापना सिद्ध किया है, यह तो जानने-देखनेवाला ध्रुव है, यह दृष्टि हुई, उसे क्रमबद्ध जँचा है।... आहा...हा...! समझ में आया? यह धीरे-धीरे तो चलता है।

ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं;.... धर्मी जीव, ध्रुव में पहुँच गये हैं। जो अनादि से पर्याय में पहुँचा हुआ है, वह तो अंश में पहुँचा हुआ है, वह तो अज्ञानी है। धर्मी पाताल में पहुँच गये हैं। जिसे द्रव्य कहा, जिसे ध्रुव कहा, जिसे तल कहा, आहा...हा...!

www.vitragvani.com

जिसे चैतन्यस्वभाव कहा। आहा... ! उस चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं। असंख्य प्रदेशों की ऊपर की पर्याय, उस अन्तर में पाताल में-ध्रुव में गयी है। आहा...हा... ! ऐसा है ! आहा...हा... ! जिससे जन्म-मरण का अन्त आ जाये, भव (रहे) नहीं और केवलज्ञान हो जाये। आहा...हा... ! चैतन्य के तल को पकड़ने से सम्यग्दर्शन में केवलज्ञान प्रगट हुआ अर्थात् सर्वज्ञपना माना नहीं था, वह माना, इसलिए इस अपेक्षा से सर्वज्ञपना प्रगट हुआ। आहा...हा... ! और अन्दर में जाकर एकाग्रता की धुन लगाकर केवलज्ञान प्रगट होगा ही; अवश्य प्रगट होगा ही। जिसने चैतन्य का तल देखा, उसकी पर्याय में चैतन्य की पूर्ण दशा प्रगट होगी ही। आहा...हा... ! जिसने पाताल का पानी देखा, उसे पानी की सीर फूटेगी ही। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है।

गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; ध्रुव गुफा (में पहुँच गये हैं)। असंख्य प्रदेश में जो पर्याय हैं, इस असंख्य प्रदेशी पर्याय के पीछे वहाँ-वहाँ ध्रुव है, वहाँ पहुँच गये हैं। आहा...हा... ! **साधना की सहजदशा साधी हुई है।** आहा...हा... ! साधना की सहजदशा (अर्थात्) स्वरूप के केवलज्ञान की प्राप्ति का साधन (ऐसी) वह साधना की सहजदशा साधी है, साधी हुई है। आहा...हा... ! बारहवें बोल में एक-एक शब्द में अकेला मक्खन है !! (बारहवाँ बोल पूरा हुआ)।

'मैं ज्ञायक और यह पर', बाकी सब जानने के प्रकार हैं। 'मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर' - ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो उसमें सब आ जाता है, परन्तु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं, करने की ठानता ही नहीं, इसलिए कठिन लगता है॥ १३॥

तेरहवाँ (बोल)। यह तो भावनगर में पढ़ा था।

'मैं ज्ञायक और यह पर'.... दो बात है — एक ओर प्रभु ज्ञायक ध्रुव, पूर्ण अस्तित्ववाला तत्त्व, पूर्ण सत्तावाला — अस्तिवाला तत्त्व, वह ज्ञायक (तत्त्व है।) और यह पर (अर्थात्) राग से लेकर सब पर है।

बाकी सब जानने के प्रकार हैं। (जिसने) यह दो जाना, उसने सब जाना; बाकी दूसरे सब जानने के प्रकार हैं। वस्तुस्थिति (यह है)। एक ओर प्रभु ज्ञायक राम (तथा)

www.vitragvani.com

एक ओर राग से लेकर पूरा गाँव (अर्थात्) अनन्त सिद्ध और अनन्त निगोद (इसमें सब आ जाता है।) आहा...हा...! एक ओर प्रभु आत्माराम, आत्मराम! आहा...हा...!

ज्ञायक, जो (समयसार की) छठवीं गाथा में कहा न? (ज्ञायकभाव) प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, क्योंकि ज्ञायकभाव, शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं। ज्ञायकभाव, शुभाशुभरूप (हुआ नहीं।) (क्योंकि) वे (शुभाशुभभाव) तो पर्याय में है। ज्ञायकभाव, शुभाशुभरूप होवे तो जड़ हो जाए। क्यों? (क्योंकि ज्ञायकभाव) ज्ञानस्वभावी चैतन्यप्रकाश का पूर है और शुभाशुभभाव तो, जिनमें चेतन के अंश का अभाव (है ऐसे हैं।) ज्ञायकभाव, यदि शुभाशुभभाव (कि) जो चेतन के अंश के अभाव (स्वरूप) अर्थात् जड़ है; उनरूप होवे तो ज्ञायक, जड़ हो जाए। आहा...हा...! समझ में आया?

ऐसा (सूक्ष्म) बाहर नहीं चलता। बाहर में किसी दिन गये हों (तो ऐसा नहीं चलता।) यहाँ तो अब सब चलता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : यह धीरे-धीरे बाहर भी चलेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब बाहर जाएगा। कल जानेवाले हैं, नहीं? कल दस तारीख है न? आज कौनसी है? दसवीं तारीख को कल भाई जानेवाले है। लालभाई और बाबूभाई कल 'नैरोबी' जानेवाले हैं। वहाँ सभा भरेगी — ऐसा समाचारपत्र में आया है। कल जानेवाले हैं न? कितना समय लगता है? भाई! साढ़े पाँच! बस! मुम्बई से जाने में? सत्रह तारीख को मुहूर्त है न? पन्द्रह लाख रुपये के मन्दिर का मुहूर्त है! करोड़ों रुपयों के मन्दिर हो गये। करोड़ों रुपये यहाँ डल (लग) गये, करोड़ों रुपये पुस्तकों में गये और करोड़ों रुपये क्या रहा अब ?... खाने में (गये) क्योंकि यह मन्दिर हो और पूजा हो, उसमें (लोग भोजन करते हैं)। आहा...हा...! यहाँ छब्बीस हजार लोग थे न? देखो न! इस-इस प्रकार करोड़ों रुपये तो जीमने में गये, करोड़ों के मन्दिर होते हैं, करोड़ों की पुस्तकें हुई और करोड़ों की तो यहाँ गाँव में व्यवस्था हुई है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : यात्रा में भी बहुत गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यात्रा में भी बहुत पैसे हो गये। सत्य बात है — यात्रा में भी दो -चार बार निकले, बहुत पैसे गये, परन्तु वस्तु यह है।

प्रश्न : यात्रा में अब जाना या नहीं जाना?

www.vitragvani.com

समाधान – जाए कौन और आये कौन ? वह जड़ की क्रिया होनी हो, वह होती है। राग आता है तो भी ध्रुव की दृष्टि न छूटे तो वह व्यवहार कहा जाता है। आहा...हा... ! परन्तु वह यात्रा धर्म है, वह व्रत धर्म है (— ऐसा माने) तब तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है। जन्म-मरण रहित (होने का) मार्ग ऐसा है, बापू! आहा...हा... !

ऐसे अरबों रुपये पड़े हों, आँखें ऐसे *टलबले.... टलबले... !* Double Pneumonia हो, श्वाँस ऊँचा लेने जाये, वहाँ चिल्ला उठे — ऐसे सब पकड़ा जाये, आहा...हा... ! बापू! यह दशा... 'एक दिवस ऐसा आयेगा मानो जन्मा ही नहीं था' आहा...हा... ! एक काल ऐसा आयेगा, लाखों करोड़ों... तेरा सब (यहीं) पड़ा रहेगा। जो जहाँ है, (वह) वहाँ रहेगा, तू यहाँ से चला जाएगा। आहा...हा... !

ऐसा जो ध्रुव प्रभु! आहा...हा... ! (ज्ञानी ने) उसकी साधना की सहजदशा साधी हुई है। **'मैं ज्ञायक और यह पर'....** दो बातें (ली हैं)। एक ओर ज्ञायक द्रव्य — वस्तु और एक ओर पर्याय से लेकर पर। आहा...हा... ! ज्ञायक तो द्रव्य है न ? एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर प्रभु सर्वोत्कृष्ट वस्तु! ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... जाननस्वभाव स्वरूपी प्रभु! और एक तरफ पर, बस! इन दो में सब आ गया। **बाकी सब जानने के प्रकार हैं।** फिर अनेक प्रकार से व्यवहार ऐसा हो, निमित्त ऐसा हो, अमुक ऐसा हो, अमुक ऐसा हो, यह सब जानने के प्रकार हैं। आहा...हा... !

'मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर'.... जाननेवाला ध्रुव वह मैं हूँ, बाकी सब पर। आहा...हा... ! **ऐसी एक धारा प्रवाहित हो....** ज्ञायकस्वरूप ध्रुवद्रव्य, पूर्ण स्वभाव की शक्तियों का पार नहीं और शक्ति की शक्ति के सत्व का पार नहीं — ऐसा पूरा ज्ञायकतत्त्व (वह मैं), आहा...हा... ! और दूसरा सब पर। **ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो उसमें सब आ जाता है,....** यह एक धारा प्रवाहित हो तो सब उसमें आ जाता है, निश्चय और व्यवहार सब आ गया। आहा...हा... !

यह तो गुजराती भाषा है। सादी, सादी भाषा है। बहुत समय से माँग थी न ? कि वचनामृत पढ़ो... पढ़ो... ! परन्तु कहा सबके हाथ में आ जाए (फिर पढ़ेंगे) तो भी फिर हिन्दी (भाषी लोगों के) हाथ में तो गया नहीं, अभी आया नहीं बाहर (आये हुए) तो सवा तीन महीने हो गये। यहाँ बहुत कहा था परन्तु यह....

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : आपने कहा था परन्तु वह बनने योग्य नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनने योग्य नहीं था! बात तो ऐसी ही है न! उसका काल नहीं आया था, काल में होता है न! आहा...हा...!

ऐसी एक धारा प्रवाहित हो.... दृष्टि में ज्ञायकपना वह मैं, और इसके अतिरिक्त सब पर – ऐसी एक धारा से, एक ही प्रकार से अन्दर से उठे, आहा...हा...! **तो उसमें सब आ जाता है, परन्तु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं,....** आहा...हा...! इसने ऊपर –ऊपर पर्याय में ही क्रीड़ा की है। एक समय की पर्याय में ही क्रीड़ा की है। पर्यायरहित जो पूरा ध्रुव द्रव्य है, वह पर्दे में रह गया। आहा...हा...! जिसे देखने की जरूरत है, वह पर्दे में रह गया। आहा...हा...!

करने की ठानता ही नहीं,.... ऐसी भाषा है। **परन्तु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं,....** पर्याय में से हटकर अन्दर में जाता ही नहीं और **करने की ठानता ही नहीं,....** करना चाहे तो हुए बिना नहीं रहे। आहा...हा...! **इसलिए कठिन लगता है।** इसलिए कठिन लगता है अर्थात् क्या? कि गहरा उतरता ही नहीं, करने की ठानता ही नहीं, इसलिए कठिन लगता है–इसलिए कठिन लगता है। आहा...हा...! यह तो पूरी दशा की दिशा बदलने की है। आहा...हा...! पर्याय के ऊपर जो दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है–वह संसारदृष्टि है, उसे अन्तर्दृष्टि में–ध्रुव तरफ में ले जाना। यह ज्ञायक वह ही मैं हूँ, पूर्णस्वभाव सत्व है। पूर्णस्वभाव से भरपूर सत्व है, वही मैं हूँ — ऐसा गहरा नहीं उतरता — ऐसे अन्तर में जाने की नहीं ठानता, इसलिए कठिन लगता है। आहा...हा...! यह तेरह बोल हुआ।

'मैं हूँ' इस प्रकार स्वयं से अपने अस्तित्व का जोर आता है, स्वयं अपने को पहिचानता है। पहले ऊपर-ऊपर से अस्तित्व का जोर आता है, फिर अस्तित्व का गहराई से जोर आता है; वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होने से सहजरूप से जोर आता है। भावना की उग्रता हो तो सच्चा आने का अवकाश है॥ १४॥

(अब) चौदहवाँ (बोल) **'मैं हूँ' इस प्रकार स्वयं से अपने अस्तित्व का जोर आता है,.....** 'मैं हूँ' अस्ति हूँ, मौजूदगी चीज हूँ, अस्तिधारक सत्ता हूँ, अस्तिरूप

www.vitragvani.com

रहनेवाली एक चीज हूँ। आहा...हा... ! **'मैं हूँ' इस प्रकार स्वयं से अपने....** (अर्थात्) राग से नहीं, निमित्त से नहीं (परन्तु) 'मैं हूँ' यह स्वयं से अपने अस्तित्व का जोर आवे है इतना 'है' उसका जोर आवे। आहा...हा... ! मैं हूँ न ? है न ? है तो वह अस्तित्व है, ऐसा अस्तित्व का जोर आवे, अर्थात् अस्तिरूप मैं हूँ ऐसा जो जोर आवे, मैं अस्तिरूप-कायम अस्तिरूप हूँ — ऐसा जोर आवे तो **स्वयं अपने को पहिचानता है।** बहुत सादी भाषा में (बात आयी है)। आहा...हा... ! **स्वयं अपने को पहिचानता है।** (तो) सम्यग्ज्ञान होता है।

स्वयं अपने को पहिचानता है। पर को अपना करना हो, तो नहीं किया जा सकता। वस्तुतः तो राग को अपना करना हो तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि (राग) एक समय की कृत्रिम अवस्था है परन्तु स्वयं अपना स्वरूप है... आहा...हा... ! उसमें अन्तर में जाये तो (यह) किया जा सकता है, स्वयं अपने को पहचाना जा सकता है। **पहले ऊपर-ऊपर से अस्तित्व का जोर आता है,....** यह क्या कहा ? पहले इसके ख्याल में 'यह है... है... है... है...' वस्तु है — ऐसा ऊपर-ऊपर से अर्थात् विकल्प से या बाह्यज्ञान की पर्याय में भी 'यह है' वस्तु है, अस्ति है, अस्तिवान तत्त्व है, मौजूद प्रभु विराजमान है। आहा...हा... ! ऐसा अस्तित्व का ऊपर-ऊपर से जोर आता है। **फिर अस्तित्व का गहराई से जोर आता है;....** आहा...हा... ! फिर अन्तर में जाकर गहराई से जोर आता है। आहा...हा... ! बहुत सादी भाषा और मूल पूरा मर्म है। आहा...हा... ! क्या कहा यह ?

यह अन्दर कोई चीज है या नहीं ? 'मैं' (की बात चलती है), हाँ ! 'तू' और 'वह' नहीं; 'मैं हूँ' — ऐसा स्वयं से अपने को अस्तित्व का-सत्ता का-मौजूद चीज का जोर आवे (तो) स्वयं-स्वयं को पहचाने। आहा...हा... ! तब स्वयं अपना ज्ञान करे और जाने। आहा...हा... !

यह मूल चीज है, वह रह गयी और सब ऊपर की बातें की, आहा...हा... ! जिन्दगी पूरी कर डाली। यह व्रत पालन किये, सामायिक की, प्रौषध किये... धूल भी नहीं। (यह) सामायिक कहाँ थी ? अभी पूरी वस्तु परमात्मस्वरूप स्वयं है, उसके अस्तित्व का पर्याय में जोर भासित नहीं हुआ, वहाँ तक यह अन्दर में किस प्रकार जा सकेगा ? आहा... ! और अन्दर में गये बिना उसका तल हाथ नहीं आयेगा और (तल) हाथ आने के बाद भी अन्तर में आनन्द में रमने लगे, उसे चारित्र कहते हैं। यह तो बाहर और बाहर की व्रत, क्रिया और

www.vitragvani.com

वस्त्र बदले और (ऐसा मानता है कि) चारित्र हुआ.... धूल भी (चारित्र) नहीं है। आहा...हा...! अनादि से ठगा गया है। आहा...हा...!

फिर अस्तित्व का गहराई से जोर आता है; वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होने से..... क्या कहते हैं? अपनी सत्ता त्रिकाल है — ऐसा अस्तित्व का पहले ऊपर से भी जोर आने के बाद गहराई में से — अन्दर में से जोर आता है। पहले विकल्प होता है।

(समयसार में कर्ता-कर्म अधिकार) ७३ (गाथा में) यह कहा है न? कि विकल्प द्वारा पहले निर्णय करना। ७३ गाथा, कर्ता-कर्म (अधिकार)! मैं एक अनादि-अनन्त, अनन्त चैतन्यचिह्न! ऐसी चीज हूँ। आदि नहीं अन्त नहीं, और वर्तमान नित्य स्वभाव से खाली नहीं। नित्य स्वभाव, प्रगटरूप स्वभाव है — ऐसा मैं एक हूँ, ऐसा ऊपर-ऊपर अर्थात् पहले विकल्प से निर्णय करे.... पाँचों इन्द्रियों के विषयों को लक्ष्य में से छोड़कर अभी अकेले मानसिक कल्पना से निर्णय करे, आहा...हा...! इसमें भी कितनी धीरज और निवृत्ति चाहिए? आहा...हा...!

वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होने से.... (अर्थात्) अन्तर में जाने की पुरुषार्थ की उग्रता होवे तो विकल्प है, वह टूटकर अन्तर में जाता है। **सहजरूप से जोर आता है।** यदि अन्दर में जाने का भाव होवे तो विकल्प टूटकर सहजरूप से जोर आता है। अन्तर में जाने का स्वाभाविक जोर आता है। आहा...हा...!

अकेला अमृत बहाया है! सादी भाषा (परन्तु) अमृत है!! आहा...! एक बार यदि मध्यस्थ प्राणी हो, (वह) पढ़े तो एक बार तो गर्व उतार डाले ऐसा है। आहा...हा...!

तेरा तत्त्व अस्तिरूप है — ऐसा पहले विकल्प से भी ऊपर से जोर आता है, फिर अन्दर में जाने का जोर आवे, तब विकल्प टूटकर उसे अन्दर में सहजरूप से जोर आता है। पहले विकल्प से था, वह फिर सहजरूप से आता है। आहा...हा...! ऐसा उपदेश और ऐसी वाणी! (लोग ऐसा कहते हैं कि) अकेली निश्चय की बातें (करते हैं) परन्तु बापू! निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् समस्त आरोपित और उपचरित बातें। आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सहजरूप से जोर आता है। भावना की उग्रता.... अर्थात् क्या? वस्तु पूर्ण स्वरूप है — ऐसा भाव, उसकी भावना की उग्रता होना। पूर्ण स्वरूप है (ऐसा) अस्तित्व का सहज जोर अन्दर आने पर अन्दर में भावना की उग्रता से (सच्चा जोर आने का अवकाश है) भाव तो त्रिकाली है, परन्तु उसकी वर्तमान दशा की भावना के जोर से, विकल्प नहीं, निर्विकल्प भावना के जोर से... आहा...हा...!

भावना की उग्रता हो तो सच्चा आने का अवकाश है। आहा...हा...! अन्तर का तल लेने का, तल को खोजने का भाव जोरदार होता है तो (सच्चा) आने का अवकाश है। है न? **सच्चा आने का.....** अर्थात् सत्स्वरूप प्रगट होने का वहाँ अवकाश है — ऐसी बात है।

यह तो गुजराती सादी भाषा आ गयी। अभी तो इसमें अनेक दूसरी भाषाओं में (प्रकाशित) होगी। गुजराती और हिन्दी दो में आयी है परन्तु अभी दूसरी भाषाओं में (भी) होगी। पूरे हिन्दुस्तान में ढिंढ़ोरा पिटेगा! ऐसी बात है, बापू! ऐसे किसी काल में (बात) आ गयी है। हाथ में जहाँ (पुस्तक) आयी, वहाँ तो मैंने तो कहा था कि यह पुस्तक लाख चाहिए, एक लाख! तब रामजीभाई ने कहा कि सवा लाख चाहिए। वस्तु तो देखो! आहा...हा...! वीतरागता के भाव की रटन और लहर है। आहा...हा...! दुनिया-दुनिया की जाने बापू!

मैं स्वयं ज्ञायक हूँ — इसका अर्थ? कि पर की चाहे जो स्थिति, अवस्था आदि हो; मैं तो उसे पररूप से जाननेवाला हूँ, यह भी व्यवहार है। आहा...हा...! 'मैं एक जाननेवाला हूँ' — उसमें पररूप से जानता है, वह भी व्यवहार है। पर को जानने की पर्याय भी स्वयं अपने से हुई है। इस ज्ञायकपने को जाना, तो ज्ञायक तो जाननेवाली दशा (हुई) और सब परज्ञेय — अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद... आहा...हा...! और त्रिकाली पंच परमेष्ठी ये सब पर (रूप से ज्ञात हुए) आहा...हा...! मैं ज्ञायक और ये पर, इसमें सब समाहित हो जाता है। फिर पर को जाननेवाला होने के कारण पर को जानता है — ऐसा कहा जाता है।

(समयसार की छठवीं गाथा में) चौथा बोल आया न? **णादो जो सो दु सो चेव**

www.vitragvani.com

ज्ञात वह तो ज्ञात है। वास्तव में तो ज्ञायक है — ऐसा जहाँ जाना, उसमें पर है, वह मुझमें नहीं – (ऐसा आ गया है)। तथापि पर है — ऐसा जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान ही आत्मा का कार्य है और आत्मा ही उसका कर्ता है। ज्ञात होनेवाली जो चीज है, वह यहाँ जानी है, ऐसे भाव की परचीज कर्ता नहीं है। आहा...हा...!

मैं ज्ञायक हूँ और यह सब पर है — ऐसा जो पर है, उसका जो ज्ञान होता है, वह भी अपने स्वभाव की शक्ति के सामर्थ्य के कारण (होता है)। पर को जानने की पर्याय स्वयं से स्वतन्त्ररूप से षट्कारक की परिणति से (होती है)। आहा...हा...! मैं एक ज्ञायक हूँ, और (बाकी) सब पर है — ऐसे पर के ज्ञान की परिणति जो स्व में होती है, उस ज्ञान की पर्याय में भी वह पर्याय स्वयं ही कर्ता, कर्म, करण, साधन होकर पर्याय होती है; वह पर्याय पर की अपेक्षा नहीं रखती। आहा...हा...! वह पर्याय, त्रिकाली द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं रखती। आहा...हा...! ऐसा भगवान ज्ञायकस्वभाव, पर्याय में जहाँ ज्ञात हुआ.... आहा...हा...! वही पर्याय स्वतन्त्ररूप से परिणमित होकर पर्याय ज्ञात हुई। उस पर्याय में भले ही ज्ञात हुआ ज्ञायक और उस पर्याय में ज्ञात हुआ भले ही पर... समझ में आया? परन्तु (वह) पर्याय स्वतन्त्र स्वयं अपने से कर्ता-कर्म करण से उत्पन्न हुई है। जिसे पर का जानना, स्वयं से होता है, उसमें पर की अपेक्षा भी लागू नहीं पड़ती। आहा...हा...! पण्डितजी! ऐसी बात है। ऐसी चीज है, भाई!

तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव की... आहा...हा...! यह पुकार है। देखो! है न? **सच्चा आने का अवकाश है।** यहाँ पूरा हो गया।

समय पूरा हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

तीर्थङ्करदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना!॥ १५ ॥

जेठ शुक्ल ५, शनिवार, दिनाङ्क १०-०६-१९७८
प्रवचन-५ वचनामृत- १५-१८

(बहिनश्री के वचनामृत) चौदह बोल हो गये। (इस बोल में भगवान की) वाणी की बात है। **तीर्थङ्करदेव की दिव्यध्वनि....** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर की जो दिव्य-प्रधान ध्वनि — आवाज उठती है, (वह) दिव्यध्वनि (अर्थात्) प्रवचन है। **जो कि जड़ है....** वाणी तो जड़ है, उसमें कहीं चैतन्य का भाव नहीं भरा है।

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध तो है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या ? अर्थ यह कि दूसरी चीज है, वह उसे बताते हैं — इतना निमित्त सम्बन्ध है, परन्तु वाणी है, उसमें कहीं सर्वज्ञ के गुण (या) भाव भरे हैं — ऐसा नहीं है। वाणी में स्व-पर कहने की शक्ति के भाव भरे है, परन्तु जड़रूप से (भरे हैं।) आहा...हा... !

श्रीमद् में आता है न ? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल।' यह तो निमित्त से कथन है। शान्त अमृत को बतानेवाला प्रभु! अमृतस्वरूप भगवान, शुद्ध ज्ञानसिन्धु, सुखसिन्धु — यह तो जीव का भाव है परन्तु वाणी में निमित्तरूप से, वाचकरूप का वाचक का भाव भरा है। (वाणी में) स्व-पर को कहने के भाव हैं, परन्तु परभाव उसमें

www.vitragvani.com

नहीं। आहा...हा... ! जो वीतराग, सर्वज्ञ, सुखसिन्धु प्रभु, उस सुख सिन्धु का कोई अंश कहीं वाणी में नहीं परन्तु वाणी में सुखसिन्धु को कहने की स्व-पर शक्ति है।

तीर्थङ्करदेव की दिव्यध्वनि.... अर्थात् दिव्यध्वनि-वाणी है तो जड़ की परन्तु तीर्थंकर की (वाणी कहा है, वह) निमित्त से कथन है। पहले शब्द में ही वह है। **तीर्थङ्करदेव की दिव्यध्वनि....** दिव्यध्वनि तो जड़ है, परन्तु निमित्तरूप से तीर्थंकर की दिव्यध्वनि कही जाती है। आहा...हा... ! **जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है!** उसे भी-जड़ को भी कैसी उपमा (दी है) ! वस्तु, सुखसिन्धु, चैतन्यसिन्धु — सागर प्रभु — जिसके भाव का तल बहुत गहरा (है) — ऐसे भाव को बतलानेवाली (वाणी है)। (यह) निमित्तरूप से (कहा है)। वाचक वाच्य नियोग! आया था न? वाचक है, वे शब्द हैं और वाच्य है भाव, इन दोनों का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। तीर्थंकर की वाणी!

भगवान परमात्मा जब सर्वज्ञ होते हैं, तब वाणी की (अर्थात्) उस समय की परमाणु की पर्याय में भी.... आहा...हा... ! निज शक्ति से स्व-पर कहने की शक्तिवाली पर्याय वहाँ प्रगट होती हैं। आहा...हा... ! भगवान की वाणी... भगवान तो पूर्ण आनन्द सुखसागर स्वरूप है परन्तु उस समय की वाणी की, उसी समय की भाषा का निज क्षण — उस प्रकार की पर्याय उत्पन्न होने का काल है। आहा...हा... !

उसमें भी कहते हैं — भगवान की वाणी को ऐसी (उपमा) दी है। जो भगवान हैं, वे तो अलौकिक वस्तु हैं.... आहा...हा... ! परन्तु उनकी वाणी को यह उपमा दी है। कैसी ? कि **अमृतवाणी की मिठास देखकर....** आहा...हा... ! वाणी में भी अमृत को बतलानेवाली है, इसलिए (उसे) वचनामृत (कहा है)। उस वाणी को भी अमृतवाणी कहा है। आहा...हा... ! वाणी है तो जड़ और भगवान आत्मा अन्दर है, वह तो चैतन्यस्वरूप है। आहा...हा... ! जिस जड़ में सुख की गन्ध नहीं, जड़ में ज्ञान की गन्ध नहीं तो भी उस वाणी को अमृतवाणी कहा! निमित्तरूप है न? अमृत को बतलानेवाली है।

आत्मा अन्दर सुख का सागर प्रभु है। आहा...हा... ! प्रभु — आत्मा अन्दर देह-देवालय में (विराजमान है)। चाहे तो बालक हो, या वृद्ध हो, स्त्री हो, या पुरुष हो; भगवान आत्मा तो अन्दर जो है, वह तो सुख का सिन्धु है! सागर है, महासागर!! आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

और अतीन्द्रियज्ञान का समुद्र है। अरे...रे...! इसे ऐसी स्वयं की महत्ता कैसे जँचे? अनादि से पामरता मानी है। ऐसा जो प्रभु है उनकी 'वाणी' — यह निमित्त से कथन (हुआ)। वह वाणी जड़ है, तथापि **अमृतवाणी की मिठास देखकर....** उस वाणी में मिठास है। आहा...हा...!

भगवान की वाणी (को) सिंह और बाघ (जैसे) तिर्यंच सुनते हैं! महाविदेह में भगवान के समवसरण में भगवान विराजमान हैं। समवसरण में बाघ, सिंह, नाग, इन्द्र और गणधर भी (भगवान की वाणी) सुनते हैं। आहा...हा...! उस वाणी की मिठास देखकर **द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं....** द्राक्ष... द्राक्ष...! द्राक्ष में मिठास है परन्तु भगवान की वाणी की मिठास देखकर द्राक्ष जंगल में चली गयीं। आहा...हा...! यह तो एक उपमा ही है न?

ऐसी प्रभु की वाणी! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव को होंठ हिले बिना, कण्ठ कम्पित हुए बिना 'ॐ....' ऐसी ध्वनि उठती है, अमृत की धारा बहती है, उस वाणी की मिठास को देखकर, कहते हैं — द्राक्षें भी जंगल में चली गयीं — ऐसी शरमा गयी कि.... आहा...हा...! इस वाणी की मिठास (कहाँ)? और यह मेरी मिठास कहाँ? उपमा (दी) है न उपमा? है न? **वनवास में चली गईं और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया!** इक्षु (अर्थात्) गन्ना। उसकी मिठास तो है परन्तु (यहाँ) कहते हैं प्रभु की वाणी की मिठास के समक्ष इक्षु के रस की मिठास कोल्हू में पिल गयी। आहा...हा...!

यह तो एक वाणी निमित्त है (उसकी बात करते हैं) और यह वाणी भगवान को ही होती है, यह वाणी दूसरे को नहीं होती — ऐसी उस समय के परमाणु की (रचना हो जाती है)। आहा...हा...! शान्तरस का भरपूर प्रभु! वीतरागमूर्ति आत्मा अन्दर प्रभु है! ऐसे (प्रभु की) वाणी निकली, 'वचनामृत वीतराग की, परम शान्तरस मूल' (अर्थात्) वचन परमशान्तरस मूल हैं। निमित्त से कथन है न? आहा...हा...! 'औषध जो भवरोग के....' (अर्थात्) भगवान की वाणी, भवरोग का नाश करने की औषधि है।

अनादि से चौरासी के अवतार कर-करके दु:खी है, भाई! इसे पता नहीं है। बाहर की जरा सी सुविधाएँ (मिली) — उजले गाँव और उजले मकान, उजला शरीर और

www.vitragvani.com

उजले कुटुम्ब, उजले पैसे, और उजले कपड़े और उजले गहने.... (मिले), ये श्मशान की चमक देखकर, उनकी महिमा में अपनी महिमा भूल गया है! अन्दर मैं कौन हूँ? आहा...हा...! उसे बतलानेवाली वाणी है। उस वाणी को भी कहते हैं (इक्षु) कोल्हू में पिल गया। उस वाणी के मिठास के समक्ष (इक्षु कोल्हू में पिल गये)। इक्षु — गन्ना.... गन्ना....! आहा...हा...! आपकी (हिन्दी में) गन्ना कहते हैं न? हमारे यहाँ गुजराती में सेरड़ी (कहते हैं)। आहा...हा...!

ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है;.... ओ...हो...! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा, जिनका शरीर परमौदारिक हो गया है; जिन्हें परम आनन्द आदि समस्त शक्तियाँ विकसित हो गयी हैं और शरीर के रजकण भी परम-औदारिक हो गये हैं तथा वाणी भी अमृत जैसी निकलती है।

मुमुक्षु - 'परम-औदारिक' जैसा श्वेताम्बर के शास्त्रों में शब्द ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री - यह (बात) नहीं है, उन लोगों को (सब) बदलाव हो गया है। आहा...हा...! प्रभु तो जन्मते हैं, तब से उनका परम-औदारिक शरीर है, प्रभु को तो जन्म से ही रोग नहीं होता, मूत्र नहीं होता, मल नहीं होता। यह तो तीर्थंकर किसे कहें, बापू! इस वस्तु (का पता नहीं है)। लोगों ने मनुष्य जैसा (कर डाला है)। गायन गाते हैं न? ईश्वर, प्रभु कहते हैं, 'मुझे मानव जैसा बनाया' प्रभु को मानव जैसा बनाया। आहा...हा...!

यह (शरीर) तो जड़-मिट्टी-धूल है। वाणी जड़ धूल है। प्रभु अन्दर चैतन्य विराजमान है। अमृत का सागर-सिन्धु! आहा...हा...! स्वयंभू सिन्धु! बापू! यह तुझे पता नहीं है, तू अन्दर इतना है, ऐसे अमृत के सागर को बतलानेवाली वाणी को भी अमृत कह दिया है। आहा...हा...! जिनेश्वरदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ! भाई! यह वाणी अलौकिक है! आहा...हा...!

उसे देखकर कहते हैं, **ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना!** बापू! यह अन्दर भगवान आत्मा है कौन? इस देह के रजकण तो मिट्टी है, आहा...हा...! भगवान आत्मा जो चैतन्य के आनन्द और शान्ति के रस से भरपूर है, अन्दर समस्त भगवान आत्मा ऐसे ही हैं।

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! अरे... ! अपनी महिमा की इसे खबर नहीं पड़ती। आहा...हा... ! प्रभु स्वयं रंक में बिक गया। आहा...हा... ! जिसकी वाणी की मिठास देखकर द्राक्षें बाहर (वनवास में) चली गयीं, इक्षु (कोल्हू में) पिल गयी तो उसके आत्मा की तो क्या बात करना ! कहते हैं। आहा...हा... !

प्रभु का आत्मा परमात्मस्वरूपपने प्रगट हो गया है। तीन लोक के नाथ, जिनेन्द्रदेव ! आहा...हा... ! महाविदेह में प्रभु विराजमान हैं। महावीर आदि तो सिद्ध हो गये हैं, वे तो 'णमो सिद्धाणं' (पद में विराजमान हैं)। यह प्रभु णमो अरिहन्ताणं (पद में) हैं। महाविदेह में बीस तीर्थंकर विराजमान हैं (वे) णमो अरिहन्ताणं (पद में) हैं। उनके आत्मा की क्या बात करना ! कहते हैं। आहा...हा... ! यह वाणी वाले अरिहन्त लिये हैं न ? सिद्ध को वाणी नहीं होती। णमो सिद्धाणं (पद में विराजमान हैं ऐसे सिद्ध को) वाणी नहीं होती। यहाँ तो वाणीवाले अरिहन्त लिये हैं, उनकी वाणी भी जब ऐसी है तो उनके आत्मा की तो क्या बात करना ! आहा...हा... ! जिनेन्द्रदेव ! उनकी महिमा की तो क्या बात करना ! इतनी बात वहाँ मिली है।

मुमुक्षु : वाणी अच्छी होवे उसका (सब) अच्छा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। उनकी वाणी ऐसी होती है, वहाँ ऐसा उनका आत्मा, वाणी के कारण नहीं परन्तु स्वयं के स्वरूप के कारण ऐसा है। आहा...हा... ! और यहाँ स्वरूप ऐसा प्रगट हुआ है, इसलिए वाणी ऐसी है — ऐसा भी नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी यह बात ! यह जिनेश्वरदेव के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। जो ऐसा कहे कि वाणी, वाणी के कारण निकलती है, बापू ! मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो ज्ञानस्वरूपी सिन्धु, स्वयंभू सिन्धु ! ज्ञान और आनन्द के सिन्धु से भरा हूँ। आहा...हा... ! मेरे तल के लेनेवालों को तो सम्यक् आनन्द का स्वाद आता है, कहते हैं। आहा...हा... ! अन्दर जो ध्रुवतल भरा है, उसे जिसने स्पर्श किया है, उसे तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है — ऐसा यह भगवान है। आहा...हा... ! जिसे कोई नय-निक्षेप और प्रमाण (के भेद) जिसके अनुभव में लागू नहीं पड़ते। आहा...हा... ! जो नय-निक्षेप और प्रमाण, बाह्य ज्ञान के निमित्तरूप से वस्तु को सिद्ध करने में निमित्तकारणरूप से (कहे गये हैं) आहा...हा... ! वह भी जिसके अनुभव के काल में हैं नहीं। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

भगवान आत्मा, अन्तर के उपयोग में जब जाता है, तब वहाँ आगे नय-निक्षेप प्रमाण की भी गन्ध नहीं है। आहा...हा... ! व्यवहार, राग आदि उदय की तो गन्ध नहीं परन्तु नय-निक्षेप-प्रमाण की, जिसे शास्त्र में व्यवहार कहकर आत्मा को सिद्ध करने का साधन कहा है, वे विकल्प भी पूर्णानन्द के नाथ के अनुभव के काल में नहीं है। आहा...हा... ! तो पूर्ण आनन्द का नाथ जहाँ परमात्मारूप से प्रगट हुआ, उसकी तो क्या बात करना ! आहा...हा... !

अरे...रे... ! इसने अपने स्वरूप की महिमा और माहात्म्य कितना है — यह सुना नहीं। बाहर ही बाहर में रुक गया है। आहा...हा... ! दो-पाँच लाख खर्च करे, वर्षीतप करे, यात्रा निकाले, माला पहनावे (तो) बस ! आहा...हा... ! मानो बहुत किया। अरे ! तूने कुछ नहीं किया, प्रभु ! यह तो सब राग की क्रियाएँ हैं। आहा...हा... ! यह पुस्तक कहाँ से ली, पण्डितजी ? पुस्तक कहाँ से ली ? यहाँ से ? यहाँ आना, रखी है तुम्हारे लिये; देना,.... अरे ! ऐसी बात कहाँ से (सुनने को मिले) ? बापू ! आहा...हा... !

ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अन्तर में सींचने से अमृत मिलेगा, तेरे सुख का फव्वारा छूटेगा; राग सींचने से दुःख मिलेगा। इसलिए ज्ञान-वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर॥ १६॥

यह आया अब, **ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अन्तर में सींचने से अमृत मिलेगा,....** नाथ ! तू इतना है, प्रभु ! तुझे पता नहीं। तेरा जो पूर्ण आनन्दस्वरूप अन्दर है, उसका ज्ञान और पर के राग का अभाव (ऐसा वैराग्य) ऐसा ज्ञान और वैराग्य, वहाँ सींचने से (अमृत मिलेगा)। आहा...हा... ! जैसे वृक्ष में पानी सींचने से फल फलते हैं... फल फलते हैं.... आहा...हा... ! वैसे ही प्रभु, तू आत्मा आनन्द और (सुख का) सागर है। आहा...हा... ! अरे ! इतने शरीर में इतना (आत्मा) ! उसे एक राग में रोक दिया। एक दया, दान, व्रत, भक्ति और इस विषयभोग की वासना का विकल्प उत्पन्न हो, वहाँ मिठास में रुक गया। आहा...हा... ! जिसकी वाणी की मिठास के समक्ष द्राक्ष और इक्षु पिल जाये, उनके आत्मा की क्या बात करना ! (ऐसा) कहते हैं। ऐसा प्रत्येक आत्मा इतना है, ऐसा है। आत्मा-परमात्मा की बात चलती है, परन्तु आत्मा इतना परमात्मा ही है। आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सर्वोत्कृष्ट! परमस्वरूप! इसका ज्ञान, उसका ज्ञान और वैराग्य (अर्थात्) पर तरफ से उदास, पर तरफ से, राग से विरक्त (तथा) स्वभाव में रक्त, शुद्ध चैतन्य प्रभु में रक्त (और) राग से विरक्त — ऐसे अन्दर सींचने से (अमृत मिलेगा)। आहा...हा...! ऐसे जल को (अर्थात्) अस्तित्व का ज्ञान और नास्तित्व का वैराग्य। आहा...हा...! दो की मैत्री कही है न? कलश में नहीं? मैत्री कही है। आहा...हा...! चैतन्यस्वरूप भगवान के अतीन्द्रिय आनन्द के एक अंश के स्वाद के समक्ष इन्द्र की करोड़ों अप्सराएँ और करोड़ों इन्द्राणियों के (भोग सड़ी हुई बिल्ली जैसे लगते हैं।) जिसका अनाज का शरीर नहीं, अनाज का पिण्ड नहीं। यह तो अनाज दो दिन न खाये तो (छोटा) मुँह हो जाये। तीन चार डिग्री बुखार आया हो और दो दिन आहार न खाये वहाँ तो सब सुन्दर शरीर ऐसा लट्ठ जैसा लगता है, वह कुम्हला जाता है। दो दिन समान बुखार आया हो, एक सरीखा.... आहा...हा...! वहाँ मुँह में (करचली) पड़ जाती है, ढीला (हो जाता है) फीका हो जाता है। (जिसे) आहार की आवश्यकता नहीं है — ऐसी इन्द्राणियाँ, जिन्हें आयुष्य प्रमाण हजारों वर्ष में अमृत झरता है, उनके भोग (तो तुच्छ लगते हैं)। आहा...हा...! अमृतस्वरूप भगवान का ज्ञान और वैराग्य करने से (जो) अमृत मिलता है, उस अमृत के स्वाद के समक्ष इन्द्राणी के भोग सड़े हुए गधा और बिल्ली सड़ गयी हो — ऐसा उसे लगता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

यह सब बात ऐसी लगती है कि परन्तु यह ऐसी नयी (बात) कहाँ से आयी? अभी तक तो यह सब सुनते थे,... भाई! प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो, जाओ धर्म हो गया। अष्टम....... प्रौषध करो, अरे... भगवान! बापू! यह क्या कहते हैं? भाई! यह सब बातें तो राग की क्रिया की है। आहा...हा...! प्रभु तो अन्दर राग की क्रिया से भिन्न विराजमान है, उसका ज्ञान और वैराग्य करने से वहाँ अमृत फलेगा। आहा...हा...! क्रिया में तो राग-जहर फलेगा। कठिन काम है, भाई! आहा...हा...! भले दुकान छोड़ी, स्त्री-पुत्र छोड़कर जंगल में बसता हो और पंच महाव्रत के परिणाम होवें परन्तु वह सब जहर है, दुःख है। उसका फल तो दुःख है। प्रभु! इसका (आत्मा) का ज्ञान और वैराग्य... उसका ज्ञान और वैराग्य... उसका ज्ञान और वैराग्य करने से अमृत (फलेगा)। पर्याय में तुझे अमृत फलेगा।

शक्तिरूप अमृत है, वह तुझे पर्याय में फलेगा। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान में जो आनन्द आयेगा — ऐसा आनन्द तीन लोक में अन्यत्र कहीं इन्द्रिय के विषयों में (नहीं है — ऐसा आनन्द आयेगा) । आहा...हा... !

भूखा मनुष्य हो और दूध-पाक (मिले) आहा...हा... ! दूध-पाक ! दूध-पाक कहते हैं न ? खीर कहते हैं न ? हमारे (यहाँ) खीर और दूध-पाक में अन्तर है। खीर में एक किलो दूध में नौ टाँक चावल, उसे खीर कहते हैं और एक किलो दूध में रुपया भर चावल (होवे) उसे दूध-पाक कहते हैं। दूध का पाक ! यह दूध-पाक और.... आहा...हा... ! घी की पूड़ी, गेहूँ की घी की तली हुई पूड़ी और अरबी के पत्ते के पतरबेलिया हो, ऐसा खाता हो (तो) मानो (ऐसा लगता है) आहा...हा... ! मैं क्या सुख का वेदन करता हूँ ! प्रभु ! दुःख को-जहर को वेदन करता है। भाई ! तुझे पता नहीं है, बापू ! पागल हो गया है, प्रभु ! आहा...हा... ! तू वहाँ दुःख का वेदन है, उसे सुख का वेदन मानता है। आहा...हा... ! यह मिथ्याभ्रम, अज्ञान है। आहा...हा... !

प्रभु ! **ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी....** ज्ञानी और वैराग्यरूपी पानी। खामणो करके — खड्डा करके आम को पानी सींचते हैं न ? आहा...हा... ! वैसे ही यहाँ प्रभु ! सुखसिन्धु का ज्ञान और पर का-राग का अभाव — ऐसा पानी सींचने से, प्रभु ! तुझे अमृत का फल फलेगा। यह सब शुभ और अशुभभाव जहर का फल है, यह जहर है। आहा...हा... ! अशुभभाव तो जहर है (परन्तु) शुभभाव भी, अमृतस्वरूप के समक्ष तो जहर है। विषकुम्भ कहा है न ? मोक्ष अधिकार में विष का घड़ा कहा है। प्रभु ! अमृत का सिन्धु ! भगवान अमृत का सिन्धु है, तब पुण्य-पाप विष-जहर का घड़ा है। आहा...हा... ! तुझे वैराग्य होने से (अर्थात्) राग से भी वैराग्य (होने से); शुभराग होवे, उससे भी वैराग्य और प्रभु पूर्णानन्द का-अस्ति का — जैसा पूर्ण स्वरूप है, वैसा उसकी प्रतीति में और ज्ञान में आना, वह ज्ञान और वैराग्य सिंचन से, प्रभु ! तुझे अमृत फलेगा। आहा...हा... ! यह अमृत का फल आयेगा। ज्ञान और वैराग्य, उसके मूल में सींचने से (अमृत का फल आयेगा) । आहा...हा... ! दूसरा आवे न आवे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। जगत् को समझाना आवे या न आवे, इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा... !

प्रभु ! तू ज्ञान और वैराग्य.... ओ...हो... ! उसे प्रगट कर, यह सिंचन (का अर्थ

www.vitragvani.com

हुआ), आहा...हा... ! सुख-सागर का ज्ञान और रागादि का (अर्थात्) जहर का अभाव, वैराग्य, आहा...हा... ! राग के अभावस्वरूपी वैराग्य, ऐसा सिंचन करने से अमृत फलेगा। **तेरे सुख का फव्वारा छूटेगा;....** आहा...हा... !

जैसे पाताल में पानी भरा हो और ऊपर की परत टूटते ही जैसे शीर निकलती है... आहा...हा... ! (उसी प्रकार सुख का फव्वारा छूटेगा)। इतना कहीं आता है न ? कि मुनि को (आनन्द की) शीर आती है परन्तु इतने से सन्तोष नहीं है। आता है न ? आहा...हा... ! मुनि हैं, उन्हें पाताल में से आनन्द की धारा बहती है परन्तु इतनी धारा से भी उन्हें सन्तोष नहीं है। आहा...हा... ! पूर्ण आनन्द की प्राप्ति कैसे हो ? ऐसा जिनका प्रयत्न ध्रुव के ऊपर ढला करता है। आहा...हा... ! भाई ! मुनिपना किसे कहें ! बापू ! कठिन बातें हैं। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं — **सुख का फव्वारा छूटेगा;....** अमृत मिलेगा अर्थात् अमृत का फव्वारा फूटेगा। आहा...हा... ! ज्ञान और वैराग्य की एकता से स्वभाव में से ज्ञान और आनन्द प्रस्फुटित होगा, फव्वारा फूटेगा, धारा बहेगी। आहा...हा... ! देखो ! यह अनुभव का साधकस्वभाव ! आहा...हा... ! इसका नाम परमात्मा का धर्म है, बापू ! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं, प्रभु ! तू अमृत का सागर है न ! उसका ज्ञान और राग का अभाव — ऐसी स्थिति होने से, प्रभु ! (सुख का) फव्वारा छूटेगा। आहा...हा... ! अमृत मिलेगा, इतना कहने के बाद फव्वारा फूटेगा (ऐसा कहा है) अन्दर से धारा बहेगी। आहा...हा... !

अब ऐसी बात कभी सुनी न हो, उसे ऐसा लगता है कि यह क्या होगा ? यह वीतराग का-जैन का मार्ग होगा ? लोगों ने बाहर की क्रिया-प्रवृत्ति में-राग में जैनधर्म मान लिया। धर्म तो वीतरागमार्ग है, आहा...हा... !

सुख का फव्वारा छूटेगा;.... अर्थात् आनन्द का सागर है, उसका ज्ञान और राग का अभाव (होने से) उसमें से तुझे आनन्द का फव्वारा छूटेगा, इसका नाम वीतरागधर्म और इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। प्रभु ! क्या हो ? आहा...हा... ! **राग सींचने से दुःख मिलेगा।** आहा...हा... ! चाहे तो दया का, दान का, व्रत का, भक्ति-पूजा का राग (होवे) उसे सींचने से तो दुःख होगा। भाई ! वहाँ दुःख फलेगा, वहाँ सुख नहीं फलेगा। आहा...हा... !

भाषा तो बहुत सादी है। भाव तो बहुत ऊँचे हैं! जगत का भाग्य (कि) ऐसी भाषा की पुस्तक बाहर आयी, सादा अत्यन्त सादा। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

राग सींचने से दुःख मिलेगा। अस्ति-नास्ति की है। ज्ञान और वैराग्य (अर्थात्) स्वरूप का ज्ञान और पर से उदास, इससे अमृत फलेगा और राग-शुभराग आदि सींचने से तो दुःख मिलेगा। आहा...हा... ! चाहे तो नय-निक्षेप-प्रमाण का विकल्प हो, परन्तु है तो दुःख। ऐसी बातें ! बहुत कठिन काम ! आहा...हा... !

इसलिए ज्ञान-वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके.... इसलिए प्रभु ! तू अमृत का सागर और अमृत की (बेल) ! आहा...हा... ! जैसे काशीफल की बेल होती है न ? आधे मन का काशीफल नहीं होता ? बेल-बेल, ऐसे पतली होती है, काशीफल... काशीफल कहते हैं न ? इतने आधे-आधे मण के, पूरी बेल में दस-बीस-पचास (काशीफल) पकते हैं। आहा...हा... ! इसी प्रकार यह प्रभु, शरीरप्रमाण आनन्द और ज्ञान की बेल है। आहा...हा... ! इस बेल में ऐसा अमृत फलेगा, वह (बाहर के) काशीफल (फलते हैं) परन्तु यहाँ तो अमृत फलेगा। आहा...हा... ! ऐसा है ! प्रवीणभाई ! ऐसी बातें हैं ! आहा...हा... !

मुमुक्षु : इसके लिए तो सुनने आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेम है न ! आहा...हा... ! लड़के को भी प्रेम है। बापू ! ऐसी बात सुने तो सही ! आहा...हा... ! तेरे घर में जाने की यह रीति है। आहा...हा... ! बापू ! वीतराग का मार्ग, पूरे जगत से अलग प्रकार है, भाई ! आहा...हा... ! इसके बिना इसे कहीं सुख नहीं मिलेगा, भाई ! आहा...हा... ! **राग सींचने से दुःख मिलेगा।** ऐसा कहा न ? आहा...हा... ! **इसलिए ज्ञान-वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर।** (अर्थात्) पूर्ण को प्राप्त कर-मुक्तिसुखरूपी अमृत को प्राप्त कर। आहा...हा... ! पूर्ण अपरिमित आनन्द आदि स्वभाव में एकाग्र होकर, राग से छूटकर वैराग्य में आकर यह साधन कर (तो) मुक्तिरूपी अमृत मिलेगा। तुझे मुक्ति मिलेगी अर्थात् पूर्ण दुःख से छूट जायेगा। मुक्ति अर्थात् पूर्ण दुःख से छूट जायेगा और पूर्ण आनन्द की अस्तित्व की प्राप्ति होगी। आहा...हा... ! मोक्ष शब्द में बन्ध का अभाव बतलाता है और अस्तिरूप से कहें तो आत्मलाभ की-परम आनन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष है। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं ! (इसलिए) **ज्ञान-वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी... मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर।** सोलह (पूरा हुआ)।

जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आएगा। शुभ-परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसङ्ग आयें उस समय शान्ति-समाधान रहेगा, ज्ञाता-द्रष्टारूप से रहा जा सकेगा॥ १७॥

१७, **जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है,....** आम के वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है — डालियाँ, पत्ते, फल, और फूल (सब हाथ आते हैं)। आहा...हा...! है? **जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है,....** आहा...हा...! **वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आएगा।** अद्भुत बातें! आहा...हा...! राग को तो नहीं परन्तु पर्याय को (भी) पकड़ने की बात नहीं है। आहा...हा...! पकड़नेवाली पर्याय है परन्तु पर्याय को पकड़ना नहीं। आहा...हा...!

ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आएगा। मूल हाथ आया, (इसलिए) डालियाँ, पत्ते, फल, और फूल सब हाथ आएगा। आहा...हा...! वृक्ष का मूल पकड़ने से जैसे फल-फूल आदि सब हाथ आयेंगे, वैसे ज्ञायकभाव (पकड़ने से सब हाथ आएगा।) आहा...हा...! गजब बात है।

(समयसार की) छठवीं गाथा में अकेला ज्ञायकभाव (कहा)। एक समय की पर्याय जितना नहीं (परन्तु) त्रिकाली ज्ञायकभाव, पूर्ण ज्ञायकभाव, पूर्ण सहज, पूर्ण सहज ज्ञायकभाव स्वरूप प्रभु है। आहा...हा...! पूर्ण सहज, स्वाभाविक-अकृत वस्तु, अकृत्रिम, पूर्ण स्वभाव से भरपूर... आहा...हा...! ऐसा ज्ञायकभाव-उसे पकड़! पकड़ती है पर्याय परन्तु पकड़ती है ज्ञायक को। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! 'ज्ञायकभाव' ऐसा कहा है न? उसे पकड़ने से अर्थात् ज्ञायकभाव पर नजर करने से, ज्ञायकभाव-ध्रुव को ध्येय बनाने से... आहा...हा...! **सब हाथ आयेगा।** सब हाथ आयेगा (अर्थात्) केवलज्ञान होगा, प्रभु! आहा...हा...!

ज्ञायकभाव जाननस्वभावभाव, पूर्ण भरपूर भगवान, एक समय की पर्याय से भी भिन्न — ऐसा ज्ञायकभाव नित्यानन्द प्रभु त्रिकाली सहजात्मस्वरूप प्रभु... आहा...हा...! उसे

www.vitragvani.com

पकड़ने से अर्थात् उस पर दृष्टि करने से अर्थात् ज्ञायकभाव के सन्मुख होने से... आहा...हा...! सब हाथ आयेगा। तुझे सब मिलेगा, प्रभु! उसमें से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, शुक्लज्ञान, और केवलज्ञान (मिलेगा)। आहा...हा...! इतना ग्यारह अंग का ज्ञान हो, अमुक हो, तो यह हो — ऐसी बात यहाँ है नहीं। यह वस्तु ही स्वयं ज्ञायक का पुंज है। उसके सन्मुख होने से अर्थात् पकड़ने से, ऐसा (कहते हैं) जो अनादि से राग और पर्याय को पकड़कर खड़ा है, वह संसार है। उसमें चौरासी लाख के अवतरने के-अवतार के वे बीज हैं। आहा...हा...! चौरासी लाख योनि (में) अनन्त बार उत्पन्न होने के (बीज हैं।) एक समय की पर्याय को, राग को अपना मानकर रहने से संसार फलेगा। आहा...हा...! वहाँ नरक और निगोद फलेगा। आहा...हा...! प्रभु को पकड़ने से सब हाथ आएगा।

शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। आहा...हा...! (शुभभाव) आवे, अशुभ टालने को आवे परन्तु उससे कुछ हाथ नहीं आता। आहा...हा...!

यह सब इसमें विवाद उठाते हैं। शुभ (के लिए विवाद उठाते हैं)। आहा...हा...! शुभ साधन है, अशुभ घटता है (और) अन्तिम शुभभाव होता है, इसलिए वह साधन है। अन्तिम भले हो परन्तु वह साधन नहीं है। उसका अभाव करके साधन होता है। राग और स्वभाव की भिन्नता (करने से), प्रज्ञाछैनी मारने से, भेद करने से साधन होता है; राग करने से स्वयं साधन होता है — ऐसा नहीं है भाई! आहा...हा...!

शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। दो शब्द हैं। क्या? कि वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है — एक बात। **ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आएगा।** सब हाथ आएगा और शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। (यह दूसरी बात) आहा...हा...! तेरे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, और भगवान का स्मरण, यह सब शुभराग है। इसमें कुछ हाथ नहीं आएगा। आहा...हा...!

वे सब यह विवाद उठाते हैं। 'जैनदर्शन' (तत्कालीन सामाजिक समाचार पत्रिका) आता है न? उसमें यह उठाते हैं। अरे...! भाई! तूने सुना नहीं, प्रभु! आहा...हा...! तूने करवट नहीं बदली, प्रभु! तू राग की करवट में चढ़ गया, प्रभु! इसमें से कुछ हाथ नहीं

www.vitragvani.com

आएगा। इसमें क्या है ? राग में कहाँ ज्ञान, आनन्द और शान्ति है ? शुभराग करने से भी कुछ हाथ नहीं आएगा, आहा...हा... ! तो अशुभ की तो बात क्या करना ! आहा...हा... !

ज्ञायकभाव को पकड़ने से सब हाथ आयेगा (और) शुभभाव को पकड़ने से कुछ हाथ नहीं आएगा — यह अस्ति-नास्ति है। आहा...हा... !

यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसङ्ग आयें.... ज्ञायकभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, परमपारिणामिकभाव, सहज एकरूप रहनेवाला भाव, सदृश रहनेवाला भाव, जिसमें एक समय का भी पलटन नहीं... आहा...हा... ! ऐसे **मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसङ्ग आयें, उस समय शान्ति-समाधान रहेगा,....** रोग आवे, निन्दा आवे, प्रतिकूलता आवे... आहा...हा... ! (यदि) मूल पकड़ा होगा तो शान्ति रहेगी। ज्ञायकभाव शुद्धभाव स्वाभाविकभाव है, इसे मर्यादा क्या ? आहा...हा... ! महा समुद्र-महासिन्धु है।

'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ' आता है न ? (समयसार नाटक, श्लोक 35) 'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ अपने रस सौ भर्‍यो आपनी टेक हों, मोहकर्म मम नाहिं भ्रम कूप है.... ' आहा...हा... ! सुखसिन्धु हमारो रूप है। आहा...हा... ! मोहकर्म मम नाहिं, नाहिं भ्रम कूप है, आहा...हा... ! ज्ञानसिन्धु हमारो रूप है। आहा...हा... ! मोहकर्म मम नाहिं, नाहिं भ्रम कूप है, शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है। शुद्ध चेतनासिन्धु ! शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है। आहा...हा... ! शुद्ध चेतनासिन्धु ! महासमुद्र पड़ा है ! आहा...हा... ! उसे कहीं क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं है, उसके स्वभाव की सामर्थ्य की महत्ता की ही आवश्यकता है, उसकी महत्ता वहाँ है — ऐसे ज्ञायकभाव को... आहा...हा... ! पकड़ने से **चाहे जो प्रसङ्ग आयें....** आहा...हा... ! **उस समय शान्ति....** अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा रहेगा। आहा...हा... !

क्रमबद्ध का अर्थ भी यह है। मेरी पर्याय क्रमसर ही होगी। परन्तु क्रमसर होगी, उसमें.... वहाँ (समयसार गाथा ३०८ से ३११ में) उपोद्घात में दिया है न ? अकर्तापना सिद्ध करते हैं। आहा...हा... ! गजब काम किया है ! क्रमसर पर्याय होती है, वहाँ अकर्तापना सिद्ध होता है। अकर्तापना सिद्ध होता है, वहाँ ज्ञातापना सिद्ध रहता है। आहा...हा... ! ज्ञातापना सिद्ध होता है, वहाँ पूर्ण ज्ञातापना ही रहता है। चाहे जो उदय आओ या जाओ। आहा...हा... ! उसका वह ज्ञाता-दृष्टा (रहता है)। क्रमबद्ध का निर्णयवाला ज्ञाता-दृष्टा

www.vitragvani.com

रहता है। आहा...हा...! क्रमबद्ध का निर्णय नहीं, वह कर्ता होकर राग में जकड़ जाता है। आहा...हा...! दब जाता है। आहा...हा...!

मध्यस्थता से एक, दो, चार दिन सुने न, बापू! तो तुझे पता पड़े। प्रभु! जैनपंथ कोई वाड़ा नहीं, वह कोई पक्ष नहीं। जैनधर्म अर्थात् बनियों का धर्म (— ऐसा लोग मानते हैं)। अरे प्रभु! ऐसा नहीं है। जैनधर्म अर्थात् यह तो वस्तु का स्वरूप है। वीतरागीस्वरूप महासिन्धु प्रभु की श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव करना, वह जैन है। वस्तु जिनस्वरूप है। वस्तु जिन और उसका अनुभव करना, वह जैन है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, चाहे जैसे प्रसंग आयेंगे तो समाधान रहेगा। क्यों? **ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा।** देखा! आहा...हा...! क्रमबद्ध का सार यह है, करना (वह तो नहीं परन्तु) अब तो वहाँ परिणति करना, वह भी नहीं। आहा...हा...! क्रमसर (पर्याय) होती है, उसका अकर्ता होकर और ज्ञाता होकर रहता है। आहा...हा...! तब (लोगों को ऐसा लगता है कि) यह क्रमबद्ध तो नियतवाद हो गया। गोम्मटसार में नियतवाद का वर्णन किया है। भाई! प्रभु! ऐसा नहीं है। अकेला नियतवाद नहीं है, इसके साथ स्वभाव, पुरुषार्थ सब शामिल हैं। आहा...हा...! क्योंकि जब क्रमबद्ध का निर्णय हुआ, वहाँ कर्तापना मिटा, अकर्तापना हुआ, वह पुरुषार्थ नहीं? वह स्वभाव नहीं? और कर्ता(पना) मिटा और अकर्ता(पना) हुआ, वहाँ क्या रहा? (तो कहते हैं) ज्ञाता-दृष्टापना रहा। आहा...हा...! ऐसे ज्ञाता-दृष्टापने को-ज्ञायकपने को पकड़ने से ज्ञाता-दृष्टापने रहा जा सकेगा — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! है? आहा...हा...! **ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा।** यह १७ (बोल पूरा) हुआ।

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतङ्ग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ — ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है॥ १८॥

१८। **दृष्टि द्रव्य पर रखना है।**

प्रश्न : द्रव्य अर्थात्?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

समाधान : द्रव्य अर्थात् कायम रहनेवाली चीज। कायम रहनेवाली ज्ञायक चीज। द्रव्य पर दृष्टि रखनी है, ध्येय वहाँ है, ध्रुव वहाँ है, सामान्यपना वहाँ है। धाम-ध्रुव का धाम, वही तू है, ध्रुवधाम वही तेरा धाम है। वह तेरा महान क्षेत्र है। आहा...हा...!

शब्द में बात तो बहुत थोड़ी है (परन्तु) भाव तो बहुत (गहरे हैं)। आहा...हा...! इसमें वाद-विवाद को (कहाँ स्थान है)? (यह तो) जिसे आत्मा का रस लगे, उसकी बातें हैं, बापू! आहा...हा...! पर के रस के रंग में रंग गया, उसे वीतराग का रस नहीं आता। आहा...हा...! और जिसे वीतरागी स्वरूप का रस लगा, उसे राग का रंग नहीं लगता। राग आयेगा, देखो है न?

विकल्प आयें.... राग आये — ऐसा कहा। **दृष्टि द्रव्य....** अर्थात् वस्तु ज्ञायक, सुख-सिन्धु पर रखने की है। **विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है।** सामान्य ध्रुव वस्तु है, उससे लक्ष्य हटता नहीं। आहा...हा...! ध्रुव का ध्येय है, वहाँ से दृष्टि नहीं हटती। चाहे जिस प्रसंग में, शुभ-अशुभ विकल्प में आवे (तो भी दृष्टि द्रव्य पर है)। है न? आवे कहा न? **विकल्प आयें....** आहा...हा...! आये फिर भी **दृष्टि एक द्रव्य पर है।**

जिस प्रकार पतङ्ग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है,.... (पतंग) चाहे जहाँ जाये (परन्तु डोर) हाथ में होती है। आहा...हा...! **उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना।** कायमी चीज, टिकती चीज, वह मैं हूँ। टिकती चीज, ज्ञायक चैतन्य वह मैं हूँ, यह डोर हाथ में रखकर (फिर) भले चाहे जैसे विकल्प आये, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ.... आहा...हा...! पतंग की डोर हाथ में है, वैसे ही चैतन्य पूर्ण स्वरूप, वह मैं हूँ, उसकी यह डोर हटना नहीं चाहिए। **परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ — ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से....** ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से **दृढ़ता होती है।** यह करने से अन्दर की दृढ़ता होती है। शुभ (भाव) करने से दृढ़ता होती है — ऐसा नहीं है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे! (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं-न्यारे हैं॥ १९॥

जेठ शुक्ल ६, रविवार, दिनाङ्क ११-०६-१९७८
प्रवचन-६ वचनामृत- १९-२१

सातवाँ पृष्ठ है न? १९ वाँ बोल है। **ज्ञानी के अभिप्राय में राग है, वह जहर है, काला साँप है।** अर्थात्? आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्य आनन्द (स्वरूप) है, उससे शुभभाव विरुद्ध है। (राग) आता है, होता है परन्तु जहर है। विषकुम्भ कहा है न? जहर है। आहा...हा...! शुभभाव, स्वरूप का साधक है नहीं परन्तु स्वरूप में बाधक है। व्यवहार से (भी) बाधक है और निश्चय से (भी) बाधक है। दृष्टि की अपेक्षावाले को अशुभ छूटने की अपेक्षा से शुभ में (आने पर जितना) अशुभ छूटता है, उतना व्यवहार कहा जाता है, ठीक है। चैतन्य ज्ञायक द्रव्य वस्तु है, उसकी दृष्टि हुई है, उसे अशुभ टलकर शुभ आता है, इतनी अपेक्षा से उसे व्यवहार कहा जाता है, परन्तु निश्चय से है तो जहर और हेय। शुभभाव को उपादेय माने, तब तो मिथ्यात्व है। आहा...हा...! ऐसी बात है!

प्रभु का स्वरूप ही (ऐसा है)। जिनस्वरूपी प्रभु है! वीतरागस्वरूपी सर्वोत्कृष्ट तत्त्व महाप्रभु, जिसकी शक्ति और जिसका स्वभाव अत्यन्त वीतरागी पूर्ण, पूर्णस्वरूप है। उसमें शुभभाव आवे, तथापि वह जहर है, काला सर्प है। काला सर्प! साधारण सर्प नहीं। काला सर्प होता है न? आहा...हा...!

इसमें थोड़ा विवाद है। अभी कितने ही पण्डित (ऐसा कहते हैं) शुभभाव (धर्म का) साधन है — ऐसा है और वैसा है.... बापू! वह साधन नहीं। भाई! (तुझे) मार्ग का पता नहीं है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

चैतन्यस्वरूपी प्रभु! यह चेतन ने गाया नहीं अभी? चेतन कब आया? आज? ऐसा! दिखता नहीं तू। बापू! चेतन आत्मा चैतन्यस्वरूप... आहा...हा...! वस्तु है, (वह) अमृतस्वरूप है। प्रभु, अमृत की बेल है। आहा...हा...! उसका स्वीकार करने से तो अमृत का फल पकता है। कहीं जहर पकता है? अमृत की बेल में (अमृत पकता है)। आहा...हा...! काशीफल की बेल में काशीफल आता है। (उसमें कहीं) करेला होता है? करेला होता है न? काशीफल बड़ा होता है और करेला छोटा होता है तो भी इस काशीफल की बेल में करेला नहीं होता। आहा...हा...! वैसे ही प्रभु आत्मा, पूर्ण आनन्द और पूर्ण अमृतस्वरूप के पिण्डस्वरूप वह पिण्ड है, उसका परिणमन होता है, उस बेल में (आनन्द का परिणमन आता है)। त्रिकाली (आनन्द की) बेल प्रभु है। आहा...हा...! उसके स्वीकार / सत्कार और अनुभव से आनन्द का फल पकता है। आहा...हा...! उसमें अभी शुभराग-आसक्ति है, पूर्ण वीतराग नहीं; इस कारण धर्मी को-ज्ञानी को भी शुभभाव आसक्तिरूप आता है (परन्तु) अभिप्राय में काला नाग है, श्रद्धा में जहर है, (तथापि) आसक्ति में आये बिना नहीं रहता। पूर्ण वीतराग नहीं है न? (इसलिए आये बिना नहीं रहता)। आहा...हा...! ज्ञानी को, अर्थात् आत्मा के शुद्ध चैतन्यस्वरूप को अनुभव करनेवाले को-जाननेवाले को अभिप्राय में तो, श्रद्धा में तो राग है, (वह जहर है)। (राग) है अवश्य; राग है — ऐसा कहा है; नहीं-ऐसा नहीं; पर्याय में है परन्तु वह जहर है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : व्यवहार से अमृत कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अमृत का आरोप दिया है। अमृतस्वरूप भगवान है और (पर्याय में) अमृतपना प्रगट हुआ है, उसकी अपेक्षा से (साथ में रहे हुए) राग को अमृत का व्यवहार कहा (गया)। मोक्ष अधिकार में कहा है। व्यवहार से अमृत (है ऐसा कहना) अर्थात् कि (जो अमृत) नहीं है, उसे (अमृत) कहने का नाम व्यवहार है। आहा...हा...! व्यवहार से अमृत कहा (अर्थात्) आरोप से कहा है। आत्मा अमृतस्वरूप है, उसकी प्रतीति (अर्थात्) सम्यग्दर्शन (हुआ), वह निश्चय है तो उसका आरोप करके देव, गुरु की श्रद्धा का राग, वह है तो राग, परन्तु आरोप करके उसे व्यवहार समकित कहा गया है। है तो राग, परन्तु निश्चय समकित का सहचर (अर्थात्) निमित्त को

www.vitragvani.com

साथ देखकर उपचार से उसे व्यवहार कहा गया है। आहा...हा...! ऐसी बात है! मोक्षमार्गप्रकाशक सातवें (अधिकार में है)।

अभी आसक्ति के कारण... पूर्ण वीतराग न हो तब तक धर्मी को-ज्ञानी को भी, क्षायिक समकिती होने पर भी आसक्ति का राग होता है। आहा...हा...! **अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं,...** अन्तर में से निकलकर राग में आकर खड़े हैं। खड़े हैं, हाँ! (राग का) आदर नहीं परन्तु राग आता है, होता है। आहा...हा...!

अभी तो राग किसे कहना, इस बात में बड़ी उलझन है। यह (अज्ञानी) तो इस अशुभराग को राग (मानता है)। यहाँ तो गुणी-गुण का भेद लक्ष्य में ले तो भी वह शुभराग है। वस्तु एक समय में अभेद चीज है। गुणी और गुण का भेद भी जिसमें नहीं है — ऐसा जो दृष्टि का विषय अभेद (स्वरूप); उस गुण-गुणी के भेद को भी वह तो स्वीकार नहीं करता। आहा...हा...! तो फिर शुभराग का आदर और स्वीकार तो कहाँ से होगा? आहा...हा...! उथल-पुथल का मार्ग है, भाई!

वर्तमान में तो यह शुभराग-क्रिया करो, व्रत करो, अपवास करो, देश-सेवा करो, शास्त्र की भाषा अच्छी बनाओ तो यह सब धर्म है, अभी लोग ऐसा सिद्ध करते हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : लोग नहीं कहते परन्तु उपदेशक कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे (भी) लोक में जाते हैं न! वे उपदेशक भी लोक में जाते हैं, धर्म में नहीं। आहा...हा...! जिनके उपदेश में शुभभाव से आत्मा को कुछ भी लाभ होता है (— ऐसा आता है), वह मान्यता लौकिक मिथ्यादृष्टि की है। ऐसी बातें! अरे! यह तो जन्म-मरण का चौरासी का हार (माला) उड़ा देना है, बापू! अनादि-अनन्त प्रभु नित्यानन्द धारावाही पड़ा है, उसे (जिसने) पकड़ा है, उसे शुभराग आता है, वहाँ खड़ा भी रहता है, अटकता है, (वहाँ) अटकता है परन्तु (अभिप्राय में) काला नाग और जहर (मानता है)। आहा...हा...!

(ज्ञानी को भी) राग है, **थोड़े खड़े हैं,...** थोड़े खड़े हैं — ऐसा कहा; राग थोड़ा आता है। आहा...हा...! चौथे (गुणस्थान में) तीन कषाय का, पाँचवें में दो (कषाय का), छठवें में एक (कषाय का) भी थोड़ा राग आता है। **राग है, परन्तु अभिप्राय में काला**

www.vitragvani.com

साँप लगता है। अतीन्द्रिय समता के आनन्द के समक्ष (राग, जहर जैसा लगता है)। 'राग, आग दहै सदा' (ऐसा) छहढाला में आता है। 'राग, आग दहै सदा तातैं समामृत सेईये'। आहा...हा...! इस कारण समामृत (अर्थात्) समतारूपी अमृत भगवान (आत्मा है), उसकी दशा को सेवन करो। आहा...हा...! 'राग आग दहै' — चाहे तो शुभराग हो परन्तु है (वह) आग, कषाय है, कषाय अग्नि है, दाह है। आहा...हा...! राग, आग, दाह दहै सदा। वह आत्मा की शान्ति को जलाता है। आहा...हा...! शान्ति जलती है। आहा...हा...! 'तातैं समामृत सेईये' — इस कारण उस शुभराग को भी छोड़कर, समतारसरूपी अमृत प्रभु है, उसकी सेवा करो। उसमें तुझे शान्ति और आनन्द आएगा। आहा...हा...! ऐसी बात है। मार्ग तो यह है।

(लोग व्यवहार के) झगड़े खड़े करते हैं। व्यवहार है (अवश्य), त्रिकाली (स्वरूप) शुद्ध होने पर भी, पवित्र प्रभु पूर्ण है, वस्तु तो पूर्ण शुद्ध और पवित्र ही है, तथापि पर्याय में अशुद्धता आती है। अशुद्धता है ही नहीं (ऐसा नहीं है) अज्ञानी को अशुद्धता है और ज्ञानी को (भी) अशुद्धता है, वह अपने अभी आ गया है। समयसार तीसरे श्लोक में अमृतचन्द्राचार्य **कलुषतायाम** कहते हैं। अनादि की कलुषितता (अर्थात्) अशुद्धि मुझे भी है, मुनि कहते हैं न? अमृतचन्द्राचार्य आचार्य हैं। आहा...हा...! जिनके कलश अमृत कलश हैं! वे स्वयं ऐसा कहते हैं कि मैं शुद्ध चिन्मूर्ति वस्तुरूप से तो ऐसा ही हूँ, परन्तु मेरी पर्याय में मोहकर्म का अनुभाव-निमित्त है और अनुभाव्य-मैं मेरी दशा में कलुषित परिणामरूप परिणमता हूँ। आहा...हा...! अरे! मुनि को तो अशुभभाव होता नहीं है न! तो यह शुभभाव भी कलुषित है। आहा...हा...!

मोक्षमार्गप्रकाशक में तो कहा है-मुनि को अशुभ (भाव) तो होता नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक! शुभ का भाव आता है, धर्म के लोभी देखकर अपनी कमजोरी से उपदेश का शुभराग आता है। आहा...हा...! उपदेश का राग आवे परन्तु (वह) दु:ख का वेदन है। ज्ञानी को इतना दु:ख है, इतना वेदन भी है। दृष्टि की अपेक्षा से बात चले, तब दूसरी बात है परन्तु वस्तु की स्थिति (यह) है। दृष्टि की अपेक्षा से तो दृष्टि का विषय द्रव्यस्वभाव है, उसमें तो शुद्धता की उत्पत्ति है ही नहीं। समकिती को अशुद्धि और आस्रव

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है ही नहीं (ऐसा कहते हैं)। वह किस अपेक्षा से? तीव्र मिथ्यात्व और तीव्र अनन्तानुबन्धी की कषाय नहीं, इस कारण आस्रव नहीं; इसलिए इतना अनन्त संसार का कारण (ऐसे) मिथ्यात्व का बन्ध नहीं है, परन्तु (कोई) ऐसा ही मान ले कि उसे जरा भी बन्ध है ही नहीं (तो वह) एकान्त है। (वस्तुस्थिति) ऐसी नहीं है।

मुमुक्षु : बन्धन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (बन्धन) है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

(ज्ञानी को) अन्दर में शुद्धस्वरूप की दृष्टि होने पर भी, और अनुभव होने पर भी, आसक्ति है। है? (परन्तु) **अभिप्राय में काला साँप लगता है।** रुचि और दृष्टि की अपेक्षा से भगवान आत्मा को अमृतस्वरूप आनन्द का, सुख का सागर है, उसके नमूने के वेदन के समक्ष... आहा...हा...! वह राग दुःखरूप और जहर लगता है। शुभ (भाव जहर लगता है), हाँ! यह कमाना, भोग (भोगना), यह पढ़ना, यह सब तो पाप का राग है। आहा...हा...! बहुत समय तो (इसमें) लग जाता है। आहा...हा...! घण्टे-दो घण्टे समय मिले, सुनने को मिले, वहाँ कुगुरु इसे लूट लेता है। शुभ में धर्म है, व्रत में धर्म है, तप में धर्म है — ऐसा कहकर, वहाँ रोक रखता है; मिथ्यात्व के बन्धन में इसे रोक रखता है। आहा...हा...! जन्म सफल जाना चाहिए, उसके बदले अफल कर डालता है। आहा...हा...! धान्य भाग्य... समझ में आया?

मुमुक्षु : धन्य भाग्य अधूरा रह गया, साहब!

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्य भाग्य (कि) यह ऐसी बात सुनी और रुचि से जमे (ऐसा कहना है)। ओ...हो...! ये बातें (अलौकिक हैं), भाई!

मुमुक्षु : धर्म का काल है, इसलिए आवे ही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...! ऐसा प्रभु का मार्ग! वीतराग निर्मलानन्द प्रभु की रुचि, दृष्टि और श्रद्धा हुई, वह भी धन्य मार्ग है। आहा...हा...! वह भी आगे बढ़कर, अनुभव करके चारित्र लेकर केवल (ज्ञान) पायेगा। आहा...हा...!

आ...हा...! सबेरे आया था न? श्रोता की पर्याय में भी अनन्त सिद्धों को स्थापित

www.vitragvani.com

करते हैं। आहा...हा...! गजब बात करते हैं! प्रभु! परन्तु आप छद्मस्थ, अभी आप केवली नहीं, तथापि आपके शब्द और वाणी को सुनने के लिए जो आवे — ऐसे जीव की पर्याय में भी आप अनन्त सिद्धों को स्थापित करते हो!! उसका अर्थ.... आहा...हा...! कि वह सिद्ध की पर्याय की ओर पहुँचकर सिद्ध (दशा) को पायेगा। आहा...! कहनेवाले तो सिद्धपद को पानेवाले हैं ही, आहा...हा...! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य! आहा...हा...! धन्य अवतार! हम अभी समयसार (की) बात करेंगे, आहा...! सबेरे तो वे डॉक्टर बैठे थे न, उन्हें सूक्ष्म पड़ता।

भावस्तुति और द्रव्यस्तुति, भाववचन और द्रव्यवचन! आहा...! मेरे ज्ञान का क्षयोपशम (रूप) जो भाव है, वह भाववचन है, उसकी धारा से मैं बात करूँगा। विकल्प और वाणी आयेगी, वह द्रव्यवचन है। आहा...! आहा...! भावस्तुति में (ऐसा कहना है कि) मेरा भगवान आत्मा! उसकी ओर का मेरा जो आराधकपना है, मेरी जो निर्विकल्प शान्ति है, उसे भावस्तुति कहते हैं; विकल्प उत्पन्न हो उसे, वाणी आवे उसे, द्रव्यस्तुति कहते हैं। आहा...हा...!

मुझे तो दूसरा कहना है। (यहाँ तो) ऐसे श्रोता ही ये हैं, ऐसा मेरा कहना है कि जिसकी पर्याय में मैं अनन्त सिद्धों को स्थापित करता हूँ। पण्डितजी! आहा...हा...! धन्य भाग्य! जिसे मैं समयसार शुद्ध आत्मा कहूँगा, ऐसे श्रोता की पर्याय में मैं अनन्त सिद्धों को स्थापित करता हूँ — ऐसा ही जीव-श्रोता लिया है। आहा...हा...! अरे...! तुम पंचम काल के मुनि हो न, प्रभु! ऐसे श्रोताओं को तुमने लक्ष्य में लिया! आहा...हा...! ऐसे (श्रोता) हैं, ऐसे श्रोता भी हैं (— ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...! जिनकी वर्तमान दशा में श्रोता को अल्पज्ञता होने पर भी, मैं अनन्त सर्वज्ञ, सिद्धों को अल्पज्ञता में स्थापित करता हूँ। आहा...हा...! श्रोता को सर्वज्ञ (पना) तो है नहीं; अभी तो सुनने के लिए पात्रता (लेकर) सुनता है।

मुमुक्षु : भावी नैगमनय से तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वर्तमान में तो वह अल्पज्ञ है। आहा...हा...! और (उसमें) भी अभी सम्यग्ज्ञान नहीं, तथापि ऐसी शैलीवाले (योग्यतावाले) जीव लिये हैं। आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

पाँचवीं गाथा में उसमें कहा न? **तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण, जदि दाएज्ज पमाणं।** राग से पृथक् और स्वभाव से एकत्व — ऐसे मेरे नाथ प्रभु की मैं बात करूँगा। तेरा प्रभु भी ऐसा ही है। **एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो** मैं मेरे (निज) वैभव से कहूँगा, आहा...हा...! मेरा वैभव आनन्द और शान्ति का धाम है — ऐसे वैभव की भूमिका में रहनेवाला मैं तुझे कहूँगा। आहा...हा...! ...अनन्त... अनन्त... अनन्त... सिद्ध, अनन्त सर्वज्ञ हैं। आहा...हा...! उसकी (श्रोता की) वर्तमान अल्पज्ञता में अनन्त सर्वज्ञों को स्थापित करते हैं। आहा...हा...! धन्य अवतार!

अनन्त सर्वज्ञ को अल्पज्ञ में स्थापित करते हैं। और यहाँ श्रोता में उसकी हाँ करनेवाले को ही लिया है। आहा...हा...! क्योंकि इस पाँचवीं गाथा में ऐसा लिया **तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण, जदि दाएज्ज** (अर्थात्) यदि दिखाऊँ, आहा...हा...! (तो) प्रमाण करना। तीसरा पद है, **जदि दाएज्ज** - **जदि** दिखाऊँ तो प्रमाण करना, अर्थात्? आहा...हा...! (परन्तु) प्रभु! बहुत दुष्कर चीज है न? (तो गुरु कहते हैं) रहने दे, रहने दे, प्रभु! आहा...हा...! अनुभव करके प्रमाण करना! ऐसा कहा। यों ही हाँ करना — ऐसा नहीं। आहा...हा...! **जदि दाएज्जं पमाणं** प्रमाण करना। **चुक्केज्ज छलं न घेत्तव्वं** भाषा में, धातु में, व्याकरण में कोई अन्तर पड़े (और) तुझे (उसका) ज्ञान होवे (तथा) लक्ष्य में आवे तो उस पर लक्ष्य मत रखना, हमारा हेतु अन्तर आनन्द का नाथ है, उसे अनुभव कराने का है। आहा...हा...! ऐसे तो पंचम काल के श्रोता-जीव लिये हैं। (आचार्य महाराज) स्वयं पंचम काल के हैं! आहा...हा...! भगवान को पूछा नहीं कि प्रभु! मैं वहाँ उपदेश दूँगा, वे श्रोता ऐसे होंगे? आहा...हा...!

अपना जो भाव — आल्हाद है तथा सुननेवाले इस आल्हाद से भरपूर भगवान है, उसकी अल्पज्ञता में अनन्त सिद्ध,... एक सिद्ध सर्वज्ञ, एक सिद्ध सर्वज्ञ ऐसे अनन्त सिद्ध-सर्वज्ञ, अल्पज्ञता की दशा में सर्वज्ञ को स्थापित करता हूँ, आहा...हा...! (अब) उस जीव की अल्पज्ञ (पर्याय) पर दृष्टि नहीं रहेगी — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! सर्वज्ञ प्रभु वस्तु है, वहाँ उसका लक्ष्य जुड़ जाएगा और हमें कहना (भी) यह है। आहा...हा...!

सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु की पर्याय में अनन्त सर्वज्ञों को स्थापित किया! एक सर्वज्ञ नहीं,

www.vitragvani.com

अनन्त (सर्वज्ञ को स्थापित किया)। आहा...हा...! यह क्या कहते हैं? इतने अस्तित्व के अनुभव के जोर में श्रोताओं को भी ऐसा उठाया है!! अल्पज्ञ में से उठ जा, प्रभु! आहा...हा...! यहाँ तो राग से उठ जा (— ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...! ऐसी बात! गजब बात है! बापू! अमृत का प्रवाह बहाया है! आ...हा...हा...! तुम्हें भाषा भले ऐसी लगे परन्तु भाव (कोई ऐसी चीज है।) आहा...हा...!

(प्रवचनसार) ८०वीं गाथा में ऐसा कहा — **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्त-पज्जयत्तेहि** वह अपने आत्मा को जानता है और मोह का नाश होता है। यहाँ तो अनन्त सिद्ध को पर्याय में स्थापित किया है।

मुमुक्षु : मोह का नाश होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...! एक अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननेवाले को पर्याय में सर्वज्ञ आये, **सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं** उसका मोहनाश होगा। एक सर्वज्ञ की पर्याय को जाननेवाला भी स्व को जानकर (मोह का नाश करेगा) आहा...हा...! तो प्रभु! जिसकी पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित कर उसे उसका विश्वास कराया... आहा...हा...! कोल-करार (कराया), वह स्व तरफ जाएगा ही, जाकर पूर्णता की प्राप्ति करेगा ही — ऐसा श्रोता को लिया है। आहा...हा...! गजब शैली है। समयसार की शैली... आहा...हा...! केवली परमात्मा जिनेश्वरदेव का हृदय खोल डाला है। आहा...हा...!

इसे (अज्ञानी को) बाहर का माहात्म्य छूटता नहीं। ज्ञान का विशेष उघाड़ होवे, उसे यहाँ नहीं लिया है। हम सर्वज्ञ को और अनन्त सिद्ध को स्थापित करते हैं। आहा...हा...! अब तेरा थोड़ा, ग्यारह अंग का ज्ञान उघड़ा हो, उसकी तो बात क्या करना! (ऐसा कहते हैं), आहा...हा...! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... सर्वज्ञ... सर्वसिद्ध है न? **वंदित्तु सव्व सिद्धे** (है) न? सर्व सिद्ध को? पच्चीस-पचास वर्ष, दो हजार वर्ष पहले आपने सर्व सिद्ध को कहा और अभी भी वापस वह का वह? तो सिद्ध तो बहुत हुए (तो कहते हैं) भले ही (बहुत) हुए! (तो भी) सब अनन्त सर्वज्ञ है, उन्हें हम पर्याय में स्थापित करते हैं। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

सर्वज्ञपने की अनुभव में प्रतीति आयी है, उसका जोर, ऐसा जोर है कि.... आहा...हा...! अल्प काल में वह सर्वज्ञ होगा, होगा और होगा ही। यह कहनेवाले तो (सर्वज्ञ) होंगे परन्तु (यहाँ) कहते हैं, हमने श्रोता (भी) ऐसे लिए हैं!! आहा...हा...! आहा...हा...! धन्य भाग्य! एक बार सब भूल जा। आहा...हा...! अनन्त सर्वज्ञ का प्रस्तावना में प्रस्ताना रखा, प्रस्ताना रखते हैं न (उसी प्रकार यहाँ) प्रस्ताना रखा, बापू! अभी पंचम काल — क्वार है। आहा...हा...! केवलज्ञान होने को अभी क्वार है। परन्तु हम प्रस्ताना रखते हैं। आहा...हा...! और अनन्त सर्वज्ञों को पर्याय में श्रद्धा में, तुझे कहते हैं (स्थापित करते हैं)। आहा...हा...! लोगों को कठिन काम ऐसा लगता है! वस्तुस्थिति ऐसी है, यह कहाँ कोई कृत्रिम है? कोई पंथ वाड़ा? यह तो वस्तुस्वरूप ही (ऐसा है)। आहा...हा...!

यहाँ अपने यह (चलता) है। **अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी....** आहा...! भले उसे अभी राग आदि हो! वह राग में खड़ा (होने) पर भी, ऐसी भाषा है। खड़ा अर्थात् (परिणमन में) आसक्ति की स्थिति है। अभिप्राय में से छूट गया है परन्तु अस्थिरता में से अभी छूटा नहीं है; इसलिए अस्थिरता में खड़े होते हैं। है? आहा...हा...!

विभाव के बीच खड़े होने पर भी.... विकल्प आवे शुभ(भाव) आवे, आहा...हा...! **विभाव से पृथक् हैं....** विभाव के बीच में रहने पर भी **विभाव से पृथक् हैं....** आहा...हा...! **न्यारे हैं।** धर्मी, स्वरूप की दृष्टि के जोर से राग को जहररूप जानते (होने) पर भी, (राग) आता है। (विभाव के बीच) खड़े हैं, तथापि वे न्यारे हैं। आहा...हा...! माता किसी समय नग्न दिख जाये, उसे ख्याल न हो, (माता) नहा रही हो और पुत्र की नजर पड़ जाये... आहा...हा...! परन्तु वहाँ वह नजर पड़ी ही नहीं, (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! माता! जिसके गर्भ में सवा नौ महीने रहा हूँ, वह माता... आहा...हा...! चारपाई की आड़ में नहाती हो और उसमें खड़ी होकर अत्यन्त नग्नदशा हुई हो और युवा लड़का आया (वह देखे तो भी) आहा...हा...! वह नजर पड़ी ही नहीं। आ...हा...हा...! इसी प्रकार धर्मी को शुभराग आया परन्तु वहाँ नजर नहीं, आहा...हा...! चेतनजी! ऐसा है।

ऐसा मार्ग प्रभु! आहा...हा...! मानो सिद्ध में बैठे हों — ऐसी बातें करते हैं! आहा...हा...! यह उन्नीस बोल (पूर्ण हुआ) हुआ।

मुझे कुछ नहीं चाहिए, किसी परपदार्थ की लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिए — ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो उसे मार्ग मिलता ही है। अन्तर में चैतन्यऋद्धि है तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता। ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए। — ऐसी अन्तर में जाने की तीव्र उत्सुकता जागे तो आत्मा प्रगट हो, प्राप्त हो॥ २०॥

२०। **मुझे कुछ नहीं चाहिए,....** आहा...हा...! जिसे अपना अस्तित्व ही चाहिए है। आहा...हा...! शुद्ध चैतन्यस्वरूप अस्तिवाली चीज! आहा...! अस्ति! हितरूप! अस्तिवाली हितरूप.... आहा...हा...! ऐसा वस्तु का स्वभाव, जिसे जिज्ञासा में वह चाहिए है, उसे (ऐसा भाव होता है कि) **मुझे कुछ नहीं चाहिए,....** मेरे प्रभु के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए (— ऐसा) उसकी दृष्टि में जोर आ जाता है।

मेरा अस्तित्व जो पूर्ण वस्तु, वही चाहिए है। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहा...हा...! दुनिया की प्रशंसा, दुनिया में गुणगान या शुभराग, वह कुछ मुझे नहीं चाहिए। आहा...हा...! मेरा प्रभु पूर्णानन्द से भरपूर है, इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहा...हा...!

किसी परपदार्थ की लालसा नहीं है,.... विकल्प से लेकर किसी भी पर (पदार्थ में) लालसा नहीं है। यह होवे तो ठीक — ऐसा उसे नहीं है। आहा...हा...! **किसी परपदार्थ की....** पर में तो शुभभाव भी आ गया। आहा...हा...! अरे...! देव, गुरु और शास्त्र की भी जिसे लालसा नहीं है! आहा...! बापू...! मार्ग...! इसकी दृष्टि का विषय और विषय का कैसा स्वरूप है? आहा...हा...!

कहते हैं, प्रभुता...! आहा...! 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी....' पहले दलपतराय का (यह पद) पाठशाला में आता था, ७५ वर्ष पहले! दलपतराय कवि 'क.द.डा'! 'प्रभुता

www.vitragvani.com

प्रभु तारी तो खरी मुजरो, मुज रोग ले हरि'।'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी....' आहा...हा...! रोमांचित हो जाये! प्रभुता परमात्मस्वरूप की (अर्थात्) स्वयं की।'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी, मुजरो....''मेरा मुजरो — मेरी विनती, मुजरो''मुझ रोग ले हरि' यह तो कवि हैं न! अज्ञान और राग-द्वेष को (हरे) ऐसा मैं हरि हूँ।'हरि' (शब्द) पंचाध्यायी में आता है। हरि किसे कहते हैं ? कि राग-द्वेष को हरे, वह हरि। प्रभु स्वयं हरि है। आहा...हा...! राग, द्वेष और मिथ्यात्व को हरे, उसे हरि कहते हैं — ऐसा प्रभु स्वयं आत्मा है। आहा...हा...!

परपदार्थ की लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिए.... मुझे तो प्रभु आत्मा ही चाहिए। आहा...! और प्रभु यही बताते हैं। आहा...हा...! **ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो....** आहा...हा...! ऐसी जिसे तीव्र-उग्र तमन्ना-तन्मयता हो, आहा...हा...! **उसे मार्ग मिलता ही है।** उसे तो मार्ग मिलता ही है। आहा...! जिसकी तीव्र (तमन्ना) अर्थात् उग्र एकाग्रता होने की जिसकी भावना है, आहा...हा...! **उसे मार्ग मिलता ही है।** आहा...हा...!

अन्तर में चैतन्यऋद्धि है, तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता। उसकी — भगवान की सम्पत्ति! पर्याय में द्रव्य की सम्पत्ति अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त श्रद्धा, अनन्त शान्ति (— ऐसे) अपार गुणों का सागर प्रभु! अपार शक्ति और गुण का सागर प्रभु! आहा...! उसकी निजऋद्धि **तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता।** आहा...! देखा ? उससे क्या ? यह (विकल्प भी) निकाल दिया है।'मैं अबद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ' यह विकल्प आया है, उससे क्या ? वहाँ रुका उससे क्या ? (समयसार) १४२ गाथा में आता है, **तत्किमं** ऐसा (संस्कृत में) आता है।

आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं कि ऐसी अनन्त ऋद्धि का ख्याल आवे,... ज्ञान में यह वस्तु है और वस्तु है, वह अपरिमित शक्तियों का भण्डार है — ऐसी उसकी ऋद्धि और सम्पत्ति के विकल्प में भी नहीं रुकता (ऐसा) कहते हैं। अन्यत्र तो (विकल्प) रोकना नहीं परन्तु अब यहाँ विकल्प रोकना नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है, बापू! समझ में आया ?

अन्तर में चैतन्यऋद्धि है, तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता। ऐसा निस्पृह हो जाता है.... ऐसी लालसारहित निस्पृह (हो जाता है)। पूर्णानन्द का नाथ एक

www.vitragvani.com

ही चाहिए है। आहा...हा...! उसकी इतनी सम्पत्ति! (उसकी) महिमा आये, उसके विकल्प में भी रुकना नहीं। आहा...हा...!

ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए। मुझे मेरा अस्तित्व जितना, जैसा है; प्रभु का — द्रव्य का अस्तित्व जैसा है... आहा...हा...! वही चाहिए। मेरी अस्ति-त्रिकाली अस्ति-अनन्त... अनन्त... वस्तु जो स्वयं अस्तित्ववाली त्रिकाल है — ऐसी इसकी सम्पत्तियाँ — अनन्त गुण भी अनादि अस्तित्ववाली चीज है। उसमें खण्ड और टूटन जरा भी नहीं आयी। आहा...हा...! ऐसा जो मेरा प्रभु द्रव्यस्वभाव है, उसकी ऋद्धि लक्ष्य में आने पर अपरिमित वस्तु का ख्याल आने पर भी, उसके विकल्प में रुकता नहीं है। आहा...हा...! अन्यत्र तो रुकता नहीं (परन्तु गुण-ऋद्धि के विकल्प में भी नहीं रुकता है।) आहा...हा...!

समयसार, (बहिनश्री के वचनामृत) उसमें यह सब गुजराती वाणी आयी! लोग निहाल (हो जाये)! भाग्य जगत का! सादी गुजराती भाषा में जो कुछ पढ़े, और बोले, वह इसके गुणगान ही करता है। सादी गुजराती! आहा...हा...! आ गयी, भाई चेतन! पुस्तक आ गयी? भेंट आ गयी? भेंट नहीं आयी? आ गयी? आत्मधर्म (मासिक पत्रिका) वालों को सबको भेंट है, हिन्दीवालों को कम है। आहा...हा...!

मुझे तो मेरा अस्तित्व अर्थात्! अस्तित्व की चीज जो है-आदि नहीं-शुरुआत नहीं, किसी से हुई नहीं — ऐसा जो अस्तित्ववाला तत्त्व-अस्तित्व (वही चाहिए)। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, स्वच्छता आदि अस्तित्ववाला तत्त्व ही चाहिए। बस! आहा...हा...! पर्याय की अवस्था भी एक समय की है। वह पूर्ण अस्तित्व नहीं, अस्तित्व वहाँ नहीं, पूर्ण अस्तित्व यह है। आ...हा...!

अपना अस्तित्व ही चाहिए।.... अस्तित्व ही.... चाहिए। आ...हा...! मेरा अस्तित्ववाला तत्त्व- 'है'... 'है...' ऐसा तत्त्व। आहा...हा...! वही चाहिए। आहा...हा...! दृष्टि में और जिज्ञासा में तो अस्तित्ववाला जो पूर्ण तत्त्व **वही** (चाहिए)। उसकी सम्पत्ति की महिमा के राग में भी न रुककर... आहा...हा...! उसकी पूर्ण चीज जो है... आहा...हा...! वही चाहिए।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ऐसी अन्तर में जाने की तीव्र उत्सुकता जागे.... आहा...हा...! ऐसी अन्तर में जाने के लिए, ध्रुव तल में जाने के लिए (तीव्र उत्सुकता जागे)। आहा...हा...! अरे...! ऐसा उपदेश अब! इसमें कथा-वार्ता नहीं होती, बापू! प्रभु! तेरा मार्ग यह है, भाई! पण्डितजी! आहा...हा...!

आहा...हा...! **ऐसी अन्तर में जाने की....** अन्दर जाने की (अर्थात्) ध्रुव में जाने की। अस्तित्ववाली जो स्थायी चीज है, उसे पहुँचने की। आहा...हा...! **तीव्र उत्सुकता जागे....** उत्सुकता, तन्मय — ऐसा, तन्मय! **तो आत्मा प्रगट हो,....** आत्मा प्रभु, पर्याय में प्रगट हो, ज्ञात हो जाये। **प्राप्त हो,** ही। आहा...हा...! आहा...हा...! ऐसी शर्त है।

अब तो सबके हाथ में (यह पुस्तक) आ गयी है। पहले तो नहीं थी, तब यह इसका कैसा अर्थ होता है (यह पता नहीं पड़ता)। (अपने आप) पढ़ने से बहुत विस्तार न आया हो तो इसमें यह क्या आता है (वह समझ सकते हैं)। आहा...हा...! यह बीस बोल (पूरा) हुआ।

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना — ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को — चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है — ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है॥ २१॥

२१। **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना....** आहा...हा...! भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु! ऐसा **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित....** शुद्ध पूर्ण स्वरूप में से परिणमित दशा हुई, आहा...हा...! **अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना....** (यह) अस्ति-नास्ति की। चैतन्य को चैतन्य में से हुई — परिणमित हुई, पर्याय में चैतन्य की (परिणमित) परिणति। आहा...हा...! अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं हुई भावना।

ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। आहा...हा...! उसकी

www.vitragvani.com

श्रद्धा में है कि बीज बोया है तो इसमें से वृक्ष होगा, फल होगा — यह इसे पक्का विश्वास है। इसी प्रकार इस भगवान आत्मा को प्राप्त करने के लिए उत्सुकता हो, वह यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। आहा...हा...! **यदि नहीं फले तो जगत को — चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े....** अर्थात् क्या? कि जो पूर्ण वस्तु है, उसकी भावना हुई और (वह) प्राप्त न हो तो चौदह ब्रह्माण्ड का अभाव हो जाये। आहा...हा...! मैं ऐसा तत्त्व हूँ — ऐसी अन्दर (तीव्र) उत्सुकता की भावना हुई (और) वह भावना होने पर (वस्तु) प्राप्त न हो (तो) चौदह ब्रह्माण्ड का अभाव होने का प्रसंग आयेगा। प्राप्त होती ही है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

आज रविवार का दिन है। भावनगरवाले आये हैं। आहा...हा...! **(चौदह ब्रह्माण्ड को) शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए।** अर्थात् द्रव्य की उत्पत्ति होती ही है (अर्थात्) (उसकी) भावना में से भाव आता ही है। भावना होवे और प्राप्ति न हो तो द्रव्य का नाश हो जाये। (निर्मल पर्याय की) उत्पत्ति होती है, नहीं होती, ऐसा नहीं है — ऐसा कहना है। न हो तो द्रव्य का नाश हो जाये। जिसकी भावना है, वह प्राप्त न हो तो वह द्रव्य / वस्तु है, उसकी अस्ति की नास्ति हो जाये। आहा...हा...! अन्दर जोर है! ऐसा है।

फिर (लोग) बातें करते हैं कि पहले से तुम यह देव-शास्त्र-गुरु को वन्दना, यह शुभभाव है (और) हेय है (— ऐसा कहते हैं) लड़को को ऐसा सिखाते हो तो (ये लोग) भक्ति नहीं करेंगे। अरे... प्रभु! सुन न, बापू! भाई! तुझे ऊँची चीज चाहिए या नीची (चीज) चाहिए? इसे पहले से (ऐसे) संस्कार डाल कि भगवान पूर्णानन्द का नाथ की भावना कर, भाई! यह (शुभभाव का) विकल्प आवे परन्तु वह कोई विशिष्ट (वस्तु नहीं है) वस्तु अस्ति है, उसमें वह नहीं, शुभभाव के लक्ष्य में वह अस्ति नहीं आती। आहा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ जो अस्तित्व है, उस भगवान के लक्ष्य से (या) देवदर्शन के लक्ष्य से (स्वयं का) पूर्ण अस्तित्व तुझे जमता नहीं — ऐसी बातें हैं। जरा मध्यस्थ होकर सुने तो यह झगड़ा मिट जाये। (लोग) विरोध करते हैं न? बापू! भाई! आहा...हा...! बापू! तेरा स्वरूप ऐसा ही है, उसकी भावना के जोर में यदि

www.vitragvani.com

वस्तु न मिले तो चौदह ब्रह्माण्ड नहीं रहें, द्रव्य नहीं रहे। आहा...हा...! (वस्तु प्राप्त) होती ही है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

पमाणं ऐसा कहा न? **जदि दाएज्ज पमाणं** — दिगम्बर सन्तों की वाणी... आहा...हा...! आहा...हा...! यह मुनि... बापू! मुनि किसे कहते हैं! अलौकिक बात है! वे चाहे जो बात नहीं करते। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं इस आत्मा की भावना, यदि चैतन्य में से राग-द्वेषरहित की भावना आवे तो उस भावना में भाव हुए बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...! कारण दे और कार्य न हो, ऐसा होता ही नहीं। आहा...हा...! **परन्तु ऐसा होता ही नहीं।** है न?

चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है.... अर्थात्? जिसे चैतन्य की भावना हुई, उसे चैतन्य हाथ आवे ही — इस प्रकार कुदरत का स्वभाव है। **बँधी हुई है....** (इसका अर्थ यह है) आहा...हा...! **ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है।** आहा...हा...! पूर्णानन्द के अस्तित्व की भावना होने पर वह अस्तित्व प्राप्त न हो, ऐसा कभी नहीं होता — ऐसा अनन्त तीर्थंकर कहते हैं।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता — प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

गुरुदेव को मानों तीर्थङ्कर जैसा उदय वर्तता है। वाणी का प्रभाव ऐसा है कि हजारों जीव समझ जाते हैं। तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग है। वाणी जोरदार है। चाहे जितनी बार सुनने पर भी अरुचि नहीं आती। स्वयं इतनी सरसता से बोलते हैं कि जिससे सुननेवाले का रस भी जमा रहता है, रस भरपूर वाणी है॥ २२॥

जेठ शुक्ल ६, सोमवार, दिनाङ्क १२-०६-१९७८
प्रवचन-७ वचनामृत- २२-२६

वचनामृत, पृष्ठ ८, बोल २२.... २२ में (हमारे लिए) बहिन के वचन हैं, उनके विनय के, नम्रता के (वचन हैं), इसलिए वे सब पढ़ लेना। यह तो बहिन के नम्रता के, विनय के वचन हैं। बहिन ने एक जगह तो यहाँ तक लिखा है कि हम **आत्मा** बोलना सीखें हों तो वह (मुमुक्षु-गुरुदेव से सीखे हैं)। आहा...हा...! इनकी नम्रता और इनके विनय की बातें हैं। आहा...हा...! **आत्मा** बोलना, यहाँ से (गुरुदेव से) सीखे हैं। इस प्रकार यह सब विनय है।

ऊपर-ऊपर के वाँचन-विचार आदि से कुछ नहीं होता, हृदय से भावना उठे तो मार्ग सरल होता है। अन्तस्तल में से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिए॥ २३॥

२३ वाँ बोल, **ऊपर-ऊपर के वाँचन-विचार आदि से कुछ नहीं होता,....** यह क्या कहते हैं? ऐसे वाँचन करना और ऊपर-ऊपर से विचार (करे और) अन्तर की दृष्टि में द्रव्य पर जोर न आये (तो कुछ नहीं होता)। आहा...हा...! वस्तु पूरी परमात्मस्वरूप ही स्वयं है, भले शक्तिरूप है परन्तु स्वयं परमात्मा ही है (स्वरूप दृष्टि होती है तब)

www.vitragvani.com

व्यक्तरूप से पर्याय में कार्यरूप होता है। यह कारणपरमात्मा है, उसका अन्दर लक्ष्यसहित वाँचन, विचार होता है।

ऊपर-ऊपर के वाँचन-विचार आदि से कुछ नहीं होता, हृदय से भावना उठे.... (अर्थात्) अन्तर के भाव में से भावना उठे — ऐसा कहना है। अन्तर में से (भावना उठे)। आहा...हा...! आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्य है, उसकी अन्तर की रुचि से भावना उठे और वाँचन-विचार करे। आहा...हा...! **तो मार्ग सरल होता है।** सरल होता है, तो मार्ग सरल होता है। आहा...हा...!

ऊपर-ऊपर से का अर्थ यह है कि (मुमुक्षु को) वाँचन हो (परन्तु) ....मोक्षमार्ग प्रकाशक में आया है न? कि वाँचन सच्चा है, तथापि मान के लिए और पूजा के लिए जो वाँचता है, उसका ज्ञान खोटा है। आहा...हा...! उसका हेतु जगत् को प्रसन्न रखने के लिए अपनी विशेषता-बढ़ाई बतलाने को वाँचता विचारता है, वह सब (परलक्ष्यी) ज्ञान (है वह) अज्ञान है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है।

अन्तर में से भावना उठे। **हृदय से** अर्थात् अन्तर की दशा में से भावना उठे तो मार्ग सरल होता है। **अन्तस्तल में से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिए।** आहा...हा...! ज्ञायक अर्थात् वस्तु, अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान का पिण्ड! वह ध्रुव सत् त्रिकाल एकरूप सत् वस्तु है न! वस्तु है न! ऐसा ज्ञायकभाव है। आहा...हा...! उसका अन्तरस्थल में से (अर्थात्) उसका अन्तरस्थल (अर्थात्) उसका स्थान है, वहाँ से। ज्ञायक का ध्रुव स्थान है। आहा...हा...! जाननेवाला, जाननेवाला, जाननेवाला प्रभु, उसका ध्रुव स्थल है, अन्तर स्थल अर्थात् अन्दर ध्रुव स्थान है, ध्रुवधाम है। आहा...हा...! **उसमें से खूब महिमा आनी चाहिए।** तब उसे यह प्राप्ति होती है। आहा...हा...! पर्याय में ज्ञान का ग्यारह अंग का क्षयोपशम हो, नौ पूर्व की लब्धि हो तो भी उसकी महिमा उड़ जाना चाहिए। आहा...हा...! महिमा तो पूर्णानन्द का नाथ, पूर्ण वस्तु अस्ति है; उसकी अन्तर में खूब महिमा आनी चाहिए।

प्रश्न : महिमा अर्थात्?

समाधान : विशेषता, महत्ता, सर्वोत्कृष्टता। यह सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। ज्ञायक पूर्ण

www.vitragvani.com

वस्तु है, (उसे) महिमा (कहते हैं)। आपकी हिन्दी में महिमा शब्द नहीं आता? हिन्दी में आता है या नहीं? विशेष (अर्थात्) यह कोई चीज भी अलौकिक है! वस्तु जो ज्ञायक अस्तिरूप है, वह कोई अलौकिक चीज है। आहा...हा...! जिसकी सर्वोत्कृष्टता परमात्मस्वरूप ही है, स्वयं परमात्मस्वरूप ही है। आहा...हा...! ऐसे इसे अन्तर में महिमा आनी चाहिए। आहा...हा...! सूक्ष्म बात, भाई! यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन कैसे हो — उसकी बात है। आहा...हा...! यह २३ (बोल पूरा हुआ)।

आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिए, विचार-मनन करना चाहिए; यही आत्मार्थी की खुराक है॥ २४॥

२४, **आत्मार्थी को....** (अर्थात्) आत्मा जिसे प्रयोजन में है, जिसका प्रयोजन शुद्ध आत्मा को साधना है। जो कभी देखा नहीं, जाना नहीं... आहा...हा...! ऐसे आत्मार्थी को — ऐसे आत्मा के प्रयोजनवाले को... आहा...हा...! जाननेवाला जानता है, वह तो पर को जानता है परन्तु अपना अस्तित्व पूरा पर को जानने में आया नहीं। वह तो स्व और पर को जाने — ऐसा ही उसका स्वयं का अस्तित्व है। आहा...हा...! उसके अस्तित्व की अस्ति ही इतनी है। ऐसा जिसे प्रयोजन है, ऐसे **आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिए,....** विकल्प है परन्तु स्वाध्याय आती है।

विचार-मनन करना चाहिए; यही आत्मार्थी की खुराक है। व्यवहार से, लो! आहा...हा...! जैसे दो बार समय पर ठीक से खाये बिना चलता नहीं; वैसे ही टाइम सर इसका वाचन-मनन चाहिए। आहा...! यहाँ तो एक घण्टा निकालना हो तो वह निकाल नहीं सकता। यहाँ तो कहते हैं वाँचन-विचारने भोजन की तरह समय निकालना चाहिए। **यही आत्मार्थी की खुराक है।** देखा? उसका व्यापार वह उसकी खुराक (नहीं है)। बीच में यह (व्यापार का) राग आता है परन्तु वह राग पाप है। इस वस्तु (का) वाँचन-विचार-मनन (होना चाहिए)। आहा...हा...! है न? मनन करना चाहिए। कैसे है? क्या है यह? उसका अन्दर घोलन होना चाहिए। यह उसकी खुराक है। आहा...हा...!

बाहर की क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति में लोगों को रस लग गया और (यह) वस्तु रह

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

गयी। सीधा धर्म करना है तो क्या करना? (तो) कहते हैं प्रतिमा लो, बस! या साधु होओ, परन्तु अब सम्यग्दर्शन बिना प्रतिमा कैसी और साधुपना कैसा? आ...हा...! आत्मार्थी का मूल वाँचन-श्रवण तो आत्मा के लिए है, सम्यग्दर्शन के प्राप्त करने के लिए है। इसके लिए (श्रवण-वाँचन करे) नहीं और अन्य के लिए करे (उसमें हेतु बदल जाता है)। आहा...हा...! फिर पच्चीस में (वचनामृत में) यही आता है।

प्रथम भूमिका में शास्त्रश्रवण-पठन-मनन आदि सब होता है, परन्तु अन्तर में उस शुभभाव से सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिए कि यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभ भाव से रहित मार्ग भीतर है - ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिए॥ २५॥

प्रथम भूमिका में.... शुरुआत में तो शास्त्रवाँचन-श्रवण-मनन होता है।

मुमुक्षु : शास्त्र तो समस्त सम्प्रदायों में होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे शास्त्र नहीं। यहाँ तो सर्वज्ञ के शास्त्र; दिगम्बर शास्त्र, वे शास्त्र हैं। आहा...हा...! उनकी वाणी तो देखो! आहा...हा...! इस **वंदितु सव्वसिद्धे** में से कितना (निकाला है)! आहा...हा...! उसमें (यह सब) भरा है। यह तो अलौकिक वाणी है, सन्तों की बापू! आहा...हा...! इन दिगम्बर शास्त्रों के अतिरिक्त कोई शास्त्र सत्य है नहीं।

मुमुक्षु : दिगम्बर में भी बहुत शास्त्र हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें हैं, इसकी इसे खबर नहीं है। इसमें सब भरा है। आहा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ ऐसा (दिखाते हैं)। आत्मख्याति (टीका में) ३०००-३५०० अक्षर हैं। अकेली आत्मा की प्रसिद्धि के ही सब अक्षर भरे हैं। समयसार की टीका, अमृतचन्द्राचार्य ने (रची है) आहा...हा...! नियमसार में पद्मप्रभमलधारिदेव की तात्पर्यवृत्ति टीका (देखो तो) ओ...हो...! भले वे (पद्मप्रभमलधारिदेव) मुनि हैं। अमृतचन्द्राचार्य आचार्य हैं, यह तो पदवी की पर्याय की अपेक्षा से अन्तर है। वस्तुरूप

www.vitragvani.com

से उनकी दृष्टि तथा उनकी दशा में तो कुछ अन्तर नहीं है। आहा...हा...! जिसे अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन की लहर आती है, उफान आता है, आहा...हा...! अन्तर आनन्दस्वरूप में डुबकी मारने से मुनियों को तो क्षण और पल में अतीन्द्रिय आनन्द की अप्रमत्तदशा ही आती है। आहा...हा...! विकल्प आता है; तब जरा शास्त्र-वाँचन होता है।

यहाँ तो पहली भूमिका में शास्त्रवाँचन (होता है) परन्तु शास्त्र अर्थात् यह भगवान के कथित, केवली के कथित (शास्त्रों की बात है)। दिगम्बर शास्त्र, केवली द्वारा कथित हैं। **सुदकेवलिभणिदं** पहला पद आयेगा, अभी कल आयेगा न? **वोच्छामि समयपाहुडम्** आहा...हा...! आ...हा...! **वंदित्तु सव्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते। वोच्छामि समयपाहुडमिणमो, सुदकेवलीभणिदं।** (टीकाकार ने) इसमें से केवली और श्रुतकेवली, दोनों अर्थ निकाले हैं। केवली (अर्थात्) तीन लोक के नाथ ने कहा है और श्रुतकेवली ने कहा है। नियमसार में तो दोनों शब्द स्पष्ट हैं। उसमें से **सुदकेवलिभणिदं** में से निकाला आहा...हा...! इसकी टीका वह शास्त्र है। उसे लगते समस्त शास्त्र हैं - प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, समाधिशतक... आहा...हा...! तत्त्वार्थसूत्र आदि समस्त शास्त्र हैं। ओ...हो...हो...! उसका प्रथम शास्त्र (वाँचन) चाहिए। परन्तु इन शास्त्रों के बिना दूसरे शास्त्र में लेने जाएगा तो उसमें कुछ हाथ नहीं आएगा।

मुमुक्षु : ताँते जिनवर कथित....

पूज्य गुरुदेवश्री : कथित है।

मुमुक्षु : सब ऐसा ही कहते हैं, हमारे शास्त्र हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब कहते हैं, परन्तु इसे परीक्षा तो करनी चाहिए न? सब ऐसा ही कहते हैं। आहा...हा...! अरे... प्रभु! जिनवर कथित (अर्थात् क्या)? बापू! इस वाणी में भगवान की, वस्तु के स्वरूप की कितनी महिमा भरी होती है! आहा...हा...! जिनवर कथित ऐसे शास्त्रों का इसे पहले निर्णय करना पड़ेगा।

ऐसे शास्त्रों का वाँचन, उनका श्रवण (प्रथम भूमिका में होता है।) ऐसे शास्त्रों का

www.vitragvani.com

श्रवण। यह भाई में लिखा है न? मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है, नहीं? ऐसे शास्त्र पढ़ना, ऐसे शास्त्र सुनना। मोक्षमार्ग प्रकाशक में पहले अध्याय में (लिखा है)। आहा...हा...! (ऐसे शास्त्रों का) श्रवण चाहिए और श्रवण के बाद मनन चाहिए। अकेला सुने ऐसा नहीं। आहा...हा...! 'वाँचे पण नहीं करे विचार, ऐ समझे नहीं सघलो सार' — यह हमारे (पढ़ने में) दलपतराय का (लिखा हुआ पुस्तक में आता था।) ७८ वर्ष पहले (आता था)।

यहाँ कहते हैं श्रवण करके मनन चाहिए। अकेला सुनकर यहाँ का यहाँ रखा, फिर हो गया (ऐसा नहीं)। **मनन आदि सब होता है,....** ऐसे विकल्प होते हैं — ऐसा कहते हैं। **परन्तु अन्तर में उस शुभभाव से सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए।** क्या कहा? प्रथम में शास्त्रवाँचन-श्रवण-मनन होता है परन्तु वह सब शुभराग है; धर्म नहीं। आ...हा...! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहा...हा...! यह सब शुभभाव है, इतने से सन्तुष्ट नहीं हो जाना कि हमने बहुत शास्त्र पढ़े, मनन किया है, ऐसा किया है, बहुत शास्त्रों का परायण किया है; उससे क्या? वह तो एक शुभभाव है। आहा...हा...! वह कोई सम्यग्दर्शन या धर्म नहीं है। आहा...हा...! माणिकचन्दजी है? ...हंसमुखभाई और दूसरे भाई.... ऐसी बात है।

आहा...हा...! यह आत्मा अन्दर देह के रजकण से भिन्न चीज है और वास्तव में तो ऐसा है, बात जरा महँगी (कठिन) पड़े परन्तु यह आत्मा है, वह सर्वज्ञस्वरूपी है। यह वस्तु है या नहीं? तो वस्तु में ज्ञानस्वभाव है या नहीं? ऐसा स्वभाव अन्यत्र कहीं है? इस शरीर में, मिट्टी में, वाणी में कहीं है? जाननेवाला... जाननेवाला...! जिसकी भूमिका के तल में जानना भरा है, वह पर को जानता है, उस समय भी पर्याय तो अपनी ही जानता है। आहा...हा...! वह जाननेवाला जिसका स्वभाव है, जानना-प्रज्ञास्वरूप — ऐसा जिसका स्वरूप है... आहा...हा...! वह आत्मा। इस आत्मा में उसका वाँचन-श्रवण-मनन होने पर भी उतने से सन्तुष्ट नहीं हो जाना; वह तो शुभभाव है, पुण्य है। आहा...हा...! कठिन काम है, भाई! यह शुभभाव है, पुण्य है। यह तो इसमें कल आ गया है — काला सर्प है, जहर है। आहा...हा...! लोगों को कठिन बातें (लगती हैं) भाई! क्या हो?

चैतन्यवस्तु अस्ति है न? है न? है तो फिर उसमें कोई स्वभाव है या नहीं? वस्तु

www.vitragvani.com

हो, उसे कोई स्वभाव होता है या नहीं ? तो उसका स्वभाव है वह जानना, आनन्द — यह उसका स्वभाव है परन्तु मूल आनन्द प्रगट नहीं है, इससे ज्ञानस्वभाव से विशेष वर्णन किया है, क्योंकि प्रगट में ज्ञान की अवस्था-दशा है, उसमें जानता है कि यह है, यह शरीर है, यह है, यह है। शरीर है वाणी है, यह अमुक है, यह स्त्री है, पुत्र है, देश है। यह जिस भूमिका में-जिसके अस्तित्व में सत्ता में यह ज्ञात होता है, उस जाननेवाले को जान! (जो) ज्ञात होता है, उसकी दृष्टि छोड़ दे। आहा...हा...! क्योंकि जो ज्ञात होता है, उसमें तू नहीं है, उसका तू जाननेवाला है, उसमें तू है। आहा...हा...! ऐसी वस्तु!

(यहाँ) कहते हैं, आहा...हा...! **सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिए....** वाँचन-शास्त्रपठन इत्यादि में इसे ऐसा खटका रहना चाहिए। बात ऐसी है कि यह आत्मा है — ऐसा यदि इसे लक्ष्य हो तो यह वस्तु जाननेवाली है, ज्ञान का समूह है। जानने के अतिरिक्त यह चीज अन्यत्र कहीं नहीं है। यह ज्ञान का समूह है और इस जानने में किसे नहीं जाने ? कितने को नहीं जाने ? कितने काल को, कितने भाव को नहीं जाने ? यह जाननेवाला है, उसमें इसकी मर्यादा क्या ? आहा...हा...! ऐसे जानने के स्वभाव से भरपूर अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव से भरपूर भगवान अर्थात् जिसे सर्वज्ञ स्वभाव में से सर्वज्ञपना दशा में प्रगट हुआ है, उनके द्वारा कथित शास्त्र पढ़ना, उसका नाम यहाँ शास्त्रवाँचन कहना है। आहा...हा...! बहुत कठिन बातें! दुनिया से बहुत अन्तर है। आहा...हा...!

यों तो लोग दवाखाने में और (उसमें) लाखों रुपये देते हैं न ? मद्रास में गये थे न ? मद्रास में बड़ा दवाखाना है, रक्त लेने गये थे। डाक्टर! मद्रास में बड़ा दवाखाना! (एक नानालाल भट्ट) है, उन्होंने छह लाख स्वयं दिये हैं। छह लाख! उन्हें पता पड़ा कि महाराज वहाँ अस्पताल में आज जानेवाले हैं, किसी ने कहा होगा, साथ में आये थे, गाड़ी में साथ में आये थे, नरम व्यक्ति, बहुत नरम व्यक्ति! ऐसे देखो तो छह लाख (दिये हैं)। ऐसे देखो तो उनके मुख पर कोई दिखाव नहीं, साधारण मनुष्य लगें परन्तु उनने बेचारे ने साथ आकर डॉक्टर को (सब समझाया) फिर ठेठ जहाँ हमारा वास (निवास) था, क्या नाम भूल गये तुम्हारा ? (श्रोता - कान्ति) कान्ति, इनका साला, उसके यहाँ उतरे थे न ? वहाँ आये, ठेठ जाकर जहाँ उतरे थे, वहाँ आये थे, वहाँ बैठे।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ऐसे लोगों को ऐसा लग जाता है कि इतने लाख दिये। लोग भी महिमा करते हैं, इसलिए मानो धर्म हो जाये, बापू! इसमें धर्म-फर्म नहीं है, तेरे छह लाख और करोड़ (वह धूल है)। आहा...हा...! धर्म चीज पर के आश्रय से नहीं होती। वह तो पराधीनता है, भगवान अन्दर ज्ञानस्वरूपी प्रभु ज्ञान का भण्डार और ज्ञान सागर है, उसका आश्रय लेने पर उसे शान्ति और धर्म प्रगट होता है। जन्म-मरणरहित (होने का) उपाय यह है। आहा...हा...!

इसलिए (यहाँ) कहते हैं। **इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिए....** शास्त्र वाँचन, मनन के समय भी (ऐसा रहना चाहिए) कि **यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है।** शास्त्रवाँचन हो, श्रवण हो, मनन हो परन्तु इसमें यह रहना चाहिए कि इससे चीज कोई अन्दर भिन्न है। वस्तु है, अस्ति है, मौजूद चीज है और मौजूद चीज है वह स्वयं परिपूर्ण है। वस्तु हो, वह अपूर्ण और विपरीत नहीं होती। ऐसे भाव की ऐसी चीज में खटक रहनी चाहिए, शास्त्रवाँचन-मनन (के समय) भी यह खटक रहनी चाहिए। आहा...हा...!

यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। भाषा देखी? **मार्ग तो कोई अलग ही है।** यह शुभभाव नहीं है। आहा...हा...! **शुभाशुभभाव से रहित मार्ग भीतर है....** दया, दान, व्रत, भक्ति, वाँचन आदि का भाव वह शुभभाव है; हिंसा, झूठ, कमाना, यह (सब) भाव (पाप है)। दोनों भाव विकृत हैं, कृत्रिम है, संयोगी है; इसलिए इनसे भगवान प्रभु का स्वभाव भिन्न है। कायम रहनेवाला वह स्वभाव भिन्न है। आत्मा का जानना, आनन्द आदि कायम रहनेवाला स्वभाव, वह इस कृत्रिम क्षणिक शुभाशुभभाव से अत्यन्त भिन्न है। आहा...हा...! है?

(शुभाशुभभाव से) **रहित मार्ग भीतर है — ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिए।** शुभभाव के काल में भी... आ...हा...! यह खटक अन्दर (रहनी चाहिए)। आहा...हा...! अर्थात् यह शुद्ध चैतन्यवस्तु भिन्न है, इसे प्राप्त करना है — इस प्रकार ऐसी चीज के समय भी (शुभभाव के समय भी) यह खटक रहनी चाहिए, वहाँ सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

भीतर आत्मदेव विराजमान है उसकी सँभाल कर। अब अन्तर में जा, और तृप्त हो। अनन्त गुणस्वरूप आत्मा को देख, उसकी सँभाल कर। वीतरागी आनन्द से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर, उस आनन्दरूप सरोवर में केलि कर — उसमें रमण कर॥ २६ ॥

२६, **भीतर आत्मदेव विराजमान है....** आहा...हा...! जो तत्त्व है और जगत में अस्तित्व है, वह दिव्यशक्ति का भण्डार भगवान आत्मा है। दिव्यशक्ति (अर्थात्) जिसका चैतन्य चमत्कार आनन्द का स्वभाव... आहा...हा...! और ईश्वर का स्वभाव से, स्वतन्त्ररूप से खण्ड न हो, वैसे भाव से भरपूर भगवान आत्मा देव है। आहा...हा...! है ? **आत्मदेव विराजमान है....** आहा...हा...! जानना... जानना... जानना... जिसके अस्तित्व में होता है, वह जाननेवाला आत्मदेव-वस्तु भिन्न विराजमान है। पुण्य-पाप और संयोग की क्रिया से भिन्न है। आहा...हा...! **उसकी सँभाल कर। भीतर आत्मदेव विराजमान है, उसकी सँभाल कर।** आहा...हा...! **अब अन्तर में जा,....**

अथ आया था न ? आहा...हा...! सबेरे आया नहीं था **अथ** ? मंगलिक टीका में नहीं (आया) था ? **अथ** अर्थात् मंगलिक-शुरुआत-अब ऐसा। **अथ** अर्थात् अब। अब, बाधकपना छोड़कर साधक में जा! आहा...हा...! भगवान अन्दर वस्तु है या नहीं ? और है तो उसमें भरे हुए भरपूर स्वभाव है या नहीं ? और स्वभाव हो, वह भरपूर और पूर्ण होता है या अपूर्ण होता है ? आहा...हा...! इसने इसकी तुलना (और) विचार कब किया है ? आहा...हा...! भगवान आत्मदेव! अन्दर आत्मदेव विराजमान है अर्थात् देह से तो भिन्न है परन्तु इन दया, दान के पुण्य-पाप के भाव से भी आत्मदेव अन्दर (भिन्न विराजमान) है। यह राग आदि बाह्य है और इन रागादि को अपना मानना, वह (माननेवाला) बहिरात्मा है और राग आदि से भिन्न आत्मा है, उसे जैसा है, वैसा पूर्ण मानना, यह (माननेवाला) अन्तर आत्मा है और अन्तर आत्मा के साधक द्वारा पूर्ण परमात्मदशा-साध्य (दशा) प्रगट करना, वह परमात्मा है। आहा...हा...! यह तीन दशाएँ हैं।

भीतर (आत्मदेव) विराजमान है, उसकी सँभाल कर। अब अन्तर में जा,....

यह पुण्य-पाप के विकल्प तो ठीक, यह तो भिन्न हैं परन्तु वर्तमान दशा (में) यह जो पुण्य-शुभ है, यह अशुभ है - ऐसी जो ज्ञान की वर्तमान दशा प्रगट-व्यक्त जानती है, उसे अन्दर में ले जा। आ...हा...! जहाँ तल में ध्रुवपना पड़ा है, जिसके पाताल में... आहा...हा...! गहरे-गहरे अन्तरतत्त्व पूरा पड़ा है, वहाँ जा। अरे... अरे...! ऐसी बातें! वहाँ जा! आहा...हा...! वहाँ जा! **और तृप्त हो।** वहाँ जा और तृप्त हो, वहाँ तुझे आनन्द मिलेगा। आहा...हा...!

एक लड़का कल रात्रि को पूछता था न? (ऐसा आता है न?) अन्यत्र कहीं तुझे न रुचता हो तो एक आत्मा में रुचेगा (वह कहता है) हमें तो बाहर में ही रुचता है — ऐसा पूछता था। रात्रि को पूछता नहीं था? कि यह बाहर में पैसा कमाना, सबेरे भुजिया, सेव खाना और कोई महिमा करे उसमें मजा आता है; हमें बाहर में रुचता है और यह फिर कहते हैं, अन्दर में रुचे, यह आप क्या कहते हो? बेचारा लड़का-बालक था परन्तु नहीं न अभी वह? रात्रि को पूछता था। उसने पूछा था आप कहते हो कि अन्दर में रुचेगा, यह पहला वाक्य है न? तुझे कहीं न रुचे तो अन्तर में रुचि लगा। तब उसने पूछा कि परन्तु कहीं न रुचे (अर्थात्) कहाँ (न रुचे)? हमें तो सर्वत्र रुचता है। पिता मुँह से बुलावे बेटा आओ! (ऐसा कहे) तो भी रुचता है। आहा...हा...! जा, खा...खा! तो भी रुचता है, पढ़ने जा, पढ़ेगा तो तुझे लाभ होगा तो वह भी रुचता है। हमें तो सब रुचता है और आप कहते हो वहाँ नहीं रुचता इसलिए यहाँ जा। परन्तु हमें रुचता है और हम वहाँ से कैसे जायें? ठीक, प्रश्न ठीक किया था। आहा...हा...! किसका लड़का कहा?

श्रोता : धीरुभाई के लड़का।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारा?

श्रोता : धीरुभाई है न.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ...हाँ... ऐ... धीरुभाई, (के) अमृतलाल का।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृतलाल का?

श्रोता : हाँ जी।

यह बात तो उसकी सत्य थी परन्तु बात यह है कि तुझे कहाँ रुचता है, उसका पता कहाँ है?

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : बाहर में उसे रुचता है, इसका उसे पता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे रुचता है यह पता है, यह तो (इसे) पता है। ऐसे खाने-पीने का मिले, यह मिले-वह मिले, आहा...हा...! पेंट, कोट, पतलून, पहनकर पुस्तक डालकर ऐसे विद्यालय जाये, मानो हर्ष (समाये नहीं) ओ...हो...हो...! अरे...! परन्तु बापू! हर्ष वह तो दुःख है, तुझे पता नहीं है, बाहर में भटकने का विकल्प तो दुःख है परन्तु तुझे, जैसे मक्खी कफ में चिपटी है, वह पहले तो मिठास के लिए चिपटी है, फिर वहाँ चिपक जाती है, चिकना कफ निकलता है न? आहा...हा...! वह वहाँ दुःखी है।

इस लड़के को जीमने में शक्कर देते हैं न? रोटी खाता है न रोटी? घी होवे और शक्कर के दो, चार, पाँच दाने दे उन्हें खाते समय मुँह का पानी, थूक उसे — मिश्री को छूता है न? शक्कर लीली हो जाये, मक्खी खाने आवे तो मीठा लगे, इसलिए चिपट जाये, उसके पंख चिपक जाये, पंख चिपक जायें और खानेवाला लड़का शक्कर को ले, उसमें दबाव में उसका पंख भी साथ में आ जाये, परन्तु मिठास के कारण उठे नहीं, वहाँ रुचता है, परन्तु तो क्या रुचता है? मक्खी को वहाँ रुचता है, उड़ना रुचता नहीं परन्तु वह तो जहर का प्याला रुचता है। आहा...हा...! सूकर विष्टा खाता है, उसे वह रुचती है, लो!

वहाँ झमकलाल के कुरावड़ में बहुत सूकर थे। हम जहाँ उतरे (थे), वहाँ पीछे बहुत बड़े-बड़े सूकर बैठते थे, पानी भरा हुआ था, नल टूट गया था तो पानी निकला था कीचड़ में (सूकर बैठे) कीचड़ पीवे और कीचड़ में पड़े रहें, आहा...हा...! और विष्टा खाये। सूकर... सूकर... विष्टा खाकर प्रसन्नता मानते हैं तो वह भी उन्हें रुचती है। आहा...हा...! पागलपने का भान कहाँ है कि मुझे कहाँ रुचता है? और कहाँ रुचे तो ठीक लगे — ऐसा पता भी कहाँ है? आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **अन्तर में जा, और तृप्त हो।** वहाँ तृप्ति होगी। वस्तु भगवान आत्मा, पूर्णानन्द प्रभु अस्तिरूप है, अनादि-अनन्त ऐसी चीज है, सनातन सत्य वस्तु प्रभु है। सनातन परम परमात्म सत्यस्वरूप है, वहाँ तू जा; तृप्त होगा, तुझे शान्ति मिलेगी, भाई! और तुझे भव का अभाव होगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बातें तो हैं।

अभी तो सब बाहर की प्रवृत्ति में ही सबने धर्म मनवा दिया है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

अन्तर चैतन्यस्वरूपी प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ अस्तिरूप है, वह कौन है ? कैसा है ? कितनी शक्तिवाला है ? यह कहाँ इसने देखा और निर्णय किया है। आहा...हा...! बाहर की दृष्टि में भ्रम कर (माना है कि) हमें यहाँ रुचता है और (यहाँ) रुचता है! इस धूल में रुचता है। आहा...हा...!

अग्नि में उंदर होता है सुना है ? अग्नि है न ? उसमें अग्नि का उंदर होता है। कुम्हार के आव में (ऐसा उंदर होता है)। एक बार हम 'बस' (गाँव में) गये थे (वहाँ) कुम्हार ने कहा महाराज! हमारे आव में उंदर था। अग्नि योनि का उंदर होता है, वह उंदर बाहर निकले तो मर जाये। पण्डितजी! यहाँ तो सब देखने को मिला और शास्त्र में है। अग्नि योनि का उंदर है, उसकी उत्पत्ति का स्थान अग्नि है, वह उंदर अग्निमय होता है, अग्नि में से हुआ अग्निमय उंदर होता है, वह बाहर निकल नहीं सकता, वह आव में ही (रहता है)। कुम्हार का आव होता है न ? ईंटों का, नलिया का बड़ा, (आव होता है) उसमें ही वह रहता है। (अग्नि) समाप्त हो जाये तो मर जाता है। आहा...हा...! ऐसे ही अज्ञानी को बाहर के राग और द्वेष रुचे हैं, वह अग्नि का उंदर है। आहा...हा...!

यह तो एक बार कहा था, हाँ! पण्डितजी! बोटाद के पास 'खस' है। बोटाद के पास 'खस' है। एक (भाई ने) हमसे दीक्षा ली थी, न जीवनलालजी थे। गाँव में गये तो सुनने को सब लोग आवे, और न आवे तो उसे ऐसा पता पड़े कि महाराज गाँव में हैं। फिर बातें चलती कि भाई! हमारे आव में भी उंदर होता है। कुम्हार का आव समझे न ? नलिया के, ईंटों के बड़े (आव होता है), उसमें उंदर होता है। उंदर घूमता होते हैं, वह अग्नि की योनि का होता है, वह पानी में आवे तो मर जाये। पानी की मछलियाँ अग्नि में आवे तो मर जायें। भगवान ऐसा कहते हैं कि अग्नि का उंदर होता है। शास्त्र में पाठ है, आहा...हा...! वह भी (अग्नि में) मजा मानता है। इसलिए मजा है ? आहा...हा...! वैसे ही अज्ञानी अनादि से अपनी जाति को भूल कर पर में मजा मानता है, वह तो दुःख है। आहा...हा...!

भाई! तू अन्दर बड़ा प्रभु है! सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। तेरी पूर्णता की महिमा सर्वज्ञ की वाणी में भी पूरी न आवे — ऐसा तेरा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वानन्द, सर्व शान्ति, सर्व प्रभुता

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

— ऐसे सर्व गुणों से परिपूर्ण (गुणस्वरूप) प्रभु है! भाई! आहा...हा...! परन्तु इसे विश्वास में आना बहुत कठिन (पड़ता है) क्योंकि इसके क्रीड़ा वर्तमान दशा के व्यक्त उघाड़ ज्ञान की पर्याय है न? इतने में ही इसकी क्रीड़ा है परन्तु यह अंश किसका है? अंश बदलता है परन्तु किसके आधार से बदलता है? अंश बदलता है, विचार बदलता है न? बदलता है परन्तु किसके आधार से? अद्धर से बदलता है? उसे त्रिकाल का आधार है। आहा...हा...! आहा...हा...! पण्डितजी! नित्य ध्रुव तत्त्व के आधार से वह बदलता है। पानी की तरंगें उठती हैं, वे पानी के दल में से उठती हैं — ऐसा व्यवहार से (कहा जाता है) परन्तु तरंग तो तरंग से उठती है। समझ में आया? आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात!

आत्मा पर्याय का भी कर्ता नहीं — बात को यहाँ (तक) ले जाना (कठिन पड़ता है)। आहा...हा...! ऐसी चीज ही है न, प्रभु! तू तो इतना है और तुझे पता नहीं, तेरी महत्ता की महिमा का तुझे पता नहीं। आहा...हा...! क्योंकि पर्याय-एक अंश (रूप) जो दशा, एक गुण की एक अवस्था की दशा के प्रेम में पूरा भगवान अन्दर है, उसे तू भूल जाता है। आहा...हा...!

करोड़पति मनुष्य हो और उसका एक ही लड़का हो तथा कोई नीच जाति के साथ व्यभिचार में चढ़ गया हो, उसका पिता कहता है, भाई! घर में खानदान की कन्या-लड़की है, जिसकी नजरें-आँखें बाहर जाये नहीं, ऐसी घर में तेरे साथ विवाहित कन्या है — ऐसे भरे बर्तन छोड़कर बेटा! तू यह जूठन चाटने कहाँ जाता है? ऐंठा समझे? जूठन! जूठन होती है न? जीम लेने के बाद (बढ़े) उसे ऐंठू — जूठन कहते हैं। आहा...हा...! भाई! और घर में से तू (पैसा आदि) ले जाता है यह पता है। वह व्यभिचारी को देने के लिए पेटी में से तू (ले जाता है परन्तु) बापू! यह घर अब नहीं रूकेगा। आहा...हा...! लड़के! छोड़ दे। आहा...हा...!

इसी तरह यहाँ धर्मपिता सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ धर्मपिता पूर्णानन्द के नाथ कहते हैं, भाई! अपने घर को छोड़कर (तुझे) राग आदि के प्रेम में रूचता है, यह व्यभिचार में चढ़ गया है, प्रभु! और घर की शान्ति वहाँ खो जाती है। आहा...हा...! जैसे घर में नागर की खानदान की कन्या (हो), वैसे अन्दर अनादि की खानदानी चीज पड़ी है न!

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! उसके समक्ष देखता नहीं और इस व्यभिचार में चढ़ गया है। भाई ! यह घर नहीं रुकेगा। आहा...हा... !

आहा...हा... ! यह देखो न संसार की बात, बात तो होती है न भाई ! प्रेमचन्दभाई के लड़के का लड़का, एक महीने का... उनका लड़का विवाह हुआ था एक महीने का विवाहित अभी सबेरे सुना न एक महीने का ? विवाहित स्त्री मर गयी, एक महीने का विवाहित वैशाख शुक्ल अष्टमी... प्रेमचन्दभाई.... और गहने, वस्त्र अच्छे पहने हों, उसमें... क्या कहलाता है तुम्हारा ? प्रायमर ! प्रायमर ! सुलगता होगा और लगा उन कपड़ों को (और) मर गयी। आहा...हा... ! यह गत रात्रि को (हुआ) यह दशा तो देखो ! आहा...हा... ! एक महीने का विवाह और कितना उत्साह होगा ! अभी क्या करना और क्या करना और.... ! आहा...हा... ! उसमें वह अच्छी साड़ी पहनी और ऐसी अग्नि लगी... लगने के बाद कुछ सुरक्षित रहता है ? आहा...हा... ! देह छूट गयी महीने के विवाह में देह छूट गयी। आहा...हा... ! सबेरे (शान्तिभाई) कहते थे। इनके साले का लड़का। आहा...हा... ! ऐसा तो अनन्त बार हुआ, बापू ! तू अनादि का है न, भाई ! अनन्त काल के प्रवाह को तू नजर से जरा देख तो सही ! तेरा काल अनन्त है या नहीं ? अनन्त काल में क्या-क्या हुआ है ? बापू ! ऐसा भी तुझे अनन्त बार हो गया है। आहा...हा... ! परन्तु तेरी चीज जो अन्दर है, जहाँ से तृप्ति मिलनी चाहिए, वहाँ तू जाता नहीं और बाहर की कोई अनुकूलता मिली, वहाँ तृप्ति... तृप्ति... (मानकर) वहाँ सन्तुष्ट हो गया है। आहा...हा... !

तृप्त हो। अनन्त गुणस्वरूप आत्मा को देख,.... भगवान आत्मा ! एक शक्तिरूप नहीं। वस्तु हो वह एक शक्तिरूप नहीं होती (उसमें) अनन्त शक्तियाँ हैं। परमाणु-पॉइन्ट है, वह भी अनन्त शक्तिवान है। वह जड़ की शक्ति है। आहा...हा... ! वह परमाणु अपने वर्ण, गन्ध, रस पलटकर कभी अरूपी होता है ? ऐसी शक्तिवाला वह तत्त्व है। वैसे ही भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुणरूप भण्डार प्रभु है, वे गुण बदलकर कभी रंग-रूप होते हैं ? परमाणु के वर्ण, गन्ध पलटकर कभी चैतन्य के ज्ञान-दर्शन होते हैं ? आहा...हा... ! जाननेवाला कभी अजानरूप होता है ? और अजाननहार तत्त्व कभी जाननरूप होता है ? आहा...हा... ! तत्त्व का Logic (न्याय) तो देखो !

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! ऐसा यहाँ भगवान अन्दर तू है, बस ! जाननेवाला। आहा...हा... ! वह अनन्त गुण का भण्डार है। है ?

अनन्त गुणस्वरूप.... अनन्त गुणस्वरूप (कहा); अनन्त गुणवाला नहीं। **अनन्त गुणस्वरूप....** वह वस्तु ही अनन्त गुणस्वरूप है। स्व रूप से है, दूसरे रूप से नहीं, तीसरे रूप से नहीं, अनन्त रूप से नहीं — ऐसे अनन्त नास्ति के तो धर्म इसमें पड़े हैं। आ...हा... ! ऐसे अनन्त पर के अभावरूप है और तुझमें भावरूपी भी अनन्त हैं। अभावरूपी भी अनन्त हैं और भावरूपी भी अनन्त हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि (भावस्वरूप हैं)। आहा...हा... ! अरे... ! ऐसी बात ! जगत् (ने) भगवान को भूलकर सब बातें की है। निज तत्त्व क्या है ? इसका पता नहीं लगता। आहा...हा... !

अनन्त गुणस्वरूप आत्मा को देख,.... प्रभु ! अन्दर जो यह आत्मा है, उसका ज्ञानस्वभाव है। स्वभाव है, उसे हद नहीं होती। उसकी दशा में, हालत में भले मर्यादित (पना) आ जाये परन्तु उसके स्वभाव में हद नहीं आती; बेहद जिसका ज्ञान, बेहद जिसका आनन्द, अनन्त जिसका ईश्वररूप... आहा...हा... ! अनन्त... अनन्त... जिसकी शान्ति, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसकी शान्ति, जिसकी शान्ति का माप करने पर माप हो नहीं सकता — ऐसी शान्ति भरी हुई है।

शुभ-अशुभभाव तो विकार है, विकाररहित अन्दर वस्तु है, वह परम शान्त... शान्त... शान्त... (स्वरूप है)। आहा...हा... ! एक क्रोध और विकार का अंश निकाल डाले तो आंशिक शान्ति जहाँ दिखे, आहा...हा... ! वह शान्ति का स्वरूप ही इसका है। आहा...हा... ! ऐसा बेहद अनन्त गुणस्वरूप प्रभु, आहा...हा... ! उसे देख। इसे (विकार को) न देख, इसे देख ! देखनेवाले को देख, दिखे उसे न देख। आहा...हा... ! (जीव को) बहुत बदलना पड़ेगा। आहा...हा... !

आ...हा... ! **उसकी सँभाल कर।** अनन्त काल से बाहर की संभाल कर-करके तो मर गया, तथापि रहा नहीं। इस शरीर की सँभाल सवेरे-दोपहर ऐसे बराबर (रखता है) आहा...हा... ! कैसा खाना-पीना (इत्यादि ध्यान रखता है) आहा...हा... ! उसमें महीने में विवाह होगा तो सब ताजा (होगा) आहा...हा... ! अमुक ने यह लिया और यह लिया।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! अरे... ! इसमें देह छूटकर जाना, हाय... हाय... ! कहीं चौरासी के अवतार में, अनजाने क्षेत्र में, अनजाने काल में, अनजाने भाव में, आहा...हा... ! परिचितों को छोड़कर अनजाने में जाना... क्योंकि जाननेवाले को जाना नहीं था, इसलिए (अनजाने में जाना पड़ा)। आहा...हा... ! भगवान जाननेवाला प्रभु ! चैतन्यमूर्ति चमत्कारिक वस्तु को जाना नहीं; इसलिए तू अनजाने क्षेत्र, काल, भाव में जाएगा, बापू ! आहा...हा... !

इसलिए यहाँ कहते हैं, **उसकी सँभाल कर....** प्रभु ! तू कौन है ? और यह क्या है ? इसकी सँभाल कर, उसे सँभालकर रख। आहा...हा... ! तू राग को, पुण्य-पाप को सँभालकर रखता है, उसे याद करके ही परपदार्थ को ऐसा रहना चाहिए और ऐसा रखना चाहिए, ऐसे अन्य, अन्य मार्ग में चढ़ गया है। आहा...हा... ! परन्तु तेरी सँभाल करने को, प्रभु ! तू कितना, कैसा है ? आहा...हा... ! है क्या यह ? और है तो उसका रूप-स्वरूप कितना ? कैसा होगा ? जो स्वतन्त्र वस्तु है, और जो आदि तथा अन्त रहित ध्रुव चीज है, उस ध्रुव के स्वभाव की हद कितनी होगी ? आहा...हा... ! ऐसा उपदेश है। मार्ग तो ऐसा है।

उसकी सँभाल कर। वीतरागी आनन्द से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर,.... आहा...हा... ! जैसे तुझे बाहर की चीजों में प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न राग से मजा दिखता है, उसके बदले तेरा स्वरूप वीतरागी आनन्द है, प्रभु ! आहा...हा... ! वीतरागी आनन्द से भरपूर भगवान है, क्योंकि जो राग और द्वेष है, वे तो क्षणिक हैं, दुःखरूप हैं, पलटती चीज है और यह प्रभु कायमी चीज है, यह तो वीतरागी स्वरूप है। आहा...हा... ! पुण्य-पाप का, राग आदि का, शुभ-अशुभभाव कृत्रिम है, बदलता है, प्रतिक्षण नया-नया (होता) है। नहीं और होता है। यह तो है, और है उसे जानना है। आहा...हा... !

आहा...हा... ! **वीतरागी आनन्द से भरपूर....** अन्दर कैसा प्रभु है ? वस्तु हो, वह दुःखरूप नहीं हो सकती; वस्तु स्वतः हो, वह विकृत नहीं हो सकती; वस्तु स्वतः हो, वह अपूर्ण नहीं हो सकती; वस्तु स्वतः हो, वह अशुद्ध नहीं हो सकती। आहा...हा... ! वस्तु स्वतः हो, वह परिपूर्ण होती है; वस्तु स्वतः हो, वह अनन्त शक्ति से, पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु होती है। आहा...हा... ! ऐसे वीतरागी आनन्द में जा ! **वीतरागी आनन्द से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर,....** आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भाषा तो सादी परन्तु (भाव गम्भीर है)। आहा...हा...! अरे...! बाहर जायेगी तो लोग पढ़ेंगे तो सही। पढ़ें तो सही, आहा...हा...! भेंट आ गयी न, तुम्हारे या नहीं? हिन्दी आ गयी? भेंट... भेंट! नहीं आयी? देरी करते हैं, अभी छपने में देरी लगती है। आहा...हा...!

वीतरागी आनन्द से भरपूर.... यह क्या कहते हैं? वस्तु जो अस्ति है। अस्ति है, उसमें पुण्य और पाप का भाव, वह कृत्रिम नवीन... नवीन... नवीन... नवीन... नवीन... होते हैं और आते हैं। जाते और आते हैं, जाते और आते हैं, आते और जाते हैं परन्तु उनके पीछे प्रभु वस्तु है न? वह तो आने-जाने रहित है... है... और है... वहाँ आये जाये ऐसा राग है, तो यह है... है... वह वीतरागी स्वरूप है। आहा...हा...! ऐसे वीतरागी आनन्द से भरपूर (स्वभाव है), वह कैसे बैठे?

घी का एक... क्या कहलाता है बड़ा? क्या कहलाता है बड़ा भरा हुआ (होता है उसे)? अढाई मण, चार मण के भरे हुए नहीं आते? यह चमड़े के (होते हैं)। घी... घी...! घी रहे, उसे क्या कहते हैं? कुडला... कुडला...! चमड़ का बड़ा कुडला ऐसे घी से भरा हुआ होता है। आहा...हा...! गुड़ का घड़ा आवे, लो न! गुड़ का घड़ा आता है न? गुजरात में 'नवसारी' गाँव है न, वहाँ गुड़ बहुत पकता है। हमारी दुकान में भी गुड़ के सैकड़ों (घड़े) लाते थे, वहाँ से नवसारी से (आते थे), उस समय की बात है। यह तो पचहत्तर वर्ष पहले! प्रत्येक घड़ा गुड़ से पूरा भरा होता है। आहा...हा...! उसे एक जरा इस ओर से मारे तो छिद्र पड़े (और) वहाँ से गुड़ निकले। भरा हुआ है न वह? वह तो परमाणु के — जड़ के स्वाद से भरा हुआ है (और) यह तो चैतन्य के आनन्द से भरपूर भगवान है। आहा...हा...! घड़े को ऊपर से गुड़ नहीं देते, बीच में से जरा से छिद्र करके वहाँ से देते हैं। आहा...हा...! उसी प्रकार यह प्रभु पूरा आनन्द से भरपूर है। इसे वर्तमान प्रगट पर्याय जो तिरछी वर्तमान है, उसे अन्दर ले जा। आहा...हा...! वह भरपूर आनन्द से भरा हुआ प्रभु है, आहा...हा...! वहाँ क्रीड़ा कर। आहा...हा...! है?

क्रीड़ा कर,.... इस बाहर बाग में और अमुक और अमुक क्रीड़ा करने जाते हैं न? आहा...हा...! (उसके बदले) इस आतमबाग में जा, प्रभु! वहाँ तुझे आनन्द खिलेगा!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : यह घूमने फिरने कश्मीर में और सर्वत्र जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सर्वत्र जाते हैं भटकने। यहाँ आनन्द का नाथ अन्दर है, बापू! वहाँ नजर कर। क्रीड़ा करने का स्थान तो वह है। आहा...हा...!

उस आनन्दरूप सरोवर में केलि कर.... आनन्दरूपी सरोवर भरा है, बापू! यह राग और द्वेष तो कृत्रिम नये-नये होते हैं और वह तो प्राचीन तत्त्व... प्राचीन तत्त्व अनादि का है। आहा...हा...! ऐसे ज्ञानरूपी सरोवर में केलि कर अर्थात् **उसमें रमण कर।** तो तुझे आनन्द आएगा और तेरा जन्म-मरण मिट जाएगा। दुःख मिटेगा और आनन्द होगा — ऐसा यह भगवान आनन्द से भरपूर सरोवर है। उसमें अन्तर में जा तो आनन्द आएगा।

(विशेष कहेंगे)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ऐसे काल में परम पूज्य गुरुदेवश्री ने आत्मा प्राप्त किया इसलिए परम पूज्य गुरुदेव एक 'अचम्भा' हैं। इस काल दुष्कर में दुष्कर प्राप्त किया; स्वयं अन्तर से मार्ग प्राप्त किया और दूसरों को मार्ग बतलाया। उनकी महिमा आज तो गायी जा रही है परन्तु हजारों वर्ष तक भी गायी जाएगी॥ २७॥

भविष्य का चित्रण कैसा करना है वह तेरे हाथ की बात है। इसलिए कहा है कि — 'बन्ध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिन्त!'॥ २८॥

जेठ शुक्ल ७, मंगलवार, दिनाङ्क १३-०६-१९७८
प्रवचन-८ वचनामृत- २७-३०

वचनामृत, २७ वाँ तो इनके भक्ति के वचन हैं। पृष्ठ ९, २८ वाँ बोल (लेते हैं)।

भविष्य का चित्रण कैसा करना है, वह तेरे हाथ की बात है। अर्थात्? भविष्य का कैसा भव करना या भाव (करना), वह तेरे वर्तमान हाथ में है। **इसलिए कहा है कि** देवचन्दजी का शब्द है.... **'बन्ध समय जीव चेतो रे,.... 'बन्ध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिन्त!'** सलूना... उदय समय फिर चिन्त क्या? बन्ध समय में जो भाव किया, उस समय चेत न! फिर जो बन्ध हुआ, उसका उदय आवे, वह तो आयेगा ही। बन्ध के काल में चेतना (अर्थात्) स्वसन्मुख होकर, दर्शन-ज्ञान और चारित्र की दशा प्रगट करना। बन्ध समय में चेतना कि जिससे उसके फलरूप से उदय में क्या चिन्त? उसका फल आनेवाला आवे, वह तो आयेगा ही। आहा...हा...! (भविष्य का चित्रण) वह अपने हाथ में है, ऐसा (कहते हैं)। यह २८ (बोल) हुआ।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ज्ञान को धीर-गम्भीर करके सूक्ष्मता से भीतर देख तो आत्मा पकड़ में आ सकता है। एक बार विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं॥ २९॥

२९। **ज्ञान को धीर-गम्भीर करके सूक्ष्मता से भीतर देख तो आत्मा पकड़ में आ सकता है।** यह एकदम अन्दर से आया। (२८ बोल में) कर्म का निमित्त और भविष्य के चित्रण की बात (थी)। अब आत्मा जो वस्तु है, वह ज्ञानस्वभाव कायमी असली स्वरूप से वह है, उस ज्ञान को सूक्ष्म, धीर करके अर्थात् वर्तमान दशा में धीरज से, सूक्ष्मता से अन्दर देख। आहा...हा... ! वस्तु है, वह तो वस्तु है; उसे धीरज से, सूक्ष्मता से अन्दर में देख तो तुझे आत्मा पकड़ में आएगा — ऐसी बात है।

धीरज से, (ज्ञान को) धीर करके, सूक्ष्मता से अन्दर देख। धीर करने का अर्थ ही यह है कि सूक्ष्मरूप से उपयोग हो। जो पर तरफ से हटकर अपनी तरफ जाये, उसे यहाँ ज्ञान को धीरज से, सूक्ष्म करने से आत्मा पकड़ में आये ऐसा है। यह तो मूल रकम की बात है। आहा...हा... ! पकड़ में आये (अर्थात्) आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है — ऐसा (कहते हैं)।

धीरज से, ज्ञान को धीर करके शान्ति... शान्ति... शान्ति... उसे सूक्ष्मता से आत्मा पकड़ में आये ऐसा है, यह उसका उपाय है। कुछ करना — क्रिया शुभभाव, यह, यह और यह.... यह कोई साधन नहीं है, यह उपाय नहीं है। पर की अपेक्षा बिना अपना प्रभु पूर्ण स्वरूप है, वह धीर है अर्थात् शाश्वत् है और यहाँ धीर है अर्थात् वर्तमान पर्याय में वैसा (ज्ञान को) धीर करना ऐसा (कहते हैं)। क्या कहा यह ?

वस्तु है, वह धीर है। धीर है अर्थात् शाश्वत् है। (समयसार) कलश में आता है न ? तीन बोल आते हैं। आहा...हा... ! शान्त... शान्त... शान्त... निर्विकल्प शान्ति का स्वरूप वह स्वयं ही धीर है-शाश्वत् है, उसे वर्तमान दशा में धीर करके, शाश्वत् की तरफ ढले उस प्रकार करके... आहा...हा... ! सूक्ष्मता से अन्दर देख तो आत्मा (पकड़ में आ सकता है)। धीर करके अन्दर देख तो पर्याय में है। अनित्य ऐसे पुण्य-पाप के भाव की

www.vitragvani.com

अपेक्षा छोड़कर और जो धीर शाश्वत् शान्त है, उसे नमूना में (पर्याय में) धीर, शान्त करके सूक्ष्मता से (देखे तो) पकड़ में आ सकता है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

(लोग) ऐसे आगम से, शुभभाव से (धर्म) होता है (ऐसा मानते हैं)। अरे... बापू! यह सब बातें! यह तो वहाँ कैसा निमित्त होता है? साधक हुआ है, उसे निमित्तपने का कैसा विकल्प होता है? उसका ज्ञान कराया है। आगम में ऐसा (कहा है)। अध्यात्म में भी कहा है न? पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में भिन्न साध्य-साधन (कहा है)। वह कहीं आगम में ही कहा है (— ऐसा नहीं है), अध्यात्म में भी कहा है परन्तु उसकी कहने की क्या अपेक्षा है? (यह समझना चाहिए)। आहा...हा...!

उसका स्वरूप है, वैसा अन्तर निश्चय शान्ति... शान्ति से, धीर करके, सूक्ष्मता से पकड़े, उस समय पहले विकल्प होता है या होने के समय भी अन्दर अबुद्धिपूर्वक विकल्प होता है, उसका ज्ञान कराने के लिए उसे साधन कहा है। है नहीं, उसे साधन कहा है — ऐसी बात है। दूसरी चीज है, निमित्त वस्तु नहीं? उचित निमित्त किस स्थल में नहीं है? किस समय की पर्याय में उचित-उसके योग्य निमित्त कहाँ नहीं है? निमित्त है (अवश्य परन्तु) निमित्त से होता नहीं है। आहा...हा...!

अनादि-अनन्त प्रत्येक जीव की या जड़ की जो पर्याय की उत्पत्ति का निज क्षण है, वही वह है और उस काल में उसे उचित निमित्त कहाँ नहीं है? छहों द्रव्यों को और आत्मा को प्रत्येक समय उचित निमित्त होता ही है, तथापि उस निमित्त से अन्दर (कार्य) होता है — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! (कार्य) होता है, हुआ है, तब सामने (वस्तु होवे) उसे निमित्त कहते हैं। उसमें निमित्त से होता है, यह कहाँ आया? (कार्य है), हुआ है... राग से पृथक् किया है, विकल्प से पृथक् किया है, भेदज्ञान किया है, उस समय जो कुछ विकल्प बाद में होता है, उसे साधनरूप से उपमा दी जाती है। (साधन) है नहीं; है तो बाधक। आहा...हा...! वरना साधन तो यह एक ही है। ज्ञान को धीर करके सूक्ष्मता से (स्वरूप को) पकड़ना-यह एक ही साधन है।

वहाँ (शास्त्र में-समयसार में) प्रज्ञाछैनी कही है। यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को उपाय कहा है। (समयसार की) सोलहवीं गाथा में दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सेवन

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

करना कहा है, सब एक ही है। उपाय-उपेय में भी दोनों एक ही आत्मा के हैं और यहाँ साध्य-साधक में भी एक आत्मा के ही दो भाग हैं। तो फिर उसमें राग आया नहीं। यह राग तो अनात्मा है। साध्य और साधक में आत्मा आता है तो आत्मा की जो निर्मलपर्याय है, वह उपासक है, साधक है। आत्मा की पर्याय (कही न) ? तो राग, वह आत्मा की पर्याय नहीं है। आहा...हा... ! इसलिए अशुद्ध अवस्था साधक है, यह किसी प्रकार नहीं बैठता। उसका भाव जो है-राग से भिन्न पड़ी हुई प्रज्ञाछैनी, वह साधक है। (प्रज्ञाछैनी) है, वहाँ (साथ में) राग का विकल्प है, उसे साधक के (रूप में) निरूपण (किया है), कथन कहा है। कथन में दो प्रकार (पड़ते हैं)। वस्तु के दो प्रकार नहीं हैं।

अब ऐसी बात है। शास्त्र में कथन ऐसे आयें — व्रत पाले, भक्ति करने से ऐसा होगा, शुभभाव करने से ऐसा होगा.... शुभ करने से क्या होगा ? शुभ को छोड़कर (पर्याय) शुद्ध करेगा, तब उसे शुभ को छोड़कर किया, कहने में आता है। शुभ से हुआ - ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! शुभ (भाव) तो निमित्त है; निमित्त का अभाव करे, तब स्वभाव का भान होता है। उसमें निमित्त ने किया क्या ? (निमित्त) है — ऐसा ज्ञान करने योग्य है।

स्वभाव ! अन्दर पर की अपेक्षा रखे बिना, राग के विकल्प से भेदज्ञान करने पर जो अभेदस्वरूप दृष्टि में आया, उसमें यह भेदज्ञान ही साधन है, तथापि वहाँ राग का भाव अभी अबुद्धिपूर्वक रहता है, उसे व्यवहार का आरोप देकर, साथ में सहचर देखकर, उसे उपचार से व्यवहार कहा गया है। इसके अतिरिक्त दूसरी प्रकार से करेगा तो कहीं मेल नहीं होगा। आहा...हा... !

एक बार विकल्प का जाल तोड़कर.... आहा...हा... ! ज्ञायकस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु को, एक बार विकल्प के राग की जो वृत्ति है, उसकी एकता तोड़कर... (ऐसा कहते हैं) आहा...हा... ! एक हुई नहीं परन्तु इसने (एक) माना है। राग का विकल्प है, वह एक समय का कृत्रिम विभावभाव है, और भगवान स्वभावभाव त्रिकाल है। वह त्रिकाल पिण्ड स्वभाव (और) एक समय की विकृत अवस्था (दोनों) एकरूप हुए नहीं। दो के बीच सन्धि है अर्थात् दोनों पृथक् हैं। आहा...हा... !

पत्थर और सोना एक खान में से इकट्ठे निकलते हैं, तथापि सोना, सोना है और

पत्थर, पत्थर है। उसे अग्नि का प्रयोग देने से दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। वैसे ही भगवान आत्मा, विकल्प से अत्यन्त भिन्न ही है, परन्तु उसे एकत्वरूप माना है, वह मान्यता तोड़कर ध्यान की अर्थात् स्वरूप तरफ की एकाग्रता का ध्यान दे तो दोनों भिन्न पड़ जाते हैं, क्योंकि दोनों भिन्न थे, वे भिन्न हो जाते हैं। आहा...हा...! ऐसी बातें! मार्ग बहुत (सूक्ष्म)!

एक बार विकल्प का जाल तोड़कर.... एक बार (जाल) तोड़ी तो जाल टूटी, वह अलग रह गयी। पर्वत में बिजली गिरी और पर्वत के जो दो टुकड़े हुए, उन्हें अब रेण देने से वे इकट्ठे नहीं होते। रेण समझते हैं? बर्तन में रेण देते हैं न? कथिर का रेण देते हैं। आहा...हा...! ऐसे एक बार भी राग से भिन्न पड़ा और भिन्न रहा, वह जाल टूटी सो टूटी, अब एक नहीं होगी। आहा...हा...!

विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा,.... आहा...हा...! अन्दर से अलग हो जा **फिर जाल चिपकेगा नहीं।** यहाँ तो यह जोर दिया है।

एक वे थे न? भिण्ड के (एक) ब्रह्मचारी क्या? नन्दलाल ब्रह्मचारी भिण्ड के; (संवत्) २००० की साल में यहाँ आये थे, आठ दिन रहे थे। उनकी चर्चा में ऐसा आया था कि राग से भिन्न पड़ने के बाद उसे मिथ्यात्व होता ही नहीं, एकत्व होता ही नहीं। मिथ्यात्व नहीं होता, यह दूसरी बात है। यहाँ तो अप्रतिहतभाव कहना है। यह तो सिद्धान्त का भाव है न? राग से भिन्न पड़ा वह पड़ा, परन्तु फिर मिथ्यात्व जो होता है, उस समय भी भिन्न ही रहता है — ऐसा नहीं, परन्तु यहाँ यह पड़ने की, पड़ जाये यह बात ही नहीं लेनी है परन्तु चर्चा ऐसी होती है कि जब ग्यारहवें गुणस्थान में आवे, वह वापस गिरकर निगोद में जाता है और आस्रव अधिकार में आया है न? आस्रव अधिकार में 'नयच्युता' ऐसा पाठा है। नय से च्युत — भ्रष्ट। इस नय का अर्थ शुद्धनय है। व्यवहारनय तो कथनमात्र है। शुद्धनय से च्युत हो तो भ्रष्ट हो जाये। (स्वरूप) प्रगट हुआ है और फिर (स्थायी) ऐसा का ऐसा रहता है; निगोद में जाये तो भी भिन्न रहता है — ऐसा नहीं है।

यहाँ तो न जाये उसकी ही बात है परन्तु जाये तो फिर ऐसा का ऐसा वहाँ रहता है — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! मिथ्यात्व हो जाता है। जो संसार तोड़ डाला है, उतना संसार अब उसे नहीं परन्तु अन्दर मिथ्यात्व है, वह संसार वापस लागू पड़ गया।

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! बड़ी चर्चा हुई थी। वे भिण्ड के नन्दलाल ब्रह्मचारी आठ दिन रहे थे। उन्होंने गायन में ऐसा कुछ रखा है और अपने कलश में भी आता है, **सर्व भावान्तरच्छिदे...** अप्रतिहत भाव की ही उसमें बात है। समयसार में तो अप्रतिहत (भाव की ही बात की है)। राग से भिन्न पड़ा वह पड़ा; जाल तोड़ी सो तोड़ी, बस! द्रव्यस्वरूप चैतन्य ज्ञायकभाव का जहाँ भान आया, ज्ञान में उसे हेय बनाया और जो प्रतीति हुई, उस पर्याय में पूरा आत्मा ज्ञात हुआ। वह ज्ञात हुआ सो ज्ञात हुआ। अब विकल्प की जाल उसे एकरूप कभी नहीं होगी। पण्डितजी! आहा...हा... ! वीतराग की वाणी किस अपेक्षा से है (वह समझना चाहिए)।

ऐसा ही कहते हैं कि एक बार भिन्न पड़ा तो अब वहाँ भिन्न ही रहेगा। निगोद में भी भिन्न रहेगा — ऐसा नहीं। अनन्त संसार जो है, उतना अनन्त संसार उसे नहीं रहेगा, परन्तु मिथ्यात्व हुआ है, वह संसार है, वह संसार है। आहा...हा... ! परन्तु यहाँ तो यह पड़ने की बात और पड़ने के बाद वह मिथ्यात्व हो, यह बात यहाँ लेना ही नहीं है। आहा...हा... ! ऐसे पंचम काल में अन्दर में ऐसी चीज मिले! आहा...हा... ! उसे फिर अब साथ क्या हो ? ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

विकल्प की **जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं।** आहा...हा... ! समयसार की ३८ वीं गाथा में अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा कहा है, प्रवचनसार की ९२ वीं गाथा में ऐसा कहा है — हमें आगमज्ञान से और अनुभवज्ञान-निर्विकल्पज्ञान से जो जानने में आया और मिथ्यात्व का नाश किया, वह अब फिर से होनेवाला नहीं है। वह मिथ्यात्व फिर से अब आनेवाला नहीं है। पाँचवें काल के सन्त भी इस प्रकार अपनी भाषा करते हैं। समयसार की ३८ (और) प्रवचनसार की ९२ (गाथा में कहा है)। यह जगह-जगह बहुत ऐसा (कहा) है। आहा...हा... !

आ...हा... ! ऐसे पंचम काल में दुर्लभ चीज को लभ्य किया, आहा...हा... ! दुर्लभ को लभ्य किया! विकल्प की जाल तोड़कर निर्विकल्प अनुभव दृष्टि हुई, अब वह विकल्प की जाल नहीं चिपकेगी। स्वभाव में (विभाव का) एकत्वपना अब नहीं होगा। विकल्प आयेंगे परन्तु उन्हें पररूप से, ज्ञेयरूप से, परज्ञेयरूप से जानेगा। आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वीतरागदर्शन गहन है! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर का यह कथन बहुत गहन है, बहुत गहन है! यहाँ ३८, ९२ (गाथा में) ऐसा कहते हैं और वहाँ आस्रव (अधिकार) में ऐसा कहते हैं कि नय से च्युत होता है — ऐसी एक जगत में (स्थिति) है, उसका ज्ञान कराते हैं। आहा...हा...! तू जाल को तोड़नेवाला (फिर से) जाल में एकत्व होगा, यह बात ही नहीं रहती। आहा...हा...! इस प्रकार यहाँ सिद्ध करना है। आहा...हा...! **फिर जाल चिपकेगा नहीं।** आहा...हा...! यह २९ (बोल पूरा) हुआ।

जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आएँगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता; उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है; द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता, इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है॥ ३०॥

३०, **जब बीज बोते हैं तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता,....** अभी, वर्तमान में आम का बीज बावे तो उसमें कोई आम या उसकी डालियाँ, पत्ते दिखायी नहीं देते। आहा...हा...! **बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से....** प्रगटरूप से, हाँ! शक्तिरूप से तो (सब) है। आहा...हा...! बीज में शक्तिरूप से तो पूरा वृक्ष होने की ही शक्ति है। आहा...हा...! 'परमार्थवचनिका' में आता है न? बड़ में बड़... बड़ में बड़... बड़ में बड़... अनन्त शक्ति है उसमें। अनन्त शक्ति है! बीज में बड़ा बड़ होने की तथा बड़ में वापस अनेक बीज होने की और एक-एक बीज में फिर बड़ होने की, ऐसी परम्परा लो तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आहा...हा...! इस बीज में वह सब ताकत है; वर्तमान (में) भले प्रगट दिखायी न दे। ऐसे (ही) भगवान आत्मा में (अनन्त शक्ति है)।

यहाँ पहले बीज की बात की है। (उसमें प्रगटरूप से) **कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है....** बीज को बोते हुए विश्वास है कि '**इस बीज में से वृक्ष उगेगा,....**

www.vitragvani.com

जरूर आम होगा (तथा) ऐसे हजारों आम लटकेंगे। इस बीज को बोते हुए ही ऐसा विश्वास है कि इसमें से आम (वृक्ष) होगा और आम (फल) होंगे। आहा...हा...!

वहाँ कलकत्ता (में) एक सेठ के घर उतरे थे न? रतनलालजी गंगवाल उसके यहाँ एक आम (का वृक्ष) था। जिस मकान में उतरे थे, वहाँ आँगन में आम्र था। आठ वर्ष से आम फलता नहीं था। उसमें सहज ही हमारा निवास (वहाँ) हुआ। कमरे पर (उतरे थे) और उस आम्र में तो आम (फल) ऐसे गुच्छेदार हो गये। हम उतरे वहाँ बड़ा आम था। लोग ऐसा कहते हैं — आठ वर्षों से आम्र फलता नहीं था; परन्तु कौन जाने आपका यहाँ आना हुआ.... ये हजारों आम हरे-हरे, इतने बड़े! आम्र फल गया है! परन्तु यह तो बीज बोते ही उसका विश्वास है। न हो (नहीं होगा) — ऐसा प्रश्न यहाँ है नहीं। बीज में से आम फलेगा ही। हजारों आम होंगे। उस आम में से भी दूसरे बीज को बोकर उसकी गुठलिया, उसके आम होंगे ही। आहा...हा...!

इसी तरह, प्रभु! यहाँ तो पहले वृक्ष का दृष्टान्त देते हैं। **उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आएँगे',....** बीज बोते ही विश्वास है कि इसमें से डालियाँ होंगी, पत्ते होंगे, फल होंगे। **इत्यादि आएँगे....** आ...हा...! अर्थात् फूल इत्यादि (आयेंगे)। फूल और फल (आयेंगे)। आम्र में भी पहले कोर आती है न? कोर आती है, कोर के बाद उसका फूल होता है। आहा...हा...! बीज बोते ही उसमें इसका विश्वास है कि इसमें से डालियाँ, पत्ते और फल इत्यादि आयेंगे अर्थात् फूल इत्यादि (आयेंगे)। **पश्चात् उसका विचार नहीं आता;....** फिर विचार नहीं आता कि इसमें नहीं होगा। बोया है वह होगा ही। आहा...हा...! **उसी प्रकार...** इस वृक्ष के दृष्टान्त से, बीज के दृष्टान्त से **मूल शक्तिरूप द्रव्य को....** जैसे बीज में बड़ होने की शक्ति है तो बीज बोते ही विश्वास है कि इसमें से वृक्ष होगा ही; होना ही है। आहा...हा...!

बड़, बड़ होता है न? भरूच में एक कबीर बड़ है और एक बड़ा बड़ है - कलकत्ता। कलकत्ता में बाहर जंगल में बड़ है। इतना बड़ा बड़, इतना बड़ा बड़ है! डालें और पत्ते कहीं जाते रहे, इतना बड़ा बड़ है! यह तो कलकत्ता देखा है, वहाँ निकले थे परन्तु यह भरूच का बड़ देखा नहीं, परन्तु सुना है। यह (संवत्) १९६४-६५ की बात है।

www.vitragvani.com

स्थानकवासी साधु आनेवाले थे। इसलिए हम देखने-खोजने गये थे। हम वहाँ स्थानकवासी में मुख्य थे न? (इसलिए) साधु आवे, उनका आदर करते। (तब) कोई कहता है कि यह कबीर बड़ है और वहाँ कदाचित् उतरे होंगे। फिर दूसरे ने कहा कि वहाँ नहीं लगते, तुम धर्मशाला में देखो। भरूच के स्टेशन के सामने एक धर्मशाला है, भरूच... भरूच! उसमें देखो, (उसमें देखा) तो वहाँ थे। यह १९६४ के (साल की) बात है। कबीर बड़ उस दिन सुना था। कबीर बड़! बड़ा ऐसा डालियाँ निकल-निकलकर इतनी अधिक गयी की जो डालियाँ यहाँ वापस नीचे गिर गयी है। समझ में आया? बड़ की बड़ी डाल निकली होती है न? डाल... डाल...! यह डाल ऐसे जमीन में उतर गयी होती है — ऐसी तो सैकड़ों (डालवाला) बड़ा बड़ है। वहाँ कलकत्ता में जंगल में बड़ा बड़ है। एक बार निकले थे। यहाँ कहते हैं, आहा...हा...! मील-मील जितनी लम्बी डालें! और एक डाल में फिर अन्दर झुमके! अन्दर जमीन में फंस गये। क्या कहते हैं उसे? बड़वाही... बड़वाही...! आहा...हा...! इतना बड़ा (बड़)! एक बीज, उसमें से इतना बड़, आहा...हा...! उसका विश्वास है। वैसे ही प्रभु बीज है, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द को प्रगट करेगा, ऐसा वह बीज है। आहा...हा...! है?

उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को.... जैसे बीज में शक्ति है — ऐसा विश्वास है, बोने पर विश्वास है कि उगेगा ही। इसी प्रकार **मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से....** आहा...हा...! मूल शक्तिरूप वस्तु जो भगवान आत्मा... आहा...हा...! जो द्रव्य है, वस्तु है, त्रिकाल निरावरण है, (जिसमें) कमी नहीं, अशुद्धता नहीं; पूर्ण है, शुद्ध है, और निरावरण है। आहा...हा...! ऐसा जो द्रव्य है, उसका विश्वास आने पर ऐसे **द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से....** (अर्थात्) उसे पकड़ने से **निर्मल-पर्याय प्रगट होती है;....** आहा...हा...! (इस स्वरूप को ग्रहण करने से) उगकर केवलज्ञान होगा ही — ऐसे विश्वासपूर्वक द्रव्य की प्रतीति करता है। आहा...हा...! है?

ग्रहण करने से.... अर्थात् जानने से। पूर्ण आत्मपदार्थ को (ग्रहण करने से)। वस्तु है न? पूर्णरूप है न? और अनन्त स्वभाव-जो शक्तियाँ हैं, वे भी पूर्णरूप हैं। आहा...हा...! ऐसे पूर्णरूप को विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से, सम्यग्दर्शन की श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने

www.vitragvani.com

से... आहा...हा... ! विश्वास है कि इसमें यह सब है। एक समय की पर्याय में मैं खड़ा हूँ, इसलिए वह वस्तु पर्यायमात्र नहीं है; उसके समीप में गहरे अन्दर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द — ऐसे पूर्ण स्वभाव के भार से भरपूर भरा हुआ भगवान है। आहा...हा... ! उसे विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से (निर्मलपर्याय प्रगट होती है)।

वैसे तो शास्त्र में जानपने की बात को आवे, तो ख्याल में, धारणा में तो इसे आवे कि आत्मा ऐसा है और वैसा है (परन्तु) वह नहीं। (ऐसी धारणा में) इसे विश्वास नहीं। यह तो एक धारणा में शास्त्र में से पढ़कर धार लिया। आहा...हा... ! परन्तु अन्दर जो चीज जितनी है, उतनी का विश्वासपूर्वक-विश्वास करके,.... अस्ति जितनी है, उतनी अस्ति की प्रतीति करके, जितना वह अस्तित्व है, उतना ज्ञान करके श्रद्धा में उसे लेकर भरोसा ला! 'विश्वास से जहाज चलेंगे' आहा... ! इस पूर्णानन्द के नाथ को विश्वास में जानते हुए निर्मलपर्याय का जहाज वहाँ बहेगा, निर्मलपर्याय की धारा चलेगी। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं।

निर्मलपर्याय प्रगट होती है;.... वस्तु तो है परन्तु उसे विश्वास से जानने से... है इतना बड़ा! ....आहा...हा... ! इसे विश्वासपूर्वक जानने से, परम आनन्द की और परम अतीन्द्रियज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। आहा...हा... !

प्रश्न : विश्वास करने से ही होगी ?

समाधान : विश्वास! श्रद्धा में इतना है, वह श्रद्धा में ले। एक समय की पर्याय में वह सम्पूर्ण चीज आयेगी नहीं परन्तु सम्पूर्ण चीज का विश्वास ले! आहा...हा... ! अन्तर्मुख ज्ञान की पर्याय में उसका पूर्ण विश्वास कर। पूर्ण वस्तु, वस्तु है न ?

मुमुक्षु : अन्तर्मुख में तो विश्वास होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अन्तर्मुख जाये तो उसे विश्वास होता ही है और विश्वास हो, तब ही अन्तर्मुख जाये। आहा...हा... ! ऐसा है।

एक समय की पर्याय से त्रिकाली को स्पर्शे बिना, उसके सन्मुख होकर, उस पर्याय में विश्वास लाता है कि यह प्रभु स्वयं सर्वोत्कृष्ट है ! यह वस्तु सर्वोत्कृष्ट प्रभु परमात्मा है ! ऐसा विश्वास करने पर पर्याय में आनन्द और ज्ञान आदि अनन्त गुणों की शक्ति की

www.vitragvani.com

व्यक्तता — समस्त गुणों की आंशिक व्यक्तता प्रगट होती है। आहा...हा...! जितनी संख्या में गुण हैं, उन समस्त गुणों का धारक सागर-द्रव्य का भरोसा करने पर जितने गुण हैं, उतने शक्ति में से अनन्त गुण की व्यक्तता एक अंश में समस्त गुण की प्रगट होती है। पण्डितजी! ऐसा है। आहा...हा...! परन्तु पहले करना क्या? यह पहला ही यह है — ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : विश्वास किस गुण की पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ-वीर्यगुण की पर्याय है। पुरुषार्थ वीर्यगुण की पर्याय है। आहा...हा...! और इस पर्याय में पुरुषार्थ नहीं है? उल्टी पर्याय में भी वीर्य-उल्टा पुरुषार्थ है। आहा...हा...! वह भी निज क्षण में उत्पन्न होने की पर्याय में भी उल्टा पुरुषार्थ तो है ही। यह निज क्षण में उत्पन्न होने की (सम्यक्) पर्याय में भी अनन्त पुरुषार्थ है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : पहले में अनन्त उल्टा (पुरुषार्थ) है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त पुरुषार्थ है। विश्वास... विश्वास...! एक समय की पर्याय (में) विश्वास - अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... शक्तियों के सागर का विश्वास! आहा...हा...! महासुख का सागर प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञान का सागर, अतीन्द्रिय प्रभुता, ईश्वरता और स्वच्छता का तो सम्पूर्ण उसका रूप है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय स्वच्छता और अतीन्द्रिय प्रभुता — ऐसी अनन्त... अनन्त... शक्तियों का तो वह रूप है। ऐसा विश्वास लाने पर (निर्मलपर्याय प्रगट होती है)। आहा...हा...!

इसे किसी शुभराग से यह विश्वास आये — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! निरालम्बी वस्तु और निरालम्बी विश्वास। उस विश्वास को किसी का आधार नहीं है। वह विश्वास भी स्वयं त्रिकाली को जानने में कर्ता है, वह विश्वास ही कार्य है और विश्वास ही साधन है। आहा...हा...! ऐसे विश्वासपूर्वक... आहा...हा...!

ग्रहण करने से निर्मलपर्याय प्रगट होती है;.... आहा...हा...! 'है' इतने की हाँ करने से, स्वीकार करने से-विश्वास में, श्रद्धा में स्वीकार करने से जो पर्याय में 'नहीं' ऐसा जो अनादि से था, जो पर्याय में 'यह नहीं' ऐसा था। वह यहाँ 'है' यह नहीं था। उस पर्याय में यह विश्वास आने पर 'यह है' पूर्ण है — ऐसा पर्याय में प्रगट होता है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मार्ग तो ऐसा है, फिर इसे इस प्रकार कमजोरी में बना दिया, यह तो कलंक है। शुभभाव से आत्मा की निर्मलपर्याय प्रगट होती है, वह तो कलंक है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : शुभ और अशुभ के बीच भेद करे तो मिथ्यात्व (होता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो उन्हें भिन्न किया। उसे साथ रखकर अन्दर नहीं जा सकता, उसे भिन्न करके जा सकता है। आहा...हा...! ऐसा जैनमार्ग! बेचारे लोगों को मिला नहीं, ऐसी की ऐसी जिन्दगी (निकाल डाली)। मिच्छामि पडिक्कमणं... कर-करके मर गये। सामायिक, प्रतिक्रमण और प्रौषध किसका?

हम भी वहाँ दुकान पर ऐसा करते थे। पर्यूषण के आठ दिन, बस! फिर कुछ नहीं। आठ दिन आवे तब चार चौविहारा-उपवास (करते)। छोटी उम्र से, हाँ! शाम को प्रतिक्रमण (करते) और प्रतिक्रमण होने के बाद थोड़ा गाते।

'देखो रे... देखो रे...' जम्बूस्वामी का आता है।

'देखो रे... देखो रे... जैनों कैसे व्रतधारी' हाँ, ऐसा गाते। (संवत्) १९६४-६५ की बात है 'देखो रे... देखो रे... जैनों कैसे व्रतधारी...' फिर लोग प्रसन्न होते। स्थूल बुद्धि, कपास का व्यापार, गाँव में एक ही दुकान और पालेज सौ गाँव का बड़ा बाजार! अपनी एक ही दुकान, अभी (एक भाई) है। पैसा ७०-८० लाख हो गया है, अभी है। यह तो पूर्व के परमाणुओं की बातें! उसमें आत्मा को क्या?

मुमुक्षु : आप ऐसा कहते हो परन्तु हम ऐसा कहते हैं कि हमने ध्यान रखकर धन्धा किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान रखने से धूल भी नहीं मिलता। ध्यान रखने से तो आर्तध्यान होता है। आर्तध्यान से मिलता है? आहा...हा...!

यहाँ तो ध्यान रखे तो भगवान मिले — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! अनन्त गुण का निधान! अनन्त... अनन्त... जिसका एक-एक स्वभाव ज्ञान-दर्शन... स्वभाव है, उसकी मर्यादा क्या? क्षेत्र भले छोटा परन्तु उसके स्वभाव की गहराई और स्वभाव की शक्ति अनन्त.... अनन्त.... एक शक्ति में अनन्त शक्ति! आहा...हा...! ऐसे अनन्त शक्ति का सागर प्रभु! उसे विश्वास... विश्वास... है, ऐसा ही प्रभु है — ऐसे विश्वासपूर्वक

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अन्दर देखने से तुझे निर्मलपर्याय प्रगट होगी। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है।

एक तो धन्धे के कारण फुरसत नहीं, धन्धे में लवलीन। उसमें घण्टे-दो घण्टे समय मिले और सिर पर हो वह कहे (उसे मान ले) जय नारायण, प्रमाण वचन! 'कर में राजा, कर में रंक, कर में डाला आडा अंक' जय, जय महाराज! अर्थात् कर्म के जोर से यह भटकते हैं न?

प्रश्न : राजा और रंक तो कर्म से ही है?

समाधान : राजा और रंक यह अलग बात है परन्तु फिर आड़ा अंक लगाया (अर्थात् विपरीत मान्यता की) कर्म ने भटका दिया। स्थानकवासी में स्तुति में यह पहले बोलते हैं। पाँच-दस मिनिट पहले स्तुति बोले न? (उसमें बोलते हैं) आहा...हा...! ऐसा था या नहीं शान्तिभाई! तुम्हारे रघुलालभाई बोलते थे... इनका लड़का है मस्तिष्कवाला व्यक्ति, क्या नाम? भूल गये? (श्रोता - लालचन्दभाई।) लालचन्दभाई! (श्रोता - गुजर गये।) गुजर गये, गुजर गये। आहा...हा...! वचन करते न, गुजर गये।

यहाँ तो प्रभु का विश्वास आने से मिथ्यात्व गुजर जाता है। जिसे एक पर्यायमात्र देखा था और अल्प ज्ञान, अल्प विश्वास, अल्प वीर्य - इतने में जिसकी क्रीड़ा थी, वहाँ प्रभु गुजर गया था। आहा...हा...! वह था किन्तु नहीं था — ऐसा हो गया था। आहा...हा...! ऐसे पूर्णानन्द के नाथ का पूर्ण स्वभाव का विश्वास, सम्यग्दर्शन! आहा...हा...! उसका विश्वास लाने से, वह गुजर गया था, वह जीवित हो गया और जो मिथ्यात्व जीवित था, उसे मार डाला। आहा...हा...! मार डाला, वह अब मरण हो रहा, उसे कभी उत्पन्न नहीं होगा। आहा...हा...! यह करना है और यह वस्तुस्थिति है, प्रवीणभाई! कठिन पड़े परन्तु बापू! मार्ग तो यह है। आहा...हा...!

निर्मलपर्याय प्रगट होती है; द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता.... वह किस प्रकार? जैसे पहले बीज बोया, उसमें प्रगट कुछ डालियाँ, पत्ते कुछ दिखते नहीं परन्तु विश्वास है कि इसमें से होंगे। आहा...हा...! वैसे ही भगवान आत्मा वस्तु, जो द्रव्य है, पदार्थ है, अस्ति है, अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव धातु है। आहा...हा...! ध्रुव से धारक-धारण की हुई चीज है-पदार्थ! आहा...हा...! ऐसी चैतन्यधातु, उस **द्रव्य में प्रगटरूप से**

www.vitragvani.com

कुछ दिखाई नहीं देता; इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा'.... विश्वास बिना होगा क्या? पर्याय कहाँ से आयेगी? तुझे विश्वास तो नहीं कि इसमें यह सब है। आहा...हा...! राग में, पुण्य में, दया में, दया-दान में, निमित्त में मेरा आत्मा कहीं नहीं है, उनके द्वारा कुछ नहीं होगा। आहा...हा...!

आहा...हा...! **विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा'....** बीज में विश्वास है कि वृक्ष होगा, पत्ते होंगे, फूल होंगे। वैसे इसमें — द्रव्य में इसे विश्वास नहीं (कि) क्या प्रगट होगा? आहा...हा...! विश्वास! आहा...! **इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से....** आहा...हा...! देव-गुरु-शास्त्र का विश्वास भी नहीं, वह राग एक दूसरा रह गया। पुण्य-पाप के परिणाम का विश्वास नहीं, वह तत्त्व भिन्न रह गया। एक समय की पर्याय में जो लक्ष्य है, उसका भी विश्वास नहीं; विश्वास त्रिकाली का। आहा...हा...!

मुमुक्षु : त्रिकाली तो कभी सुना भी नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना भी नहीं था, बात सत्य है। वस्तु है — ऐसे तो कहे कि 'अविनाशी आत्मा है।' गीता में भी ऐसा कहे कि न छेदन्ती न भेदन्ती। गीता में भी आता है, उसमें एक श्लोक ऐसा भी आता है कि 'इसके हम कोई कर्ता नहीं और भोक्ता नहीं, हम कर्ता नहीं हैं।' — ऐसा आता है। 'न सृजयामी' इस चीज का हमने सृजन नहीं किया। इस पर लोगों का लक्ष्य नहीं जाता और यह दूसरा (लक्ष्य) जाता है। गीता में ऐसा श्लोक आता है। आहा...हा...! वस्तु है, उसे कौन सृजे? कौन बनाये? ऐसा ईश्वर कौन है? आहा...हा...! वैसे ही यह चीज/ वस्तु है। 'है' उसका जिसे विश्वास नहीं, तो कहाँ से प्रगट होगा? बीज का विश्वास है कि फल होंगे। आम में लाखों आम लटकेंगे। आहा...हा...! एक में से लाख! आहा...हा...! बड़ा वृक्ष होवे तो फिर बहुत (आम पकते हैं)। आहा...हा...!

यहाँ अपने आम का वृक्ष था न? अभी तो बहुत महीनों से गये नहीं हैं। वहाँ था, वह आम होता था। छोटा वृक्ष परन्तु आम (होते थे)।

मुमुक्षु : बोर्डिंग में है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : बोर्डिंग नहीं। यह तो अपने क्या कहलाता है वह तुम्हारा? प्रवचन मण्डप! उसमें उस कौने में वृक्ष है न? वहाँ आम होते थे। एक बार आम पके थे, बहुत पके थे। अब तो अभी हम बहुत महीनों से गये नहीं हैं, उस तरफ देखने भी गये नहीं। अभी उसका समय हुआ है।

यहाँ कहते हैं **द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता, इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है।** आहा...हा...! एक-एक शक्ति का अपरिमित जिसका स्वरूप — ऐसी अनन्त शक्तियाँ-गुण का गम्भीर, गुण से गम्भीर भगवान का विश्वास आने से... आहा...हा...! निर्मलता प्रगट होने लगती है। आहा...हा...! ऐसी बातें! बाहर में सिरपच्ची करके मर गया। यह सामायिक की, प्रौषध किया, प्रतिक्रमण किया... क्या किया उसमें? वह तो राग की क्रिया थी, राग (था) और देह की क्रिया तो जड़ की है।

मुमुक्षु : देह की क्रिया तो आत्मा की क्रिया माना।

पूज्य गुरुदेवश्री : (हाँ)। आहा...हा...! और राग की क्रिया है, उसे भी आत्मा की-धर्म की क्रिया मानी, इसे पता कहाँ है? आहा...हा...!

निर्जरा अधिकार में तो ऐसा कहते हैं कि क्लेश करो तो करो, इस शुभक्रिया का क्लेश करो तो करो, इसमें आत्मा हाथ नहीं आयेगा। आहा...हा...! परन्तु इस वस्तु का विश्वास करो! आहा...हा...! ऐसा प्रभु तू अन्दर भगवान है! सर्वोत्कृष्ट चीज है! यह बात भी कहाँ बापू! (सुनने को मिलती है)? आहा...हा...!

सबेरे कहा था न? यह सर्वज्ञ प्रणीत प्रभु की वाणी है। आहा...हा...! निकटवर्ती गणधरों ने साक्षात् सुनी हुई, यह वह वाणी है। आहा...हा...! यह अन्यत्र कहाँ है बापू? आहा...हा...!

द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होगी। **प्रगट होने लगती है।** आहा...हा...! होगी — ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! बीज का विश्वास करने से डालियाँ, पत्ते, फल होंगे ही। यहाँ डालियाँ, पत्ते, फल लगेंगे ही। लगने लगेंगे ही। वैसे

www.vitragvani.com

ही भगवान आत्मा... ! अल्पज्ञ पर्याय में पूर्ण का विश्वास आने से... आहा...हा... ! अल्पज्ञदशा में पूर्णानन्द का स्वाद और आनन्द आने से... आहा...हा... ! जिसके आनन्द के स्वाद के समक्ष दुनिया के विषय और भोग, इन्द्र और इन्द्राणी के भोग सड़े हुए कुत्ते जैसे दिखते हैं। आहा...हा... ! तुझे बाहर की महिमा उड़ जाएगी। बाहर की महिमा तुझे नहीं दिखेगी। कोई बाह्य अधिक है — ऐसा नहीं भासेगा। आया है न? (समयसार की ३१, ३२ गाथा) **णाणसहावाधियं मुणदि आदं** 'अधिक' शब्द से वहाँ पृथक्पना है। राग से और पर्याय से अन्दर पृथक्पना तुझे भासित होगा। आहा...हा... ! ऐसा भगवान का विश्वास लाने से निर्मलता प्रगट होने लगती है। **निर्मलता प्रगट होने लगती है।** आहा...हा... ! यह ३० (बोल पूरा) हुआ। हो गया समय, लो !

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी कार्यों में स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है वह अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं॥ ३१ ॥

जेठ शुक्ल ८, बुधवार, दिनाङ्क १४-०६-१९७८
प्रवचन-९ वचनामृत- ३१-३३

(वचनामृत पृष्ठ १०) १०, १० है न? ३१ वाँ बोल।

सम्यग्दृष्टि को.... अर्थात्? जिसे आत्मा का पूर्ण स्वभाव, शक्ति पूर्ण है — ऐसा अन्दर विश्वास होकर सम्यग्दर्शन हुआ है (वह सम्यग्दृष्टि है)।

मुमुक्षु : विश्वास रखा और सम्यग्दर्शन हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्वास होकर (सम्यग्दर्शन) हुआ है, ऐसा। पहले भरोसा आया कि (स्वरूप) ऐसा है, तब अनुभव हुआ है। पहले अपने आ गया था, 'विश्वास' आ गया था — विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से.... विश्वास अर्थात् अनादि से अन्दर पर्याय में विश्वास है। उसका विश्वास यहाँ अन्दर वस्तु है (उस पर नहीं है)। पर्याय के पीछे, उसके तल में गहरे वस्तु है, जिसमें अनन्त... अनन्त... अपरिमित शक्तियों का सागर है — ऐसा जिसे अन्दर श्रद्धा में विश्वास आवे और फिर अन्तर अनुभव में जाये, उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

पर का जो विश्वास (करता) है, जो चीज देखता है, (वह) देखनेवाला कौन? उसकी शक्ति की सँभाल अनादि से नहीं ली है, क्योंकि उसकी नजर ही एक समय की पर्याय और राग पर नजर है; इसलिए उसकी नजर में भगवान पूर्ण स्वरूप जो अन्दर द्रव्य

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है, तत्त्व है न... यह पर्याय तो एक समय का अंश है परन्तु (यह) किसके आधार से होती है? ध्रुव (के आधार से होती है) निश्चय से आधार उसका स्वयं का है परन्तु ध्रुव है, उस पर (पर्याय) होती है न? ऐसे स्वभाव का पूर्ण स्वरूप का अन्तर विश्वास -भरोसा... विश्वास करके अन्तर में जाये, तब उसे सम्यक्-सत्य दर्शन (होता है)। जितना और जैसा आत्मा है, उतना ज्ञान होकर प्रतीति में आये, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहा...हा...!

उस **सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है....** ज्ञान अर्थात् पूर्ण स्वरूप है, उसका ज्ञान तथा वैराग्य अर्थात् राग का अभाव। अस्ति में पूर्ण पदार्थ-पूर्ण तत्त्व को ज्ञान में जाना, उसकी प्रतीति (तथा) उसका भान और (नास्ति में) पर तरफ के विकल्प से लेकर सभी चीजों का जिसमें अभाव है, उसका नाम वैराग्य है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है.... निर्जरा अधिकार में भी यह आता है — ज्ञान और वैराग्य। पहली गाथा, दूसरी गाथा (में आता है)। वस्तुस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर उसका अन्दर यथार्थ ज्ञान (होना तथा) निमित्त, राग और पर्याय से भी विमुख होकर, पूर्ण स्वभाव की अन्दर ज्ञान करके प्रतीति होना — ऐसे सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति (प्रगट) होती है। स्वरूप का ज्ञान और पर तरफ का, राग का अभाव। आहा...हा...! ऐसी बात है।

सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रम में होने पर भी,.... (सम्यग्दृष्टि) भले गृहस्थाश्रम में हो, अभी मुनिपना न हो; **सभी कार्यों में स्थित होने पर भी,....** सभी अर्थात् उसके योग्य जो हैं वे। ऐसा राग आता है, ज्ञानी को राग आवे और उससे बाहर के कार्य तो होवें, होनेवाले हों वे होते हैं, उन सभी कार्यों में मानों स्थित हो, ऐसा राग है, इसलिए दिखता है। आहा...हा...!

सभी कार्यों में स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता,.... अर्थात्? रागधारा को अपने में नहीं गिनता। आहा...हा...! ऐसी बात है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को राग आता अवश्य है.... चक्रवर्ती होवे तो छियानवें हजार स्त्रियाँ भी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

होती हैं, तथापि उस राग का नास्तित्वपना, वह मैं हूँ और स्वभाव का अस्तित्वपना, वह मैं हूँ — ऐसी दशा में राग की एकता नहीं होती; इसलिए राग से निर्लेप रहता है। यह सिद्धान्त ऐसे कठिन हैं। आहा...हा...!

सभी कार्यों में.... सभी अर्थात् उसकी योग्यता प्रमाण। **स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता,....** क्योंकि अपने पूर्ण स्वभाव की प्रतीति का ज्ञान वर्तता है और पर के अभाव-स्वभावरूप वैराग्य वर्तता है, इसलिए उसे पर के कारण अन्दर कोई लेप नहीं लगता। आहा...हा...! **निर्लेप रहते हैं;....** पहले नास्ति से बात की (कि) लेप नहीं लगता अर्थात् निर्लेप रहते हैं। राग में एकत्व नहीं होता। राग होने पर भी... आहा...हा...! एकत्व नहीं होता, इसलिए निर्लेप रहते हैं। राग होता है, इतना तो लेप है परन्तु वह मेरा है; इस प्रकार एकत्व नहीं होता, इसलिए निर्लेप रहता है। आहा...हा...! वरना जितना राग आता है, उतनी अशुद्धता है, उतना नया बन्धन भी होता है परन्तु यहाँ तो राग की एकत्वबुद्धि नहीं होती क्योंकि पूर्ण अस्तित्व का भान है और पर के अभावस्वभावरूप वैराग्य का भान है, इसलिए राग में मेरापन और एकत्वपना सम्यग्दृष्टि को नहीं होता — ऐसी बात है। गृहस्थाश्रम में होने पर भी, ऐसा (कहते हैं)। मुनि न हुआ हो।

ऋषभदेव भगवान को तेरासी लाख पूर्व तक समकित था, तीन ज्ञान थे, गृहस्थाश्रम में थे। आहा...हा...! ऐसा एक समझाने को कहा। वस्तुतः सम्यग्दृष्टि तो गृहस्थाश्रम की पर्याय में भी नहीं है। आहा...हा...! वे तो पूर्ण स्वभाव का ज्ञान और विकल्प से लेकर पर पदार्थ के अभावरूप वैराग्य, उसके अस्तित्व में है। ऐसी शर्तें हैं। आहा...हा...!

ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं;.... शास्त्र में यह आता है न? ज्ञान अर्थात् स्वरूप शुद्ध, पूर्ण परमात्मस्वरूप है, उसका ज्ञान भी वर्तता है और जितना राग होता है, वह रागधारा भी वर्तती है; वह उदयधारा कही-राग होता है, उतनी उदयधारा है। आहा...हा...! जिसमें क्षयोपशम और उपशम भी मेरी चीज में नहीं, वह भी व्यवहार है।

आहा...हा...! पूर्ण शुद्धस्वरूप, चैतन्यघन, आनन्दकन्द, एकरूप स्वभाव, ध्रुव, अनादि-अनन्त! आहा...हा...! उसका सम्यग्दर्शन होने पर उसे राग की एकतारूपी

www.vitragvani.com

लेप नहीं होता — ऐसा इतना कहना है। दो धारा भिन्न परिणमती है, ऐसा इतना कहना है। राग है तो सही (परन्तु) राग की धारा, ज्ञान में परज्ञेयरूप से जानने में रहती है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। पुस्तक तो आ गयी है हीराभाई! आ गयी है या नहीं? हिन्दी आ गयी? ठीक!

ज्ञानधारा अर्थात् पर्याय में वस्तु के स्वरूप का जो ज्ञान हुआ है, वह ज्ञानधारा तो कायम वर्तती ही है। आहा...हा...! जैसे ध्रुवधारा वर्तती है, ऐसे ध्रुव का जो ज्ञान हुआ, अनुभव (हुआ), वह ज्ञान भी कायम वर्तता ही है, ऐसा। है भले पर्याय। आहा...हा...! और उदयधारा (अर्थात्) राग का जो शुभ या अशुभ विकल्प है (वह)। दोनों (धाराएँ) अलग होती है। (अर्थात्) **दोनों भिन्न परिणमती हैं;....**

अल्प अस्थिरता है.... राग आता है, इसलिए अल्प अस्थिरता है। भले चौथे गुणस्थान में होवे तो भी उसे अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का नाश होने से, (जितना) वह राग है, उसे भी अनन्तानुबन्धी की अपेक्षा से अल्प गिना गया है, क्योंकि अनन्त है, वह मिथ्यात्व है और उसके साथ अनुबन्ध-सम्बन्धवाली कषाय, उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं। ऐसी अनन्तानुबन्धी कषाय, स्वरूप की दृष्टिऔर ज्ञान होने पर उस मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का नाश हो जाता है। इतनी स्थिरता धारा तो सदा ही वर्तती है। आहा...हा...! है? **अल्प अस्थिरता है, वह अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है,....** कर्म से होती — ऐसा नहीं है।

परद्रव्य और स्वद्रव्य को क्या सम्बन्ध है? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अर्थात् पृथक्। इससे उसमें हो और उससे इसमें हो, ऐसा कहीं... कहीं... कहीं.... है नहीं। आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय में (ही वर्तता है) द्रव्यगुण तो ध्रुव है, परन्तु प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय में वर्तता है। कर्म भी उसकी उदय की पर्याय में वर्तता है। आहा...हा...! **अल्प अस्थिरता है, वह अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।** आहा...हा...! जाननेवाले ही रहते हैं। लो! इसका नाम समकिती! यह राग होता है, उसके वे जाननेवाले रहते हैं। मेरा है — ऐसा माननेवाले नहीं होते। आहा...हा...! ऐसा इसका — सम्यग्दर्शन और ज्ञान का स्वरूप है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है, उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता, इसलिए उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना — सब निःसार, छिलकों के समान, रस-कस शून्य हो ऐसे भाव से-बाहर खड़े हैं॥ ३२॥

३२, **सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,....** आहा...हा...! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का माप भी अपरिमित आनन्द! उसका जहाँ पर्याय में स्वाद आया है... आहा...हा...! उसे (यहाँ) कहते हैं कि बाहर में कहीं नहीं रुचता। स्व के आनन्द के अतिरिक्त बाहर में कहीं अनुकूलता है, इसलिए ठीक है — ऐसा भी नहीं है और राग होता है, इसलिए ठीक है — ऐसा भी नहीं है। आहा...हा...! बाहर कहीं नहीं रुचता। **अच्छा नहीं लगता,....** इस शुभभाव में भी ज्ञानी को अच्छा नहीं लगता। आहा...हा...!

...स्व आत्मा की सर्वोत्कृष्टता के समक्ष और स्व-आत्मा में अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय (आनन्द का अनुभव होने से कहीं अच्छा नहीं लगता)। कभी चौरासी के अवतार में कहीं देखा नहीं था, जाना नहीं था — ऐसे आनन्द का सम्यग्दृष्टि को अनुभव है। आहा...हा...! उसे अपने आनन्द के अतिरिक्त कहीं नहीं रुचता, कहीं अच्छा नहीं लगता। आहा...हा...!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती तो रोज विवाह करने जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाह करने जाये तो भी अच्छा नहीं लगता। आहा...हा...! आहा...हा...! स्वयं बीस वर्ष का हो, माता चालीस वर्ष की हो, (माता) नहाती हो और एकदम नग्नपना भी नजर में आ जाये... आहा...हा...! परन्तु वह देखता ही नहीं। यह माता -जननी है — ऐसा (देखता है), उसे वह (विकारी) स्थिति से देखता ही नहीं। इसी

www.vitragvani.com

प्रकार (सम्यग्दृष्टि) राग को पररूप से जानता है, उसे अपनेरूप जानता ही नहीं। आहा...हा...! चाहे तो शुभराग हो या अशुभ, परन्तु है तो व्यभिचार, जहर का घड़ा है। आहा...हा...! (आत्मा को छोड़कर) बाहर में कहीं अच्छा नहीं लगता अर्थात् अन्दर में अच्छा लगने की अपेक्षा से, शुद्ध चैतन्य आनन्द मैं हूँ, इस अनुभूति के कारण बाहर में कहीं अच्छा नहीं लगता। आहा...हा...! यह (सम्यग्दृष्टि की) स्थिति!

जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। आहा...हा...! यह घर, मकान (और) मकान में वह क्या कहलाता है? फर्नीचर! करोड़ों रुपये का फर्नीचर हो, देखो न! चक्रवर्ती को तो क्या कहना! आहा...हा...! उसे तो बड़े पाँच महल (होते हैं)। इन्द्रों ने बनाकर दिये हुए पाँच महल (होते हैं)। आहा...हा...! (सम्यग्दृष्टि को) भी वह राग आवे, परन्तु वहाँ अच्छा नहीं लगता, उसमें मिठास नहीं दिखती; मिठास प्रभु आत्मा में है। आहा...हा...! ऐसा है।

जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। यह मकान, महल, यह घर प्रयोग की चीजें, यह पुत्र-पुत्रियाँ, ऐसे लड़कों का विवाह हो और लाखों-करोड़ों पैसे का खर्च हो, ऐसे हा-हो... हा-हो... बाहर में हो। आहा...हा...! परन्तु कोई चीज सुन्दर नहीं लगती। आहा...हा...! करोड़ों रुपये की आतिशबाजी हो, रात्रि में पुत्र का विवाह हो, ऐसे धम-धम, धमाल (होती हो) आहा...हा...! परन्तु धर्मी को कहीं अच्छा नहीं लगता, क्योंकि भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु है, उसके प्रेम में (अन्यत्र) कहीं प्रेम नहीं होता; आसक्ति अवश्य आती है (परन्तु उसके प्रेम में कहीं चिपकता नहीं है)। आहा...हा...!

प्रश्न : आसक्ति, वह प्रेम नहीं।

समाधान : वह प्रेम मेरेपने नहीं है, इसलिए प्रेम नहीं है। वह आसक्ति का प्रेम है, मेरेपने का प्रेम नहीं है। आहा...हा...! इसलिए पहले कहा न? कमजोरी से अस्थिरता तो आती है।

जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है.... आहा...हा...! जिसे दूधपाक का स्वाद आया, उसे इस लाल ज्वार के छिलकों की रोटियाँ अच्छी नहीं लगती है।

मुमुक्षु : बिट्ठलगढ़ जैसा गाँव होवे (तो) वैसी (रोटियाँ) भी खाना पड़े।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : खाना पड़े परन्तु अच्छी नहीं लगती। भले लाल ज्वार की आवे, सफेद ज्वार की अपेक्षा लाल ज्वार में मिठास कम होती है। हमें तो सब अनुभव हो गया है। (संवत्) १९७६ की साल (की बात है) विरमगाँव के पास एक बिट्ठलगढ़ है। (गाँव में) बनियों के घर नहीं थे। विहार करके गये थे (यों तो) विरमगाँव जाना था, व्याख्यान में बहुत लोग आते थे, गाँव के लोग (और) दूसरे आस-पास के (गाँव के) बनिया (आते) परन्तु बनिया गाँव में नहीं और आहार को जायें वहाँ ज्वार की रोटियाँ! (वह भी) लाल ज्वार की, हाँ! लाल ज्वार की मिठास कम होती है, सफेद की मिठास अधिक (होती है)। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) जिसने आनन्द को चखा है, प्रभु आनन्दस्वरूप है, जिसने उसका स्वाद लिया, उसे जगत की किसी चीज में प्रेम नहीं लगता। आहा...हा...! **जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है, उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है,....** आहा...हा...! (उनमें) रस नहीं है। रस का अर्थ वहाँ एकाकारपना नहीं है। रस का अर्थ किया है न? नवरस! आहा...हा...! पहले अधिकार में — जीव अधिकार में (अन्त में) नवरस का (वर्णन) आता है न? एक ज्ञेयाकार में एकाकार हो जाना, वह रस है। ज्ञानी को ज्ञान में एकाकार हो जाना, वह रस है। अज्ञानी को ज्ञेय में एकाकार हो जाना, वह रस है; वह रस ज्ञानी को नहीं होता है। राग और पर में एकाकार होकर रस लेना, उस (प्रकार का रस ज्ञानी को) नहीं होता है। आहा...हा...!

बाह्य विषयों का रस टूट गया है,.... बाह्य विषय (अर्थात्) स्व-स्वभाव के अतिरिक्त जितने विकल्प और बाह्य ज्ञेय हैं, उन सबका रस टूट गया है। आहा...हा..! समकिती चक्रवर्ती को भी विषय की वासना आवे, परन्तु उस समय उसके अन्तर में मिठास और रस नहीं है। तथा तुरन्त ही दूसरे क्षण... आहा...हा...! ध्यान में बैठे और आनन्द का विशेष रस आवे!! आहा...हा...! कितनी शिथिलता रखकर राग में आ गये थे। आहा...हा...! वह राग (आने के) बाद अन्दर में ध्यान में जरा सा उतरते हैं... आहा...हा...! वहाँ तुरन्त ज्ञान-ज्ञाता और ज्ञेय एक होकर अकेले आनन्द का विशेष स्वाद आता है। विशेष अर्थात् (क्या)? विकल्प पर में था तब (भी) आनन्द तो है परन्तु विकल्प छूटकर

www.vitragvani.com

अन्दर में जाते हैं, तब जो आनन्द की धारा बढ़ती है... आहा...हा... ! वह आनन्द उसे अन्यत्र कहीं प्रेम नहीं लगाता। आहा...हा... !

कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। शुभराग से लेकर बाहर के (सभी) पदार्थ। ऐसे सुन्दर रूपवान शरीर हो, एक-एक अवयव देखो तो सुन्दर (दिखते हों); वह कोई भी चीज है, वह तो जड़ की दशा है। वह जड़ का रूप, जड़ का वह अस्तित्व, उस जड़ के अस्तित्व में कहीं रस नहीं लगता है। चैतन्य के अस्तित्व के रस में आया, उसे जड़ के किसी भी अस्तित्व की सुन्दरता में रस नहीं लगता है। आहा...हा... ! यहाँ तो मक्खन है ! अकेली चीज ऐसी है ! ऐसा स्वरूप है।

अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण.... ऐसा। (अर्थात्) जरा अस्थिरता है। **स्वरूप में नहीं रहा जा सकता....** स्वरूप ध्यान में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान एकरूप (हो जाये) ऐसी दशा (होती है)। ज्ञाता भी स्वयं, ज्ञेय भी स्वयं, ज्ञान स्वयं, यह भी अपेक्षा से समझने के समय (होता है)। ऐसी एकरूप दशा के अनुभव में नहीं रह सके, इसलिए उसे राग आता है। आहा...हा... !

अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता, इसलिए उपयोग बाहर आता है.... उपयोग बाहर आवे, हाँ ! विकल्प में आवे **परन्तु रस के बिना....** आहा...हा... ! बाहर से तो ऐसा लगे कि भगवान की भक्ति करे, स्तुति करे तो ऐसा मानो रस जैसा लगे, लो ! आहा...हा... ! तथापि उस भाव में रस नहीं है। आहा...हा... !

बहुत धीरज चाहिए और पुरुषार्थ का बदलाव भी बहुत चाहिए। पुरुषार्थ का पलटा पर तरफ है, वह पुरुषार्थ अन्दर में लगाना, वह कोई बात है ! वह कोई पढ़ने से आ जाता है ? आहा...हा... ! जो अनादि का अभ्यास है, उसमें से छूटकर स्व के अभ्यास में आना और फिर कोई जरा अस्थिरता आती है। वह यहाँ कहा न ? **उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना — सब निःसार,....** आहा...हा... ! **छिलकों के समान,....** (लगता है)। कस तो जो है, वह मेरा स्वरूप है। आनन्द, ज्ञान और प्रभुता, वह तो मैं हूँ। आहा...हा... ! और यह राग छिलके के समान है। (हिन्दी में) फोंतरा को क्या कहते हैं ? छिलका ! छिलका... छिलका ! आहा...हा... ! शकरकन्द में कहा था न ?

www.vitragvani.com

ऊपर के लाल-लाल छिलके (होते हैं और) अन्दर का शकरकन्द शक्कर की मिठास का पिण्ड है। शक्कर की मिठास का पिण्ड है। उस पिण्ड के समक्ष उसकी लाल छाल भी छिलके — जैसी दिखती है। आहा...हा...! वैसे आत्मा का पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, ध्रुव के ध्येय के कारण राग आदि और बाहर का संयोग-यह सब छिलके जैसा (लगता है)। आहा...हा...!

रस-कस शून्य हो.... रस और कस (अर्थात्) बाहर में रस भी नहीं और कस उसमें दिखता नहीं। कस है, वह तो यहाँ (आत्मा में) है। आहा...हा...! **रस-कस शून्य हो, ऐसे भाव से-बाहर खड़े हैं।** आहा...हा...!

शुद्ध चैतन्य का दल प्रभु परमात्मा पड़ा है, उस परमात्मा की एकाग्रता के कारण, स्वद्रव्य के आश्रय में पड़ा हुआ है, उसे परद्रव्य की कोई भी चीज ठीक नहीं लगती। परद्रव्य में रस नहीं लगता। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। जिसे आत्मा का रस है, उसे रागादि का रस उड़ जाता है और जिसे राग आदि का रस है, उसे आत्मा का रस नहीं है। आहा...हा...! चाहे तो दया पालने का भाव हो, वह भी राग है।

प्रश्न : स्व-दया क्या है ?

समाधान : स्व-दया तो राग की उत्पत्ति न होना है, वह 'अहिंसा परमोधर्म' है। रागमात्र परद्रव्य के लिए होवे अवश्य! जानपना भी करना चाहिए, छह काय के जीव, छह द्रव्य हैं, उन्हें जानें परन्तु जानने में वे तो ज्ञेयरूप से जाने परन्तु मुझे उन्हें पालना है, इस रूप से नहीं जाने। आहा...हा...! व्यवहार में तो ऐसा बोलने में आता है, दूसरे की दया पालो, व्रत में दूसरों की रक्षा करो, देखकर चलो। आहा...हा...! यह सब विकल्प हो, परन्तु जिसमें उसका रस नहीं है, उस रसरहित हों, ऐसे भाव से बाहर खड़े हैं। आहा...हा...!

जहाँ अन्तर की दृष्टि हुई है, वहाँ बाहर का रस उड़ जाता है — ऐसा कहते हैं और जिसे बाहर का, राग का, शुभराग का भी रस है, उसे चैतन्य का रस नहीं होता है। आहा...हा...! वह तो चैतन्य के रस का अनादर करता है। राग के रसवाला चैतन्य का अनादर करता है और चैतन्य के रसवाला राग का आदर नहीं करता है। (राग) होता है, होता है (परन्तु उसका आदर नहीं है।) आहा...हा...! ऐसी बात है। यह ३२ (बोल पूरा) हुआ।

www.vitragvani.com

'जिसे लगी है उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भील गता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है — ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है॥ ३३॥

'जिसे लगी है उसी को लगी है'..... आहा...हा...! **जिसे लगी है....** (अर्थात्) जिसे भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप की रुचि लगी है। आहा...हा...! जिसे पूर्ण स्वभाव पोषाता है, उसे लगी है (ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...! **'जिसे लगी है उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना।** जरा सी अपेक्षा से बात करते हैं। **वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।** आहा...हा...! **उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा।** (अर्थात्) यह शुभ है, इसे छोडूँ (— ऐसा करने जायेगा तो) दृष्टि पर के ऊपर जाएगी (और) शुष्क हो जाएगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। शुभाशुभभाव आयेंगे परन्तु इन्हें छोडूँ (— ऐसा करने जायेगा तो) वहाँ तो दृष्टि राग पर रह गयी। (दृष्टि) स्वभाव सन्मुख नहीं, वह तो राग के सन्मुख होकर 'इसे छोडूँ', (उसमें रूक गयी) आहा...हा...! यह (शुभाशुभ की) परिणति है, वह छूटेगी नहीं और इस ओर अन्तर में (स्वरूप में) आया नहीं (तो शुष्क हो जाएगा)। आहा...हा...! समझ में आया ? यह कहना चाहते हैं। **वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है;....** (कूटस्थ) अर्थात् एकरूप रहे। शिखर (अर्थात्) कूट, कूट (अर्थात्) बड़े पर्वत का (शिखर) एकरूप रहे — ऐसा नहीं। (वस्तु) परिणमती है। शुभाशुभ परिणाम (भी) होंगे।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : रात्रि में तो आप कहते थे कि वस्तु कूटस्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान को भी कूटस्थ कहते थे।

मुमुक्षु : वह तो पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह एकरूप रहती है इस अपेक्षा से ऐसा (कहा है)। यहाँ शुभाशुभपरिणाम कूटस्थ नहीं इसलिए (ऐसा कहा) पर्याय है, वह कूटस्थ नहीं इसलिए यहाँ शुभाशुभ के ऊपर जोर देना है। यहाँ तो पहले नीचे की बात है न! आहा...हा...! केवलज्ञान है वह तो एक न्याय से कूटस्थ है। (केवलज्ञान वह) है तो पर्याय, परन्तु ऐसी की ऐसी... ऐसी की ऐसी... ऐसी की ऐसी.... धारावाही अनन्त काल चलेगी। जैसे ध्रुव (एकरूप) है, वैसे ही वह (केवलज्ञान की) धारा, धारावाही ध्रुव चलेगी। आहा...हा...! इसलिए सबेरे ध्रुव कहा न! **ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते** सिद्ध ध्रुवपने को प्राप्त हैं। (सिद्धपना) है तो पर्याय (तथापि ध्रुव कहा है)। आहा...हा...! परन्तु वह स्थिति ऐसी की ऐसी रहनेवाली है; इसलिए उसे ध्रुवपने को प्राप्त ऐसा कहा है। आहा...हा...! बहुत पहलू, बहुत प्रकार! महान गहन गम्भीर तत्त्व है, प्रभु! जिसके ज्ञान का तल बहुत गहरा है! आहा...हा...! पर्याय को द्रव्य में ढालने पर, अवस्था को द्रव्य पर ले जाने से उसकी गहराई और गम्भीरता का पार नहीं! आहा...हा...! इसके अतिरिक्त जहाँ तक पर्यायदृष्टि है, वहाँ तक अज्ञान में रुका हुआ है। आहा...हा...!

राग आदि भाव, वह इसका अंश नहीं और राग आदि भाव इसका वंश नहीं। आहा...हा...! वंश तो प्रभु आनन्दस्वरूप है, वह इसका वंश है। दया-दान का राग -विकल्प आने पर भी, उसकी जाति और वंश नहीं है; इसलिए उसका इसे आदर नहीं है। आहा...हा...!

उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। क्या कहते हैं? (मुमुक्षु जीव) को स्वरूप की दृष्टि नहीं और शुभाशुभभाव होते हैं, उन्हें छोड़ने जाएगा (तो) अज्ञान हो जाएगा, वहाँ रूक जाएगा अथवा शुष्क हो जाएगा। सच्चा ज्ञान नहीं होगा और छोड़ने जाएगा, वहाँ शुष्क, रूखा ज्ञान हो जाएगा। आहा...हा...! जरा सी सूक्ष्म बात है। **इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना।** ऐसा कहना है। अर्थात्?

www.vitragvani.com

एकदम जल्दबाजी करके मानो अन्दर राग को छोड़ूँ, राग को छोड़ूँ — ऐसी बहुत जल्दबाजी नहीं करना।

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में पुरुषार्थ करके केवलज्ञान प्राप्त करता है — ऐसा भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्दर पुरुषार्थ में उतरने के लिए बात है परन्तु यहाँ (मुमुक्षु की भूमिका में) अधिक जल्दबाजी करने जाये, तोड़ने... तोड़ने... तोड़ने... (ऐसे जल्दबाजी करने जाये तो शून्य हो जाएगा)। नास्तिरूप (प्रयत्न) है न? अन्दर में जाये, उसका पुरुषार्थ तो अस्तिरूप है। आहा...हा...! राग और विकल्प को उतावल से तोड़ने जाएगा तो उलझ जाएगा। (विकल्प) टूटेगा नहीं। वस्तु की दृष्टि आयी नहीं, इसलिए धीरज रखकर काम लेना — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। किसमें एकदम जल्दबाजी नहीं करना? शुभाशुभराग आवे, उसे तोड़ने की जल्दबाजी नहीं करना। वहाँ तोड़ने की (बात में) तो नास्तिपना है, (इसलिए) पर के प्रति लक्ष्य जाता है। अन्दर पुरुषार्थ करना, वह तो अलग चीज है। आहा...हा...! अन्दर में तो, एकदम अन्दर उतरे और अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो परन्तु इस वस्तु का पता नहीं है, सत् की दृष्टि नहीं है और शुभाशुभभाव को एकदम जल्दबाजी होकर (छोड़ने जाने पर) उलझन करेगा और हटाने जाएगा तो हटेंगे नहीं और उलझन खड़ी होगी।

इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है;.... (लगता हो ऐसा) दिखता है। आहा...हा...! बाहर से शुभभाव में भी लगता है (परन्तु) **साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,....** आहा...हा...! यह शुभभाव — भगवान की भक्ति, श्रवण का उल्लास, सत् को कहने का भी विकल्प का भी उल्लास आवे... आहा...हा...! परन्तु गहराई में तो खटक रहा ही करती है कि यह (स्वरूप) नहीं है। यह (स्वरूप) नहीं है। आहा...हा...! यह उपदेश करने का विकल्प भी राग है और सुनने का (विकल्प) भी राग है। आहा...हा...! क्योंकि वस्तु तो वीतरागस्वरूप, चैतन्यबिम्ब है, उसमें यह विकल्प उठे (वह खटकता है)। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। इस भाव में (सन्तोष नहीं होता) भक्ति, वाँचन, श्रवण में उल्लास आवे, तथापि वहाँ सन्तोष नहीं होता। उसमें सन्तोष नहीं हो जाता कि हम प्रतिदिन आठ घण्टे पढ़ते हैं, दस घण्टे पढ़ते हैं; इसलिए हमें ज्ञान हो गया — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अद्भुत मार्ग भाई! **अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है....** मुमुक्षु जीव को वाँचन, श्रवण, भक्ति का उल्लास-विकल्प आवे परन्तु उसमें सन्तोष नहीं हो जाता कि मैंने बहुत किया! परन्तु (उसे ऐसी खटक रहती है कि) मुझे जो करना है, वह तो दूसरा है। आहा...हा...!

इस राग के विकल्प से भिन्न निर्विकल्प प्रभु है, वहाँ स्थिर होना, जाना है। आहा...हा...! दो, पाँच, दस, पच्चीस अपवास किये और सन्तुष्ट (हो जाए कि) ओ...हो...! मानो तपस्या हो गयी! ऐसा रहने देना, सन्तुष्ट मत होना। यह भी एक राग है, बापू! तुझे आत्मा क्या चीज है? (इसका पता नहीं)। वह तो आनन्द का नाथ है, ज्ञान का सागर है। यह अपवास का विकल्प उठता है, वह राग है। आहा...हा...! परन्तु उस समय कदाचित् (कषाय मन्द) की हो (तो भी) सन्तुष्ट मत हो जाना कि ठीक! मेरे यह तप हो गया, ऐसा है।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा लिखा है कि उपवास करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : (परन्तु) करना वह किसे? अन्तर आनन्द का भान है, उसके समीप जाने के लिए इच्छा तोड़ना — ऐसा उसका अर्थ है। इच्छा तोड़ना। अधिक उपवास करने से होता होवे तो ऐसा कहते हैं कि भगवान ने तो छठ ही किया था, ऋषभदेव भगवान ने! क्यों एक साथ सब नहीं किया? आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। वहाँ रखा है- मोक्षमार्गप्रकाशक में!

अधिक उपवास करे, इसलिए तपस्या कहलाये — ऐसा नहीं है। तपस्या तो राग से रहित, विकल्प उठे, उससे रहित चैतन्य का सम्यग्दर्शन हुआ हो, उसकी — आनन्द की शोभा पर्याय में बढ़े, जैसे सोने को गेरु लगाते हैं (और सोना) शोभता है, वैसे प्रभु आत्मा **विजयते तपते इति तपः** अतीन्द्रिय आनन्द से तपे और शोभे, उसे तप कहते हैं। यह वर्षी तप और अमुक और यह सब तो लंघन है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। बहिनें

www.vitragvani.com

प्रसन्न हो जाएँ, वर्षीतप करे (तो) बस! और वर्षीतप किया हो तो ब्रह्मचर्य पाले (फिर) उजवावे, फिर दो-पाँच हजार, दस हजार खर्च करके... आहा...हा...! फिर वर्षीतप के पारणे में जरा अट्ठम करे, फिर सौंठ लगावे और अमुक करे और ढोंग करे! यह मानो कि ओ...हो...! कठिन तप किया! यह सौंठ-बौंठ लगाते हैं न! (इसलिए) दूसरों को दिखता है। दूसरों को दिखता है कि इन्हें कुछ है, ऐसा करके भी लोग महिमा करते हैं, मर गया, अब सुन न! और गीत गाते हैं। अन्तिम दिन बाँटते हैं, क्या कहते हैं (उन्हें) ?

मुमुक्षु : नेग बाँटे, नेग बाँटे — साँझी करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नेग बाँटे, नेग (और) गाये। गाये उसे क्या कुछ कहते हैं। भाषा होती है, (कुछ तुम्हारी)।

मुमुक्षु : साँझी करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : साँझी... साँझी... (करे)। शाम को एकत्रित हो और गीत गाये फिर कुछ बाँटे, कटोरियाँ, कटोरियाँ, लोहे की या स्टील की, क्या कहलाती है। छोटी कटोरियाँ, बस! प्रसन्न... प्रसन्न... हो जाये। धूल में भी (धर्म) नहीं है। अब सुन न! यह तो सब जड़ की क्रियाएँ हैं और उनमें तुझे कदाचित् शुभराग हुआ, वह तो पुण्य-राग है। आहा...हा...! उस समय सन्तुष्ट मत हो जाना कि मैंने बहुत किया! बहुत किया, आहा...हा...! ऐसे गृहस्थ की हो तो भाई की जयसिंह उधमशी इनके मंगलभाई का बहू ने किया था, वर्षीतप पोणे लाख खर्च किया था,... अहमदाबाद! पालीताणा, पोणे लाख रुपये खर्च किये। धामधूम, धामधूम (करे)! कहीं धूल भी नहीं, सुन न! पचहत्तर हजार क्या तेरे (करोड़ खर्च कर न!)... अरे! तेरी क्रिया में अभी शुभराग करता हो तो वह राग है, बापू! मान के लिए और बाहर के लिए करता हो तो पाप है। आहा...हा...! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई!

जिनेश्वरदेव कहते हैं कि भाई! तुझे बाहर में उल्लास दिखे; भक्ति, वाँचन, श्रवण आदि का भाव आवे, परन्तु उसमें सन्तुष्ट मत हो जाना, क्योंकि वह भी राग है। आहा...हा...! उस राग से भिन्न होकर अन्दर आनन्द का अनुभव होना, वह धर्म है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, वह धर्म है। तेरे वर्षीतप और लंघन किया, वह सब धर्म नहीं है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

कहो, जयन्तीभाई! यह वर्षीतप करते हैं या नहीं? तुम्हारे घर में कभी हुआ है या नहीं? नहीं हुआ, ठीक! (वर्षीतप) करे, फिर उत्सव करे और फिर गीत गाये, शाम को एकत्रित होवे ओ...हो...! (हो जाये) जरा मुँह... और ऐसा करे (फिर) हर रोज खाये, ठीक से पेट भरकर खाये तब मुश्किल से दूसरे दिन तो पचे, तब अभी पूरा अपवास हो! खोपरा पाक, धीखड़ा पाक (खाये)! इतना खाये, अच्छा घर हो तो पाक करके रखा हो, और हमेशा उसे थोड़ा सा खाने को दे। आहा...हा...!

आ...हा...! **मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है....** आहा...हा...! करने का तो प्रभु! यह राग का विकल्प है, उससे भिन्न पड़ना, निर्विकल्प अनुभव करना, वह करना है। आहा...हा...! करने का वह और धर्म वह है; बाकी तेरे अपवास-वपवास किया और पैसा खर्च किया — लाख-दो लाख और अंगिया की (वह कोई धर्म नहीं है) आहा...हा...! यह श्वेताम्बर में फिर भगवान को अंगी रचते हैं। आहा...हा...! इसमें फिर इत्र डालते हैं! कोट, पतलून पहनावे और इत्र डालें! (यह सब) पाप है। इत्र की एक बिन्दु में कितना (हिंसा का) पाप है। आहा...हा...!

आ...हा...! यहाँ कहते हैं कि ऐसे शुभभाव में (कदाचित्) आ जा, परन्तु यदि मुमुक्षु हो, सत् का जिज्ञासु हो तो इतने में से सन्तुष्ट नहीं हो जाएगा कि मुझे इतना वाँचना आया, इतना पढ़ना आया, इतना तप करना आया, इतनी भक्ति करना आयी, इतने मन्दिर बनाये, इसलिए कुछ धर्म हुआ। (परन्तु) तीनों काल में उसमें कहीं धर्म नहीं, वह तो सब राग मन्द करे तो शुभभाव है। आहा...हा...!

मुझे बहुत करना है, वह बाकी रह जाता है – **ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है,....** देखो! गहरा खटका (रहा ही करता है)। अभी भले धर्मी नहीं हुआ परन्तु धर्म की जिज्ञासा है। मुमुक्षु है न (इसलिए) उसकी गहरी खटक रहा ही करती है **इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता;....** आहा...हा...! पढ़ना आया, ज्ञान हुआ, शास्त्र का जानपना (हुआ) सुननेवाले लोग प्रसन्न हों और उसमें सन्तुष्ट हो जाए, वह तो मिथ्यात्व

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। आहा...हा...! कठिन बातें हैं। बापू! यह तो अन्दर वीतरागमार्ग है। आहा...हा...!

अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती,.... आहा...हा...! ऐसा करते-करते भी ज्ञायक चीज चैतन्यवस्तु है, भगवान पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञायक चीज है, जागता जीव खड़ा है न? आहा...हा...! वह हाथ नहीं आती, **इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर....** धीरज रखना, धीरज रखना, बापू! धीरज रखकर अन्तर में जाने का प्रयत्न करना। आहा...हा...! आहा...हा...! **इधर-उधर न जाकर, वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।** आहा...हा...! (मुमुक्षु को) शुभभाव में उल्लास दिखाई दे, तथापि सन्तुष्ट नहीं और उसे (शुभाशुभभाव को) छोड़ने जाये, उस पर दृष्टि हो और छोड़ने जाये तो भी (वह) वस्तु छूटेगी नहीं। आहा...हा...! कठिन काम! इसमें बहुत स्पष्ट कथन है। आहा...!

मार्ग ढूँढ़ निकालता है। देखा! ऐसी उलझन में भी वस्तु की ओर का झुकाव करके (मार्ग) ढूँढ़ निकालता है। शुभभाव हो और आत्मा झट नहीं मिले, इसलिए उलझन हो परन्तु उलझन में से अन्दर में जाने के लिए प्रयत्न करके उलझन को टाल देता है। आहा...हा...! ऐसा कहते हैं। है न (अन्दर)? उलझन में रहे नहीं — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! मार्ग ढूँढ़ लेता है।

मुमुक्षु की बात में पहले से इतनी बात आयी है। (मुमुक्षु) बाहर के काम में-शुभभाव में आवे — वाँचन में भक्ति में, देव-गुरु-शास्त्र की महिमा में उल्लास दिखाई दे, तथापि वहाँ सन्तुष्ट नहीं हो जाता, क्योंकि वह तो शुभभाव है। मुझे करना है, वह तो बाकी रह जाता है — ऐसी खटक तो उसके भाव के समय भी रहनी चाहिए और जल्दबाजी करके छोड़ने जाएगा और दृष्टि उस तरफ ढलेगी नहीं तो शुष्क हो जाएगा। आहा...हा...! है न (अन्दर)? शुष्क हो जाएगा और शून्य हो जाएगा। राग मिटेगा नहीं, स्वभाव की तरफ ढल नहीं सकेगा, फिर शून्य जैसा लगेगा। आहा...हा...! इसलिए धीरज से राग आदि के काल में, शुभ में सन्तुष्ट न होकर, अन्तर में खटक रखना कि मुझे करना तो अन्दर में जाने का है, (वह है)। उसका सन्तोष करना और वहाँ जाने का प्रयत्न करना। तेरी उलझन वहाँ मिट जाएगी।

(यह ३३ बोल पूरा हुआ।)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए। उसे सुख का वेदन चाहिए है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अन्दर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता॥ ३४॥

जेठ शुक्ल ९, गुरुवार, दिनाङ्क १५-०६-१९७८
प्रवचन-१० वचनामृत- ३४-३६

(बहिनश्री के) वचनामृत, पृष्ठ १२ — ३४ वाँ बोल है। ३३ बोल हो गये। ३४ से है न?

मुमुक्षु को.... पहली बात यह (ली) है। (मुमुक्षु को अर्थात्) जिसे सत्य समझने की और सत् जानने की जिज्ञासा है, उसे यहाँ पहले मुमुक्षु कहा गया है। यह वह चीज क्या है? पूर्ण शुद्ध और पूर्ण आनन्द (स्वरूप है), जिसमें विकार का अंश नहीं, वह चीज क्या है? ऐसी जिसे जानने की जिज्ञासा हो, ऐसे **मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है,....** (अर्थात् कि स्वरूप) ज्ञात नहीं होता, इसलिए जरा उलझता है कि यह क्या है? इसमें कुछ ज्ञात नहीं होता। बात तो ठीक है न? चैतन्यस्वरूप है, आनन्द का भरपूर समुद्र है, उसकी जिसे जिज्ञासा है, उसे प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है। (मुमुक्षु) उलझता है, झट न पकड़ में आये, इसलिए उलझता है।

परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए। ऐसी उलझन नहीं करता (अर्थात्) मूढ़ता हो जाये — ऐसी उलझन नहीं करता। उलझे तो उसे धीरे

www.vitragvani.com

से समझने के लिए स्वरूप की ओर का प्रयत्न करना परन्तु उलझन करके उलझ जाना (— ऐसा नहीं करना)।

मुमुक्षु : उलझ जाये तो वह छोड़ दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह छोड़ दे, इसका अर्थ ही कि नहीं छोड़ना। उलझ जाये, इसलिए वस्तु को समझने के लिए प्रयत्न छोड़ देना — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अनादि काल का नहीं समझ में आया; इसलिए जरा देर लगे। इसीलिए कहा है न! एक बार छह महीने तो अभ्यास कर। यह आया है न? वैसे तो अन्तर्मुहूर्त में हो सकता है परन्तु धीरज होने के लिए छह महीने उसका अभ्यास तो कर, उतावल मत कर। आहा...हा...!

उसे सुख का वेदन चाहिए है.... सुना है, इसलिए उसे ऐसा हो जाता है कि मेरा आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है और इतना-इतना सुनते हैं, फिर भी सुख का वेदन तो आता नहीं। ठीक है न? आहा...हा...! **सुख का वेदन चाहिए है....** (अर्थात्) आनन्द का वेदन चाहिए है। राग और पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप हैं — ऐसा सुना है; इसलिए ख्याल में उस प्रकार का लिया, परन्तु वह (राग) दुःखरूप है और उसके स्थान में आनन्द चाहिए (है परन्तु) वह सुख का वेदन नहीं होता, (इसलिए) वहाँ से उसे उलझन आती है। आहा...हा...! **सुख का वेदन चाहिए है, वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है,....** आहा...हा...! जिज्ञासु को राग में रहना पोसाता नहीं; सुख का वेदन चाहिए, वह मिलता नहीं। आहा...हा...! बात तो बहुत सरस है! ठीक है चन्दुभाई? कहाँ गया तुम्हारा...? कहो, समझ में आया? आहा...हा...!

बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। (उलझ कर) छोड़ नहीं देता — ऐसा कहते हैं। धीर होकर, धीरे... धीरे... अन्तर में जाने का प्रयत्न करता है। बाहर में जाने से हट जाता है, आहा...हा...! (अर्थात् कि) दुनिया में प्रसन्न होऊँ, दुनिया को प्रसन्न करूँ और दुनिया से प्रसन्न होऊँ, यह छोड़ देता है। आहा...हा...! धीरज से अन्तर का प्रयत्न करे (तो) ढूँढ़ ले। (और) उलझन में से भी मार्ग को ढूँढ़ लेता है। उलझन में उलझता नहीं है। आहा...हा...! **जितना**

www.vitragvani.com

पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है। (अर्थात्) जितना स्वभावसन्मुख (होने का) पुरुषार्थ उठाये, उतना पुरुषार्थ कार्य करता है। पुरुषार्थ थोड़ा उठाये और कार्य अधिक चाहे तो ऐसा नहीं मिलता। आहा...हा...! अर्थात् अन्दर राग का जो पुरुषार्थ रुचता है, वेदन में आता है और इस आनन्द का वेदन है नहीं, इसलिए वह उलझता नहीं। (सुख का वेदन) नहीं मिलता (— ऐसा करके) छोड़ नहीं देता। आहा...हा...! (मुमुक्षु को ऐसा ही होता है कि) इसमें मेरे पुरुषार्थ की ही कमी है, उसे समझने के लिए जितना पुरुषार्थ चाहिए, उतना कारण यदि दिया हो तो कार्य हुए बिना नहीं रहे। आहा...हा...! ऐसी चीज है।

आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। झटपट अर्थात् सहजरूप से जो होना चाहिए, उसके (बदले) किसी विकल्प के हठ से, (ऐसा करे कि) ऐसा ही करना है... ऐसा ही करना है — ऐसी हठ वहाँ काम नहीं आती। आहा...हा...! बहुत सरस! साधारण लोगों को भी किस शैली में (भूमिका में) खड़ा हो, उसे कैसे करना? यह बात है। आहा...हा...! **आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है।** आहा...हा...! पुरुषार्थ इतना होवे नहीं और झटपट करना है — ऐसा माने तो वह नहीं हो सकता। आहा...हा...!

स्वभाव में हठ काम नहीं आती। प्रभु! आत्मा चिदानन्द प्रभु, सहज स्वरूप प्रभु है, उसमें हठ काम नहीं आती। आहा...हा...! आहा...हा...! आगमज्ञान हो, ग्यारह अंग पढ़े तथापि (यथार्थ) मुमुक्षु की बात ली है, हाँ! वहाँ (मात्र) पढ़ गया (उसकी नहीं है)। जिसे सत्य चाहिए, उसकी बात ली है। आहा...हा...! वह आगमज्ञान से सन्तोष नहीं मान लेता क्योंकि उसे सत्य चाहिए। आहा...हा...! और आगमज्ञान, वह कहीं ज्ञान नहीं है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : वह बहिर्लक्ष्यी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बहिर्दृष्टि का (ज्ञान) कुछ ज्ञान नहीं है, इसलिए उसे अन्दर में जाने के लिए वहाँ रुकना नहीं (परन्तु) धीरे-धीरे अन्तर में जाने का पुरुषार्थ करना। आ...हा...!

www.vitragvani.com

स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है,.... आहा...हा...! शुद्ध चैतन्यस्वभाव का जहाँ महात्म्य और महिमा (आयी थी), यह तो कौन क्या चीज है! एक (समय की) पर्याय की आड़ में भगवान पूर्ण स्वरूप दिखता नहीं और आनन्द आता नहीं तथा जिज्ञासा (सुख के वेदन की) है। तो (यहाँ कहते हैं) सहज स्वभाव है, बहुत हठ नहीं करना। आहा...हा...! स्वभाव तरफ (जाने का) प्रयत्न जारी रखना।

स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता। जल्दबाजी (होती) तो अवश्य है परन्तु व्यर्थ की जल्दबाजी से काम नहीं होता। आहा...हा...! अन्दर में जाने के लिए जितना पुरुषार्थ चाहिए, उतना नहीं करे और व्यर्थ जल्दबाजी करे तो **व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता।** बहुत जल्दबाजी करने जाये तो सहजपना तो रहे नहीं और वस्तु तो सहज है। आहा...हा...! बहुत समझने जैसी बात है। (मुमुक्षु को ऐसा होता है कि) मेरे प्रयत्न में कहीं कमजोरी है, किसी जगह कहीं वीर्य (पुरुषार्थ) अटक गया है; इसलिए मुझे अन्तर में ढलकर पुरुषार्थ को विशेष जागृत करना होगा — ऐसा करना, परन्तु हठ करके (ऐसा माने कि) नहीं, (मुझे तो अभी ही चाहिए) तो वहाँ हठ काम नहीं आती। यह तो अन्दर सहज स्वभाव है। आहा...हा...!

ऋषभदेव भगवान, तीन ज्ञान (लेकर आये थे और) तिरासी लाख पूर्व (वर्षों तक गृहस्थदशा में) रहे! (परन्तु) चारित्र नहीं आया! तिरासी लाख पूर्व! एक पूर्व में सत्तर लाख और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में (इतने वर्ष होते हैं)। ऐसे तिरासी लाख पूर्व (वर्षों तक गृहस्थदशा में रहे) और यह भी पता है कि हम इस भव में केवल (ज्ञान) पानेवाले हैं। आहा...हा...! तथापि सहजरूप से पुरुषार्थ हो, तत्प्रमाण काम करते हैं। आहा...हा...! ऐसा नहीं कि भाई! हम तीर्थंकर होनेवाले हैं और केवलज्ञान पानेवाले हैं, समकित लेकर तो आये हैं, इसलिए झट करके अब अन्तर्मुहूर्त में चारित्र क्यों नहीं आवे? ऐसी हठ काम नहीं आती — ऐसा (कहना है)। आहा...हा...!

भरत चक्रवर्ती! ७७ लाख पूर्व तक तो चक्रवर्ती पद के अतिरिक्त रहे और समकित सहित छह लाख पूर्व चक्रवर्ती पद में रहे परन्तु चारित्र नहीं हुआ। शान्ति रखनी चाहिए।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : पुरुषार्थ की कमी हो तो कहाँ से हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरे पुरुषार्थ की कमी है, अन्तर में जितना डुबकी मारने का पुरुषार्थ चाहिए, उतना कम है — ऐसा करके, वहाँ हठ नहीं करना कि बस! अन्तर्मुहूर्त में ही, आज ही मुझे केवलज्ञान लेना है। ऐसा नहीं चलता, यह कहते हैं। आहा...हा...!

बाबा माँगने आवे तब कोई कहता है न? 'सहज मिला सो दूध बराबर'। वे बाबा माँगने आते हैं न माँगने? वे ऐसा बोलते हैं, हम दुकान पर बैठे हों तब बहुत देखे हैं। वहाँ तो हमारे प्रतिदिन एक बाबा तो आवे ही। उस गाँव में-पालेज में रिवाज (था)। और इस प्रकार कोई व्यक्ति दे, इसलिए इस प्रकार ऐसा पैसा उगाह ले जाये, उस समय, हाँ! सत्तर वर्ष पहले! फिर वे बोले 'सहज मिला सो दूध बराबर, माँग लिया सो पानी; खींच लिया सो रक्त बराबर, गोरख बोले वाणी' उस समय (ऐसा बोलते थे)। आहा...हा...! 'सहज मिला सो दूध बराबर...' ऐसा वे लोग बोलते थे, अर्थ को तो कहाँ कोई समझता है? 'माँग लिया सो (पानी)' माँगे कि मुझे दो, दो.... 'खींच लिया सो (रक्त बराबर)' (अर्थात्) जबरदस्ती लाओ... लाओ... आहा...हा...!

एक फकीर आया था। गाँव का था फिर तो गाँव में रहता था (इसलिए) परिचित हो गया था। स्त्री थी, लड़के थे परन्तु हमारे शिवलालभाई हठ चढ़ गये। वह कहे झट पैसा दो! (उन्हें देने में) देर लगी (और इन्होंने) स्वयं का एक वस्त्र जलाया, कुछ हठ चढ़े थे, कारण कुछ भी हो। (पहले) एक पैसा (माँगा) फिर चार पैसा माँगने लगा, अन्त में वस्त्र जलाया तो आठ आना देना पड़ा। पुराना कपड़ा हो वह जलाया हो। उस दिन की बात है, शिवलाल भाई थे। वह फकीर ऐसा था, फिर हठ चढ़ गया। पहले पैसा माँगता था, फिर कहता है अब चार पैसे के बिना नहीं उठूँगा, दो आने बिना नहीं उठूँगा, (ऐसे) करते-करते वस्त्र जलाया! लाओ आधा रुपया! अन्त में आठ आने देने पड़े। पालेज (में) दुकान पर यह बनी हुई बात है।

यहाँ कहते हैं **व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता। व्यर्थ** शब्द क्यों प्रयोग किया है? कि अन्दर सच्चा पुरुषार्थ करे तब तो सहज काम होता है। अन्तर में जाने के लिए सच्चा पुरुषार्थ करे तब तो काम होता है, परन्तु व्यर्थ जल्दबाजी करके हठ से काम करने

www.vitragvani.com

जाये (तो) वह नहीं मिलता। राग में-हठ में आकर (ऐसा कहे कि) बस! आज ही केवलज्ञान लेना है, यह चारित्र लेना है... ऐसा नहीं चलता। आहा...हा...! समझ में आया?

कितने ही कहते हैं न कि समकित हुआ और चारित्र न हो, तब तो फिर हो गया...! (परन्तु ऐसे चारित्र) नहीं होता। करोड़ों-अरबों वर्ष नहीं हुआ। आहा...हा...! और किसी ने छठ किया और किसी ने छह महीने (उपवास किये)। ऋषभदेव भगवान ने छह महीने के उपवास किये हैं, महावीर ने छठ किया था, लो! यह तो जैसे सहजरूप से जो पुरुषार्थ आवे, तदनुसार जाने। (पहले तीर्थंकर ने) छह महीने के उपवास (किये थे), फिर दूसरे तीर्थंकर कहें हम भी छह महीने के उपवास करेंगे — ऐसा नहीं होता। सहजरूप से जो विकल्प उठा हो, उस अनुसार पुरुषार्थ से काम करते हैं। व्यर्थ की उतावल काम नहीं करती — ऐसा कहते हैं। यह सब बहुत समझने जैसी बात है। आहा...हा...! ३४ (बोल पूरा हुआ)।

अनन्त काल से जीव को अशुभभाव की आदत पड़ गई है, इसलिए उसे अशुभभाव सहज ही है और शुभ को बारम्बार करने से शुभभाव भी सहज हो जाता है परन्तु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है, उसका ख्याल जीव को नहीं आता, खबर नहीं पड़ती। उपयोग को सूक्ष्म करके सहज स्वभाव पकड़ना चाहिए॥ ३५॥

३५, **अनन्त काल से जीव को अशुभभाव की आदत पड़ गई है,....** आहा...हा...! मिथ्याश्रद्धा और क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय-वासना के अशुभभाव की तो अनादि से टेव पड़ गयी है। यह अनादि का अभ्यासी है। **सुदपरचिदाणुभूदा।** आहा...हा...! **अनन्त काल से जीव को अशुभभाव की आदत पड़ गई है,....** कहा नहीं? **सुदपरचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।** (समयसार की) चौथी गाथा है न? सर्व जीवों ने इच्छा और इच्छा का भोगना-यह बात सुनी है, परिचय में आयी है और अनुभव में आ गयी है। वहाँ 'सर्व जीव को' ऐसा कहा है।

एकेन्द्रिय जीव जो अभी मनुष्य नहीं हुआ, उसे भी ऐसा कहा **सुदपरचिदाणुभूदा**

www.vitragvani.com

सव्वस्स वि सर्व जीव-ऐसा शब्द पड़ा है। कितने ही तो अभी त्रस भी नहीं हुए। तथापि उन्हें कैसे है ? कि उन्हें भी वहाँ राग की अनुभवदशा वर्तती है; इसलिए उन्होंने राग सुना है, परिचय में आया है और वेदन में है। एकेन्द्रिय निगोद के जीव भी अभी त्रस नहीं हुए तो भी **सुदपरचिदाणुभूदा।** जिन्हें वेदन में राग का ही अकेला विकार है; इसलिए श्रुत परिचय उसमें आ गया। उसका परिणाम का वेदन है, वह तो करता ही है; इसलिए जीव को करना और वेदना वह तो अनादि की टेव है। आहा...हा... ! इसलिए उसे अशुभभाव सहज है, सहज हो गया है। मानो मेरी चीज ही हो न! आहा...हा... ! विषय-वासना का रस उसे सहज हो गया है। आहा...हा... ! वह आदत में आ गया है।

और शुभ को बारम्बार करने से शुभभाव भी सहज हो जाता है.... शुभ भी अनन्त बार किया है (इसलिए) उसे टेव हो गयी है। एकेन्द्रिय निगोद में भी शुभ है, सदा है। आहा...हा... ! अभी कभी त्रस नहीं हुए, ऐसे निगोद के जीवों को भी क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ, क्षण में शुभ (हुआ ही करते हैं)। आहा...हा... ! ऐसा शुभभाव उन्हें सहज हो गया है। सहज हो गया अर्थात् बस ! हुआ ही करता है। आहा...हा... ! स्वभाव है — ऐसा नहीं परन्तु विकार उसे सहज हो गया है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

परन्तु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है, उसका ख्याल जीव को नहीं आता,.... आहा...हा... ! बाहर की सामग्री तो अधिकरूप दिखायी देती है, इसलिए वहाँ रुका हुआ है परन्तु वह तो इसका अशुभभाव है, उसकी टेव पड़ गयी है। आहा...हा... ! पाँच, पच्चीस लाख हो, व्यवस्थित काम लेना, ऐसा दुकान करनी, ऐसा करना-वैसा करना, इतने नौकर रखना — ऐसा अशुभभाव तो इसे सहज हो गया है, टेव पड़ गयी है। आहा...हा... ! सबेरे उठे तो सीधा दुकान पर जाता है, इसका ऐसा करना, इसका वैसा करना, इसका ऐसा करना... (ऐसा) यह तो आदत में आ गया है। काम कौन कर सकता था ? आहा...हा... !

'मैं करूँ। मैं करूँ - यही अज्ञान है' यह तो भगवान ! आत्मा मानता है — ऐसा कहना है। यहाँ तो यह लेना है न ? मैंने किया ! इस दुकान को मैंने व्यवस्थित किया; यह व्यापार बराबर मैंने धार पर लगाया, मैंने दुकान में बारह महीने ध्यान रखा, यह मैंने ठीक

www.vitragvani.com

किया, लो! भगवानदास नहीं थे? साधारण थे। बीड़ीवाले, करोड़पति साईकिल (लेकर) स्वयं गाँव में अकेले जाते, ऐसे और वैसे करते-करते पैसे इकट्ठे हो गये। साईकिल (लेकर) जाये और गाँव में जाये, तम्बाकू (बेचे) यह करो, अमुक करो... यह तो अशुभभाव की टेव पड़ गयी है, कहते हैं। वह क्रिया कर सकता है, यह बात तो है नहीं। आहा...हा...!

आहा...हा...! पुत्र के विवाह का प्रसंग हो तो ऐसे पागल हो जाये!

मुमुक्षु : वह कहीं बारम्बार थोड़े ही आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहीं बारम्बार थोड़े ही आनेवाला है। विचार में धुन चढ़ जाये, इसका ऐसा करना है, इसका ऐसा करना है, इसका ऐसा करना है। आहा...हा...! फिर जाति में घड़े बाँटते हैं अमुक ऐसा करना है बेड़ा, समझ में आता है? बेड़ा! ताँबे का, पानी भरने का होता है न? पुत्र का विवाह करे न? (इसलिए) जाति में बाँटे। पैसेवाला व्यक्ति होवे न? आहा...हा...! करते हैं न, ऐसा करते हैं।

भाई की बात नहीं थी? जेठालाल संघवी! एक का विवाह था तो जाति में घड़े बाँटे। लोहे के-पीतल के प्रत्येक घर में (बाँटे)। उनके लड़के की बहू की जब प्रसूति आयी तब पैसे नहीं थे (जेठालाल संघवी) कहता है कि यह मेरे पास आया (और कहा) भाई! (मेरे) पास पैसे नहीं हैं (और) बहू को हॉस्पीटल में रखना है। कहो, जिसके विवाह में जाति में पीतल के-ताँबे के घड़े बाँटे, घड़े समझे न? यह पानी भरने के बर्तन। उसे प्रसूति के समय किसी से पैसे माँगने पड़े! पैसे समाप्त हो गये। आहा...हा...! यह तो...... आहा...हा...! घटती-बढ़ती छाया है, इसमें इसे मुश्किल हो जाता है। आहा...हा...! दो हजार घर, प्रत्येक घर घड़ा, एक-एक घड़े की पच्चीस-पच्चीस रुपये की कीमत! आहा...हा...! पचास हजार बाँटे, अमुक हुआ.... उसमें क्या भला हुआ? धूल है। आहा...हा...! यह तो उसमें आदतन हो गया है, कहते हैं और शुभ में भी आदतन हो गया है - ऐसा यहाँ तो कहा है। मन्दिर बनाना और भक्ति करना, पूजा करना, और शास्त्र बनाना... आहा...हा...!

मुमुक्षु : मन्दिर तो हमने भी बनाये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनावे? रामजीभाई बनावे - ऐसा कहूँ मैं तो, उनने मुझसे

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पूछा कि एक पुस्तक रखना चाहिए या ऐसा मकान (है)। अमुक यह है, अमुक है... मैंने कहा। भाई! मैं तो किसी को कहता नहीं, रामजीभाई कहते। वैसे तो प्रसन्न होता था। ओ...हो...! यह सब क्या है यह? इस जगह यह है, इस जगह यह है.... लिखा है कहीं? होगा, अपने को पता नहीं। कहा — हमने तो किसी को कुछ करने को कहा नहीं कि मकान बनाओ, हो गया है, होता है। आहा...हा...! ऐसा करना चाहिए, एक पुस्तक (परिचय पुस्तिका) रखना चाहिए, जिससे (दर्शन करने) आया हो उसे ख्याल आवे कि यह इतनी कीमत का है और यह हुआ है.... परन्तु यह भी शुभभाव की एक टेव पड़ जाती है, कहते हैं। आहा...हा...!

परन्तु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है.... वह (शुभ-अशुभभाव) सहज नहीं है, कृत्रिम है, उसकी तुझे टेव पड़ गयी... आहा...हा...! ऐसा कहते हैं। कृत्रिम है, नया होता है, मूलस्वभाव में नहीं और नया कृत्रिम होता है, उसकी परम्परा भी नयी करे तो होती है, वह परम्परा चले, ऐसी कोई चीज नहीं है। आहा...हा...! तथापि कहते हैं, इसकी-शुभभाव की टेव पड़ गयी है। इसका ऐसा करना और इसका ऐसा करना, शास्त्र रचना, अमुक करना, फिर ऐसा (करना)। आहा...हा...! सत्ताईस लाख का मकान (परमागम मन्दिर) ऐसे देखे तो लोगों को ऐसा लगता है कि आहा...हा...! सोनगढ़ छोटा गाँव और यह क्या! यह तो जाननेवाले को जानना होगा और होनेवाला होगा (वह) होगा, बापू! इसे करे कौन? आहा...हा...!

मुमुक्षु : आपके पुण्य प्रताप से होता है.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें हैं, पुण्य की बातें हैं। आहा...हा...!

अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है, उसका ख्याल जीव को नहीं आता,.... त्रिकाली आनन्द का कन्द प्रभु सहज है, जो नया करना नहीं और जिसमें से कुछ जाता नहीं। आहा...हा...! जो चीज अन्दर है, उसमें कुछ नया करना नहीं पड़ता, वह तो है। आहा...हा...! उसमें से कुछ जाता भी नहीं। आहा...हा...! नया करना पड़ता नहीं और कुछ जाता नहीं, वह तो है। आहा...हा...! अरे...रे...! मुद्दे की रकम रह गयी और ऊपर की सब बातें की! आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है.... सहज है, नया नहीं करना पड़ता तथा उसमें हीनता नहीं होती, इसलिए पूरा करना पड़े (ऐसा नहीं है)। पूर्ण चीज है, उसमें न्यूनता नहीं होती, घटता नहीं कि उसे बढ़ाना पड़े। वह तो है — ऐसा का ऐसा है। आहा...हा...! आहा...हा...! शुभ और अशुभ की टेव पड़ गयी है।

सुदपरचिदाणुभूदा काम-भोग-बन्धन की कथा। काम अर्थात् इच्छा का भोगना। **एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥** पर से भिन्न और स्वभाव से अभिन्न — इस बात की ओर का इसे ख्याल नहीं आता। यह चीज इतनी है, जिसमें कुछ नया करना नहीं पड़ता; नया करे तो वह हो, जिसमें घटेगा, इसलिए कुछ पुष्टि देनी पड़े तो होवे (ऐसा नहीं है)। आहा...हा...! जिसमें घट-बड़ नहीं है, ऐसा प्रभु का त्रिकाली सहज स्वभाव... आहा...हा...! उसका इसे ख्याल नहीं आता है। जो वास्तविक चीज है, वास्तविक अस्ति है, जिसकी उत्पत्ति (तथा) व्यय है नहीं। आहा...हा...! उत्पत्ति और व्यय तो पर्याय में है। आहा...हा...! त्रिकाली सहज स्वभाव, अतीन्द्रिय अमृत के सागर से पूर्ण भरा हुआ भगवान है, उसे शुभ-अशुभभाव की टेव के कारण यह ख्याल में नहीं आता। आहा...हा...!

शुभ और अशुभ के परिचय के कारण.... 'श्रुत परिचित' कहा न? (समयसार) चौथी गाथा। सुना, यह तो ठीक, परिचय बहुत किया। उसका समस्त प्रकार से परिचय। समस्त प्रकार से उसका चय किया। परिचय अर्थात् ढेर किया, समस्त प्रकार से उसका ही ढेर किया। आहा...हा...! अशुभराग की टेव के कारण अशुभ किया, उसे सहज लगा। शुभ की टेव के कारण शुभ किया, वह भी सहज लगा परन्तु जो सहजस्वरूप है (जिसमें कुछ) करना नहीं-उत्पन्न करना नहीं, व्यय होता नहीं... आहा...हा...! उसकी टेव डाले, तो अन्दर वह वस्तु हाथ आवे। पर्याय में आदत डाले तो वह अलग (बात है) परन्तु ध्रुव की टेव डाले तो ध्रुव रहे — ऐसा नहीं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

सचमुच सहज है.... अपना स्वभाव वास्तव में सहज है। स्वभाव में... आहा...हा...! आवरण नहीं, अशुद्धि नहीं, हीनता नहीं; निरावरण है, पूर्ण शुद्ध है और वह भी पूर्ण है। आहा...हा...! ऐसे सहज स्वभाव का ख्याल नहीं आता है। आहा...हा...! उछल उछल कर कृत्रिमभाव - शुभ-अशुभ में उछल जाता है। वहाँ अन्दर उछलता है ऐसे... ऐसे...

www.vitragvani.com

ऐसे... ऐसे... आहा...हा...! (सहज स्वभाव की)। **खबर नहीं पड़ती।** ख्याल नहीं आता, इसलिए उसका पता (नहीं पड़ता) यह चीज है, पूर्ण स्वरूप है, प्रत्येक शक्ति-गुण से पूर्ण है और पूरा तत्त्व समस्त गुणों से पूर्ण है... आहा...हा...! उसका इसे ख्याल नहीं आता; इसलिए इसको पता नहीं पड़ता। ख्याल नहीं आता, इसलिए इसका पता नहीं पड़ता। आहा...हा...! भाषा सादी है परन्तु भाव बहुत गहरे हैं। आहा...हा...! मध्यस्थ व्यक्ति होवे तो एक बार तो आत्मा में से उसे आवे कि ओ...हो...! ऐसी बात तो हमने कभी सुनी नहीं!! आहा...हा...! जो सहजस्वरूप है, जिसमें कुछ किया हुआ नहीं, जिसमें करने का नहीं... आहा...हा...! अधूरा है, इसलिए अन्दर में पूरा करना है — ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

प्रश्न : द्रव्य अपेक्षा से करना नहीं है परन्तु पर्याय अपेक्षा से तो करना है न?

समाधान : यह पर्याय की बात बाद में। यहाँ तो पहले यह। ऐसा जो सहज स्वरूप, उसकी टेव नहीं पड़ी — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

खबर नहीं पड़ती। आहा...हा...! **उपयोग को सूक्ष्म करके....** आहा...हा...! अब खबर कैसे पड़े? **उपयोग को सूक्ष्म करके....** वर्तमान जो ज्ञान की पर्याय में व्यापार (है), उस पर्याय को सूक्ष्मरूप करके.... स्थूलपने के पर के लक्ष्य में से छोड़कर और स्व को जानने के लिए उस ज्ञान की पर्याय को सूक्ष्म करके... आहा...हा...! **सहज स्वभाव पकड़ना चाहिए।** त्रिकाली आनन्द के नाथ को... आहा...हा...! उपयोग को सूक्ष्म करके (सहज स्वभाव पकड़ना चाहिए)। शुभ-अशुभ उपयोग है, वह तो स्थूल है। यह (बात) पुण्य-पाप अधिकार में आती है न? स्थूल अशुभभाव छोड़ा परन्तु स्थूल शुभभाव नहीं छोड़ता; इसलिए उसने सामायिक की प्रतिज्ञा ली होने पर भी, सामायिक नहीं होती। आहा...हा...! आहा...हा...! स्थूल, शुभ को स्थूल उपयोग कहा है। आ....हा...!

उपयोग को सूक्ष्म करके.... इसका अर्थ कि शुद्ध करके। आहा...हा...! सहज स्वभाव का अनुभव करना चाहिए। **पकड़ना चाहिए** अर्थात् यह वस्तु जो बिम्ब है, वज्र का बिम्ब, ध्रुव बिम्ब को पकड़ना चाहिए। आहा...हा...! आहा...हा...! उपयोग को सूक्ष्म करके अर्थात् शुद्ध करके - इसका अर्थ (यह है)। आहा...हा...! **सहज स्वभाव पकड़ना चाहिए।** सहज स्वभाव, ध्रुवस्वभाव अनुभव में लेना चाहिए। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

उपयोग को सूक्ष्म करके.... क्योंकि स्वयं सूक्ष्म चीज है। वर्ण, गन्ध, रसवाली नहीं; राग के, पुण्य-पाप के भाववाली नहीं। **उपयोग को सूक्ष्म करके....** यह पर्याय हुई; **सहज स्वभाव....** यह त्रिकाल हुआ; **पकड़ना चाहिए।** यह वर्तमान पर्याय हुई। आहा...हा... ! सादी भाषा में गुजराती में आया है।

सबेरे कोई दो रतलामवाले आये थे। रतलामवाले युवा लड़के थे। हम सुनने आये परन्तु हमें गुजराती समझ में नहीं आती। ये आये थे शान्तिलालजी और रतनलालजी, मुम्बई आये थे और उदयपुर आये थे। रतलाम में है न ये ? शान्तिभाई को प्रेम है, जवान है; एक रतनचन्दजी ! दोनों लड़के (तत्त्व के) प्रेमी थे। व्याख्यान से बाहर निकलकर (उनसे पूछा) गुजराती समझ में आया ? तो कहा नहीं... नहीं... गुजराती हम नहीं समझते (मैंने कहा) यहाँ तो गुजराती चलती है, भाई ! हिन्दी में ऐसा सूक्ष्म नहीं निकलता। (३५ वाँ बोल पूरा हुआ।)

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है॥ ३६॥

३६ — **जो प्रथम उपयोग....** अर्थात् ज्ञान के व्यापार को **पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता,....** रुचि को नहीं पलटता तो उपयोग किस प्रकार पलटे ? आहा...हा... ! जो पर की रुचि है, उसे छोड़कर, अपना स्वभाव है, उसकी रुचि करे तो उपयोग पलटता है। उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु रुचि तो पर में पड़ी है। आहा...हा... ! जिसमें उपयोग जोड़ना है, उस वस्तु की रुचि के बिना उपयोग उस ओर कैसे ढलेगा ? आहा...हा... ! सादी भाषा ! आ...हा... ! इसमें कहाँ कोई वाद-विवाद की बात भी है ? वस्तुस्थिति ही यह है। आहा...हा... !

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है.... (अर्थात्) जानने की पर्याय है, उसे स्वभावसन्मुख झुकाना चाहता है परन्तु स्वभाव की रुचि तो करता नहीं। रुचि नहीं करता तो 'रुचि अनुयायी वीर्य' – जिस ओर रुचि हो, वहाँ वीर्य काम करता है। अत: रुचि नहीं तो उपयोग कैसे पलटे। आहा...हा... ! प्रवीणभाई ! ऐसी बात है !

www.vitragvani.com

पुस्तक बाहर आ गयी है, लोग पढ़ेंगे। अपने आप शक्ति प्रमाण समझ में आये ऐसा है, बहुत सूक्ष्म, गूढ़ है, भाषा सादी गुजराती है और अकेले सिद्धान्त ही हैं। आहा...हा...!

क्या कहते हैं ? कि वस्तु है, उसकी रुचि नहीं करता और उपयोग को परसन्मुख से हटाकर इस ओर पलटना चाहता है (परन्तु) वह किस प्रकार हो सकेगा ? आहा...हा...! वस्तुस्वभाव त्रिकाल है, उसकी रुचि करता नहीं और रुचि के बिना उपयोग को पलटना चाहता है (परन्तु) पलट नहीं सकता। आहा...हा...! स्वभाव के अतिरिक्त कहीं भी, किसी स्थान में — मान में, राग में, किसी अनुकूलता में, बाहर में रुचि पड़ी हो, वह उपयोग पलटना चाहता है (परन्तु) रुचि तो अन्तर में आयी नहीं। पर में-रुचि में वहाँ प्रेम में पड़ा है। आहा...हा...! रुचि बदले बिना उपयोग पलट नहीं सकेगा। आहा...हा...!

यह चीज है, वह पोसायेगी; राग और पुण्यादि नहीं पोसायेंगे और प्रभु पूर्ण है, उस पोसाण में प्रतीति होगी, रुचि होगी, पोसाण होगा तो उपयोग पलटेगा। आहा...हा...! अन्दर के पोसाण बिना अन्तर में उपयोग किस प्रकार जाएगा ? आहा...हा...! आहा...हा...! शास्त्र का ज्ञान करे, वाँचे, विचारे परन्तु प्रेम-रुचि अभी अन्दर गयी नहीं। आहा...हा...! उसे स्वभाव से दूसरी किसी भी चीज में — ज्ञान के उघाड़ में, धारणा में अधिकता भासे, वह उपयोग कैसे पलट सकेगा ? आहा...हा...! यह क्या कहा, समझ में आया ?

प्रभु स्वयं एक समय में पूर्णानन्द प्रभु सहजस्वरूप ध्रुवस्वरूप है, उस ओर का उपयोग पलटना चाहता है परन्तु उसकी रुचि के बिना उपयोग कैसे पलटेगा ? रुचि तो कहीं-कहीं अटक गयी है। आहा...हा...! वस्तु के स्वभाव की रुचि के अतिरिक्त कहीं भी उघाड़ में, मान में, दूसरे अधिक माने, उसकी महानता में तू रुक गया है। आहा...हा...! तो उसकी रुचि पलटी नहीं। आहा...हा...! और रुचि के पलटे बिना ज्ञान का उपयोग पलट नहीं सकता। ऐसी सादी भाषा है, प्रभु! आहा...हा...! अन्य तो ऐसी धमाल चलती है... यह करो... यह करो..., व्रत करो, तप करो, रथयात्रा निकालो, गजरथ हाथी निकालो.... आहा...हा...! २१-२१ हाथी! जयपुर में निकले थे न ? तुम थे ? भाई थे ? २१ हाथी! पूरा गाँव उछला हुआ! लोग... लोग...

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : हाथी देखने निकले, आपका व्याख्यान सुनने पूरा गाँव नहीं आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं आ सकता, यह (बाहर की धमाल) देखने में आवे न ? एक साधु गाँव में थे, वह देखने निकले थे कि यह है क्या ? आहा...हा... ! लोग तो समाये नहीं, ठेठ से ठेठ नजर पड़े नहीं इतने लोग ! २१ तो हाथी ! और क्या कहलाता है ? बैण्डबाजे ! वे भी बहुत, हजार-हजार, दो-दो हजार लोगों के बाद बैण्ड ! एक ही बैण्ड नहीं, लोग देखने निकले, वह साधु देखने निकले, यह क्या है ? इतना सब ! यह कानजीस्वामी तो रथ के ऊपर बैठे हैं ! भगवान के रथ में बैठे थे न ? और लोग, बाबा देखने निकले, है कौन यह ? २१ हाथी ! मुँह के आगे चलें ! बापू ! यह तो बाहर की बातें हैं, भाई !

मुमुक्षु : इसकी महिमा तो बहुत करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया को तो जिसकी रुचि है, वहाँ उपयोग काम करता है। वह चीज ही कहाँ तेरी है ? और वह कहाँ आत्मा का किया होता है ? रथ, घोड़े और.... यह तो जगत् की जड़ की चीज है। उसके काल में निज क्षण में वह पर्याय होनी हो, वह होती है। आहा...हा... ! परन्तु बाहर की ओर के भपके (चमक-दमक) और अपनी चीज से दूसरी चीज में कुछ अधिक, विशेषता... विशेषता, कुछ भी विशेषता भासित हो तो वहाँ रुचि रह गयी; उपयोग नहीं पलट सकेगा। आहा...हा... ! ठीक है ?... भाई ! इन्हें अब जाना है, यूरोप में ! दर्शन करने आये थे, फिर यूरोप में भटकने जायेंगे।

मुमुक्षु : व्यापार के लिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार के लिए, भटकने के लिए तो कहा।

अन्तर की चीज जो एक समय में सहज पड़ी है, पूर्ण पड़ी है और अकेले अन्दर आनन्द आदि शक्तियों का तो सागर है, उसकी रुचि के बिना पर तरफ का उपयोग अन्दर नहीं ढल सकता। आहा...हा... ! और पर तरफ का उपयोग नहीं ढलता (तो) इस ओर में (बाहर में) कहीं रुचि रह गयी है। आहा...हा... ! ऐसा कहते हैं। उपयोग पलटना चाहता है, परन्तु रुचि पलटे बिना (उपयोग) कैसे पलटेगा ? ऐसा कहते हैं। वह रुचि कहीं अटकी है। आहा...हा... ! किसी सूक्ष्म विकल्प राग आदि के प्रेम में फँस गया होगा... आहा...हा... ! है न ?

www.vitragvani.com

प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है.... पहले यह करना चाहता है परन्तु पहले रुचि करनी चाहिए। आहा...हा...! पोसाण में आत्मा पोसाना चाहिए। आत्मा के अतिरिक्त कोई चीज पोसाण में पोसाये नहीं। आहा...हा...! करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करके ऐसे चमकवाले मन्दिर बनाये हों, यह कहा न? बैंगलोर... १५ लाख का मन्दिर! बैंगलोर नीचे ऊपर... वैद्य साथ में थे, वैद्य! गांगोली, कलकत्ता का बड़ा (डॉक्टर)! होम्योपैथी का बड़ा वैद्य! ब्रह्मचारी, हाँ! ४९ वर्ष की उम्र परन्तु बाल ब्रह्मचारी और राजकुमार जैसा सुन्दर है। वह कहे — प्रभु! अभी तक तो मैंने (विवाह) नहीं (किया), अब इसी प्रकार आजीवन रहना है। इस व्यक्ति ने भगवान का यह पन्द्रह लाख का मन्दिर देखा। वह तो वेदान्ती है परन्तु यहाँ सुनने में रस आ गया, इसलिए सुनते हुए ऐसा देखा... ओ...हो...! बैंगलोर! एक हजार रुपये स्वयं ने दिये! वैद्य! गांगोली! आहा...हा...! परन्तु यह सब बाहर की चमकती चीज! आहा...हा...!

यहाँ अफ्रीका में अभी लालचन्दभाई गये हैं, बाबूभाई गये हैं, हजारों लोग सुनने एकत्रित होंगे, वहाँ जानेवाले कम होते हैं परन्तु वहाँ श्वेताम्बर है, अपना पक्ष है, स्थानकवासी भी होंगे, होंगे। सुनने के लिए लोग बहुत इकट्ठे होंगे, आज कितनी तारीख है? १५! परसों अर्थात् ग्यारस नहीं? आज नौवीं हैं, कल दशम् तिथियाँ घटती बढ़ती है? पूर्णिमा के पहले कुछ घटती-बढ़ती नहीं न? यह पंचमी दो हो गयी, बारस-तेरस शामिल है? एक तिथि घटती है, आज तो नौवीं है, कल दशम्, परसों के दिन ग्यारस। पन्द्रह लाख के मन्दिर का खात मुहूर्त परदेश में! यहाँ से ईंटें ले गये हैं। ईंटें.. ईंटें! स्वस्तिक कराकर ले गये हैं। पाँच-पाँच ईंटें (ले गये हैं)। बाबूभाई ने वहाँ (स्वस्तिक) कराये और लालचन्दभाई ने यहाँ कराये थे, भाई यहाँ आये थे। लोग आयेंगे, व्यक्ति आयेंगे, ये व्यक्ति भी होशियार है न! आहा...हा...!

बाहर की बातों की अपेक्षा अन्तर चीज की रुचि पलटे तो उपयोग अन्दर जाने का काम करता है। आहा...हा...! यह सुनने का प्रेम, भगवान के दर्शन का प्रेम, भगवान की मूर्ति देखने का प्रेम, यह सब उपयोग परसन्मुख है। यह तो शुभ उपयोग है। आहा...हा...! इसे पलटने के (लिए तो) रुचि पलटे तो उपयोग पलट जाता है।

www.vitragvani.com

आहा...हा...! यह रुचि अनुयायी वीर्य। जब माता को मातारूप से जाने तो उसका प्रेम दूसरी प्रकार का हो जाता है और उसे एक स्त्रीरूप से देखे तो दूसरे प्रकार का (प्रेम हो जाता है)। आहा...हा...!

बोटाद में (एक बार ऐसा) हुआ था। नयी माँ थी, नयी। वे स्त्री नहाने गयी और इस स्त्री की साड़ी नयी माँ ने पहन ली। नयी माँ समझ में आता है? पहली बाई सो रही थी-बाई की-बहू की साड़ी पहन कर सो रही थी, इसलिए उसे पता नहीं कि बहू नहाने गयी है। आहा...हा...! इसलिए ऐसे जगाने के लिए कोहनी मारी (उसे) ऐसा कि उसकी स्त्री है, वहाँ माँ जागृत हुई (और कहा) क्यों भाई? बहू नहाने गयी है — ऐसा कहा वहाँ... एकदम पलटा हो गया! यह तो माता है! अरे...! जननी है। भले नयी माँ थी, परन्तु माता तो है न? अरे... मेरी माँ है। आहा...हा...! रुचि पलट गयी, उपयोग (पलट गया)। पहले अशुद्ध उपयोग था वह एकदम मन्द पड़ गया। है तो यह भी अशुद्ध, परन्तु मन्द पड़ गया। इस प्रकार रुचि पलटे तो उपयोग पलटता है; इसके बिना नहीं पलटता।

विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

जेठ शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनाङ्क १६-०६-१९७८
प्रवचन-११ वचनामृत- ३६-३९

३६ वाँ बोल है, ३६ है न? ३६, फिर से लेते हैं, देखो! ३६ (बोल)। बारहवें पृष्ठ पर नीचे से है।

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है.... क्या कहते हैं? कि आत्मा की ओर उपयोग ले जाना (चाहता है), जो यह बाहर के काम में उपयोग है — शरीर, वाणी, मन, दुकान, धन्धा, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि में जो उपयोग है, वह उपयोग, मिथ्या उपयोग है। आहा...हा...! जो (यह) उपयोग पलटना चाहता है, परन्तु **अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता,....** आत्मा के अतिरिक्त सभी चीजों की जब तक रुचि है, तब तक उपयोग अन्दर में नहीं जा सकता। सूक्ष्म बात है भाई! अनन्त काल... आहा...हा...! बाहर के विषय-कषाय, मकान, आबरू-कीर्ति, धन्धा-पानी, नौकर-चाकर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार पर जहाँ तक रुचि है, जो परचीज है; पर को और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है; उनकी रुचि है, तब तक उपयोग अन्तर में नहीं जा सकेगा। आहा...हा...! पूरी दुनिया से उपयोग को पराङ्मुख करना है न? जो स्वरूप उस तरफ ढालना है परन्तु उपयोग को अन्तर में ढालने से पहले, उसकी रुचि यदि आत्मा के प्रति न हो तो उपयोग अन्तर में नहीं जा सकेगा।

आनन्दकन्द प्रभु ज्ञायक अकेली सत्ता, सत्; जिसमें पुण्य और पाप के विकल्प का भी अभाव है, बाह्य सामग्री तो सब दूर है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा, मकान आदि (तो दूर है) परन्तु बाह्य पदार्थ के प्रति जहाँ तक सूक्ष्म भाव (रहे), पुण्य आदि में भी रुचि है, तब तक उपयोग अन्दर में नहीं जा सकेगा। आहा...हा...! पण्डितजी!

अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता,.... आहा...हा...! इसके पोसाण में जब तक

www.vitragvani.com

एक भगवान आत्मा नहीं आवे, चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञायकस्वरूप का पोसाण नहीं आवे, रुचि नहीं आवे, तब तक उपयोग अन्दर में नहीं जा सकेगा। आहा...हा... ! भले बाहर से निवृत्ति ली हो, परन्तु अन्दर में रुचि परसन्मुख के झुकाववाली है, वह अन्तर में उपयोग को नहीं झुका सकेगा। आहा...हा... ! एक ओर राम तथा एक ओर गाँव !

आत्मा के अतिरिक्त विकल्प — दया, दान के विकल्प से लेकर व्यापार-धन्धा आदि के परिणाम तो पाप हैं, वे तो फिर बहुत (दूर हैं)। पूरे दिन इनमें रचा-पचा (रहे), वह तो अकेला पाप में पचा है। धर्म तो नहीं; वहाँ तो पुण्य भी नहीं है। आहा...हा... ! जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप है, उसकी रुचि हुई नहीं और उपयोग को पर में से हटाना चाहता है, वह नहीं हट सकेगा। सूक्ष्म बात है बापू! अनन्त काल में नहीं किया (यह काम है); बाकी सब व्यर्थ है। अनन्त बार किया है और मरकर व्यर्थ भटका है। आहा...हा... !

उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। अन्तरंग वस्तु है पूर्णानन्द अनन्त गुण ! आहा...हा... ! सबेरे तो कहा था न ? रात्रि में बहुत कहा था। यह व्याख्या जिन्दगी में पहली ही बार कही है। रात्रि में भी कहा था और सबेरे भी कहा था। जिन्दगी में पहली (बार ही) कही है, कभी नहीं कहा। विस्तार तो बहुत (आया था) अभी तो अब हो नहीं सकता, हो गया।

यहाँ तो इतना कहना है कि यह आत्मा है, उसमें गुण की संख्या अनन्त है, उस अनन्त का यह ...यह गुण अन्तिम — ऐसा जिसमें है नहीं। आहा...हा... ! ऐसे अमाप गुण की रुचि किये बिना, उपयोग पर से पलट नहीं सकता। समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्म बात है।

अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। अर्थात् ? अन्तरङ्ग वस्तु महा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... सबेरे कहा था। अनन्त का अन्त नहीं (ऐसा) भाई सबेरे कहते थे। अनन्त का अन्त है, (किन्तु) इस अनन्त का अन्त नहीं परन्तु अर्द्धपुद्‌गल परावर्तन है न ? उसमें है। क्या कहलाता है वह ? क्या कहा ? षट् खण्डागम ! उसमें पहले बोल में है। अनन्त का अन्त है। अर्द्धपुद्‌गल परावर्तन है तो अनन्त, परन्तु उसका अन्त है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रश्न : पूरा हो गया ?

समाधान : हो गया न पूरा ? उसमें (आता) है। क्या नाम कहा ? धवल... धवल ! धवल में है कि अनन्त का अन्त है। अरे... ! यह तो अर्द्धपुद्गल (परावर्तन) लिया परन्तु नौवें ग्रैवेयक में अनन्त पुद्‌गल परावर्तन किया, साधु हुआ, बाह्य त्याग किया परन्तु अन्तर रुचि / दृष्टि पलटायी नहीं; इसलिए उसे जन्म-मरण मिटे नहीं, तो वहाँ अनन्त पुद्‌गल परावर्तन किया उसका भी अन्त आ गया न ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त (परावर्तन) किया परन्तु हो गया न ? ऐसा। अनन्त पुद्‌गल परावर्तन किये, वह इतना (पूरा) हो गया न ? अन्त आ गया या नहीं ? आहा...हा... ! (परन्तु) यह जो आत्मा है, उसके गुण की जो संख्या है, उसका कहीं अन्त नहीं आता। आहा...हा... !

यह ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, कर्तृत्व, कर्म, करण, सम्प्रदाय... ऐसी... ऐसी... ऐसी संख्या की अन्तिम यह (गुण), अब हो गया (— ऐसा है नहीं) आहा...हा... ! ऐसे स्वभाव की रुचि किये बिना, पर-तरफ से उपयोग स्व में नहीं ढल सकता। आहा... ! ऐसी बात है। जगत् को कहाँ पड़ी है अन्दर ? क्या होगा ? और कहाँ जाएगा ? आहा...हा... !

उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे.... आहा...हा... ! अनन्त... अनन्त... बेहद, जिसकी संख्या का अन्त नहीं; क्षेत्र से असंख्य प्रदेश, काल में एक समय और संख्या का अन्त नहीं, अन्तिम नहीं... आहा...हा... ! ऐसे अनन्त गुण का एक द्रव्य, उसकी रुचि हुए बिना (उपयोग का पलटा नहीं हो सकता है)। प्रथम रुचि को पलटे, आहा...हा... ! उसके विश्वास में-रुचि में अनन्त... अनन्त... अमाप, जिसका अन्तिम छोर नहीं ! क्षेत्र भले इतना परन्तु गिनती करते... करते.. करते... करते... यह अन्तिम गुण है — ऐसा जिसमें है ही नहीं। आहा...हा... ! उसकी **रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा।** आहा...हा... ! भाषा तो बहुत सादी है परन्तु भाव तो बहुत ऊँचे हैं। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

यह आत्मा अनन्त शक्ति का एक संग्रहालय प्रभु ! जिसकी शक्ति की गिनती करने पर कहीं अन्त (आवे) नहीं कि अब यह अनन्त... अनन्त... अनन्त... हो गया। आहा...हा... ! ऐसे आत्मा की रुचि के पलटे बिना (उपयोग का पलटना नहीं होता)। आहा...हा... ! यदि इसकी रुचि करे तो अन्दर उपयोग का पलटना सहज होता है। आहा...हा... ! रुचि के बिना दूसरे लाख उपाय करे... आहा...हा... ! व्रत, तप, भक्ति, पूजा और... साधु होकर पंच महाव्रत पाले — सब मिथ्यात्व है, क्योंकि जो मूल चीज है, उसका इसे अनन्त का विश्वास और रुचि हुई नहीं। आहा...हा... ! ऐसे स्वभाव में अमाप गुण का माप नहीं, वह वस्तु मापरहित अनन्त; भले ज्ञान उसे जान ले, ज्ञान में माप आ जाये परन्तु अनन्त का अनन्तरूप ज्ञान में माप आता है। आहा...हा... ! ऐसी रुचि का पलटा करे तो उपयोग सहज पलट जाएगा। आहा...हा... !

जो ज्ञान का व्यापार पर-तरफ के ज्ञेय की ओर झुका है, उस रुचि का पलटा करने से वह उपयोग स्व-तरफ झुक जाएगा — ऐसी बात है। अब ऐसा तो अभी समझना कठिन पड़ता है, सुनने को मिलता नहीं। आहा...हा... ! आहा...हा... !

यह तो बहिन के शब्द बहुत सादा और अन्दर बहुत गम्भीरता है ! आहा...हा... ! इस वस्तु का-रुचि का पलटा... क्या कहते हैं यह ? आहा...हा... ! अमाप शक्ति का संग्रहालय प्रभु, उसकी रुचि का पलटा बिना ज्ञान का व्यापार पर-तरफ से नहीं हटेगा। आहा...हा... ! कहीं गहराई में भी कहीं पर-तरफ की रुचि रह गयी... आहा...हा... ! चाहे तो कोई दया, दान, भक्ति का भाव (होवे) परन्तु उसकी रुचि रह गयी तो मिथ्यात्व है। आहा...हा... ! उसका उपयोग अन्तर में नहीं झुक सकेगा।

मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है। समझ में आया ? अब तो हजारों पुस्तकें बाहर आ गयी हैं। तीस हजार तो छप गयी हैं, इतने यह (वचनामृत) ! **मार्ग की यथार्थ विधि....** अर्थात् रुचि के पलटे बिना उपयोग अन्दर में नहीं जा सकेगा। इस रुचि को पलटना। आहा...हा... ! जो इसकी वर्तमान दशा में, वर्तमान दशा ही रुचि (में) पोसाती है, ऐसे शुभ-अशुभ राग रुचि (में) पोसाते हैं, ऐसा उनके फलरूप की सामग्रियों का पोसाण और रुचि है, वहाँ तक उपयोग अन्तर में नहीं जा सकेगा। आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

'रुचि अनुयायी वीर्य' जहाँ जिसकी रुचि होगी, वहाँ उसका वीर्य-पुरुषार्थ काम करेगा। आहा...हा...! इसमें व्रत पालना, भक्ति करना और प्रतिमा पालना, यह सब इसमें कुछ नहीं आता। क्योंकि यह सब राग है और इसकी जहाँ तक रुचि है... आहा...हा...! वहाँ तक स्वचैतन्यमूर्ति प्रभु का उपयोग में पलटा नहीं जाता। आहा...हा...! मार्ग की यह यथार्थ विधि है, विधि यह है। पहले क्या करना? कि पहले यह (करना)। उसमें आता है न? **ज्ञायक** १७-१८ (गाथा में) पहले आत्मा को जानना — ऐसा वहाँ पहला ही आता है। (समयसार) १७-१८! श्रद्धा करना बाद में लिया है। पहला-प्रथम **ज्ञायक** प्रभु! अनन्त गुण का पिण्ड अमाप शक्ति (से भरपूर)! क्षेत्र से भले असंख्य प्रदेशी हो, काल से भले एक समयमात्र हो, वह चीज समयमात्र है। यह तो त्रिकाल रहने की अपेक्षा से त्रिकाल है। एक समय में अनन्त अमाप गुण का पिण्ड है। आहा...हा...! क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समय में है न? त्रिकाल मिलाकर बात करना, वह तो फिर अपेक्षित हो गयी। आहा...हा...! वर्तमान ही यह वस्तु, उत्पाद -व्यय की पर्यायवाली परन्तु फिर भी ध्रुव; और ध्रुव की गुण की संख्या का पार नहीं! आहा...हा...! स्वर्ग के, नरक के भव के अनन्त पुद्‌गलपरावर्तन किये परन्तु अनादि काल की अपेक्षा से वहाँ अन्त आ गया। आहा...हा...!

ऐसे-ऐसे अनन्त पुद्‌गलपरावर्तन (किये); उसके परावर्तन की भी हद आ गयी। वर्तमान में किया। यह तो बेहद, जिसका माप ही नहीं होता। आहा...हा...! ऐसा चैतन्य सिन्धु! स्वयंभूरमण के बिन्दु का भी पार है, असंख्य हैं; बिन्दु अनन्त नहीं। स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजन चौड़ा है, उसके बिन्दु गिनो तो असंख्य ही हैं, अनन्त नहीं होते। अनन्त बिन्दु को अनन्त योजन चौड़ा (क्षेत्र) चाहिए। यह तो असंख्य योजन में है। आहा...हा...!

इस आत्मा को उससे अनन्त-अनन्त गुण हो, गुण के लिए प्रदेश अधिक नहीं चाहिए। आहा...हा...! ऐसे स्वभाव की शक्ति का अमापपना, उसकी जिसे रुचि हुई, आहा...हा...! उसका उपयोग अन्दर में गये बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...! यह ३६ बोल (पूरा हुआ)।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

'मैं अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ', यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं, शान्ति नहीं मिलती; विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभाव में लीन होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है॥ ३७॥

३७, ३७ वाँ बोल। आहा...हा... ! **'मैं अबद्ध हूँ',....** पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उनकी तो बातें क्या करनी, कहते हैं। वे तो दुःखरूप हैं। व्यापार-धन्धा, स्त्री, परिवार का पालन-पोषण करना, यह सब तो अकेले पाप के पोटले हैं। यह दुःख तो एक ओर रहा परन्तु दया, दान, और व्रत-भक्ति के परिणाम भी दुःखरूप हैं। राग है न? इसलिए दुःखरूप है। वह तो दूर रहो परन्तु ज्ञायक हूँ और अबद्ध हूँ, **यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं,....** आहा...हा... ! (समयसार) १४२ गाथा में कहा है न? आत्मा अबद्ध है, पूर्ण है, उससे क्या? आहा...हा... ! गजब बात है ! इससे घर में तू कहाँ आया? आहा...हा... ! व्यवहार की बातें तो कहीं दूर रह गयीं परन्तु इसकी वस्तु जो है, निश्चय, उसका सत्य (स्वरूप) जितना है उतना; ऐसा विकल्प उठाया कि यह अबद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, मुक्त हूँ, अमाप गुण का सागर हूँ — ऐसा जो अन्दर विकल्प-वृत्ति उठे... आहा...हा... ! ऐसा सूक्ष्म विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति उठे, वह भी **दुःखरूप लगते हैं....** आहा...हा... !

संसार के सभी पाप के कार्य तो दुःखरूप हैं। आहा...हा... ! गजब बातें ! आहा...हा... ! परन्तु पुण्य के जितने कार्य हैं — व्रत, तप, भक्ति, दान और मन्दिर बनाना, करोड़ों-अरबों रुपयों का दान... यह भी दुःखरूप है। विकल्प है, दुःख है। आहा...हा... ! वह कोई (आत्मा की) चीज-वस्तु नहीं है।

यहाँ तो ज्ञायक हूँ और अबद्ध हूँ; है (अवश्य ऐसा स्वरूप) परन्तु ऐसा विकल्प उठे, वह भी दुःख (रूप) लगता है। आहा...हा... ! अरे... ! जन्म-मरणरहित होने की रीति, बापू ! (बहुत सूक्ष्म है)। आहा...हा... !

मैं एक चैतन्य हूँ, त्रिकाली ज्ञायकभाव-स्वभाव हूँ। 'त्रिकाली' शब्द कहने पर भी वर्तमान समय में मैं ऐसा पूरा ध्रुव हूँ, आहा...हा... ! ऐसा ज्ञायक हूँ, जो (समयसार की)

छठी गाथा में कहा वह, — प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, वह शुभाशुभभावरूप (हुआ नहीं)। त्रिकाली वस्तु ज्ञान का कन्द, अनन्त अमाप शक्ति का रसकन्द, उसकी सत्ता, वह ज्ञानरूप सत्ता है, वह कहीं पुण्य और पापरूप (होता नहीं)। क्योंकि पुण्य और पाप तो जड़ हैं। आहा...हा...! शुभ और अशुभभाव जड़ हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : होता है इसकी पर्याय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहारनय से इसकी पर्याय कही। पर्याय में व्यवहारनय से, अभूतार्थनय से कही। निश्चय के स्वभाव की दृष्टि से तो ज्ञायकभाव, शुभाशुभरूप हुआ ही नहीं; कभी तीन काल में हुआ नहीं, क्योंकि यदि (इसरूप) होवे तो शुभ अशुभभाव तो अचेतन है, उसमें चैतन्य के तेज की जलहलता का चमकता अंश तो उसमें नहीं है। आहा...हा...! क्या कहते हैं यह ?

भगवान जो चैतन्य का चमत्कार, चमत्कृति! आहा...हा...! जैसे मणि में चमक उठती है, वैसे यह अनन्त गुण की अन्दर से चमक उठे! ऐसा जो चैतन्यरत्न... आहा...हा...! यह मैं चैतन्य ऐसा हूँ... आहा...हा...! ऐसा भी एक पक्ष का विकल्प उठे... आहा...हा...! उसमें इसे दुःख लगता है। आहा...हा...! है ? **दुःखरूप लगते हैं, शान्ति नहीं मिलती....** इस विकल्प में भी शान्ति, सुख... आहा...हा...! है नहीं। आहा...हा...!

यहाँ तो पाँच, पचास लाख का बड़ा मकान करावे, वास्तु करावे, लोगों को बुलावे न... आहा...हा...! ऊँचे-ऊँचे प्रीतिभोज करे, दहिरथरा, और अमुक... और अमुक... यह क्रिया तो आत्मा कर नहीं सकता। मात्र 'कर्ता हूँ' और 'यह ठीक होता है' — ऐसा जो राग, वह तो स्थूल दुःख है। आहा...हा...! परन्तु यहाँ तो अबद्ध और ज्ञायक हूँ — ऐसी भी एक वृत्ति का उत्थान होता है — वृत्ति उठती है, (उसमें) दुःख लगता है और वहाँ शान्ति नहीं दिखती। आहा...हा...!

शान्ति नहीं मिलती। विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है,.... आहा...हा...! वृत्ति का उत्थान हो, वह वस्तु में नहीं है। सूक्ष्मरूप से भी अन्तर्जल्प की राग की वृत्ति — मैं ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ — ऐसा विकल्प भी जहाँ दुःखरूप है, (वहाँ) शान्ति नहीं मिलती। आहा...हा...! **विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर....**

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन होने में (ऐसा होता है)। सम्यग्दर्शन होने के काल में (ऐसा होता है)। आहा...हा... ! यह वृत्तियाँ — जो विकल्प स्वयं ज्ञायक और अबद्ध हूँ... व्यवहार के विकल्प की अपेक्षा तो दु:खरूप है, वह तो स्थूल दु:खरूप है, परन्तु यह ज्ञायक हूँ और अबद्ध हूँ — ऐसी मन के सम्बन्ध से विकल्प की वृत्ति उठे, (उसमें) दु:ख लगता है, शान्ति नहीं मिलती; प्रत्येक विकल्पमात्र में दु:ख लगे, तब उसका पुरुषार्थ अन्दर में जाता है — ऐसी बातें हैं, (इसलिए) कठिन लगता है। आहा...हा... ! निश्चय... निश्चय... (करे) परन्तु निश्चय सत्य यह है, बाकी सब व्यर्थ है। आहा...हा... !

तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर.... अपूर्व पुरुषार्थ अर्थात् पूर्व में किसी समय नहीं किया हुआ; अनन्त... अनन्त काल में 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ' तब भी स्वरूप का पुरुषाथ नहीं किया था। आहा...हा... ! ऐसा **अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,....** वस्तु के स्वभाव में लीन होने पर पुरुषार्थ को विकल्प से हटाकर अन्दर में जाने पर वस्तु-भगवान वस्तु, परमेश्वर के स्वभाव में, प्रभु के स्वभाव में... आहा...हा... ! लीन होने पर **आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं....** आहा...हा... !

जिसने भगवान आत्मा, अनन्त गुण का एकरूप (स्वरूप) ऐसा प्रयोजन जिसकी दृष्टि में है... आहा...हा... ! जिसकी दृष्टि में यह आत्मा ही प्रयोजन (भूत लगा है)... आहा...हा... ! ऐसे आत्मार्थी जीव को **सब विकल्प छूट जाते हैं....** आहा...हा... ! **और आनन्द का वेदन होता है।** इसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और स्वरूपाचरण कहा जाता है। आहा...हा... ! कठिन बातें, भाई ! है ?

जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है। क्योंकि प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड तो आत्मा है। जब यह विकल्प छूट गये... पुरुषार्थ द्वारा, हाँ! अन्दर पुरुषार्थ करने पर... तब आनन्द जो शक्तिरूप स्वभावरूप है, उसका जहाँ आश्रय लिया, स्वीकार किया, सत्कार किया, आदर किया... आहा...हा... ! उपादेयरूप से जहाँ आदर किया, उसे आनन्द का स्वाद आता है। आहा...हा... ! आनन्द का वेदन होता है, उसका नाम आत्मज्ञान और आत्मदर्शन कहा जाता है। आहा...हा... ! ऐसा कठिन लगे, इसलिए बेचारे अन्यत्र धर्म के नाम से भी जुड़ जाते हैं — यह करो और वह करो और यह

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

करो... मन्दिर बनाओ, दान करो, रथयात्रा निकालो और गजरथ (चलाओ)। आहा...हा...! पाँच, पच्चीस लाख खर्च करे, उसे संघवी की पदवी दे। सिंघई! धूल की पदवी! वस्तु की खबर बिना तू सिंघई कहाँ से आया? आहा...हा...!

यहाँ (कहते हैं) विकल्प छूटकर, अबद्ध और ज्ञायक का भी विकल्प छूटकर... आहा...हा...! जहाँ स्वरूप में पुरुषार्थ से जाता है, तब अतीन्द्रिय आनन्द होता है। आहा...हा...! इसका नाम धर्म, इसका नाम जन्म-मरण से छूटने का पंथ! बाकी तो जन्म-मरण के पंथ में अनादि से पड़ा है। धर्म के नाम पर भी, राग की क्रिया करके संसार का पोषण करता है। आहा...हा...!

यह ३७ (बोल पूरा) हुआ।

आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु, सद्गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है॥ ३८॥

अब, ३८ — **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है....** स्व-स्वरूप को अनन्त काल में प्राप्त नहीं किया, इसके बिना सब प्राप्त किया। आहा...हा...! राग-पुण्य और पाप के भाव तथा उसके फलरूप से मानो संयोग मिले — ऐसा मानता है। संयोग कहीं इसे नहीं मिले हैं, संयोग तो संयोग में रहे। उनका अस्तित्व कहीं इसके पास आत्मा में नहीं आया है। इसने 'यह मेरे और यह तेरे' ऐसे विकल्प (किये हैं)। यह इसके अस्तित्व में — पर्याय में मिथ्यादृष्टि के कारण 'यह मेरी स्त्री, यह मेरे पुत्र, यह मेरा मकान, यह मेरी लक्ष्मी, यह मेरी इज्जत, यह मेरी व्यवस्था के सब काम....' आहा...हा...! ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... आहा...हा...! उसे जिसे छोड़ना है और आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है... आहा...हा...! **उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।** क्या कहते हैं यह? आहा...हा...! सादी गुजराती भाषा है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जिसने भगवान आत्मा अन्दर चैतन्य रत्नाकर... ओहो...हो... ! क्षेत्र से आकाश का अन्त नहीं आता, काल से अन्त नहीं आता, इस (आत्मा का) भाव से अन्त नहीं आता — ऐसी (गुण की) संख्या का अन्त (नहीं होता)। आहा...हा... ! वह क्या चीज है यह! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे **प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी....** शरीर में रोग आवे, निर्धनता हो, इज्जत जाये, लक्ष्मी जाये, लड़का मरे,... आहा...हा... ! दुकान नष्ट हो, उस समय बीमावाला भी भागे, यहाँ दुकान नष्ट हो और बीमा लिया हो, वह बीमावाला उस समय वहाँ भागे, चारों ओर (प्रतिकूलता) आ जाये। आहा...हा... ! ऐसे **प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र....** जिसे आत्मा को प्राप्त करने का पुरुषार्थ है, उसे तो ऐसे प्रतिकूल संयोगों में भी **तीव्र एवं कठिन....** करड़ों अर्थात् कठिन। (करड़ो) गुजराती भाषा है। करड़ो पुरुषार्थ; कमजोर पुरुषार्थ नहीं, हीन पुरुषार्थ नहीं; कठिन — उग्र पुरुषार्थ। आहा...हा... !

शरीर में रोग आवे, शीतला निकले, दाने-दाने शीतला (निकले)। शीतला समझते हो ? दाने-दाने चींटियाँ पड़े चींटियाँ — ऐसे समय भी... आत्मा को प्राप्त करने का **जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है....** (उसे) **तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।** आहा...हा... ! उस ओर का लक्ष्य छोड़कर, जहाँ स्वयं जितना और जैसा है, वहाँ पुरुषार्थ को जोड़ देता है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

उसे कठिन और तीव्र पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। आहा...हा... ! इसके बिना उसे अन्दर समता नहीं आएगी। आहा...हा... ! चाहे जो संयोग हो, क्रमबद्ध की अवस्था उसके काल में, वे-वे अवस्थाएँ शरीर और पर में होवे, उस काल में पुरुषार्थ को तीव्र करके अन्दर में झुकाना पड़ेगा, उसके बिना छुटकारा नहीं है। आहा...हा... ! इस दुःख में यदि गया (अर्थात्) मुझे दुःख है और मैं रोगी हूँ, मैं निर्धन हूँ (— ऐसा भाव करेगा तो) मर जाएगा! राग के भाव में (अपना) अस्तित्व मानकर, चैतन्य के त्रिकाली भाव का वह अनादर करेगा। आहा...हा... ! ऐसी बात है। आहा...हा... !

सच्चा मुमुक्षु सद्गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए — ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन.... करके। आहा...हा... ! **गम्भीर**

www.vitragvani.com

तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए.... मूलवस्तु, भगवान स्वयं मूल चीज है। आहा...हा... ! ऐसा स्वरूप समझ में आये **ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का....** आहा...हा... ! भाषारूप से ऐसे भले (सादी बात) लगे, परन्तु वस्तुस्थिति कोई ऐसी है... आहा...हा... ! और जिसे ऐसे अमाप, जिसमें शक्ति के गुणों का अन्तिम गुण कौन सा? ऐसा जिसमें अन्तिम और अन्त नहीं... आहा...हा... ! ऐसे आत्मा में पुरुषार्थ करके। आहा...हा... ! **खूब गहरा मन्थन करके....** आहा...हा... !

अन्दर भगवान चैतन्यरत्न अमाप शक्ति का सागर (विराजमान है)। ऐसे आत्मा का रहस्य सुनकर... आहा...हा... ! ऐसा आत्मा है, (उसका गहरा मन्थन करके)। दूसरी चीज की मौजूदगी छोड़कर... आहा...हा... ! ऐसा एक प्रभु अन्दर (विराजमान है), जिसके गुण पूरपाट... पूरपाट भरे हैं... आहा...हा... ! भले अरूपी हो तो उस अरूपी के निर्मल स्वभाव द्वारा ज्ञात हो ऐसा है; वह राग और निमित्त से ज्ञात हो — ऐसा नहीं है।

(रहस्यों से भरपूर) **वाक्यों का सच्चा मुमुक्षु खूब गहरा मन्थन करके....** अन्तर वस्तु में.... यह तो अभी पहली सम्यग्दर्शन की बात है। चारित्र तो बापू! वह कोई अलग चीज है। अभी तो वह चारित्र (देखने में नहीं आता)। आहा...हा... ! यह सब परीषह सहन करते हैं और उपसर्ग सहन करते हैं, वह चारित्र नहीं — ऐसा एक व्यक्ति पूछता था। अभी आया था। कुरावड़! क्षुल्लक है, क्षुल्लक है। यहाँ आया था, पहले दो, तीन बार आ गया है, लड़केरूप से, छात्ररूप से (आया था) कन्नड़ भाषा में बोलता था। वह हो गया क्षुल्लक, वह यहाँ आया था परन्तु कषाय बहुत, बहुत कषाय, कषाय बहुत। यह सब परीषह और उपसर्ग सहन करते हैं, वे सब समकिती नहीं? अरे... बापू! अभी ऐसे उपसर्ग कहाँ हैं ऐसे? नौवें ग्रैवेयक गया, तब उसके उपसर्ग और परीषह ऐसे सहन किये, तथापि वह शुभराग है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहा...हा... ! यहाँ दो-तीन बार आ गया था, यहाँ भाषण भी किया है। लड़का-छात्र था। वहाँ का कन्नड़ नहीं? वैसे तो उस समय भाषण करता था, कहीं उसे नौकर रखा था। कषाय बढ़ गयी थी, क्षुल्लक हो गया और इसलिए (ऐसा हो गया)। ऐसे क्षुल्लक हुआ, व्रतधारी हुआ। अरे... बापू! आहा...हा... ! चन्दुभाई के साथ बहुत बात करता था। (उन्होंने) कहा भाई! मैं तो बात करने योग्य नहीं

www.vitragvani.com

हूँ, मैं लायक नहीं हूँ, परन्तु क्या करना ? सुने नहीं और कषाय (करे) यह ऐसा है और यह ऐसा है और वैसा है। इतने परीषह सहन करे, इतने उपसर्ग सहन करे और उसे तुम समकिती नहीं मानो। अरे... प्रभु ! तू सुन बापू ! सुनने का मूड़ नहीं, वह भी अभिमान से रहता। यहाँ आया तब दो-तीन दिन आया था, लड़केरूप से भाषण किया था। इस बाहर के त्याग में जाता है, और फिर अभिमान चढ़ जाता है। आहा...हा... ! अन्दर से पावर चढ़ जाता है। हम क्षुल्लक हैं, हम व्रतधारी हैं और हम तपस्वी हैं तथा ऐसा कहता था, थोड़ा खाना, बस ! थोड़ा खाना, यही मोक्ष का साधन है। भाई ! बापू ! क्या करें ? छह-छह महीने के चतुर्विध आहार त्याग के उपवास किये हैं ? पानी की बूँद बिना ! यह सब क्रिया राग की है, यह आत्मा नहीं है। आहा...हा... !

प्रभु तो आनन्द का सागर है, वह राग की एकता तोड़े बिना नहीं खुलता, उसका ताला नहीं खुलता। आहा...हा... ! जिसे इस विकल्प में ही पुरुषार्थ लगता है, उसने राग और आत्मा की एकताबुद्धि का ताला मारा है, वह नहीं खुले, उसे धर्म नहीं खुलता। आहा...हा... !

आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। (सद्गुरु के) गम्भीर वचनों को भी मन्थन करके, खूब गहरा मन्थन करके। 'खूब' 'गहरा' और 'मन्थन' — तीन शब्द हैं। खूब अर्थात् बहुत; गहरा अर्थात् ध्रुव सन्मुख ढलकर; मन्थन अर्थात् अन्तर की एकाग्रता करना। पहले मन्थन का विकल्प होता है। आहा...हा... ! अरे...रे... ! ऐसा धर्म ! अभी धर्म की शुरुआत यहाँ होती है। आहा...हा... ! क्या हो ? प्रभु ! तेरे हित की बात है न ! आहा...हा... ! तुझे दुःख लगता है कि हम यह व्रत पालते हैं, यह आजीवन ब्रह्मचर्य पालते हैं... आजीवन ब्रह्मचर्य तो अनन्त बार पालन किया है। अब उसमें है क्या नया ? आहा...हा... ! यह तो सब शुभराग है। आहा...हा... !

ब्रह्म अर्थात् भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु,आहा...हा... ! उस अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में रहना, वह ब्रह्मचर्य है। आहा...हा... ! एक बार कहा था न ? 'पद्मनन्दि पंचविंशति' ! पद्मनन्दि पंचविंशति में ब्रह्मचर्य का अधिकार है। है २६ अधिकार परन्तु नाम पच्चीस

www.vitragvani.com

(दिया है) उस पद्मनन्दि में 'प' नाम सही न, इसलिए पंचविंश अधिकार (रखा) परन्तु है छब्बीस। पद्मनन्दि में छब्बीसवाँ एक अधिकार, ब्रह्मचर्य का है, परन्तु ब्रह्मचर्य को... आहा...हा...! जिस प्रकार है, उसे बताया है। आहा...हा...! अरे...! शरीर से ब्रह्मचर्य और मन से पाल, बापू! यह तो अनन्त बार पालन किया, भाई! वह कोई धर्म नहीं, आहा...हा...! आहा...हा...! हम बाल ब्रह्मचारी हैं और हम यह हैं, बापू! वह कोई धर्म नहीं। आहा...हा...! अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु अन्दर विराजमान है, उसके आनन्द में गये बिना... आहा...हा...! ब्रह्मचर्य नहीं कहलाता है। आहा...हा...!

ब्रह्म-चर्य — ब्रह्म / आत्मा (के) आनन्द में चरना। मैं तो ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ, यह विकल्प भी दुःखदायक है। आहा...हा...! पद्मनन्दि आचार्य ने ब्रह्मचर्य की बहुत व्याख्या की है। मुनि थे, भावलिंगी सन्त थे और विकल्प आया तो शस्त्र लिख गया। फिर ब्रह्मचर्य की बहुत व्याख्या करके कहा — हे जवानों! हे युवकों! और हे युवतियों! मैंने यह ब्रह्मचर्य की ऐसी व्याख्या की, तुमको कदाचित् न रुचे तो प्रभु! माफ करना; मेरे पास दूसरा क्या चाहोगे? आहा...हा...! पण्डितजी! साधु आनन्द में रमनेवाले-वे ऐसा कहते हैं कि मैंने ब्रह्मचर्य की ऐसी बहुत व्याख्या की है। आहा...हा...! हे जवानों! तूने शरीर में और बाह्य में विषय में तुम्हें प्रेम लगे और यह मेरी बात तुम्हें न रुचे तो प्रभु! माफ करना, हाँ! ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! मैं मुनि हूँ, मेरे से क्या आशा रखोगे। — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! गजब बात है! आहा...हा...! जिन्हें सिद्धपद का अनुभव वर्तता है और अल्प काल में एक-दो भव में सिद्ध हो जानेवाले हैं... आहा...हा...! वे सन्त ऐसा कहते हैं। ब्रह्मचर्य की बात करते हुए ऐसा कहते हैं — ब्रह्मानन्द भगवान में रमना, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में आवे, तब उसे ब्रह्मचारी कहते हैं। आहा...हा...! तुम्हें यह बाहर के शरीर और चमक, श्मशान की हड्डियों में जैसे फासफूस दिखता है, (वैसे ही) यह सब फासफूस दिखती है। यह सब श्मशान की हड्डियाँ हैं। शरीर मकान और पैसा... आहा...हा...! तुम्हें जवानी में उनमें रस लगता हो, मेरी बात तुम्हें न रुचे तो प्रभु! मैं तो मुनि हूँ, आहा...हा...! गजब करते हैं! मैं सन्त हूँ, मैं साधु हूँ, हाँ! मुझसे दूसरी क्या आशा रखोगे, आहा...हा...! मैं तो यही कहूँगा और यही करता हूँ (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की ऐसी व्याख्या करते हुए, जिसे ठीक न लगे तो माफ करना, दूसरा क्या हो सकता है? मार्ग तो यह है, बापू! क्या होवे? आहा...हा...! हीरालालजी! भाई आये हैं न? ठीक! आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। यह किस प्रकार का धर्म? कुछ करना, करना... करना, यह तो नहीं... यह करना नहीं? यह करूँ, राग करूँ, दया करूँ, अमुक करूँ, यह करना तो मरना है, वहाँ तो तेरा भावमरण है, प्रभु! तुझे पता नहीं है। आहा...हा...!

मन्थन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है। साधक जीव, मुमुक्षु... आहा...हा...! है? मुमुक्षु **मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है।** आहा...हा...! जहाँ भगवान विराजमान है, प्रभु! उस ओर का पुरुषार्थ करके मार्ग तो ढूँढ़ निकालता है। मुमुक्षु, तत्त्व के रहस्यवाले भावों को पकड़कर, आहा...हा...! अन्तर में मन्थन करके मार्ग को ढूँढ़ निकालता है। अरे! ऐसी (बात)। बड़े विद्वान होवे और ऐसे भाषण (करता होवे), यह यह... और यह धारावाही बोलता हो, दस-दस हजार, बीस-बीस हजार लोग इकट्ठे हुए हों... अरे... बापू! यह मार्ग अलग, नाथ! आहा...हा...! यह ३८ (बोल पूरा) हुआ।

सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं है। तथा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है, जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है॥ ३९॥

३९ — **सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता।** क्या कहते हैं? आहा...हा...! शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान का जहाँ अनुभव हुआ; राग के विकल्प से भिन्न पड़कर, सहज स्वभाव की दशा अनुभव में आयी, ऐसी दशा को विकल्प करके बनाये नहीं रखना पड़ता। यह विकल्प करूँ तो यह बनी रहे — ऐसा नहीं है, वह तो सहजदशा है। समझ में आया? ऐसा है पण्डितजी! दूसरों को कठिन पड़ता है, क्या हो?

www.vitragvani.com

ए... ! सोनगढ़ का ऐसा है। बापू ! कहे भाई ! प्रभु ! तू प्रभु है न, बापू ! आहा...हा... ! तेरा बड़प्पन तुझे नहीं सूझता, इसलिए हीनता से बड़प्पन मिलेगा — ऐसी मान्यता तू करता है, प्रभु ! यह तुझे शोभा नहीं देता। आहा...हा... ! तेरी महत्ता का पार नहीं, नाथ ! तेरी प्रभुता का पार नहीं। ऐसी संख्या से भरपूर प्रभु का इस राग से और निमित्त से होवे, प्रभु ! उसे कलंक लगता है। आहा...हा... ! जिस रंग की छाप पाड़नी हो उसमें बोले न ऐसा ? क्या कहलाता है ? ऐसा अन्दर बिम्ब पड़े; जो रंग है ऐसा बिम्ब पड़े, इसी तरह भगवान आत्मा का जिसे अन्दर रंग लगा है... आहा...हा... ! ऐसी पर्याय में सहज बिम्ब लगे। आहा...हा... ! उसे विकल्प करूँ तो सहज दशा रहे — ऐसा होता नहीं।

विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जेठ शुक्ल ११, शनिवार, दिनाङ्क १७-०६-१९७८
प्रवचन-१२ वचनामृत- ३९-४०

वचनामृत अन्तिम, अन्तिम भाग, अन्तिम पैराग्राफ। **सहजदशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता।** यह क्या कहा ? कि यह आत्मा अनन्त गुण का स्वरूप एक द्रव्य, ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि और अनुभव हुआ... राग से भिन्न पड़कर और शुद्ध स्वरूप की अनुभूति, स्वभाव के आश्रय से — स्वभाव को अनुसरण करके जो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ, वह सहजदशा है, उस **सहजदशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता।** यह क्या कहा ? वस्तुस्थिति है — ऐसा जहाँ अन्तर में अनुभव में, भान में आया; अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति; शान्ति अर्थात् वीतरागता; अनन्त ज्ञानादि, अनन्त अतीन्द्रिय — ऐसा जो सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय, वह अनुभव में आया। मैं राग नहीं; मैं तो पूर्णानन्द शुद्धस्वरूप वह मैं हूँ — ऐसा जिसकी दशा में वेदन आया... आहा...हा...! राग के काल में तो राग और पुण्य और विकल्प का वेदन है, वह तो आकुलता का वेदन है। वह कहीं धर्म नहीं है, वह धर्म का कारण भी नहीं है। आहा...हा...!

वस्तु (का) जो स्वरूप है, एक समय में पूर्ण ब्रह्म प्रभु, ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ — ऐसा जो विकल्प है, वह भी जिसे टूट गया है क्योंकि विकल्प है, वह दु:ख है और आनन्द सहजात्मस्वरूप का जहाँ वेदन (हुआ), रागरहित वह चीज है — ऐसा वेदन में आया, वह सहजदशा हुई — जैसा स्वभाव था, वैसी दशा हुई। उसे विकल्प करके बनाये नहीं रखना पड़ता। अब वह दशा हुई, उसे विकल्प करके (अर्थात्) राग को रखूँ तो वह रहे — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! जहाँ अन्तर में राग से भिन्न पड़कर सहज परिणति शुद्ध हुई, उस परिणति को, राग करूँ तो शुभविकल्प करूँ तो रहे — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! पण्डितजी ! ऐसी बातें, भाई ! ऐसा मार्ग है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहजदशा ही नहीं है। आहा...हा...! शुभराग और वाँचन करके — ऐसे विकल्प से यदि सहजदशा रहे तो वह सहजदशा ही नहीं है। आहा...हा...! जैसे सहजात्म नित्य ध्रुवस्वरूप प्रभु सहज है, उसे कोई पर्याय-राग होवे तो ध्रुव टिक सके — ऐसा नहीं है, तो उस ध्रुव के ध्यान से प्रगट हुई दशा को भी शुभविकल्प — राग करूँ, भक्ति, पूजा, दया, दान, वाँचन-श्रवण — ऐसे विकल्प करूँ तो वह सहजदशा रहे — ऐसा नहीं है। डाह्याभाई! ऐसा है यह।

दशा कैसे होती है? जितने विकल्प हैं, उनसे भिन्न पड़कर, स्वरूप स्वयं निर्विकल्प वीतरागस्वरूप है, उसमें अन्तरदृष्टि करने से राग की एकता टूटने पर, स्वभाव की एकता होने पर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा होती है, वह इस प्रकार होती है और होने के बाद उसे विकल्प से रखना पड़े — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! दूसरे प्रकार से कहें तो ऐसा कि यह शुभराग रखें तो वह सहजदशा रहे — ऐसा नहीं है। उसे टिकने के लिए विकल्प से वाँचन, मनन करें तो वह दशा रहे — ऐसा नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहा...हा...!

तथा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का.... दो बोल हुए, तीसरा बोल कहते हैं। एक तो ऐसा कहा कि सहजदशा को विकल्प अर्थात् शुभरागादि करें तो बनी रहे — ऐसा नहीं है। फिर, विकल्प करके रखनी पड़ी तो वह सहजदशा ही नहीं है। दो (बातें की) तीसरी — **प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता;....** आहा...हा...! यह तीसरा। यह क्या कहा? कि वस्तु का स्वभाव जहाँ अनुभव में आया तो उस ओर का झुकाव पुरुषार्थ का रहा ही करता है, उसे नये कोई पुरुषार्थ करना पड़े — ऐसा नहीं है, क्योंकि स्वभाव की ओर की जहाँ दृष्टि-अनुभव हुआ तो स्वभाव के झुकाव में ही उसका पुरुषार्थ है। आहा...हा...!

यह पुस्तक तो बाहर आ गयी है, कुदरत ही ऐसी बात है। अकेला मक्खन भरा है। आहा...हा...! एक बार तो चाहे जो आग्रह हो, परन्तु यदि मध्यस्थ होकर सुने और विचार करे तो उसे ऐसा हो जाता है कि बात तो (यह है), मार्ग तो यह है। आहा...हा...!

तीन बोल हुए। **प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं**

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

करना पड़ता;.... आ...हा...! उस प्रगट हुई दशा की ओर के पुरुषार्थ की सावधानी वर्तती ही है। आहा...हा...! (जहाँ) रुचि हुई, वहाँ वीर्य ढला ही करता है। 'रुचि अनुयायी वीर्य' जो अन्दर रुचि हुई, उस ओर उसका वीर्य ढला ही करता है। आहा..हा...! तीन (बातें हुई)। **क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है, जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।** आहा...हा...! कठिन बातें बापू! यह आत्मा जो वस्तु है, वह सहजानन्दस्वरूप (है)। उसका निर्मल पूर्ण पवित्र स्वरूप ही है। वस्तु है, उसका पवित्र-पूर्ण (स्वरूप ही है)। यह दया, दान, व्रत, और भक्ति के भाव भी सब राग है। इस राग से भिन्न करके जिसने आत्मा की दशा जो पवित्र है, उसकी दशा में पवित्रता प्रगट की है, उस दशा को शुभराग करूँ तो रहे — ऐसा नहीं है और यदि शुभभाव करूँ तो रहे तो वह सहजदशा ही नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात है; और जो शुभ — दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, अरे...! गुण-गुणी के भेद का विकल्प है, वह राग है। आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु का गुण वह आत्मा और उसके आनन्द आदि गुण — ऐसा भेद डालना, वह भी एक राग का भाग / विकल्प है। आहा...हा...! तो उस विकल्प को तोड़कर, जिसने धर्मदशा, सहजदशा-जैसी ध्रुव शक्ति है, स्वरूप जो भगवान आत्मा ध्रुव है — ऐसी ही पर्याय में ध्रुवता की शक्ति की व्यक्तता-परिणति प्रगट की है, उसके लिए नवीन (कुछ करके) बनाये रखना पड़े — ऐसा नहीं है। वह पुरुषार्थ इस ओर ढला ही करता है। बात पूरी दुनिया से अलग है, बापू! आहा...हा...! दुनिया को, धर्म क्या है ? इसका पता ही नहीं है। आहा...हा...! वह तो दया पालना, हिंसा नहीं करना वह धर्म (ऐसा मानती है परन्तु उसमें) धूल भी धर्म नहीं है। ऐसा राग तो अनन्त बार किया। सुन भाई! आहा...हा...!

यहाँ तो आत्मा अन्दर जो वस्तु है, सत् है, मौजूद चीज है और जो अकृत्रिम है, अविनाशी है, और वह भी पूर्ण स्वभाव से भरपूर है। आहा...हा...! उसका जहाँ अन्दर भान हो, तब वह राग के विकल्प से भिन्न पड़े। वह भिन्न पड़ा, उसे अब राग से रखा जाये — कुछ शुभक्रिया करे, व्रत पाले, भक्ति करे या दया पाले — दूसरे जीव को नहीं मारना, दूसरे की दया पालना — ऐसे भाव हों तो वह दशा रहेगी — ऐसा नहीं है। इस प्रकार वह दशा होने के लिए नये पुरुषार्थ की जरूरत नहीं है, क्योंकि उस ओर पुरुषार्थ ढला हुआ ही है।

www.vitragvani.com

है ? **बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता;....** आ...हा... ! कठिन बातें बापू ! इसने अनन्त-अनन्त काल में सहजात्मस्वरूप क्या है ? इसका इसे पता नहीं है। यह करूँ और यह करूँ.... यह करूँ और यह करूँ... यह सब तो मिथ्यात्वभाव है। आहा...हा... ! समझ में आया ? पर की दया पालूँ, यह भी मिथ्यात्वभाव है, अज्ञानभाव है, क्योंकि यह पर की दया नहीं पाल सकता। परपदार्थ स्वतन्त्र है, उनकी दशा को दूसरा कौन कर सकता है ? आहा...हा... ! यह पर की दया पालने का विकल्प / वृत्ति उठती है, वह भी एक राग है और वह भी एक स्वरूप की हिंसा है। गजब बात है, बापू ! मार्ग अलग है, भाई ! आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं कि जो कुछ राग से भिन्न पड़कर, जैसा इसका स्वरूप है, वैसा अनुभव में आवे, उसकी दशा को बनाये रखने के लिए कोई शुभराग की क्रिया करे तो (वह दशा) रहेगी — ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ? आहा...हा... ! विकल्प करके नहीं बनाये रखनी पड़ती है। विकल्प करके रखनी पड़े तो सहजदशा नहीं है और प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का नया पुरुषार्थ करने पड़े — ऐसा भी नहीं है। अलग पुरुषार्थ करना पड़े — ऐसा नहीं है। **क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है....** शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप प्रभु की ओर बढ़ने का पुरुषार्थ अन्दर चलता ही है, क्योंकि दूज होवे वह पूर्णिमा हुए बिना नहीं रहती, उसे नया करना नहीं पड़ता; विकास होता ही है। इसी प्रकार जैसे सहजात्म प्रभु — अकेला ज्ञाता-दृष्टा आनन्द का कन्द प्रभु — ऐसा जिसे अनुभव में आया, उसे उसके बनाये रखने के लिए अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। कठिन शब्द है, आहा...हा... ! पण्डितजी !

क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है.... जो कुछ आत्मा को आश्रय से शुद्धि (हुई), पुण्य-पापरहित भाव की शुद्धि हुई, उस शुद्धि की वृद्धि के लिए तो प्रयत्न है ही, अर्थात् निर्जरा। स्वभावसन्मुखता का पुरुषार्थ है। समझ में आया ? जिसे संवरदशा कहते हैं। उस शुद्ध चैतन्यमूर्ति के अवलम्बन से, पुण्य-पाप के आश्रयरहित जो दशा हुई, उसमें समय-समय शुद्धि बढ़ती है। उसकी ओर का पुरुषार्थ है ही वह, उसे बनाये रखने के लिए दूसरा नया पुरुषार्थ करना पड़े — ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं। कभी सुनी

www.vitragvani.com

न हों, उसे (ऐसा लगता है कि) क्या होगा यह ? अरे... बापू! धर्म कोई सूक्ष्म वस्तु है, भाई! यहाँ तो पर की दया पालने के लिए यह करो, तो हो गया धर्म... धूल में भी धर्म नहीं। आहा...हा... ! पर की दया पाल सकता हूँ — यह मान्यता ही मिथ्याभ्रम और महापाप है। समझ में आया ? आहा...हा... !

यहाँ तो मेरा आत्मा जैसा जितना है... गुजराती चलती है, हिन्दी नहीं चलती। पाठ नहीं चलता, यह तो गुजराती है न ? क्या कहते हैं ? देखो, सुनो! यह जो आत्मा है, आत्मा अन्दर, वह इस देह के परमाणुओं से भिन्न / पृथक् है और अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वह राग है। राग है, विकल्प, है। दुनिया को पता नहीं, दुनिया को इस चीज का पता नहीं है।

प्रश्न : यह हम करते हैं, वह धर्म नहीं ?

समाधान : धर्म धूल में भी नहीं। धर्म कहाँ आया ? धर्म किसे कहते हैं ? धर्म तो अन्तर अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु, त्रिकाली सत्ता अपनी रखता है; अन्दर शुद्ध चैतन्यघन की दृष्टि होकर अनुभव होना और दशा में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, उसका नाम धर्म है, बाकी धर्म का शून्य... है। बात ऐसी है, भैया! हमने तो पूरी दुनिया देखी है।

मुमुक्षु : हम पहले भटके।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटके। साधु नाम धरावे तो भी मिथ्यादृष्टि है। हम पर का कर सकते हैं, पर को समझा सकते हैं, मुझसे पर का कार्य अच्छा होता है — सब मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि का सेवन करनेवाले हैं। उन्हें सत्यदृष्टि का पता नहीं है।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं — अपना चैतन्य जलहल ज्योति चैतन्य-प्रज्ञा, ज्ञानघनस्वरूप आत्मा अनादि अकृत्रिम, अनिर्मित, बननेवाला-बनानेवाला कोई नहीं और नाश करनेवाला कोई नहीं — ऐसी चीज जो सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर है! सत्... सत्... सत्... ज्ञान और आनन्द — ऐसी चीज... वह पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प हैं, वह राग है, वह बन्ध का कारण है, जहर है, दु:ख है, दु:ख है, बन्ध का कारण है। दुनिया का पता है... बन्ध है, दु:ख का कारण है। यहाँ तो क्या लिया है ? मैं अनन्त आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय निष्क्रिय राग की क्रिया से भिन्न ऐसा मैं हूँ — ऐसा भी विकल्प / राग उठता है, वह भी

www.vitragvani.com

बन्धन का कारण, दु:ख का कारण है। सूक्ष्म बात है प्रभु! इसने कभी सुनी नहीं। पता है न... बाहर में प्रवृत्ति करके मानो हो गया (धर्म) भाषण किया और ऐसी हिंसा नहीं करनी, अमुक नहीं करना, तुम्हें लाभ होगा... धूल में भी है नहीं। मर जानेवाला है — चौरासी के अवतार में भटककर मरेगा।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, सर्वज्ञ प्रभु! आहा...हा...! कि आत्मा की जो दशा (में) पुण्य और पाप के जो विकल्प उठते हैं, वह तो राग है। वह राग, धर्म नहीं और वह धर्म का कारण भी नहीं है। धर्म का कारण अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दकन्द पिण्ड प्रभु, उसका राग से भिन्न पड़कर अपने आनन्द का वेदन करना — अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम धर्म की शुरुआत कही जाती है। शुरुआत, हाँ! अभी पूर्ण तो बाद में होगा। ...यह तीसरी बात है। हम तो पूरी दुनिया को जानते हैं न! मुम्बई भी अभी थे न! पन्द्रह-पन्द्रह हजार, बीस-बीस हजार लोग थे। ८८ वाँ वर्ष लगा था न! घाटकोपर, घाटकोपर बीस-बीस हजार लोग! हमारी बात तो यह है। सब चौरासी के अवतार में भटककर मर जाने हैं। दुनिया से अलग (बात है)। आहा...हा...!

मुमुक्षु : मैंने जीव को बचाया, धर्म हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में बचा नहीं सकता। मैं पर को बचा सकता हूँ, यह भाव ही महापाप-पाखण्ड है, क्योंकि पर को बचा नहीं सकता और बचा सकता हूँ — ऐसा मानता है। वह तो उसकी आयुष्य की स्थिति है तो बचता है। उसके आयुष्य की स्थिति देह में रहने की है, इस कारण बचता है। यह कहता है — मैंने बचाया — मूढ़ है। पण्डितजी! ऐसी बात है भाई! आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं.... यहाँ तो सूक्ष्म बात चलती है। अपनी जो दशा है, यह शुभ-अशुभ जो विकल्प / राग उठता है, उससे अपनी चीज भिन्न है — ऐसा जब अनुभव होता है, अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु है, ऐसा आता है। वस्तु है वह सुखरूप है, वस्तु आनन्दरूप (होती है), दु:खरूप नहीं होती। जैसे हिरण / मृग की नाभि में कस्तूरी है, वह कस्तूरी की गन्ध उसे आती है तो मानो बाहर से आती है — ऐसा मानता है, परन्तु अन्दर में कस्तूरी पड़ी है, उसका उसे पता नहीं है। वैसे ही अनादि का अज्ञानी जीव,

www.vitragvani.com

आत्मा में आनन्द है, उसकी कस्तूरी में (स्वरूप में) आनन्द भरा है, उसकी, जैसे मृग को पता नहीं है, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ, पैसा प्राप्त करूँ, स्त्री-पुत्र प्राप्त करूँ, पर की दया पालूँ तो मुझे धर्म होगा — ऐसे पर में-अभिमान ही अभिमान में मर गया है अनादि से। अपनी चीज में आनन्द है, वहाँ जाऊँ तो मुझे सुख मिलेगा — ऐसी श्रद्धा और ज्ञान कभी भी अनन्त काल में किया नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो विशेष दशा कहते हैं कि अपना स्वरूप... आ...हा...! है या नहीं? आत्मा है या नहीं? अस्ति है या नहीं? अस्ति है। तीनों काल रहनेवाली चीज है या नहीं? नयी होती है? है उसका नाश होता है? है उसे कोई उत्पन्न करता है? ऐसा है... है... है तीन बार — भूत काल में था, वर्तमान में है, भविष्य में रहेगा। अतः है... है... ऐसी चीज जो है, उस चीज में तो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान भरा है। उसमें यह दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव विपरीत, जहर दुःखरूप है। आहा...हा...! उससे भिन्न अपनी चीज को जाने (कि) मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द और सहजात्मस्वरूप — ऐसी दृष्टि करके विकल्प से — राग से (भिन्न जाने)। दया, दान... अरे! दया, दान तो ठीक, वह तो स्थूल पाप है, स्थूल राग है। स्थूल राग है, वह भी निश्चय से तो पाप है। 'पाप को पाप तो सब कहे पर अनुभवी जन पुण्य को भी पाप कहे।' (योगसार गाथा ७१) क्योंकि अपने आनन्द के स्वरूप से पतित होता है। पर के लक्ष्य में राग आता है तो राग में अपने स्वरूप से पतित होता है, भ्रष्ट होता है; इस कारण उसे पाप कहा गया है। पण्डितजी! सूक्ष्म बात है, प्रभु! बहुत सूक्ष्म बात है।

प्रश्न : पूरी दुनिया से अलग आप क्यों कहते हैं?

समाधान : वस्तु ऐसी है। दुनिया को कहाँ भान है? पागल होकर दुनिया घूमती है। हिरण को अपनी कस्तूरी का पता नहीं, कस्तूरी अन्दर पड़ी है; वैसे ही आनन्द अपने में है, अन्दर प्रभु में आनन्द पड़ा है, उसका पता नहीं और यहाँ से मिलेगा तथा यहाँ से मिलेगा; पर की दया पालूँ तो सुखी होऊँ, पर को अनुकूलता की मदद करूँ, पैसे की, इज्जत की, आहार-पानी की (मदद करूँ) तो सुखी होऊँ, सब अज्ञानी का भ्रम है। समझ में आया?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : अर्थात् ऐसा कि कोई किसी का भला नहीं कर सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कुछ नहीं कर सकता। 'मैं करूँ... मैं करूँ... यही अज्ञान है'। मैं करूँ, इसका कर दूँ, उसका कर दूँ, अमुक का काम चलता हो, वह बन्द कर दूँ, नया काम करा दूँ... यह सब भ्रम अज्ञानी का है। चार गति में भटकने की श्रद्धा है। आहा...हा... ! प्रभु तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है।

मुमुक्षु : हम कहाँ भटक रहे हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे के ऐसे भटक रहा है।... आहा...हा... ! हमने तो पूरा देश देखा है न ? पूरा हिन्दुस्तान दस-दस हजार मील तीन बार घूमे, पूरा हिन्दुस्तान ! मोटर में, हाँ ! दस-दस हजार मील तीन बार ! यह चीज कोई दूसरी है।

अनन्त काल में परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जो कुछ कहते हैं, उससे दूसरी ही चीज अभी सम्प्रदाय में चलती है। सम्प्रदाय में चीज ही दूसरी चलती है। यह व्रत करो, और ब्रह्मचर्य पालन करो, दया पालो, और हरितकाय मत खाओ, कन्दमूल मत खाओ और ऐसा खाओ तथा ऐसा मत खाओ... क्रियाकाण्ड-राग की क्रिया में फँस गये हैं। आत्मा तो राग की क्रिया से भी भिन्न है। आहा...हा... ! पण्डितजी !

चैतन्य ज्योति — जलहल ज्योति, चैतन्य के प्रकाश का नूर, नूर का पूर, चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर प्रभु, आत्मा अन्दर है। पता कहाँ है ? भान ही कहाँ है ? यह किया और यह किया... कुटुम्ब को बनाया और स्त्री का पोषण किया, यह पैसा कमाया, पाँच-पच्चीस लाख पैसा (रुपये) मिले और लाख-दो लाख मन्दिर में खर्च किये (तो) धर्म हो गया... धूल में भी धर्म नहीं है। मर जाएगा, सुन अब ! यह करोड़ क्या, दो करोड़-पाँच करोड़ दे दे, वह तो जड़ दशा है। जड़ दशा क्या तेरी है ? कि तू दे सके और उसे लाभ हो ? पैसा तो मिट्टी-धूल है। तू तो आत्मा चैतन्य भिन्न है। अरूपी आत्मा भिन्न है, रूपी पैसा भिन्न है। मैं पैसा दूँ और मुझे उससे लाभ होगा... अज्ञान की भ्रमणा में अनादि से फँस गया है। पण्डितजी ! अपने अधिकार चलता है, वह तो बहुत सूक्ष्म चलता है।

मुमुक्षु : ऐसी बात सुनकर हृदय में आनन्द होता है। दुनिया कुछ कहती है....

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ऐसा है, दुनिया पागल है। साधु नाम धरानेवाले भी पागल हैं। वस्त्र छोड़कर नग्न साधु हुआ या वस्त्रसहित साधु हुआ तो साधु (माने वह) सब भ्रम है। आहा...हा...!

अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द व अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है। परन्तु इसे कहाँ पता है? वस्तु कहाँ कैसी चीज अन्दर है? (इसका पता नहीं है।)

मुमुक्षु : पहले ऐसा निर्णय कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले ऐसा निर्णय कर, फिर अनुभव (होकर) फिर स्थिरता अन्दर होवे तो साधु होता है। साधु-वादु वस्त्र छोड़ा और स्त्री-पुत्र छोड़े, इसलिए साधु हो गया... धूल में भी (साधु) नहीं है। यहाँ तो अपनी बीस लाख पुस्तकें छप गयी हैं।

मुमुक्षु : आज का प्रवचन हिन्दी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रवचन हिन्दी में है। थोड़े हिन्दी में भी हैं, यहाँ से बीस लाख पुस्तकें छपी हैं। बीस लाख! लाखों छपती हैं, यहाँ तो ४३ वर्ष से (हैं)। चालीस और तीन वर्ष से जंगल में हैं.... सबमें यह बात है। ४३ वर्ष में देखो, या अभी देखो। आहा...हा...!

साधकदशा में शुभभाव बीच में आते हैं परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है; साध्य का लक्ष्य नहीं चूकता। — जैसे मुसाफिर एक नगर से दूसरे नगर जाता है तब बीच में अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है; जहाँ जाना है वहीं का लक्ष्य रहता है॥ ४०॥

अब अपने यहाँ चालीसवाँ बोल, ४० बोल। **साधकदशा में....** देखो! है चालीसवाँ? पृष्ठ १४। **साधकदशा में....** अर्थात् राग के विकल्प से भिन्न अपनी चीज का अनुभव किया... राग से लाभ नहीं, मेरी चीज में ही सब लाभ भरा है — ऐसी साधकदशा जब उत्पन्न हुई तो **शुभभाव बीच में आते हैं....** दया, दान का विकल्प, राग आता है। अशुभ से बचने के लिए (आता है) परन्तु वह धर्म नहीं है। आहा...हा...! है? **साधकदशा में शुभभाव बीच में आते हैं....** शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु हूँ —ऐसी दृष्टि होने

www.vitragvani.com

पर भी, जब तक पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ न हो, तब तक बीच में शुभभाव आता है। दया, दानादि का शुभ (भाव आते हैं) परन्तु हैं विघ्नकारी, है दुःखरूप। आहा...हा...! है ?

परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है;.... आहा...हा...! क्या कहते हैं ? कि जिसे आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ, अर्थात् जैसा आत्मा है, वैसा प्रतीति में और ज्ञान के ज्ञेय में, ज्ञान में उसका भान हुआ तो वह राग से भिन्न हुआ। वह राग से भिन्न हुआ, (उसे) बीच में शुभराग आता है। **परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है;....** साधक उस शुभराग को छोड़ता जाता है। यह नहीं, यह नहीं, यह मैं नहीं। शुभराग — दया का, दान का, भक्ति का, मन्दिर बनाने का, मन्दिर बनाने में लाखों-करोड़ों खर्च करने का शुभभाव आवे परन्तु धर्मी उसे कहते हैं कि उसे (शुभराग को) छोड़ता जाए। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। आहा...हा...! है ?

साधकदशा में शुभभाव बीच में आते हैं परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है;.... शुभराग का आदर नहीं करता। आहा...हा...! यहाँ तो अभी जो अकेला शुभराग है, उसका ही ठिकाना नहीं होता और जहाँ-तहाँ अभिमान... अभिमान... अभिमान।

मुमुक्षु : आपके उपदेश से तो मन्दिर बने हैं, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ से नहीं बने हैं, वे बननेवाले थे तो बने हैं, हमारे से नहीं। आज मन्दिर बनता है, नैरोबी अफ्रीका, आज साढ़े दस बजे पन्द्रह लाख के मन्दिर का आरोपण हुआ। अफ्रीका-नैरोबी में। नैरोबी है न नैरोबी! यहाँ से बाबूभाई व लालचन्दभाई अभी अफ्रीका में गये हैं। आज साढ़े दस बजे उसका मुहूर्त था। पन्द्रह लाख का मन्दिर बननेवाला है। दिगम्बर मन्दिर, पन्द्रह लाख का, आज मुहूर्त हो गया, साढ़े दस बजे मुहूर्त हो गया। तैयारी हो गयी है। छह महीने, बारह महीने में तैयार (हो जाएगा) परन्तु उन्हें पहले से कहा कि पन्द्रह लाख क्या, करोड़ का बनावे तो तुमको धर्म होगा... बिल्कुल नहीं, वह शुभभाव आता है। अशुभ से पाप से बचने के लिए शुभ (भाव आता है), वह धर्म नहीं है। उससे जन्म-मरण मिटे, चौरासी के अवतार मिटे, यह चीज वह नहीं है। करोड़पति है, करोड़ों रुपये खर्च करते हैं, धूल में क्या उसमें ? आहा...हा...! आज ही हुआ है, साढ़े दस बजे। नैरोबी, अफ्रीका। बाबूभाई और लालभाई वहाँ गये हैं। वहाँ बहुत लोग

सुनने जाते हैं। श्वेताम्बर, दिगम्बर मण्डल हैं, चालीस घर हैं, चार तो करोड़पति हैं और दूसरे १५-१५, २०-२० लाख के आसामी हैं, यहाँ का मण्डल है, मुमुक्षु हैं। वहाँ दो-ढाई लाख का मन्दिर तो है और प्रतिमा ले गये हैं परन्तु वह प्रतिमा और प्रतिमा की पूजा का भाव आता है परन्तु वह भाव है, राग। राग, बन्ध का कारण है। यहाँ कोई.... चीज नहीं है। बहुत वर्षों से चलता है। बीस लाख पुस्तकें तो प्रकाशित हो गयी हैं, सभी पुस्तकों में यह बात है। आहा...हा...!

यहाँ तो यह बहिन के वचनामृत हैं। बहिन है। कहा था न? चम्पाबेन है। (उन्हें) असंख्य अरबों वर्ष का पूर्व का जातिस्मरण है, पूर्व का भव यह भव, यह भव, यह भव... ऐसे असंख्य अरब वर्ष। बहिन बैठी हैं, उनके यह वचनामृत हैं। लोगों की माँग थी कि (इस पर) प्रवचन होवे।

(यहाँ कहते हैं कि) **साधकदशा में शुभभाव बीच में आते हैं....** वस्तुस्वरूप निर्विकल्प है। वीतरागस्वरूप आत्मा तो है। उसमें अनुभव हुआ, साधकदशा प्रगट हुई। मैं राग नहीं, मैं तो पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ — ऐसा होने पर भी, बीच में शुभराग आता है परन्तु उसे छोड़ता जाता है। धर्मी तो उसे कहते हैं कि शुभभाव को भी हेय मानता है। हेय, छोड़नेयोग्य, छोड़नेयोग्य है। मेरी चीज जो अन्दर आनन्द का नाथ है, वह मुझे उपादेय है। आहा...हा...!

प्रश्न : उपादेय का अर्थ?

समाधान : उपादेय का अर्थ आदरणीय। मेरी चीज जो अन्दर सच्चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वही मुझे आदरणीय है और शुभराग, वह आदरणीय नहीं है। है वह है। वह शुभ-अशुभभाव अशुद्ध है, उससे भिन्न अन्दर शुद्ध होना। आहा...हा...! इस शुभभाव से शुद्धता नहीं होती। इसकी रुचि छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर, त्रिलोकनाथ चिदानन्द प्रभु अन्दर है, उसका आश्रय करके, उसमें एकाग्र होकर शुद्धता प्रगट होती है, वह धर्म है, बाकी सब व्यर्थ है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : नोंध कर लेना।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : नोंध कर लेने जैसी है।

क्या कहते हैं ? देखो ! **साधकदशा में शुभभाव बीच में आते हैं परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है;....** छोड़ता जाता है अर्थात् ? हेय (मानता है)। हिन्दी में क्या भाषा है ? हेय है, छोड़नेयोग्य है, आदर करने योग्य नहीं। आहा...हा... ! क्योंकि वह तो राग है। आहा...हा... ! और आदर करने योग्य माने तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। वह धर्मी नहीं और उसे धर्म की खबर भी नहीं — ऐसी बात है। आहा...हा... ! आ...हा... ! माता को माता कहते-कहते कुछ ढीला करो, उसे माता नहीं परन्तु अपनी स्त्री भी कहना... है ? ऐसी वस्तुस्थिति... आहा...हा... ! प्रवचनमाता पाँच समिति और गुप्ति का भान अन्दर हुआ, मैं तो आनन्दस्वरूप चैतन्यज्योति जलहल ज्योति... जलहल ज्योति... चैतन्य के प्रकाश का भी प्रकाशक मैं हूँ — ऐसी चैतन्यज्योति मैं हूँ — ऐसा अन्तर में अनुभव हुआ, उसे भी बीच में शुभभाव आता है परन्तु हेय करके छोड़ता जाता है। किस प्रकार ?

साध्य का लक्ष्य नहीं चूकता। साध्य अर्थात् ध्येय जो पूर्णानन्द प्रभु मैं, वह ध्येय — साध्य वह है। जैसे तीर मारने का साध्य (लक्ष्य बिन्दु) होता है, वैसे यहाँ धर्मी का साध्य त्रिकाली ध्रुव... ध्रुव आत्मा है। नित्यानन्द प्रभु अनादि-अनन्त सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है, वह धर्मी का ध्येय है। धर्मी के ध्यान का लक्ष्य वहाँ है। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

फेरफार लगता है, क्या हो ? **साध्य का लक्ष्य नहीं चूकता।** धर्मी-साधक जीव। धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आया हो और उस वेदन में नहीं रह सके तो शुभभाव बीच में आता है परन्तु उस शुभभाव को छोड़ता जाता है, हेय मानता है; अच्छा नहीं-ठीक नहीं और वह शुभभाव राग, मुझे लाभदायक नहीं। चाहे तो भगवान की भक्ति हो या भगवान का (नमस्कार मन्त्र हो) — णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं.... (करे) वह भी विकल्प और शुभराग है।

प्रश्न : नमस्कार मन्त्र भी ऐसा है।

समाधान : ऐसा ही है। णमो अरिहंताणं.... यह शुभराग की वृत्ति उठती है, तब णमो अरिहंताणं बोलते हैं।

www.vitragvani.com

प्रश्न : वह भी राग है ?

समाधान : वह भी राग है, प्रभु! यहाँ तो दूसरी चीज है। आहा...हा...! भगवान! तेरी चीज का तुझे पता नहीं, प्रभु!

मुमुक्षु : हमें तो यही उपदेश मिलता है कि राग करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है, वही करता है, दुनिया पूरी वही मानती है। सभी मानते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि शुभराग भी बन्ध का कारण है। मेरी कमजोरी से मुझे आता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है; मुझे आदरणीय नहीं है। आहा...हा...! है ? नहीं आयी, छोटी पुस्तक नहीं आयी। उसमें आयेगा न थोड़ा ? अध्यात्म पीयूष में... क्या कहते हैं ?

बहुत थोड़े शब्दों में अकेला माल भरा है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : पहले आपने कहा, अकेला मक्खन भरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माल कहो या मक्खन कहो। आहा...हा...! चैतन्यरस आनन्दकन्द! वह इसमें होगा या नहीं पता नहीं ? एक पुस्तक फिर सरदारजी को देना समझेंगे, ले तो जाये। एक छोटी पुस्तक है, उसमें सब भरा है। सब एकदम समझ में तो नहीं आयेगा। पूरी दुनिया से अलग (बात) है। बड़े पण्डित (काशी) के पढ़कर-गिनकर पढ़े, परन्तु शून्य है सब। आहा...हा...!

सच्चिदानन्द आत्मा वस्तुस्वरूप अन्दर है, उसमें पुण्य और पाप विकल्प उत्पन्न होता है और विकल्प को अपना मानता है तो चार गति में भटकता है। इस विकल्प से रहित मेरी चीज अन्दर निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु पूर्ण हूँ — ऐसी दृष्टि करके अनुभव करने का नाम धर्म की पहली श्रेणी है। आहा...हा...! साधकदशा में भी बीच में शुभभाव आते हैं परन्तु साध्य का लक्ष्य नहीं छूटता। (शुभभाव को) छोड़ देता है। नहीं, यह नहीं; मैं तो अन्दर आनन्द में रहूँ, वह मेरी चीज है। आहा...हा...!

जैसे मुसाफिर एक नगर से दूसरे नगर जाता है.... मुसाफिर एक नगर से दूसरे नगर जाता है तो नगर को छोड़ता जाता है। वैसे धर्मी अपनी दृष्टि जो अपने शुद्ध चैतन्य पर है, उसमें बीच में शुभराग आता है, तो जैसे मुसाफिर नगर छोड़ता जाता है, वैसे धर्मी,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

शुभ को छोड़ता जाता है। आहा...हा...! सड़क पर मनुष्य चले और सैकड़ों वृक्ष हों, वृक्ष, (उनकी) छाया हो, छाया, बीच में आती है, वह छूट जाती है। वैसे प्रभु आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप की दृष्टि में बीच में यह रागादि की छाया; जैसे वृक्ष की छाया बीच में आ जाती है परन्तु वह छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं, वहाँ अटकता नहीं और उसमें धर्म नहीं मानता। आहा...हा...! अरे...! पागल जैसा लगे ऐसा है। पागल दुनिया है, उसे पागल जैसा लगे ऐसा है। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! भूला... भूला... भूला... सारा संसार... कबीर में ऐसा आता है। एक भूला नहीं 'कबीर' जिसे सत् का आधार। ऐसा भूला, दूसरा भूला, भूला सारा संसार, आहा...हा...! दास कबीरा ऐसा कहे... वैसे दास आत्मा ऐसा कहे कि एक भूला मैं नहीं भूला, मेरी चीज अन्दर आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु! सत् — है, चिद् अर्थात् ज्ञान और अनन्त सच्चिदानन्द। सत् चिद् और आनन्द। आहा...हा...! ऐसी मेरी चीज भरी पड़ी है। वह चीज मेरी चीज और उसे साधनेवाला मैं। राग आता है, उसका साधनेवाला नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है।

नहीं चूकता। — जैसे मुसाफिर एक नगर से दूसरे नगर जाता है, तब बीच में अन्य-अन्य नगर आयें, उन्हें छोड़ता जाता है,..... वहाँ रुकता नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ट्रेन में जाये तो बहुत स्टेशनों पर गाड़ी खड़ी रहती है, कहीं उतरता नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं उतरता है। मुम्बई जाना हो (उसमें) बीच में बहुत से गाँव आवें, टिकट मुम्बई का लिया हो, तो वहाँ बीच में अटक जायेगा? वैसे ही धर्मी का ध्येय पूर्ण स्वरूप आनन्द है, वह उसका ध्येय है। उसकी दशा में पूर्ण प्राप्ति करूँ, यह इसका साध्य है। इस साध्य का साधक, पुण्य और पाप की क्रिया के राग से भिन्न, अपने स्वरूप की स्थिरता, दृष्टि, स्थिरता वह पूर्ण साध्य का साधक है। बीच में राग आता है; जैसे मुसाफिर नगर को छोड़ता जाता है। मुसाफिर किसी एक नगर में रहता है? जहाँ बड़ा नगर में जाना हो, वहाँ जाता है। मोटर में जाये, प्लेन में जाये। वैसे प्रभु आत्मा... आहा...हा...! अपनी शुद्ध चैतन्यवस्तु, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, वह प्राप्त करने की चीज, जो साध्य है, उसका साधन द्रव्यवस्तु, वस्तु है। उस वस्तु की दृष्टि और ज्ञान करने से साधकदशा प्रगट होती है — ऐसी साधकदशा में शुभभाव आता है परन्तु धर्मी उसे छोड़

www.vitragvani.com

देता है। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह मेरी चीज नहीं, इससे मुझे लाभ नहीं, ये मेरे आत्मा में मददगार नहीं। आहा...हा...! पण्डितजी! अभी तो बहुत विपरीत चलता है। पूरी दुनिया... साधु होकर व्रत करो और पर की दया पालो और यह करो और पाँच-पच्चीस हजार का दान दो, चन्दा करो, खरड़ा कहते हैं, क्या कहते हैं ? चन्दा। आहा...हा...! धूल में भी धर्म नहीं है। तेरे चन्दा कर और अरब रुपये इकट्ठे कर न। आहा...हा...! उस ओर की वृत्ति है, वह तो राग है। राग है, वह दुःख है; दुःख है, वह जहर है। भगवान आत्मा, राग से भिन्न अन्दर अमृतसागर है — ऐसी बात है।

अरे...! इसने अनन्त काल में कभी सुना नहीं। सत्य बात सुनने को मिलती नहीं; परिचय में तो कहाँ से आवे ? और अनुभव में तो कहाँ से आवे ? आ...हा...! 'श्रुत परिचित अनुभूता' (समयसार की) चौथी गाथा में आता है। राग करना, शुभराग करना और शुभराग का फल भोगना — ऐसी बात तो प्रभु! तूने अनन्त बार सुनी है; अनन्त बार तुझे परिचय में भी आ गयी है और तेरी अनुभूति में — अनुभव में राग का वेदन अनन्त बार आ गया है। आहा...हा...! परन्तु एकत्व और पर से भिन्न (आत्मा अनुभव में नहीं आया)। यह शरीर तो जड़, मिट्टी-धूल है, यह तो राख है। इसकी हिलने-चलने की क्रिया है, वह भी जड़ की क्रिया है; आत्मा की नहीं, आत्मा कर नहीं सकता। यह बोलना आत्मा की क्रिया नहीं है, यह तो मिट्टी-धूल, जड़ की क्रिया है। आहा...हा...! तेज आवाज में भाषण कर सकता हूँ (— ऐसा माननेवाले) मूढ़ हैं। भाषा तो जड़ है, उसका स्वामी होता है, और अन्दर अपनी चैतन्य चीज है, उसका नकार कर देता है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है प्रभु! आहा...हा...! अनन्त काल से भटका, 'अनन्त काल से आथडयो बिना भान भगवान, सेव्या नहीं गुरु संत ने छोड़ा नहीं अभिमान।' अभिमान नहीं छोड़ा, जहाँ-तहाँ हम जानते हैं और हमें पता है, ऐसा का ऐसा अज्ञान की पागलदशा में जीवन व्यतीत हो गया। अनन्त (काल) व्यतीत हो गया। आहा...हा...!

अब तो जाग न प्रभु! आहा...हा...! तेरी चीज को सम्हाल! पुण्य-पाप की सम्हाल तो तूने बहुत की है; शुभ-अशुभराग की सम्हाल, याददाश्त, धारणा, कर्तव्य, अनुभव, अनन्त बार हुआ। आहा...हा...! परन्तु राग से पृथक् चैतन्यज्योति जलहल प्रभु! ज्ञान प्रकाश का पूर, आदि और अन्तरहित चीज नित्यानन्द प्रभु को ध्येय बनाकर एक बार

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पर्याय में शुद्धि प्रगट कर! वह शुद्धि प्रगट होगी, वह धर्म-साधक है। आहा...हा...! अरे...! बात-बात में फेर... यह दुनिया नहीं कहती? 'आनन्दा कहे परमानन्दा, माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मिलै न एक तांबियाना फेर' वैसे ही परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तेरी श्रद्धा और मेरी बात में बात-बात में अन्तर है, फेर है। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) जैसे नगर छूटता जाता है, वैसे **अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है;....** अटकता नहीं। वैसे धर्मी जीव.... आहा...हा...! अन्तर की दृष्टि और राग से भिन्न का भान है; इस कारण बीच में राग तो अशुभ से बचने के लिए आता है परन्तु छोड़ देता है, हेय है। जैसे गेहूँ में कंकड़ होते हैं, कंकड़... कंकड़... गेहूँ! (उन्हें) निकाल डालता है।

मुमुक्षु : उनकी कीमत तो दी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गेहूँ की कीमत दी है, कंकड़ों की नहीं। गेहूँ की कीमत दी है। कंकड़ों की कीमत दी है? वैसे ही भगवान आत्मा में पुण्य-पाप के भाव है, वे कंकड़ के समान हैं। आहा...हा...! प्रभु! तेरी अन्दर की महत्ता कोई अलग है, उसका तुझे पता नहीं है। आहा...हा...! तूने कभी सुना नहीं। तेरी अन्तर की महिमा की महत्ता की तुझे खबर नहीं है और तूने दया, दान, व्रत, और शुभराग में महत्ता दे दी। जहर को महत्ता दे दी और अमृत के सागर को धिक्कार कर दिया। समझ में आया? ऐसी बात है। लो, यह तो पाँच मिनट की जगह पूरा चला। पाँच मिनट का कहा था न? परन्तु आधे घण्टे चला। आहा...हा...! प्रभु! तू कौन है? आहा...हा...! निर्विकल्प है, शुद्ध है, बुद्ध है, आनन्द का सागर है। तेरे चैतन्य के प्रकाश के पूर का अपरिमित तत्त्व है, उसमें पुण्य और पाप का भाव सब राग और विकल्प है। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! प्रभु! तू कौन है? — इसका तुझे पता नहीं। आहा...हा...!

एक बार कहा नहीं था? संवत् १९६४ के साल, उस समय तो उम्र १८ वर्ष की थी, ७० वर्ष पहले की बात है, अभी तो शरीर को ८८ हुए, नब्बे में दो कम। ८९ अभी लगा। एक बार हम माल लेने गये थे, हमारी दुकान वहाँ है न? पालेज में दुकान है। भरूच और

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

बड़ौदा के बीच पालेज है, वहाँ पिताजी की दुकान थी, हम तो गये थे। पिताजी १९५९ से १९६३ तक चार वर्ष रहे, पिताजी गुजर गये फिर १९६३ से १९६८ तक मैंने भी दुकान चलायी। सत्रह वर्ष की उम्र से बाईस (वर्ष तक) पाँच वर्ष (दुकान चलायी)। एक बार हम बड़ौदा माल लेने गये थे, छोटी उम्र में हम तो व्यापार करते थे न? हमें छोटी उम्र में सेठ... सेठ... कहते थे। दुकान चलती थी और धारधीर करते थे। बड़ी दुकान चलती है। पालेज, भरूच और बड़ौदा के बीच पालेज है, बड़ी दुकान है, अभी ३५-४० लाख रुपये हैं। तीन से चार लाख की आमदनी है, अभी पालेज में दुकान में है। उस दुकान में मैं ६५ वर्ष पहले था।

एक बार बड़ौदा माल लेने गये थे, रात्रि में अभी कहीं अनुसूईया का नाटक था। भावनगर न? भावनगर! अनुसूईया का नाटक। भरूच के किनारे नर्मदा नदी है न? वह नर्मदा और अनुसूईया दो बहिनें थीं, दो बहिनों का नाटक था, बड़ा नाटक था, अभी भावनगर में था। हमने संवत् १९६४ में वह नाटक देखा था, ७० वर्ष हुए, तो वह कन्या थी। क्या कहा? अनुसूईया! अनुसूईया स्त्री थी, उसने विवाह नहीं किया। (वह) स्वर्ग में जा रही थी, स्वर्ग में से इनकार हुआ। उन लोगों में ऐसा आता है — वेद में — 'अपुत्रस्य गति नास्ति' अर्थात् पुत्ररहित को गति नहीं मिलती। है तो सब मिथ्या, परन्तु वह नाटक में देखा था। स्वर्ग में से इनकार किया, यहाँ नहीं, विवाह कर, पुत्र हो फिर तुझे स्वर्ग मिलेगा। नीचे एक अन्धा ब्राह्मण था, उसके साथ विवाह किया, पुत्र हुआ, (उसे) झूले में झुला रही थी परन्तु ऐसी भाषा थी। अभी तो सम्प्रदाय में नहीं, वैसा तो नाटक में था। अभी तो नाटक और फिल्म देखने में तो कुकर्म हो गया है। व्यभिचार और सब दिखाव... आहा...हा...! स्त्रियाँ ऐसी खड़ी हों और ऐसे हाथ डाले। अरे...! यह तो अनीति! उस समय बाई (अनुसूईया) पुत्र को झूला रही थी (और) ऐसा बोलती थी। ७० वर्ष हुए, सात और शून्य, ७० कहते हैं न? ७० वर्ष पहले की बात है।

बेटा! तू निर्विकल्प है। आहा...हा...! उस समय सुना है। नाटक में! निर्विकल्प है, प्रभु! तू निर्विकल्प है, तू उदासीन है। राग से और पर से तेरा आसन भिन्न है और तू बुद्ध है, ज्ञान का पिण्ड है। ऐसा तो नाटक में देखा था। अभी तो सम्प्रदाय में बात रही नहीं। प्रभु!

www.vitragvani.com

तू अन्दर कौन है ? क्या चीज है अन्दर में ? आहा...हा... ! यह विकल्प अर्थात् राग से रहित तेरी चीज है और बुद्धोसि (अर्थात्) ज्ञान का पिण्ड है, ज्ञान का पुंज है। आहा...हा... ! और उदासीनो (अर्थात्) प्रभु ! राग के विकल्प से तेरा आसन अन्दर भिन्न है। तेरी चीज अन्दर भिन्न है — ये तीन बोल याद रहे। अपने तो शास्त्र में सब हैं। उस समय की ७० वर्ष पहले की बात में फिल्म (नाटक) की तीन बात याद रही। अभी तो सम्प्रदाय में यह बात नहीं मिलती कि तू अन्दर निर्विकल्प, उदासीन बुद्ध तत्त्व है। यह नहीं,... यह कर, और यह कर, और यह कर....। कर यह (और) मर। पर का करने का भाव तो मरना है। चैतन्य को-ज्ञाता-दृष्टा को मार डाला है।

विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सच्ची उत्कण्ठा हो तो मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता। जितना कारण दे उतना कार्य होता ही है। अन्दर वेदनासहित भावना हो तो मार्ग ढूँढ़े॥ ४१॥

जेठ शुक्ल १३, रविवार, दिनाङ्क १८-०६-१९७८
प्रवचन-१३ वचनामृत- ४१-४४

वचनामृत ४१ वाँ (बोल)। चालीस चला न? सूक्ष्म बात है, यह तो मूल मार्ग है न? **सच्ची उत्कण्ठा हो तो मार्ग मिलता ही है,....** अर्थात् क्या कहा? कि जिसे यह आत्मा अनन्त आनन्द का रूप, जिसका स्वरूप — ऐसे आनन्द के स्वाद लेने की जिसे उत्कण्ठा लगती है, जगत् के स्वाद का जिसे फीका भाव होता है। आहा...हा...! एक आत्मा के अतिरिक्त दूसरे की बात में कहीं रस नहीं लगता और आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसकी उत्कण्ठा अर्थात् प्रयत्न का पुरुषार्थ उस ओर ढले, उसे मार्ग मिलता ही है — तो अन्दर मार्ग होता ही है परन्तु दूसरे रास्ते जाये और यह रास्ता मिले — ऐसा नहीं हो सकता। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात। मूल सत्य वस्तु सूक्ष्म।

मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता। आहा...हा...! जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसका पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता। आहा...हा...! जिसे संसार के राग के रस में रस है, तो उसका-राग का वह पुरुषार्थ करता है। आहा...हा...! जिसे आवश्यकता लगे और पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता, ऐसा नहीं होता। ऐसे आत्मा वस्तु क्या है यह चीज? आत्मा के इतने-इतने गुणगान करते हैं, भगवान आत्मा, सर्वोत्कृष्ट आत्मा, परमेश्वर स्वरूप आत्मा! आहा...हा...! अनन्त-अनन्त गुण की खान, आत्मा क्या है वह यह? ऐसी जिसे अन्दर में लगन लगे, आहा...हा...! धुन चढ़े, उसकी धुन... ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, तब मार्ग मिलता है। **मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता।** क्यों? कि **जितना कारण दे,**

www.vitragvani.com

उतना कार्य होता ही है। हमको क्यों कार्य आता नहीं? ऐसा कोई कहे कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, हमको क्यों नहीं होता? तो कहते हैं कि वह कार्य है, उसका कारण देना चाहिए। जितना कारण दे, उतना कार्य होता है। कारण थोड़ा दे और कार्य अधिक हो — ऐसा नहीं होता है। आहा...हा...!

पूर्ण आनन्द और पूर्ण धर्म, धर्मी स्वयं अनन्त धर्म का धारक... क्या यह चीज है? एक समय की दशा में जो नहीं आता और कायम एकरूप रहता है, जिसने बदलना नहीं, पलटना नहीं, न्यूनता होती नहीं, विपरीत होता नहीं — ऐसा पूर्ण तत्त्व है, वह क्या है? आहा...हा...! ऐसी जिसे रुचि की उत्कण्ठा लगे, उसे अन्तरस्वरूप अनुभव हुए बिना नहीं रहता (— ऐसा कहते हैं।) आहा...हा...! कारण कि कचास के कारण कार्य नहीं आता — ऐसा सिद्धान्त निश्चित करे कि हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं... परन्तु बहुत पुरुषार्थ कहना किसे? आहा...हा...!

अन्तर प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु है, उसकी पूर्णता को प्राप्त करने का जिसे भाव हो, उसे अन्तर में लगन लगे... आहा...हा...! उसे आत्मा के अतिरिक्त कहीं मिठास दिखायी न दे, कहीं मिठास नहीं लगे, आहा...हा...! कहीं रस नहीं पड़े — ऐसा चैतन्यस्वरूप भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह, आहा...हा...! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने जो आत्मा कहा है, उन प्रभु ने उसे आत्मा कहा है। किसी शरीर-वाणी को आत्मा नहीं कहा तथा पुण्य-पाप के भाव को आत्मा नहीं कहा तथा अपूर्ण दशा को आत्मा नहीं कहा। आहा...हा...! ऐसा जो पूर्ण स्वभाव... बात तो अलौकिक है परन्तु.... आहा...हा...! बहुत सादी भाषा में (बात की है)।

जिसे अन्तर परमात्मा के प्रति आश्चर्य और विस्मयता आये कि क्या चीज है कि ऐसे गीत गाते हैं? ऐसा भगवान सर्वोत्कृष्ट है, जिसमें गुण का पार नहीं। संख्या से कुछ पार नहीं, क्या है यह, वह चीज? ऐसी जिसे पुरुषार्थ में आवश्यकता लगे और वस्तु न मिले — ऐसा नहीं बनता। आहा...हा...! तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा है।

जितना कारण दे, उतना कार्य होता ही है। उतना कार्य होता ही है। जैसा भगवान पूर्ण स्वरूप है, उसे श्रद्धा और ज्ञान में उतना पुरुषार्थ करके कारण दे तो कार्य हुए

www.vitragvani.com

बिना नहीं रहता। **अन्दर वेदनासहित भावना हो तो....** अन्तर वेदना अर्थात्? अन्तर वेदन होने की जिसे भावना हो, आहा...हा...! राग और द्वेष, पुण्य और पाप का वेदन तो अनादि का है। साधु हुआ तो भी वेदन तो उसे राग-द्वेष का ही है; कहीं अन्तर का वेदन नहीं। अन्तर वेदन होवे तब तो द्रव्यलिंग धारण करके भटके नहीं। आहा...हा...! अन्तर वेदन (अर्थात्) अन्तर खटक। आहा...हा...! **अन्दर वेदनासहित भावना हो तो....** (अर्थात्) अन्तर की एकाग्रता होने की (भावना होवे तो) **मार्ग ढूँढ़े।** आहा...हा...! यह ४१ (बोल पूरा) हुआ।

यह बात ऐसी है प्रभु! कि बाहर के किसी साधन या राग दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान, क्रियाकाण्ड के सब भाव, उनका जहाँ तक प्रेम है और उनसे मिलेगा — ऐसी जहाँ तक रुचि वहीं लगी है और पुरुषार्थ से हम इतना करते हैं और मिलता नहीं (ऐसा कहे) परन्तु वह तेरा पुरुषार्थ ही उलटा है। आहा...हा...! बहुत उपवास करे, इन्द्रिय दमन करे, शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, किसी जीव को दुःख न देने का भाव (रखे) परन्तु यह तो सब विकल्प और राग की क्रिया है। इस राग में... आहा...हा...! राग अन्धकार है, इस अन्धकार के मार्ग से आत्मा का प्रकाश मिले — ऐसा है नहीं। आहा...हा...! ४१ (हुआ)।

यथार्थ रुचिसहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशमरस से सराबोर होते हैं; और यथार्थ रुचि बिना, वहके वही शुभभाव रूखे एवं चञ्चलतायुक्त होते हैं॥ ४२॥

४२, **यथार्थ रुचिसहित शुभभाव....** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा इस जगत में अस्ति वस्तु है, वह एक ही सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है, भगवानस्वरूप ही है परन्तु इसे बाहर की मिठास के कारण... आहा...हा...! स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, जिन्हें पहले से देखकर माना है कि यह... यह मेरे। आत्मा तो कहाँ इसे पता है? देखा (कि) ऐसी चेष्टा करे वह मेरी माँ और ऐसे मेरे पिता और ऐसे मेरे पुत्र, यह मेरी दुकान और यह दुकान के नौकर मेरे, इस धन्धे की व्यवस्था में मेरा रस है, इसलिए यह व्यवस्था चलती है — ऐसे रस में इसे यथार्थ रुचि नहीं है। आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

यथार्थ रुचिसहित.... भगवान आत्मा जहाँ पोसाण में आवे, इसके अतिरिक्त कहीं कुछ बात जिसे भली नहीं लगे। आहा...हा...! ऐसा शुद्ध प्रभु, उसकी रुचि, पोसाण सहित जो शुभभाव (आते हैं), उसमें राग की मन्दता का भाव आवे परन्तु **वैराग्य एवं उपशमरस से सराबोर होते हैं;....** क्योंकि राग है, तथापि वहाँ से विरक्तपने का वैराग्य तो वहाँ है। आहा...हा...! जिसे आत्मा के आनन्द की अथवा वस्तु के स्वरूप की रुचि हुई, उसे शुभराग आवे परन्तु उस राग में उसे वैराग्य तो साथ ही होता है। राग मैं नहीं — ऐसे वैराग्य से सराबोर राग होता है। राग मैं नहीं — ऐसे वैराग्य से सराबोर राग होता है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई!

एवं उपशमरस.... अर्थात् अपना आत्मरस। ऐसे राग से विरक्त है, वैराग्य साथ में होता है और साथ में शान्त अविकार प्रभु है, उसकी रुचि है, वह शान्तरस भी साथ में है। अकषाय अंश उपशमरस साथ में है; इसलिए शुभभाव भी वैराग्य और उपशमरस से सराबोर अर्थात् साथ होते हैं। आहा...हा...! राग तो राग है परन्तु राग के साथ वैराग्य है और आत्मा के अस्तिपने का उपशमरस का वेदन है। आहा...हा...! ऐसी बातें अब! यह बैठता है वहाँ, वह शुभराग वैराग्य और उपशमरस से सराबोर है, अर्थात् इसकी दशा उस समय शुभराग होने पर भी भिन्न है। आहा...हा...!

देखनेवाला देखता है पर को, उसमें उसे कहीं विस्मयता, अधिकता, आश्चर्य लगता है; इसलिए वह अन्तर की विस्मयता के आश्रय में नहीं जाता। आहा...हा...! बाहर की सामग्रियाँ — पैसे से लेकर शरीर, सुन्दर वाणी, मकान और यह सब क्या कहलाता है तुम्हारा? घर प्रयोग की चीजें! फर्नीचर और ऐसे चमक युक्त हो... आहा...हा...! देखो न!

मुमुक्षु : वह तो परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य है परन्तु रस पड़ता है न, मजा लगता है। आहा...हा...! देखो! ऐसा मकान, संगमरमर का मकान! सत्ताईस लाख रुपये! देखनेवाले आवें ऐसा कहे कि तुम कुछ लिखो इसमें कि इसमें क्या-क्या है! हमें एकदम समझ में नहीं आता। कहो, बापू! यह चीज तो पर है। तुझमें से हुई नहीं, तूने इसे किया नहीं, तेरी अस्ति है; इसलिए इसकी अस्ति है — ऐसा नहीं है और इसकी अस्ति में तेरा कुछ भी भाग है — (ऐसा नहीं

www.vitragvani.com

है।) आहा...हा... ! इसकी अस्ति इसके कारण-जड़ के कारण है। आहा...हा... ! इसकी अस्ति से तुझे कुछ आश्चर्य और विस्मय लगता है तो तुझे तेरी अस्ति की विस्मयता नहीं जँचती। आहा...हा... !

यह कहते हैं **यथार्थ रुचिसहित....** शुभभूमिका आवे, वह **वैराग्य एवं उपशमरस से सराबोर होते हैं; और यथार्थ रुचि बिना,....** आहा...हा... ! पूर्णानन्द प्रभु आत्मा की दृष्टि और रुचि के बिना... वह जिसे अन्दर पोसाता नहीं और बाहर की चमक-दमक में (रस आता है) आहा...हा... ! कुछ पढ़ना आवे, बोलना आवे...

मुमुक्षु : चक्रवर्ती को चमक-दमक बहुत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चमक-दमक श्मशान की राख है। क्या कहा ? फासफूस, क्या कहते हैं ? फोरफरस, ठीक। श्मशान की हड्डियों में फोरफरस होता है। ऐसी इस दुनिया का चक्रवर्ती का राज, हड्डियों की फॉरफरस है, मेरा नाथ अमृतस्वरूप भगवान के समक्ष तो यह सब हड्डियों की फॉरफरस (जैसा है)। आहा...हा... ! अनन्त चीजों में से कोई भी चीज को, अपने अतिरिक्त किसी भी चीज को, विशेषरूप से, अधिकतारूप से, आश्रयरूप से, विस्मयरूप से अन्दर वीर्य में काम करे, उसका वैराग्य, शुभभाव भी सच्चा नहीं है। आहा...हा... ! (उसके वे) **शुभभाव रूखे....** देखा न ? आहा...हा... ! जिसे आत्मा के रसरहित शुभभाव (आवें), वे रूखे लगते हैं, रूखे। आहा...हा... ! **रूखे एवं चञ्चलतायुक्त होते हैं।** शुभभाव बदला करे। वहीं का वहीं लक्ष्य है न, और शुभ करने में आदतन हो गया है। आहा...हा... ! सबेरे उठे, देव-दर्शन करे, सन्मुख बैठे, स्तुति करे, पूजा करे, दो-चार घण्टे वहाँ बितावे। आहा...हा... ! परन्तु अन्दर वस्तु है, उसकी तो दृष्टि नहीं। अन्तर चीज परमात्मा स्वयं है, उसका तो जिसे माहात्म्य और महिमा आयी नहीं और बाहर की चीज की महिमा तथा माहात्म्य में काल बिताते हैं, वे सब चंचलतावाले शुभभाव हैं। आहा...हा... ! बहुत कठिन काम, आहा...हा... !

भाई ! देह छूटेगी, उसकी देह छूटनी ही है न ? भिन्न ही है परन्तु क्षेत्र से अवगाह से देह भिन्न होगी। आहा...हा... ! वह रखने से नहीं रहेगी और उसकी सम्हाल करेगा तो भी वह नहीं रहेगी, क्योंकि वह चीज पर है। आहा...हा... ! अरे... ! उसे अपना मानकर

www.vitragvani.com

पढ़ा हो, उसे वह छोड़ने के काल में दब जाएगा। राग की एकता में दब जाएगा। भले वह अन्दर णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं करता हो। आहा...हा...! समझ में आया? लोग ऐसा कहें कि ओ...हो...! (इसे) तो भगवान का नाम स्मरण करते हुए समाधिमरण हुआ। धूल भी नहीं, भाई! तुझे पता नहीं है। आहा...हा...! ऐसे शुभभाव के काल में आत्मा का अन्दर रस नहीं और राग से विरक्त वैराग्य की दिशा नहीं, वह राग सब चंचलतावाला और रूखा है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

ऐसा तो बाबा होवे तब होता है, वह कहता था। बाबा ही हूँ बापू! आहा...हा...! अमृतलाल जरियावाला ऐसा कहता है कि यह तो तुम सब कहते हो (वह तो बाबा होवे तब समझ में आता है) परन्तु प्रभु! बाबा ही है, भाई! अरे...! तुझमें राग का कण नहीं। शरीर और वाणी, स्त्री, पुत्र तो कहीं रह गये। यह तो धूल, उसके कारण वह काम करती है। तेरे कारण वह नहीं और उसमें तू नहीं। आहा...हा...! ऐसा अन्तर में दूसरे के स्वभावभाव के प्रति विस्मयता और आश्चर्य न छूटे और शुभभाव रहे, वह सब रूखा और चंचलतावाला है। आहा...हा...! णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं (बोले)... णमो सिद्धाणं तो भगवान भी दीक्षा लेते समय (बोलते हैं)। तीर्थंकर भी णमो सिद्धाणं करते हैं। भाई! परन्तु वह विकल्प है, उसके पीछे वैराग्य है। आहा...हा...! वहाँ राग का रस नहीं और उसके पीछे आत्मा का शान्तरस है। उसके कारण वह शुभभाव, शान्ति से और वैराग्य से सहित कहा जाता है और उसके भान बिना का शुभभाव रूखा और चंचल कहा जाता है। यह तो मुद्दे की रकम की बातें हैं, भाई! यह तो यह करना और यह करना और यह करना... आहा...हा...! व्यवहारचारित्र करे तो निश्चय होता है... आहा...हा...! उसका जो शुभभाव है, वह तो रूखा और चंचल है। आहा...हा...!

धर्मी को आत्मा की दृष्टिसहित में शुभभाव आते हैं, व्यवहारचारित्र आदि का भाव (आता है) परन्तु वह शुभभाव के प्रेम में नहीं आया। उसे उस (समय) भी वैराग्य वर्तता है और अस्तिपने का जिसे शान्तरस दिखता है। आहा...हा...! उसके कारण वह राग, वैराग्य और शान्ति से मानो सराबोर हो — ऐसा दिखता है। है तो राग, राग परन्तु उसकी भूमिका में (वैसा राग) होता है। समझ में आया? ऐसी जाति का यह उपदेश है। आहा...हा...! अब इसका न्याय देते हैं।

www.vitragvani.com

जिस प्रकार कोई बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या ?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरा गाँव कौन ?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरे माता-पिता कौन हैं ?' तो कहता है 'मेरी माँ', उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है उसे हर एक प्रसङ्ग में 'ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव' — ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसी की निरन्तर रुचि एवं भावना रहती है॥ ४३॥

४३, **जिस प्रकार कोई बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो,....** माँ की अंगुली से रास्ते में ऐसे दौड़ता हो, बहुत लोगों का जत्था दिखे, उसमें बालक अंगुली से छूट गया। **बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या ?'....** यह तो हमने पोरबन्दर में नजरों से देखा है। पोरबन्दर के पास हम थे और उसमें एक लड़की ठीक उपाश्रय के साथ खड़ी थी, और उसमें माँ आगे-पीछे हो गयी और रोवे... रोवे... रोवे... रोवे... पुलिस आयी, (उससे) पूछे कि तेरा नाम क्या ? तेरी व्यवस्था कहीं है ? तेरी गली कहाँ है ? (तो कहा) मेरी माँ... मेरी माँ, बस ! एक ही जवाब, यह तो नजरों से देखा है। पोरबन्दर में उपाश्रय के पास हुआ था। लड़की जा सके नहीं। कहाँ जाना ? मेरी माँ, कौन से रास्ते और कहाँ गयी है ? कौन सा रास्ता होगा ? इसका पता नहीं पड़ता। यहाँ से ऐसे जाना या ऐसे जाना ? आहा...हा... ! उसे पूछे कि परन्तु तेरी व्यवस्था कुछ है ? सेठिया की लड़की या ऐसा नाम आता है ? तो कहे मेरी माँ, बस ! एक ही बात। ऐसा कहती थी, हम सुनते थे, हाँ ! आहा...हा... ! तेरे पिता का नाम क्या ? तुम किस जाति के ? (तो कहे) मेरी माँ, बस ! एक ही बात, क्योंकि माँ हाथ में से गयी, किस दिशा में और कहाँ (गयी) ? आहा...हा... !

'तेरा नाम क्या ?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरा गाँव कौन ?' तो कहता है 'मेरी माँ', आहा...हा... ! **'तेरे माता-पिता कौन हैं ?' तो कहता है 'मेरी माँ',....** एक ही कहे। यह तो पोरबन्दर चातुर्मास (के समय) नजरों से देखा है। **उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से....** आहा...हा... ! **ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है....**

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! जिसके ध्येय में, प्रेम, जिसे ज्ञायकभाव ही रुचि में पड़ा है। आहा...हा... ! उसे ज्ञायकभाव के अतिरिक्त कहीं उसे विकल्प में रुचता नहीं है। आहा...हा... ! कहीं अटकना उसे रुचता नहीं है। आहा...हा... ! अन्तर में जाने के लिए छटपटाहट (लगी है)। जो बहिरात्मपना है, अर्थात् जो आत्मा में नहीं — ऐसे जो पुण्य-पाप के भाव और उनके फल, वे आत्मा में नहीं, उनका जिसे रस और प्रेम है, उसे ज्ञायकभाव का प्रेम नहीं है; और जिसे आत्मा के ज्ञायकभाव का प्रेम लगा, उसे पुण्य के परिणाम से लेकर पूरा जगत जिसके प्रेम का विषय नहीं। आहा...हा... ! ऐसा ज्ञायकभाव का जिसे रस है, जिसे प्राप्त करना है। आहा...हा... ! वास्तविक रुचि से भगवान (प्राप्त करना है)। दुनिया कैसे माने ? दुनिया में कैसे प्रसिद्धि हो ? और मुझे आता है तो दुनिया मुझे बड़ा माने, यह सब रुचि पर के प्रति है। आहा...हा... ! उसे ज्ञायकभाव के प्रति रुचि और प्रेम नहीं है। आहा...हा... !

वह अमेरिका की बात नहीं सुनी थी ? बड़ा नहीं था प्लेन (गिर गया) ? अमेरिका में बड़ा प्लेन... क्या कहलाता है तुम्हारा वह ? प्लेन कहलाता है न वह ? वह गिरा। सब लोग मर गये। जंगल में लोगों का आना-जाना तो नहीं परन्तु लोगों का नाम भी कहीं सुनने को नहीं मिलता — ऐसे जंगल में गिरा। उसमें सब मर गये। एक अठारह वर्ष की जर्मनी की लड़की बच गयी और असाध्य हो गयी। उस असाध्य में से जरा ऐसे (साध्य में / होश में आयी) ऐसे देखे वहाँ ऊपर आकाश नीचे धरती। तिरछे देखने पर यह सब मुर्दे पड़े हैं। आहा...हा... ! उसे कहाँ (जाना) ? कोई मुझे मार्ग बताओ। आहा...हा... ! एक ही छटपटाहट... कोई मुझे मार्ग बताओ, मुझे घर में जाना है। शहर कहाँ है और किस दिशा में है ? उसका पता नहीं पड़ता। कोई पगडण्डी नहीं मिलती कि यह पगडण्डी कहीं जाती होगी ? आहा...हा... ! उसकी छटपटाहट कैसी होगी ? आहा...हा... ! ग्यारह दिन इसी प्रकार (निकाले), नहीं मनुष्य... (इसी प्रकार) रात और दिन ग्यारह दिन निकाले। कैसे निकाले होंगे ? आयुष्य की स्थिति होगी। आहा...हा... !

बारहवें दिन फिर एक शिकारी की झोंपड़ी देखी, वहाँ खड़ी रही। यह झोंपड़ी है, कोई व्यक्ति आयेगा। खड़ी रही। आहा...हा... ! कुछ ढूँढ़ती थी कोई मार्ग, कोई मार्ग (मिले), उसने झोंपड़ी देखकर वहाँ खड़ी रही कि यहाँ कोई मनुष्य आयेगा। वहाँ शिकारी

www.vitragvani.com

लोग आये। अरे... ! बहिन क्या है तुझे ? पूरे शरीर में सूजन, जीव काटे — बिच्छु, मेंढक क्या कहलाते हैं वह ? कड़वे... कड़वे, जहरीले... जहरीले... मेंढ़क काटे, पैर में यह सब कीड़े (पड़ गये)। पैर सड़ गया, नीचे अकेला पानी, जीव (भरे हुए) आहा...हा... ! उसे कैसा होगा अन्दर में ? अरे... मुझे कोई मार्ग बतावे, मार्ग बतावे, एक ही लाईन ! आहा...हा... ! परन्तु आयुष्य था। वह फिर शिकारी आ गया और उसे देखकर दया आ गयी। अरे...रे... ! बहिन ! क्या हुआ तुझे यह सब ? पूरे शरीर में सूजन, चले तो पैर में से ऐसे कीड़े निकलें, पैर में से कीड़े (निकले) पैर इतने सड़ गये। उसका आयुष्य है न ? आहा...हा... ! उसने बेचारे ने मोटर में डाली (और) अपने शहर ले गया। उसे कैसा लगता होगा ?

उसी प्रकार अनादि का पर के प्रेम में फँस गया है। झमकलालजी ! उसे मेरा प्रभु कहाँ है ? कौन है ? क्या है यह ? ऐसा कोई बताओ रे... बताओ, मुझे बताओ ऐसी पुकार करे... अरे... ! श्रीमद् ने कहा है न ? 'मैं कौन हूँ ? आया कहाँ से और मेरा रूप क्या ? सम्बन्ध दुखमय कौन है ? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ? इसका विचार विवेकपूर्वक....' विवेक अर्थात् भेदज्ञान। राग और पर से भेद करने के विचार में जहाँ उतरे... 'इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिए तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सब कपाट खुल गये।' आहा...हा... ! प्रभु ! यह है कौन ? क्या है ? इसे पकड़े बिना कहीं चैन पड़ता नहीं, कहीं रस पड़ता नहीं, कहीं गम पड़ता नहीं। आहा...हा... ! ऐसी जिसे आत्मा की उत्कण्ठा लगे। आहा...हा... ! **उसे हर एक प्रसङ्ग में 'ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव'....** आहा...हा... ! जागता जीव, चैतन्य जीव, ज्ञायकस्वभाव — जिसका स्वभाव अकेला जानना है, वह जीव है। वह भी पूर्ण स्वभाव ज्ञायकभाव — ऐसी जिसे लगन लगे, आहा...हा... ! है ? **'ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव' — ऐसी लगन बनी ही रहती है,....** आहा...हा... ! लाख बात की बात, आता है न ? छहढाला में नहीं ? 'लाख बात की बात' आहा...हा... ! फिर क्या कहा ? 'निश्चय उर लाओ' निश्चय अर्थात् यह। 'छोड़ि जगत द्वन्द्व-फन्द एक आतम उर ध्याओ।' आहा...हा... ! जिसकी लगन में, उत्कण्ठा में स्वप्न भी यह आवे। जागृत में तो आवे परन्तु नींद में स्वप्न भी आवे — ऐसी उसकी उत्कण्ठा लगे।

यह व्यापारवालों को उत्कण्ठा नहीं लगती ? कैसी लगती है, देखो न ! यह दिया, यह दिया.... दूसरा कहे लो, ले लो, ले लो, पाँच सौ ले जाओ... पाँच सौ ले जाओ... दिन

www.vitragvani.com

की उत्कण्ठा रात्रि में उलझन में भी इसे बुलाती हैं। आहा...हा...! इसी प्रकार जिसे भगवान आत्मा / मेरा नाथ कौन है यह ? है कौन यह ? क्या है ? कैसे हैं ? कहाँ है ? कैसे प्राप्त हो ? आहा...हा...! ऐसी जिसे लगन लगे। **ऐसी लगन बनी ही रहती है,....** आ...हा...! **उसी की निरन्तर रुचि एवं भावना रहती है।** आहा...हा...! लाख बात बाहर में हो और शरीर की क्रिया में राग दिखे परन्तु वहाँ ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव, सामान्यभाव, एकरूपभाव की जिसे लगन लगे, उसे आत्मा प्राप्त हुए बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...!

यह तो दो घड़ी सुने, दो-चार घण्टे पढ़े, सब बोल ले; फिर दुकान पर बैठे और उत्कण्ठा लगे, ग्राहक आवे और उसमें दो-पाँच हजार की आमदनी दिखे — ऐसा व्यापार हो... आ...हा...! दो टाईम का एक टाईम खाना कर डाले। दस बजे (कहे कि) टाईम हो गया। तो कहता है अभी नहीं। ऐसी कोई भोली बेचारी सेठानी मिली हो, हो करोड़पति और पाँच लाख का माल लेना हो, वस्त्र (लेने हों) और यहाँ पचास लाख का माल पड़ा हो और उसे देने के समय देखो, इसकी लीनता! जयन्तीभाई! आहा...हा...! लड़का कहने आवे बापू! चलो टाईम हो गया। (तो कहता है) ग्राहक है, ग्राहक निपटाने के बाद आऊँगा। निपटाते-निपटाते चार बज गये, साढ़े चार बज गये... दो समय का शाम को एक ही समय कर डालता है। आहा...हा...!

शास्त्र में तो यह भी आया है, भाई! पण्डितजी! ज्ञानी को अकाम निर्जरा ली है। नहीं वह गाथा ? सकाम, अकामनिर्जरा, टीका में है न ? ३२० गाथा। ज्ञानी को अकामनिर्जरा होती है। सकाम, अकाम, सविपाक, अविपाक — चार बोल लिये हैं। आहा...हा...! उसे भी कोई इस प्रकार की वृत्ति (आ जाये), बैठा हो वह अकामनिर्जरा कहलाती है। है दृष्टि आत्मा पर, आहा...हा...! परन्तु उसमें धन्धे में रुक गया, छह-छह घण्टे भूखे रहा, पेट में पानी भी नहीं तो उसे अकामनिर्जरा गिनी है। ३२० गाथा। आहा...हा...! मिथ्यादृष्टि की तो क्या बात करना ?

यहाँ तो जिसे आत्मा का रस लगा है, आहाहा! उसे भी जहाँ ऐसा भाव होता है, वहाँ भी उसे रुचि तो निरन्तर आत्मा... आत्मा... (आत्मा की है।) जैसे (उस) लड़की को जहाँ पूछो वहाँ माँ... माँ... मेरी माँ। इसी प्रकार यह जहाँ पूछो वहाँ उसके भाव में वस्तु

www.vitragvani.com

ज्ञायकभाव चैतन्यभाव, स्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, एकभाव, कायम टिकती चीज, एकरूप पूर्ण कौन है यह ? उसकी बारम्बार खटक रहा करती है... ऐसा उपदेश ! यह किस प्रकार का उपदेश ? (अज्ञानी) तो कहता है ईश्वर की भक्ति करना, (अज्ञानी) कहता है भगवान के, मन्दिर के दर्शन करना, तो यह सब किसलिए किया ? धर्म होता होगा, इसलिए यह सब किया होगा या नहीं ? रामजीभाई तो इसमें ध्यान तो बहुत रखते थे। कुछ-कुछ जरा सा इसमें धर्म होता होगा या नहीं ? ये वज्जूभाई... आहा...हा... ! वह उसके काल में होता है, प्रभु ! वह पुद्गल की पर्याय उस क्षण में उस चैतन्य की पर्याय से पुद्गल की पर्याय नहीं होती। चैतन्य के शुभभाव से भी वह पर्याय ऐसे नहीं रची जाती, भाई ! आहा...हा... ! ऐसा भगवान आत्मा, सम्पूर्ण जगत् की पर्याय दिखती है, उससे वह अत्यन्त भिन्न है। आहा...हा... !

सम्यग्दृष्टि को पूछे तो बोले तो ऐसा कि यह लड़का किसका है ? (तो कहे) मेरा; यह दुकान किसकी ? मेरी। यह मेरा व्यक्ति, नौकर है। आहा...हा... ! अन्दर में कुछ नहीं मानता। आहा...हा... ! श्रीमद् को एक बार पूछा - तुम अकेले ही हो न 'अमारो, अमारो, शब्द क्यों प्रयोग करते हो ?' तुम तो एक ही हो तो अमारो वस्त्र, अमारो कोट, अमारो अमुक — ऐसा क्यों कहते हो ? भाई ! अमारो कोट (कहते हैं) इसमें अ (अर्थात्) मेरा नहीं — ऐसा उसमें है। आहा...हा... ! बापू ! प्रभु ! तुझे 'अमारा' शब्द में उसका इशारा करने के लिए एक शब्द में यह है, अमारो (अर्थात्) यह हमारा नहीं। कोट मेरा नहीं, स्त्री मेरी नहीं, मकान मेरा नहीं, दुकान मेरी नहीं। आहा...हा... ! अमारो धन्धा - ऐसा चलता है, अर्थात् यह हमारा धन्धा ही नहीं। आहा...हा... ! ऐसा पूछा था।

मुझसे भी किसी ने प्रश्न किया था। वहाँ 'बरसड़ा' है, बरसड़ा। वहाँ इन्द्रजीभाई थे, बहुत वर्ष हुए, गुजर गये। उन्होंने पूछा था कि श्रीमद् अमारो... अमारो... शब्द क्यों प्रयोग करते हैं ? हैं अकेले न ? बापू ! इस अमारा में... ऐसा है बहुत वर्ष की बात है, हाँ ! वहाँ बरसड़ा में स्थानकवासी के थोड़े घर हैं। इन्द्रजी थे, वे गुजर गये। वहाँ 'गोण्डल' में व्याख्यान में आते थे। वहाँ इस दशाश्रीमाली में दवाखाने में था, उपाश्रय के सामने, जहाँ व्याख्यान पढ़ते न, अन्दर साथ में दवाखाना (था) वहाँ था। दूसरा एक था। यह तो बहुत वर्ष हुए। वह कहता — श्रीमद् ऐसा (शब्द) क्यों प्रयोग करते हैं ? कहा, बापू ! अमारा में

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अर्थ ऐसा है, उन्हें बोलने का समय है, लोग पूछते हैं तो प्रश्न खड़ा होता है, परन्तु उसमें अमारो अर्थात् मेरा नहीं — ऐसी वहाँ ध्वनि है। आहा...हा...! अमारो शुभभाव अर्थात् कि मेरा शुभभाव नहीं। आहा...हा...! अमारो कुटुम्ब, अमारी जाति, आहा...हा...! अर्थात् हमारी जाति नहीं, कुटुम्ब हमारा नहीं है। हमारी जाति और कुटुम्ब तो यहाँ अन्दर है। आहा...हा...! ऐसी जिसे ज्ञायकभाव की लीनता और तल्लीनता लगे, उसे निरन्तर रुचि से भावना ही रहती है। आहा...हा...! ४३ (बोल) पूरा हुआ।

रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिन्तन, मन्थन, खटका बना रहता है। जिस प्रकार किसी को 'माँ' का प्रेम हो तो उसे माँ की याद, उसका खटका निरन्तर बना ही रहता है, उसी प्रकार जिसे आत्मा का प्रेम हो, वह भले ही शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हो तथापि अन्तर में खटका तो आत्मा का ही रहता है। 'माँ' के प्रेमवाला भले ही कुटुम्ब-परिवार के समूह में बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ' में ही लगा रहता है — 'अरे! मेरी माँ... मेरी माँ!'; उसी प्रकार आत्मा का खटका रहना चाहिए। चाहे जिस प्रसङ्ग में 'मेरा आत्मा... मेरा आत्मा!' यही खटका और रुचि रहना चाहिए। ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती॥ ४४॥

४४ वाँ बोल बड़ा है। **रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे....** देखो, आया! इसे रुचि में चैतन्यतत्त्व की आवश्यकता लगे, शोध करके उसे प्राप्त करने की आवश्यकता लगे तो क्षण में संग और प्रसंग में उसका वहीं का वहीं अन्तर ध्यान होता है। अन्तर का ध्यान अर्थात् ध्येय तो उस पर होता है। आहा...हा...! **रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे....** अन्तर की रुचि में, अन्तर के रस में जिसे अन्तर की आवश्यकता अन्तर तत्त्व की लगे **तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं।** आहा...हा...! जिसे अन्तर की सचमुच आवश्यकता लगे, दूसरी किसी चीज की आवश्यकता नहीं; मुझे तो

www.vitragvani.com

एक आत्मा ही चाहिए, बस! आहा...हा...! ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन के पहले भी ऐसी लगन और लगनी लगे **तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं।** आहा...हा...!

दुनिया की, पूरी दुनिया की उपेक्षा और एक वस्तु की ही अपेक्षा — दो में समा गया। राग से लेकर सभी चीजों में जिसकी उपेक्षा वर्तती है, और जिसे एक आत्मस्वभाव की ही अपेक्षा वर्तती है। आहा...हा...! उसे **वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। रहती ही नहीं।** आहा...हा...! यह पुस्तक तुम्हें दी है, डॉक्टर! इसमें तो ऐसा सब भरा हुआ है। आहा...हा...! बहुत सादे शब्द, गुजराती सादे शब्द... पहले यह आ गया है। अभी कितने ही हिन्दीवालों को नहीं मिली परन्तु गुजरातीवालों को बहुतों को मिल गयी है। आहा...हा...!

उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिन्तन,.... आहा...हा...! नींद में भी उसे यही विचार की धारा चलती हो — ऐसी जिसे वास्तव में आत्मा की रुचि लगे... आहा...हा...! दुनिया की अनुकूलता का ढेर हो या प्रतिकूलता का ढेर हो, इन सबसे उपेक्षा करके... आहा...हा...!

सातवें नरक का नारकी (जिसे) प्रतिकूलताओं का पार नहीं होता, आहा...हा...! बापू! उसके दुःख सुने जाये नहीं (ऐसे हैं)। संयोगों का दुःख नहीं परन्तु संयोग के प्रति एकताबुद्धि इतनी है, महामिथ्यात्व, वहाँ जानेवाले तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, बाद में समकित पावें (वह अलग बात है)। यह जीव ऐसी स्थिति में भी... आहा...हा...! जिसे खाने को कण नहीं मिलता, पानी की बूँद नहीं मिलती, जन्म से शरीर में सोलह रोग... आहा...हा...! अरे...! जहाँ पड़ा है, उसकी शीत वेदना, उस शीत का एक कण यहाँ लावे तो दस हजार योजन के लोग सर्दी से मर जायें — इतनी तो शीत। प्रभु! इस प्रतिकूलता में भी जिसे आत्मा की लगन लगी... आहा...हा...हा...! और पहले, दूसरे, तीसरे नरक तक तो परमाधामी (असुरकुमार देव) नारकी को लोहे के तमतमाते सरिया लेकर, लम्बे बनाकर, पूरे शरीर को बाँधते हैं। पैर और सिर खींचकर ऊपर लोहे के घन मारते हैं, भाई! इस स्थिति में भी प्रभु तो अन्दर भिन्न है न!? आहा...हा...!

जिसके शरीर का ऐसा सब.... गठरी बाँधे और वह भी लोहे के तमतमाते सरिया से (बाँधे) और फिर घन मारे परन्तु उस समय प्रभु तो अन्दर भिन्न है न? आहा...हा...! ऐसी स्थिति होने पर भी वहाँ समकित आ जाता है। आहा...हा...! क्योंकि वह (प्रतिकूलताएँ)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

चीज में है नहीं। स्वयं है वहाँ वे हैं नहीं। आहा...हा...! यहाँ से मिथ्यादृष्टि लेकर गया हो और ऐसी स्थिति में भी वहाँ सातवीं में (सातवें नरक में) मारनेवाला नहीं, वेदना कठोर है। यहाँ तो मारनेवाले ऊपर परमाधामी होते हैं। आहा...हा...! ए बापू! बातें नहीं, क्या होता है? भाई! उसकी इस पीड़ा में उसका प्रसंग कितना? तथापि उसे अन्तर की आत्मा की जहाँ लगन लगी है। आहा...हा...! वह अन्दर आत्मा में एकदम उतर जाता है। आहा...हा...! पर का लक्ष्य छोड़कर, इतनी प्रतिकूलता की संयोग की सामग्री का भी लक्ष्य छोड़कर (अन्दर समकित प्रगट करता है)। प्रभु! तुझे (अभी तो) वह अवसर तो है नहीं। तुझे खाने, पीने के बाह्य साधन (अनुकूल है)। आहा...हा...! ऐसे में भी जिसे अन्तर प्रभु की लगन लगी हो, वह अन्तर में उतरकर सम्यग्दर्शन पाता है। देखो तो सही!

इससे भी अनन्त गुनी सुविधाएँ इन्द्र के इन्द्रासन में और चक्रवर्ती के राज्य में (होती है)। उस समय भी धर्मी समकिती उस ओर का लक्ष्य छोड़कर अन्दर में उतर जाता है। आ...हा...! क्योंकि अनुकूल और प्रतिकूल, यह चीज में है ही नहीं। आहा...हा...! अनुकूल-प्रतिकूल को चैतन्य प्रभु स्पर्श ही नहीं करता। आहा...हा...! ऐसी जो अनुकूलता में और नरक जैसी प्रतिकूलता में,... पूर्व में सुना था परन्तु किया नहीं था, वह अन्दर में उतर जाता है। आहा...हा...! जैसे बिजली गिरे और ताँबे का तार एकदम नीचे उतर जाये, ऐसे सब लक्ष्य छोड़कर (अन्दर उतर जाता है)। आहा...हा...! यहाँ तो जरा सी प्रतिकूलता होवे तो (ऐसा कहता है) हमें अभी हर्ष (सुख नहीं है)। अभी हमें ऐसा नहीं है, अभी हमारे ऐसा, अभी हमारे ऐसा नहीं है — ऐसा तो अनन्त काल गया, सुन न अब! आ...हा...!

यहाँ तो **चौबीसों घण्टे एक ही चिन्तन,....** आहा...हा...! उसका **मन्थन,....** उसका **खटका बना रहता है। जिस प्रकार किसी को 'माँ' का प्रेम हो तो उसे माँ की याद,....** आहा...हा...! होता है न! एक सेठ थे न, भाई! अहमदाबाद में, नहीं? बड़े सेठ। क्या नाम? भूल गये। बड़े सेठ थे, उनकी माँ मर गयी। बड़ा सेठ, लालभाई, उसकी माँ मर गयी, फिर स्वयं रोता है। वैसे तो करोड़ों रुपये, पैसे बहुत... अरे! मुझे तू कहनेवाली गयी, माँ! लालचन्द! तू यहाँ आ! यह कहनेवाला अब कोई नहीं रहा। क्योंकि ऐसे बड़े व्यक्ति को एकवचन से बुलावे कौन? आहा...हा...! वह मेरी माँ एक थी। लालचन्द! तू

www.vitragvani.com

यहाँ आ, लालचन्द! तू खा — (ऐसा) कहनेवाली माँ एक थी, वह आज गयी। ऐसा करके रोता था। आहा...हा...! आ...हा...!

(इसी प्रकार) यह मेरा आत्मा एक ही है। आहा...हा...! और यह मेरा है, मेरे पास है। इसकी जिसके लगन लगे, वह सब भूल जाता है। आहा...हा...! वह (अन्य तो) होता है, यह आनन्द में आता है। मैं अकेला, मेरा कोई नहीं और मुझमें कोई नहीं तथा जितने बाहर के मेरे कहलाते हैं, उनमें मेरी गन्ध भी नहीं और मैं उन्हें स्पर्श ही नहीं करता। आहा...हा...! ऐसी जिसे उत्कण्ठा लगे। आहा...हा...! है न?

जिस प्रकार किसी को 'माँ' का प्रेम हो तो उसे माँ की याद, उसका खटका निरन्तर बना ही रहता है; उसी प्रकार जिसे आत्मा का प्रेम हो, वह भले ही शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हो.... आहा...हा...! भक्ति में, वाँचन में उल्लास से (भाग लेता) दिखाई दे, तथापि वह उल्लास भाव में नहीं, अन्दर में उल्लास है। आहा...हा...! है? **तथापि अन्तर में खटका तो आत्मा का ही रहता है।** आहा...हा...! **'माँ' के प्रेमवाला भले ही कुटुम्ब-परिवार के समूह में बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ' में ही लगा रहता है....** आहा...हा...! मेरी माँ वृद्ध है, ११० वर्ष की उम्र है, मुझे ८० वर्ष हुए। ऐसी माँ जिसके गर्भ में सवा नौ महीने रहा हूँ, आहा...हा...! अरे...! उसकी जिसे लगन है.... तो यह तो अनन्त काल से अपने में स्वयं रहा है। आहा...हा...! उसका जिसे अन्तर में प्रेम होता है.... यह वस्तुस्थिति ऐसी है, बापू! आहा...हा...!

'अरे! मेरी माँ... मेरी माँ!'; उसी प्रकार आत्मा का खटका रहना चाहिए। आआ...हा...! **चाहे जिस प्रसङ्ग में....** अनुकूल या प्रतिकूल, चाहे जिस प्रसंग में **'मेरा आत्मा... मेरा आत्मा!'....** (उदाहरण में) जैसे मेरी माँ... मेरी माँ.... (था, उसी प्रकार) आहा...हा...! बहुत सादी भाषा में पूरा तत्त्व है। **यही खटका और रुचि रहना चाहिए।** आहा...हा...! जहाँ मैं नहीं, वहाँ उसे मुझे याद करना क्या? और जहाँ मैं हूँ... आहा...हा...! उसे याद करना पड़े यह क्या? हूँ न मैं तो! ऐसी जिसे अन्दर खटक लगे। **यही खटका और रुचि रहना चाहिए।** आहा...हा...! **ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती।** आत्मारूपी माँ मिले बिना नहीं रहती। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता** – प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान। शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था सो प्रगट हुआ इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता॥ ४५॥

जेठ शुक्ल १४, सोमवार, दिनाङ्क १९-०६-१९७८
प्रवचन-१४ वचनामृत- ४५-४७

(वचनामृत) ४४ हुआ है, ४५ बोल। **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।** क्या कहते हैं? ध्रुव, अन्तर का तल जो ध्रुव है; एक समय की पर्याय तो ऊपर तैरती है, ऊपर। पुण्य-पाप के भाव की तो यहाँ बात ही क्या करना? आ...हा...! अन्तर का तल अर्थात् ध्रुव। एक समय की पर्याय के पास-समीप में अन्तर में जो आत्मा है, उसे खोज। **अन्तर का तल....** अर्थात् ध्रुव। जो पूरी अन्तर वस्तु है, उसे खोज। आहा...हा...! खोजकर आत्मा को पहचान। आत्मा को पहचानने का यही उपाय है। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन पाने का यह एक ही उपाय है। अन्तर पर्याय के पीछे अन्तर में - स्व में जो ध्रुव है, उसे खोजकर आत्मा को पहचान। पर्याय को और राग को पहचानकर आत्मा नहीं पहचाना जाता। आहा...हा...!

शुभपरिणाम,.... कुछ शुभ हो - दया, दान, व्रतादि या वाँचन, श्रवण या **धारणा....** कुछ शास्त्र की धारणा हो, कुछ कहना आता हो, बोलना आता हो। उसका **थोड़ा पुरुषार्थ**

www.vitragvani.com

करके.... एक जरा से पुरुषार्थ करके इसे ऐसा लगता है कि **'मैंने बहुत किया है'....** आ...हा...! है ? **'मैंने बहुत किया है'....** आहा...हा...! शुभभाव और धारणा — दो। शुभभाव किया – कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और शास्त्र की धारणा की, वाँचन करके, श्रवण करके धारणा की, वह कोई चीज नहीं है। उसमें इसे लगता है कि मैंने बहुत किया... ओ...हो...हो...! मुझे बहुत आता है, उसमें शुभभाव भी मेरा बहुत... ऐसा मानकर वहाँ रुक जाता है।

मैंने बहुत किया है — **ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है।** करना तो यह है। चाहे जितनी धारणा की, शुभभाव हो परन्तु अन्तर्मुख तल में जाना है, ध्रुव को ध्येय बनाकर ध्रुव का ज्ञान करना है, उसमें न जाये और इसमें यह शुभभाव और धारणा में इत्यादि-इत्यादि कि कुछ बोलना आवे, दूसरों को समझाना आवे, वहाँ इसे ऐसा हो जाता है कि हमको बहुत आता है। आहा...हा...! वहाँ यह आत्मा अटक जाता है, रुक जाता है। आहा...हा...! जो करने का है, वह तो त्रिकाली ध्रुव है, उसे अनुभव करना, उसे पकड़ना, उसे ज्ञान में लेना, उसे श्रद्धा में श्रद्धा करने योग्य बनाना... आहा...हा...! यह जो करना है, वह तो पड़ा रहा और शुभभाव तथा धारणा आदि हुई, शास्त्र की धारणा हुई, पाँच, पचास हजार श्लोक कण्ठस्थ आये। लाख-दो लाख श्लोक कण्ठस्थ आये, यह क्या चीज है ? यह क्या वस्तु है ? आहा...हा...!

जहाँ ध्रुव चैतन्यतल-तल पड़ा है पूरा, उसे न पहुँचे और इतने में से सन्तोष करके बैठ जाये, वह आगे नहीं बढ़ सकता। (वह जीव) **आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है।** आहा...हा...! और लोगों ने कुछ महिमा की हो कि ओ...हो...! अद्‌भुत, तुम्हें समझाना आता है। दस-दस हजार लोगों में तुम्हारा व्याख्यान लोगों को पसन्द है, तुम्हारा लेखन, तुम्हारी भाषा (अच्छी है)। उसमें आत्मा को क्या ? आहा...हा...! वहाँ अटक कर रुक जाता है। यह सब तो मुद्दे की रकम की बात है। आ...हा...!

अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए,.... आहा...हा...! कुछ धारणा कर सके और प्रश्न का उत्तर तत्कालिक दे तो उसे ऐसा लग जाता है कि मुझे बहुत ज्ञान हो गया है। उसे क्या सम्बन्ध है ? आहा...हा...! जो वस्तु स्वद्रव्य है, उसे पकड़े नहीं, उसकी दृष्टि करे

www.vitragvani.com

नहीं, उसे ध्येय बनाये नहीं और वहाँ अटक जाये तो अज्ञानी आगे नहीं जाता, वहाँ रुक कर जीवन अफल करेगा। आहा...हा...! जीवन का जो जीवन, चैतन्य जीव त्रिकाली को दृष्टि में और विश्वास में तथा ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञेय बनाकर जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान तो करता नहीं और ज्ञेय, ज्ञान की पर्याय में पूरा द्रव्य ज्ञात हो, वह जानकर फिर जो धारणा होवे कि आत्मा तो परमानन्दस्वरूप शुद्ध ध्रुव है, ऐसी धारणा समझा नहीं, अर्थात् धारणा करता नहीं। आहा...हा...!

ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए,.... आहा...हा...! **धारणा से याद रह जाए,.....** उघाड़-क्षयोपशम होवे। आहा...हा...! ग्यारह अंग धारे, उसमें उससे क्या? एक आचारांग में अठारह हजार पद, एक पद में ५१ करोड़ अधिक श्लोक, यह सब कण्ठस्थ और याद रहे, उससे क्या? आहा...हा...! भगवान ज्ञानसमुद्र प्रभु का स्पर्श नहीं, उसके सन्मुख होवे नहीं और इस विमुख की धारणा में सन्तुष्ट हो जाये, वह भटक मरेगा। आहा...हा...! जरा सी धारणा से याद रहे, **वहाँ उसे अभिमान हो जाता है;....** आहा...हा...! इतना याद है! लगातार... लगातार पानी का ऐसा पूर चले, ऐसे भाषा (निकले) मानो ऐसा, धारणा इतनी अधिक हो, उसे पूछे वहाँ उसका जबाव अन्दर तैयार ही हो, उससे क्या, बापू! वह कोई वस्तु है? आहा...हा...!

वस्तु... पूरी चीज परमानन्द प्रभु के तल में जाये नहीं, तल देखे नहीं और ऊपर-ऊपर के इस पर्याय के प्रवाह में अटक कर रुक जाये, वह आत्मा में प्राप्त नहीं करता। आहा...हा...! **उसे अभिमान हो जाता है क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;....** आहा...हा...! केवलज्ञान होवे तो भी उसके पास था — शक्तिरूप से था, वह प्रगट हुआ, उसमें कुछ विशेषता है नहीं। आहा...हा...! तो इसके पास मति-श्रुतअज्ञान की तो क्या बात? आहा...हा...! और उसके समक्ष परलक्ष्यी धारणा मति और श्रुत, यह सब तो व्यर्थ है। आहा...हा...! जिसमें अनुभूति नहीं आयी, वस्तु जो चैतन्यस्वरूप पूर्ण है, उसकी अनुभूति नहीं आयी और इस बाहर की धारणा से सन्तुष्ट हो जाये तथा अभिमान करता है। आहा...हा...! है न?

www.vitragvani.com

वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;.... अर्थात् क्या कहते हैं ? यह धारणा और साधारण शुभभाव में आया, उसे यह वस्तु (भगवान आत्मा) कोई अगाध है ? यह अनन्त... अनन्त... आनन्द का तल भरपूर तत्त्व पूरा है, जिसकी शक्ति में ऐसी केवलज्ञान की पर्यायें तो जिसकी अनन्त एक ज्ञानगुण में भरी है। आहा...हा...! ऐसे अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य / तत्त्व, उस ओर तो उसका लक्ष्य है नहीं। है ? आ...हा...! **उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में....** आहा...हा...! ज्ञानावरणीय का कोई ऐसा क्षयोपशम हो, उसमें सन्तुष्ट हो जाता है। आहा...हा...! **विकास आदि में....** उघाड़ आदि अर्थात् उघाड़, धारणा (उसमें), **सन्तुष्ट होकर अटक जाता है।** आहा...हा...!

ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। आहा...हा...! धर्मी को, पूरा तत्त्व महाप्रभु अगाध गम्भीर स्वभाव का सागर, उसका जहाँ ज्ञान और श्रद्धा हुए, वह अंश में (अर्थात्) प्रगट दशा में सन्तुष्ट नहीं होता। आहा...हा...! है ? **पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता।** आहा...हा...! उसे सच्चा मतिज्ञान और श्रुतज्ञान स्व के आश्रय से होता है, वह भी केवलज्ञान की पर्याय के समक्ष अनन्तवें भाग है। सच्चा सम्यग्ज्ञान, हों! आहा...हा...! चैतन्यभगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वरूप (है), उसकी सन्मुखता का और उसके आश्रय का भाव प्रगट हुआ, वह भी एक अंश है। आहा...हा...! केवलज्ञान के समक्ष वह तो अंश है। अरे... केवलज्ञान होवे तो भी वह तो चीज-वस्तु थी, वह आयी है। नवीन क्या है ? आहा...हा...! अटकने के बहुत साधन और छूटने का एक साधन। अन्तर चैतन्यतत्त्व में जाना, वह एक छूटने का साधन है। आ...हा...! बाकी सब छूटने के साधन (नहीं), अटकने के और अभिमान के साधन हैं। आहा...हा...!

ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ.... यह तो था, वह प्रगट हुआ, उसमें नया क्या है ? आहा...हा...! मति-श्रुत में बारह अंग का ज्ञान होवे तो भी वह तो अभी स्थूल ज्ञान है। आहा...हा...! पंचाध्यायी में तो ऐसा कहते हैं कि बारह अंग का ज्ञान! वस्तु अगाध है, उसका अनन्तवें भाग में कथन आता है, उसके अनन्तवें भाग में तो रचने में आता है।

www.vitragvani.com

आहा...हा...! ऐसे बारह अंग की रचना भी, ज्ञान के सागर पूर्ण स्वभाव के समक्ष बारह अंग का ज्ञान... आहा...हा...! जिसमें पूर्व का ज्ञान आ गया, बारह अंग में तो पूरा (आ गया)। आहा...हा...! तो भी वह एक अंश स्थूल कथन करनेवाला स्थूल ज्ञान है। आहा...हा...! इसलिए ज्ञानी को **पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है?** आहा...हा...!

प्रश्न : स्वयं पर्याय नयी प्रगट हुई, वह नयी नहीं?

समाधान : नवीन प्रगट हुई, वह तो पर्याय की अपेक्षा से (बात है)। वस्तु तो थी न अन्दर, ऐसा। थी वह आयी है, है वह निकली है। आहा...हा...! वह तो पर्याय की अपेक्षा से नयी है, परन्तु नयी वह है अन्दर, सत् है न? सत् है और प्रगट हुआ है न! यह तो स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में दो बोल चले हैं न? दोनों बोल चले हैं। सत् प्रगट है। है वह प्रगट होता है और पर्याय की अपेक्षा से पर्याय नहीं थी और प्रगट होती है — दो बोल लिये हैं। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा! सत्, सत् है, वह प्रगट होता है और असत् (अर्थात्) पर्याय की अपेक्षा से वह पर्याय नहीं थी और प्रगट हुई, वह असत् पर्याय। पर्याय की अपेक्षा से नहीं थी, वह प्रगट हुई। वस्तु के स्वभाव की अपेक्षा से... आहा...हा...! वह अंश आया कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? किसी पूर्व की पर्याय में से आता है? पूर्व की पर्याय में से पूर्ण अंश आता है? आहा...हा...! वह तो था, वह आया; है, वह है रूप हुआ, उसमें नवीन विशेषता क्या है? आहा...हा...! वहाँ तो वीतरागता वर्तती है। केवलज्ञान होने पर तो उसे वीतरागता वर्तती है और यहाँ तो जहाँ थोड़ी धारणा हो और जहाँ वाँचना आवे, सभा भरे, वहाँ ऐसा हो जाता है कि ओ...हो...! हम आगे बढ़ गये और आगे हैं। अरे... भाई! अगाध वस्तु अन्दर पड़ी है। उस चीज की खबर बिना तुझे किसका अभिमान? तुझे किसमें सन्तुष्ट होना होता है? इसका इसे पता नहीं है। आ...हा...!

इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता। इसलिए क्यों? केवलज्ञान हुआ, ज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक के समस्त पदार्थों को जाने, वह भी सत् थी, उसमें से आयी है। यहाँ यह लेना है न? आहा...हा...!

स्वभाव था सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान

नहीं होता। आहा...हा... ! बारह अंग के ज्ञाता भी अपने को पर्याय में पामरता मानते हैं। आहा...हा... ! बारह अंग किसे कहते हैं ? गाँव बैठू होवाने...... ऐसा कुछ आता है। ज्ञान हुआ। भाषा भूल गये। ऐसा नहीं कहते, ज्ञान हुआ और गाँव बैठा रोने — ऐसी भाषा आती है। संवत् (१९७१) में एक कहावत थी, भाषा भूल गये। कुछ जानने का हो, वहाँ उसे अभिमान आ जाता है, इसलिए फिर ऐसा कहते हैं, ज्ञान हुआ... (ऐसी) कुछ भाषा है। ज्ञान हुआ.... ऐसा कुछ है। इसलिए गाँव बैठा रोने को। गाँव को ऐसा हुआ कि ओ...हो... ! यह तो बढ़ गया - ऐसी भाषा है। **इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता।** यह ४५ (बोल पूरा) हुआ।

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिए। भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परन्तु प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है, मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है॥ ४६॥

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिए।.... करना तो यह है। ज्ञानमय, आनन्दमय, श्रद्धामय, शान्तिमय, पूर्ण प्रभुता का सागर भगवान, उसे प्रभुतामय करके जीना चाहिए। आ...हा... ! उसकी जीवन की ज्योति, जीव में जो भरा है, उसके जीवन की ज्योति को पर्याय प्रगट करके वह जीवन जीना चाहिए। आहा...हा... ! पच्चीस वर्ष जिया, पचास वर्ष, साठ वर्ष और सौ वर्ष जिया तथा स्त्री-पुत्र सम्हाले और धन्धा किया, और उद्योगपति हुआ, अपने बाहुबल से, पैसे नहीं थे और इकट्ठे हुए, पिता के पास नहीं थे न.... सब बातें हैं। यहाँ भाषण किया था न ? कोई भावनगर का है, भावनगर का (उसने) भाषण किया था। भावनगर का कोई दशाश्रीमाली था। बहुत वर्ष पहले भाषण किया था। हमने उद्योग से ऐसा किया, हमने ऐसा किया और लोग लिखते हैं — ऐसा है न कि उसके पिता के पास कुछ नहीं था और उद्योग करके ऐसा किया और वैसा किया और ऐसा किया...

मुमुक्षु : .... करने में तो ऐसा ही कहा जाता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ? किसका ? पागलपन का ? आहा...हा... ! ज्ञान हुआ गोवा को और गाँव बैठा रोने को — ऐसी भाषा है। ज्ञान हुआ गोवा को, गाँव बैठा रोने को

— ऐसी भाषा (कहावत) है। अरे... बापू! यह वस्तु! आहा...हा...! जहाँ सम्यक् स्थिर हो, ज्ञान, वह तो अन्दर स्थिर हो, उसे बाहर दिखाना है या दूसरों को बताना है, उसकी उसे विशेषता, अधिकता नहीं होती। आहा...हा...!

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिए। आहा...हा...! **भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो....** सूक्ष्म उपयोग होकर एकदम पर्याय को पकड़ सके नहीं, ऐसा सूक्ष्म जहाँ न हो, आहा...हा...! है? **भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो....** आहा...हा...! **परन्तु प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है,....** आहा...हा...! चैतन्यभगवान सर्वोत्कृष्ट वस्तु को प्राप्त करने से ही छूटकारा है। आहा...हा...! करने से ही लाभ है।

मुझे यही करना है;.... मुझे यही करना है;.... आहा...हा...! **वह वर्तमान पात्र है।** यह आया न? **'तत्प्रीति चित्तेनः वार्तापिश्रुताः'** अन्दर के प्रेम से स्वयं के लिए, पर के (लिए) नहीं। **'प्रीति चित्तेनः वार्तापिश्रुताः'** अपने आत्मा के आनन्द के लिए, प्राप्ति के लिए, रुचि से जो सुना है (वह) **'भावि निर्वाण भाजनम्'** वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त करेगा। वह अवश्य मुक्ति का पात्र है, उसमें मुक्ति हो सकेगी, रह सकेगी। आहा...हा...! इसमें करना क्या? परन्तु करना यह। जीवन आत्मामय करना, यह करना। यह बाहर में दूसरा देखे ऐसा क्या करना? लोग पसन्द करें, लोगों की बुद्धि में कुछ आवे (कि) यह कुछ बड़ा है। समझण में, समझाने में, आचरण में शुभ आदि आचरण करता हो — ऐसा दुनिया पसन्द करती है। आहा...हा...! उससे इसके आत्मा को क्या?

यह कार्य करने से ही लाभ है,.... मेरा स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसमें अनुभव करने से ही छुटकारा है। आहा...हा...! दूसरा आवे, न आवे; कम-ज्यादा हो, उसके साथ सम्बन्ध (नहीं है।) आहा...हा...! **मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है।** वह वर्तमान पात्र है। वह वर्तमान पात्र है, आहा...हा...! यह ४६ हुआ।

www.vitragvani.com

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनय से है, वह पर्याय है। जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जञ्जाल में फँसा है परन्तु मनुष्यरूप से छूटा है; वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है ऐसा ज्ञात होता है। चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान-आनन्द की मूर्ति-ज्ञायकमूर्ति है, परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है। विभाव का जाल बिछा है उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है॥ ४७॥

४७, **त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।** आहा...हा...! वस्तु है, अस्ति त्रिकाली ध्रुव पदार्थ है, वह कब बँधेगा? ध्रुव बँधे तो अवस्तु हो जाये। आहा...हा...! उसका त्रिकाली स्वभावभाव सत्रूप है, वह कभी राग से बँधता नहीं। कर्म से तो नहीं परन्तु राग से बँधता नहीं। द्रव्य है, वह राग में अटकता नहीं। आहा...हा...! द्रव्य है, वह तो द्रव्य में रहा है। आहा...हा...! पर्याय एक समय की राग में अटके, वह तो एक समय की दशा है। आ...हा...! जो वस्तु है, चैतन्यरस, ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव। वस्तु है, अनादि -अनन्त, वह बँधती नहीं। आहा...हा...! तब (कोई कहे कि) पर्याय में बन्ध है न, इसलिए द्रव्य बँधता है न? कि नहीं, ऐसा नहीं। आहा...हा...! एक समय की पर्याय अटकी हुई है, द्रव्य अटका नहीं है; द्रव्य तो पृथक्, मुक्तस्वरूप ही है। आहा...हा...!

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। इतने तो विशेषण। तीनों काल रहनेवाली चीज जो ध्रुव अर्थात् द्रव्य, (वह) कभी बँधा नहीं। किसी काल में वह बँधा नहीं, यह जँचना, भाई! आहा...हा...! पर्यायबुद्धिवालों को यह जँचना कठिन (पड़ता है)। पर्याय अशुद्ध हुई तो द्रव्य भी अशुद्ध हो गया — ऐसा कहते हैं। कहो, एक पण्डित ऐसा ही कहता है। पर्याय उसकी है न! परन्तु उसकी एक समय की दशा है। द्रव्य में कहाँ है?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! द्रव्य तो वस्तु त्रिकाली सत् जैसा है। हीरा, चैतन्य हीरा तो पृथक् अनादि – अनन्त अबँधा हुआ वह तत्त्व है। आहा...हा... ! अगम्य बातें हैं ! पर्याय अटकती है न, पर्याय इसकी है न, तो यह अटका — ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! बापू ! बहुत सूक्ष्म बातें ! आहा...हा... ! तेरी महिमा की बात क्या ! कहते हैं, प्रभु ! तेरी प्रभुता की बात क्या करनी ! आहा...हा... ! उसका माप करने जाते हैं, वहाँ अपना माप हो जाता है। यह ऐसा है और यह ऐसा है, बापू ! यह तो कोई अगाध चीज है। आहा...हा... !

अरूपी भगवान महाप्रभु अलौकिक चीज है। वह कभी बँधी हुई नहीं है। कैसे जँचे ? एक समय की पर्याय में अनादि से क्रीड़ा की है। नौवें ग्रैवेयक गया तो भी एक समय की पर्याय की क्रीड़ा में था, पंच महाव्रत पालना और यह करना और यह करना और यह करना... आहा...हा... ! उसे यह द्रव्य बँधा हुआ नहीं है (— यह बात) कैसे बैठे ? आहा...हा... !

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी.... किसी काल में **बँधा नहीं है। मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,....** आहा...हा... ! वस्तु भगवान आत्मा तो मुक्तपने और बँधनेपने दोनों से रहित है। आहा...हा... ! मुक्तपना, वह पर्याय है और बन्धन भी पर्याय है। इस पर्याय से रहित त्रिकाली चीज है, वह बँधा हुआ या छूटा हुआ दोनों से रहित है। आहा...हा... ! ऐसा समझना अब। कहाँ से शुरु करना परन्तु इतनी बड़ी बातों में ? यहाँ से, आत्मा में से शुरु करना। आ...हा...हा... ! उसका तल जो गहरा है, गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर...। अनन्त गुण की संख्या, आहा...हा.. ! उस संख्या का अन्त नहीं, तथापि मतिज्ञान-श्रुतज्ञान में ज्ञात होती है। आहा...हा... ! जिसके गुण का अन्त नहीं — ऐसा अस्तित्व, ऐसा जीवतत्त्व जहाँ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में जमा, आहा...हा... ! वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में यह वस्तु है, वह बैठी, वह बैठी कहते हैं कि वह वस्तु बैठी नहीं, वह पर्याय में ख्याल में आयी। वस्तु तो वस्तु है। ख्याल न आवे तो भी पर्याय में और ख्याल आवे तो भी पर्याय में; दोनों से रहित वस्तु है। आहा...हा... ! बँधा हुआ नहीं है।

मुक्त है या बँधा हुआ है, यह व्यवहारनय से-पर्याय से है। व्यवहारनय से-अभूतार्थनय से है। आहा...हा... ! (समयसार की) ११ वीं गाथा में पर्याय नहीं है ऐसा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कहा न ? असत्य है (ऐसा कहा) वह तो किस अपेक्षा से ? उसका लक्ष्य छुड़ाने के लिए, अस्तिरूप होने पर भी, उसका आश्रय करने से राग होता है। जिसका आश्रय करने से वस्तु हाथ आवे, पर्याय में उसके आनन्द का वेदन आवे, ऐसी चीज तो यह द्रव्य-वस्तु स्वयं है। आ...हा... ! बँधा हुआ है, मुक्त है, वह भी (व्यवहारनय से है)। शक्तिरूप मुक्त है, वह यहाँ बात नहीं है। वस्तु है, वह अबन्ध ही है। अबन्ध है अर्थात् मुक्तस्वरूप है परन्तु यहाँ तो पर्याय में मुक्ति और पर्याय में बन्धन, वह वस्तु को नहीं है। आहा...हा... !

मुक्त है, वह व्यवहारनय से है। पर्याय की मुक्ति, हों ! स्वरूप मुक्त है, वह तो त्रिकाल है, वह तो निश्चयनय से, वास्तविक निश्चयनय से है। विकल्प का निश्चयनय है, उससे भी वह नहीं। आहा...हा... ! व्यवहारनय से वह पर्याय है। आहा...हा... ! (समयसार की) ३२० गाथा में तो वहाँ तक कहा — द्रव्य, जो वस्तु ध्रुव है, वह तो बन्धमार्ग को करती नहीं और मोक्षमार्ग को करती नहीं। तथा बन्ध और मोक्षमार्ग तो करती नहीं। आहा...हा... ! क्या शैली ! तत्त्व है न, वस्तु है न ? एक मौजूदगी सत् चीज है न ? सत् है वह आदि-अन्तरहित चीज है। आहा...हा... ! वह बँधे, यह भी राग की एक समय की पर्याय की अपेक्षा से; मुक्त, वह भी एक समय के राग और अल्पज्ञता के अभाव से हुई सर्वज्ञदशा, वह भी पर्याय है और व्यवहारनय है। आहा...हा... ! एक जीव का दो पर्याय से विचार करना, वह तो व्यवहारनय है (- ऐसा कहते हैं।) आहा...हा... !

वस्तुस्वरूप त्रिकाली है, जो अस्ति है, विद्यमान चीज है, सत् वस्तु द्रव्य है। आहा...हा... ! वह सत् है। आहा...हा... ! उसे बन्ध और मोक्ष कहना, वह पर्यायदृष्टि से-व्यवहारनय से है। आहा...हा... ! यह वस्तु है, वह मोक्ष को नहीं करती, मोक्षमार्ग को नहीं करती; वह तो पर्याय करती है। आहा...हा... ! परन्तु इसकी होने से ऐसा कहा जाता है। पर्याय का अंश, वह प्रमाण के विषय में उसका अंश है न ! ऐसा कहा जाता है कि बन्ध-मोक्ष को करता है। सम्यग्दर्शन को प्रगट करता है, केवलज्ञान को प्रगट करता है — ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आ...हा... ! ऐसी बातें ! धर्म करना है, उसमें ऐसी क्या बात ? बापू ! धर्म उसे होता है कि जो चीज अगाध और गम्भीर पड़ी है, उसे पकड़े, अर्थात् ? इतनी अनन्त सत्तावाली चीज है, उसे अनन्त सत्ता जितना ही सम्यग्दर्शन दृष्टि में लेता है।

www.vitragvani.com

जितना वह सत्तावाला तत्त्व है — ऐसा ही तत्त्व दर्शन में लेकर,.... सम्यग्दर्शन, सत्य दर्शन में (ले), उसे सम्यग्दर्शन होता है। आ...हा...!

मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,.... आहा...हा...! ३२० में तो ऐसा ही कहा है — बन्ध-मोक्ष को भी द्रव्य (नहीं करता)। 'जीवो ण करेहि बंधन, जीवों न करेहि मोक्खं' ऐम जिनवर भणेहि — ऐसा जिनवर कहते हैं। यह गाथा, उसमें आ गया है। जिनवर ऐसा कहते हैं। तीन लोक के नाथ अनन्त जिनेन्द्र, अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि जीव में... द्रव्य जीव है, द्रव्य, मोक्ष को नहीं करता। आहा...हा...! तथा बन्ध के मार्ग को नहीं करता, तथा बन्ध को नहीं करता। बन्ध को नहीं करता, बन्ध के मार्ग को नहीं करता; मोक्ष को नहीं करता, मोक्षमार्ग को नहीं करता। आहा...हा...! वह सब पर्याय करती हैं — ऐसा कहते हैं। मोक्ष को भी पर्याय करती है, मोक्षमार्ग को भी पर्याय करती है — ऐसी बातें।

अगाध गम्भीर गहरा-गहरा जिसका तल सूक्ष्म है। आहा...हा...! निर्विकल्प चीज है। भले ही अरूपी है, परन्तु वस्तु है। अरूपी भी वस्तु है न! अगाध, गम्भीर! आ...हा...! परन्तु उसमें पर्याय — मुक्ति हो, वह भी पर्याय है तो फिर निश्चय मोक्ष का मार्ग जो होता है, वह भी पर्याय है। आहा...हा...!

जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है, वह छूटना चाहे तो छूट सकती है,.... मकड़ी होती है न यह? लार बाँधती है न? जंगल में बहुत बाँधती है, ताने-बाने करती है, बारीक-बारीक, सफेद-सफेद ताने होते हैं। **मकड़ी अपनी लार में बँधी है, वह छूटना चाहे तो....** दृष्टान्त मकड़ी का दिया है। उसमें भी मकड़ी का दृष्टान्त दिया, दो पैरवाला मनुष्य माने वहाँ तक मनुष्य, स्त्री से विवाह करके चार पैर माना वहाँ ढोर (हुआ) परन्तु कहाँ उसके रजकण और आत्मा को क्या सम्बन्ध है? जगत् की चीज कहीं की कहीं, आहा...हा...! तुझसे भिन्न रहकर परिणम रही है और भिन्न रहकर, भूतकाल में भी भिन्न रहकर (रही है)। भविष्य में भी भिन्न होकर रहती है, उसमें तुझे और इसके क्या सम्बन्ध हैं? आहा...हा...!

एक साधारण मकान था, फिर पैसेवाला हो गया। मकान बिक गया था, फिर

www.vitragvani.com

पैसेवाला होता है तो उसकी माँ को कहे — इस मकान में मेरा जन्म, और अपना मकान है। इसकी जो कीमत कहे, अपने को उसकी कीमत ली है, वह कहे इतनी देना परन्तु वह मकान मुझे ले लेना है, क्योंकि मेरा जन्म (उसमें हुआ है) और अपना मकान है। वह कहे, परन्तु किस प्रकार ? (यह कहता है) भर अंक ! तू अंक भर। हमारे उमराला में ब्राह्मण... ब्राह्मण (था) मकान बिक गया था, साधारण था। उसमें हुए पैसे, उसकी माँ जीवित (थी) आहा...हा... ! अपना यह मकान... मालिक से कहे, अंक भर। तू इतना ले परन्तु मकान छोड़ दे, क्योंकि हमारा मकान... अब कहाँ (तेरा मकान) ? आहा...हा... ! वह था कुछ दो-चार हजार का परन्तु उसने बीस हजार या सत्रह हजार भरे। जाओ ! स्वीकार है, छोड़ दे मकान। आहा...हा... ! हम हमारा मकान, जिसमें जन्में, बड़े हुए, आहा...हा... ! जिस मकान को हमने पूरे दिन स्पर्श किया, उसकी कीमत दो हजार की थी और बीस हजार या सोलह-सत्रह हजार (भरे), उसमें वह भरे कितना बेचारा ? और उमराला जैसा छोटा गाँव। भर, तू अंक भर, इतना देना है। हमारा मकान है। आहा...हा... ! धूल में भी नहीं। वे रजकण भिन्न, पहले से भिन्न टिक कर परिणमे हैं, अभी भिन्न होकर परिणमते हैं, भिन्न रहकर परिणमते हैं, भविष्य में भी भिन्न रहकर टिक कर परिणमेंगे, तुझे और उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा... ! इसी तरह राग के परिणाम को और आत्मा को भी क्या सम्बन्ध है ? आहा...हा... !

वह मकड़ी बँधती है। कहा न ? दो हुए तब यह चार पैरवाला हुआ, लड़का हुआ तब यह छह पैरवाला भँवरा हुआ और जब लड़के का विवाह किया, तब आठ पैरवाला मकड़ी हुआ, मकड़ी ! इसका करूँ और उसका करूँ, इसको करूँ, उसको बड़ा करूँ, इसकी दुकान बनाऊँ, इसे अमुक करूँ। इसका लड़का हो फिर अपने को (ऐसा करना) अपनी बुद्धि, घर प्रमाण, हैसियत प्रमाण देना और हैसियत प्रमाण लेना, ऐ...ई... ! आ...हा...हा... ! किसकी हैसियत ? बापू ! यह कहाँ था ? भाई ! आहा...हा... ! जहाँ मोक्ष को और बन्ध को व्यवहारनय से कहा.... आहा...हा... ! वहाँ राग और पर को क्या सम्बन्ध है ? बापू ! आ...हा... ! जहाँ खड़ा है, वहाँ पर से तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा... ! परन्तु अन्दर में बात (जमनी चाहिए)। बाहर का ऐसा अभ्यास हो गया है। देखनेवाले का

www.vitragvani.com

अन्दर तल कितना है, इसका भी पता नहीं पड़ता। देखनेवाले की वर्तमान दशा में यह ज्ञात हो, वहाँ अटक गया, चिपट गया बस, हो गया। आहा...हा...! पागल हो गया, पागल...! प्रभु की पर्याय के तल में प्रभुता पड़ी है कि जिस प्रभुता का पार नहीं होता। आहा...हा...! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आनन्द वह कितना? कि आनन्द... आनन्द... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अन्तिम अनन्त कौन सा? कि अन्तिम अनन्त है ही नहीं। क्या कहते हैं यह? आहा...हा...! ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु! ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान का रस, ऐसा अतीन्द्रिय स्वच्छता और प्रभुता का पिण्ड — इस वस्तु को पर्याय में मोक्ष कहना, वह भी व्यवहारनय है। आहा...हा...! तो पर के साथ तो सम्बन्ध किसका? (वह) असद्भूत / झूठी दृष्टि से सब बातें करनी। आहा...हा...!

मकड़ी अपनी लार में बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य.... देखो! **अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जञ्जाल में फँसा है....** घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में (अर्थात्) घर के, बाहर के आदि और **उपाधियों में, जञ्जाल में फँसा है परन्तु मनुष्यरूप से छूटा है;....** मनुष्यपना कहीं गिर नहीं गया है। आहा...हा...! घर में हो, जंगल में हो या दुकान की क्रिया में हो, या खाने-पीने की क्रिया में हो, मनुष्यरूप से तो मनुष्य है। वह मनुष्य किसी पर में चला नहीं गया है। आहा...हा...! मनुष्यरूप से तो छूटा है, यह दृष्टान्त है।

वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है,.... आहा...हा...! शुद्धस्वभाव से भरपूर भगवान, जैसे मनुष्य कार्य में फँस गया है, तथापि मनुष्य, मनुष्य है; वैसे भगवान आत्मा विभाव की जाल में बँधा हुआ है। आ...हा...! **फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है....** आहा...हा...! विभाव के जाल में बँधा हुआ है। है अवश्य, हों! पर्याय में। आहा...हा...! बिल्कुल व्यवहारनय से भी बँधा हुआ है ही नहीं — ऐसा नहीं है। नय है न! नय का विषय है परन्तु वस्तुरूप से जो है, उसे बँधा हुआ (कहना), वह तो व्यवहारनय का विषय है। मोक्ष और बन्ध — ऐसे एक द्रव्य के, पर्याय से दो भाग करना, वह व्यवहारनय है। आहा...हा...! ऐसा जो एक तल में पड़ा हुआ तत्त्व, उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान होता है, उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहा...हा...! बाकी तो ग्यारह अंग का

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ज्ञान हो तो भी (वह सम्यग्ज्ञान नहीं है) । अरे... ! यहाँ तो कलश में ऐसा नहीं कहा ? कि बारह अंग का ज्ञान भी विकल्प है । कलश में कहा है । आहा...हा... !

स्वयं मुक्त ही है — ऐसा ज्ञात होता है । है ? **प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है — ऐसा ज्ञात होता है ।** जैसे मनुष्य समस्त कार्यों में (दिखता है) परन्तु मनुष्य, मनुष्यरूप ही रहता है, वैसे ही समस्त कार्यों में दिखने पर भी स्वयं मुक्त है — ऐसा ज्ञात होता है । आहा...हा... ! 'अबाध अनुभव जो रहे, वह है जीवस्वरूप' आता है न श्रीमद् में ? यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं, घर नहीं, स्त्री नहीं, कुटुम्ब नहीं, राग नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं, बाकी / कम करते हुए (जो) रहता है वह पूरा प्रभु है । आहा...हा... ! यह कम कर डालने पर...... वाद बाकी करते हैं न ? वाद-बाकी कहते हैं न ? वैसे ही यह वाद-बाकी कर डाली । आहा...हा... ! मुक्त ही है ।

चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है । मुक्त ही है । आहा...हा... ! चैतन्यवस्तु है । चैतन्य... चैतन्य का चैतन्यपना है, वह तो मुक्त ही है । वस्तु को क्या है ? वस्तु का बदलाव होवे तो वह वस्तु अवस्तु होगी । कभी अवस्तु होती नहीं । द्रव्य, द्रव्य को बन्धन होवे तो द्रव्य, अद्रव्य हो जाएगा । जैसे अपनी-द्रव्य की अपेक्षा से दूसरा द्रव्य अद्रव्य है, वैसे ही द्रव्य को बन्धन होवे तो द्रव्य, अद्रव्य हो जाए; अपना स्वद्रव्य नहीं रहे । आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं ।

चैतन्य तो ज्ञान-आनन्द की मूर्ति-ज्ञायकमूर्ति है,.... ज्ञान और आनन्द कभी बँधता है ? गुण है, आनन्द और ज्ञान गुण है, शक्ति है, सत् का सत्व है, वह सत् और सत्व कभी बँधता है ? आहा...हा... ! वस्तु, वस्तुरूप से तो ज्ञायकमूर्ति मुक्त ही है । आहा...हा... ! ऐसी आत्मा की बात है, चन्द्रभाई ! **परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है ।** आहा...हा... ! इतना बड़ा अस्तित्व, प्रभु ! उसे भूल गया । अल्प अस्तित्व में अपना(पन) मानकर, महातत्त्व का अस्तित्व भूल गया है । आहा...हा... !

विभाव का जाल बिछा है.... मकड़ी की तरह । आहा...हा... ! विकल्प असंख्य प्रकार के — शुभ के और अशुभ के (होते हैं) । निमित्त अनन्त, उन अनन्त के लक्ष्य से उठे हुए विकल्प-जाल, आहा...हा... ! उसमें फँस गया है । जीव ने **विभाव का जाल बिछा है...** इसमें स्वयं, हों ! पर्याय में । **विभाव की जाल में फँस गया है, परन्तु प्रयत्न**

www.vitragvani.com

करे.... आहा...हा... ! पुरुषार्थ करे तो **मुक्त ही है।** आहा...हा... ! **द्रव्य बँधा नहीं है।** वस्तु, वस्तु, वस्तु को बन्धन क्या ? आहा...हा... ! वह तो पर्याय में अटकी एक समय की दशा की अपेक्षा से बन्धन है और निमित्तरूप से कर्म का बन्धन व्यवहार है और एक समय की दशा पूर्ण प्राप्त हो, वह तो एक समय की दशा है। वस्तु कहीं पर्याय में नहीं आती और वस्तु कभी मुक्त नहीं होती, वह तो त्रिकाली मुक्तस्वरूप है। आहा...हा... !

प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है। वस्तु कभी बँधे ? यह भी बात बापू ! अन्दर बैठनी चाहिए — ऐसी एक चीज है कि जो अनादि-अनन्त अस्तित्व रखती है। अनादि-अनन्त अस्ति धारक तत्त्व है, वह कभी बँधता नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी दृष्टि द्रव्य ऊपर जाना... आहा...हा... ! उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म का मार्ग है।

विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

विकल्प में पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए। विकल्प में किञ्चित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है ऐसा जीव को अन्दर से लगना चाहिए। एक विकल्प में दुःख लगता है और दूसरे मन्द विकल्प में शान्ति का आभास होता है परन्तु विकल्पमात्र में तीव्र दुःख लगे तो अन्दर मार्ग मिले बिना न रहे॥ ४८॥

जेठ शुक्ल १५, मंगलवार, दिनाङ्क २०-०६-१९७८
प्रवचन-१५ वचनामृत- ४८-५१

वचनामृत ४७, ४८ है न ? ४७ हो गया है। सूक्ष्म है, सूक्ष्म... **विकल्प में पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए।** अर्थात् क्या ? चाहे तो शुभराग हो, गुण-गुणी के भेद का विकल्प हो, चाहे तो भक्ति का राग हो, वह तो स्थूल है परन्तु विकल्प / राग है, उसमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए। उसमें जरा भी सुख नहीं है। आहा...हा... !

मुमुक्षु - विकल्प में दुःख है....

पूज्य गुरुदेवश्री - ऐसा ही विकल्प में दुःख है। विकल्प को अपना माना, वह मिथ्यात्व है। जो विकल्प होता है, भले शुभ हो परन्तु वह मेरा है, वही मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु - वह तो दुःख है।

पूज्य गुरुदेवश्री - वही मिथ्यात्व और दुःख है। वह अकेला दुःख ही है, और मिथ्यात्व के बाद का राग है, वह भी दुःख है, वह भी यह तो ज्ञान में ख्याल है। यह तो ख्याल ही नहीं (कि) मैं आनन्दस्वरूप हूँ, मेरी कायम चीज तो असली (आनन्दस्वरूप) है।....

आत्मा में चाहे तो शुभराग हो, अशुभराग तो दुःखरूप है... आहा...हा... ! विषय-वासना का, मान-बढ़ाई, महत्ता — ऐसा जो भाव है, वह तो दुःखरूप है, तीव्र दुःखरूप

www.vitragvani.com

है, क्योंकि वह कहीं आत्मा की जाति नहीं है। इस कारण उसे विकल्प उठे, उसमें तीव्र दुःख लगना चाहिए। अर्थात् उस ओर के झुकाव में आकुलता लगनी चाहिए। आहा...हा...! कहीं शान्ति उसमें नहीं है। व्यवहार, निश्चय का साधन है – ऐसा कहते हैं न? परन्तु वह व्यवहार रागरूप है, वह दुःखरूप है। वह आत्मा का आश्रय लेने के लिए साधन कैसे होगा? आहा...हा...! राग उठे, उसमें पूरा-पूरा दुःख लगना (चाहिए), यहाँ तो प्रथम (भूमिका की) बात है न?

विकल्प में किञ्चित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है.... पहले अस्ति से कहा, फिर नास्ति से (कहा)। यह राग की वृत्ति उठे — चाहे तो सूक्ष्म शुभ की (हो), उसमें भी कहीं जरा भी शान्ति, जरा भी सुख नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बातें। यहाँ तो अभी बाहर के अनुकूल साधनों में भी कुछ मुझे अनुकूलता है, साधन मुझे अच्छे मिले हैं — ऐसी जो वृत्ति है, वह तो महा दुःखरूप है। आहा...हा...! परन्तु अन्तर में राग की मन्दता की वृत्ति – शुभराग, हाँ! भगवान का स्मरण आदि जो राग है, वह पूरा-पूरा दुःखरूप है, क्योंकि प्रभु आनन्दरूप है। आहा...हा...!

विकल्प में किञ्चित्.... दो शब्द आमने-सामने आये। **विकल्प में पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए।** और **विकल्प में किञ्चित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है....** पहला पूरा दुःख है, शान्ति और सुख जरा भी नहीं है। चाहे तो व्यवहार क्रियाकाण्ड हो, वह निश्चय का साधन हो – यह कैसे बने? वह तो राग है, परलक्ष्यी दशा है, और वह दशा, दुःख दशा है। उसके साधन से निश्चय आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान या निश्चयचारित्र हो — ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बातें बापू! जन्म-मरण से रहित होने का पंथ जगत् को सुनने को नहीं मिला है। आ...हा...!

प्रभु स्वयं नित्य चैतन्यधातु को धारण करके विराज रहा है — ऐसे आनन्द के स्वभाव का धारक तत्त्व त्रिकाल है न! उसे छोड़कर जितनी वृत्ति होवे – दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, गुण-स्मरण, भगवान-स्मरण, यह सब दुःखरूप है।

प्रश्न – यह सुनना तो ठीक है न?

समाधान – शास्त्र सुनने की वृत्ति भी दुःखरूप है। शास्त्र कहने की वृत्ति भी

www.vitragvani.com

दु:खरूप है। वृत्ति है न ? आहा...हा... ! कठिन काम है। अभी दुनिया से (अलग बात है)। है, ४८ वाँ बोल है। हसमुखभाई ! आहा...हा... ! स्वरूप, आनन्दस्वरूप भगवान के अतिरिक्त जितनी वृत्तियाँ उठें वे पूरी-पूरी दु:खरूप है, किंचित् भी शान्ति और सुख नहीं है; इसलिए वे निश्चय का साधन हों, निश्चय सम्यग्दर्शन (होने के) बाद भी व्यवहारचारित्र के विकल्प आते हैं परन्तु उनसे निश्चयचारित्र प्राप्त हो (— ऐसा) जरा भी नहीं है।

मुमुक्षु - ....

पूज्य गुरुदेवश्री - यह कथन निरूपण का कथन है। आहा...हा... !

अबन्धस्वरूपी भगवान, वह बन्धभाव से कैसे प्राप्त होगा ? चारित्र है, वह तो अरागी, अकषायी परिणति / दशा है (और) राग की मन्दता का दु:ख है। वह दु:ख है; निश्चयचारित्र आनन्द है; उस आनन्द का साधन दु:ख कैसे होगा ? कहा है, परन्तु कहा है वह तो साधन का दो रूप का वर्णन किया है। जिसने राग से भिन्न करके चैतन्य के आनन्द का जिसे स्वाद आया है — ऐसे जीव को जो राग है, साधन तो वह आनन्द और शान्ति है परन्तु उसे जो विकल्प - शुभराग उठता है, उसमें आरोपित से सहचर गिनकर साथ में है, निमित्तरूप में है — ऐसा गिनकर उसे साधन कहा, 'है नहीं'। आहा...हा... ! (लोगों में अभी यह) बड़ी गड़बड़ है।

ऐसा जीव को अन्दर से लगना चाहिए। है ? आहा...हा... ! **ऐसा जीव को अन्दर से लगना चाहिए।** बाह्य से शास्त्रभाषा से ऐसा कहे कि यह ऐसा है और वैसा है — (ऐसा नहीं)। आहा...हा... ! अन्तर मे से इसे लगना चाहिए। आहा...हा... ! **एक विकल्प में दु:ख लगता है और दूसरे मन्द विकल्प में शान्ति का आभास होता है....** यह शुभ-अशुभ की बात की। एक विकल्प में.... आहा...हा... ! अशुभ विकल्प में दु:ख लगता है और दूसरा मन्द विकल्प, राग की मन्दता है, उसमें **शान्ति का आभास होता है....** आहा...हा... !

परन्तु विकल्पमात्र में तीव्र दु:ख लगे.... आहा...हा... ! **तो अन्दर मार्ग मिले बिना न रहे।** आ...हा... ! यहाँ तो अभी मार्ग मिलने की बात है। मार्ग मिला और फिर विकल्प आवे, वह भी लगे तो दु:खरूप। वह धारा-कर्मधारा है; ज्ञानधारा को वह बिल्कुल

www.vitragvani.com

मदद नहीं करती परन्तु यहाँ तो पहले से प्राप्त करनेवाले को किस प्रकार प्राप्त हो ? — यह बात चलती है। आहा...हा...! अन्दर मार्ग (मिले बिना नहीं रहता)।

विकल्पमात्र — शुभ या अशुभ। एक विकल्प में दु:ख लगता है और एक विकल्प में जरा शान्ति (लगती है, वह) भ्रम है। आहा...हा...! यह तपस्यायें करे, महीने-महीने के अपवास करे और जरा सा एक शुभराग हो, वह भी दु:खरूप है। वह तपस्या ही नहीं, वह तो लंघन है। आहा...हा...! जगत् से कठिन काम है, भाई! वीतराग जिनेश्वरदेव, वीतरागभाव से बतलाते हैं। इस आनन्दभाव से आनन्द आता है। रागभाव से आनन्द आवे, उस रागभाव से वीतरागता आवे - ऐसा वीतरागमार्ग में तो निषेध है। आहा...हा...! **अन्दर मार्ग मिले बिना न रहे।** यह ४८ (बोल पूरा) हुआ।

सारे दिन में आत्मार्थ को पोषण मिले — ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं, वह जाँच कर पुरुषार्थ की ओर झुकना। चिन्तवन मुख्यरूप से करना चाहिए। कषाय के वेग में बहने से अटकना, गुणग्राही बनना॥ ४९॥

सारे दिन में आत्मार्थ को पोषण मिले — ऐसे परिणाम कितने हैं.... यह विचारने का अवसर भी नहीं लेता है। आहा...हा...! चौबीस घण्टे में **आत्मार्थ को पोषण मिले — ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं....** अन्तरसन्मुख झुके हुए परिणाम कितने आते हैं और बाहर सन्मुख झुके हुए भाव कितने हैं ? आहा...! उन्हें **जाँच कर पुरुषार्थ की ओर झुकना।** उन्हें जाँचकर स्व-तरफ झुकना। जहाँ पूर्ण स्वरूप भगवान है, महा ध्रुवधाम पड़ा है, प्रभु! आ...हा...! जैसे बरामदा हो तो बैठने का स्थान है, वैसे यह ध्रुव स्थिर होने का स्थान है। आहा...हा...! ध्रुवरूपी बरामदा, ध्रुव चैतन्य प्रभु की तरफ झुकाव के परिणाम कितने हैं और बाह्य तरफ के झुकाव के परिणाम कितने हैं ? दो को भेद करके, दोनों की जाँच करके... आहा...हा...! है ? **पुरुषार्थ की ओर झुकना।** अन्दर वीर्य को - पुरुषार्थ को अन्दर में झुकाना।

जहाँ भगवान ध्रुवधाम चैतन्यधाम नित्यानन्द प्रभु जहाँ उदासीन — पर से उदासीन

www.vitragvani.com

होकर स्वरूप में बैठने को, स्थिर होने का वह स्थान, धाम है। वहाँ विश्राम का वह स्थान है। अन्दर के परिणाम और बाहर के परिणाम को जाँच कर अन्तर के पुरुषार्थ में झुकना। आहा...हा...! ऐसी बात है। लोगों को बेचारों को सुनने को भी नहीं मिलता और ऐसे के ऐसे जिन्दगी..... आहा...हा...! पाप के पोटले बाँधकर चले जानेवाले हैं। अरे...! इसे क्या चीज है, इसका भी पता नहीं है। आ...हा...!

यहाँ तो कहते हैं, अन्तर सन्मुख के परिणाम देखकर और बाह्य तरफ के झुके हुए परिणाम जानने में आवे, (वे) देखकर पुरुषार्थ तो अन्दर में करना। आ...हा...! जहाँ चैतन्यधाम... आ...हा...! तिरने के साधन को, तिरने के साधन को, स्थिर होने का स्थान जो है... आहा...हा...! क्या कहा यह ? निर्विकल्प वीतरागी परिणाम... यह बात कैसे जँचे ? अरे... दुनिया... आहा...हा...! यह स्वरूप है, उसमें पुरुषार्थ कर।

चिन्तवन मुख्यरूप से करना चाहिए। इसका चिन्तवन। अन्दर में कितना जाया जाता है और बाहर में कितने विकल्प आये — इन्हें जानकर अन्दर में जाना। **कषाय के वेग में बहने से अटकना,....** चिन्तवन मुख्यरूप से करना चाहिए। लोगों को कषाय किसे कहना, इसका (पता नहीं है)। आ...हा...! वे तो मानो हिंसा और विषयभोग और यह कमाना, यह सब पाप मानते हैं। यह कषाय मानते हैं परन्तु अन्दर में भगवान की भक्ति का राग, यात्रा का राग, वह कषाय है, यह बात कहाँ जँचे ? आहा...हा...! अरे...रे! अनन्त काल से वस्तु की शरण बिना चौरासी के अवतार में भटककर मरा है। स्त्री, कुटुम्ब, दुकान छोड़कर साधु होवे परन्तु अन्दर में विकल्प उठता है, वह दुःखरूप है और उसे छोड़ना चाहिए, तब इसने आत्मा का आदर किया; उस विकल्प को तब छोड़ा, तब उसने विकल्प का त्याग किया और स्वरूप को ग्रहण किया, तब उसे धर्म होता है। आहा...हा...! ऐसी बातें, भाई!

कषाय के वेग में बहने से अटकना,.... लोक के प्रवाह में चले, उसमें चलते रहना, वह कषाय का वेग है। आहा...हा...! भगवान ने कहा वह आत्मा का स्वभाव अन्दर, उसकी ओर जाना, उस ओर ढलना — ऐसा जो वीतरागी परिणाम, उसे यहाँ धर्म कहते हैं; बाकी सब व्यर्थ हैं। आहा...हा...! बड़े गजरथ निकाले, हाथी (लावे), पालीताना

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

की यात्रा निकाले, पचास-पचास हजार लोग और दो-पाँच-दस लाख का खर्च और.... धूल में भी धर्म नहीं है। यह सब तो विकल्प है, प्रभु! तुझे पता नहीं है। आहा...हा...!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजमान हों, महाविदेह में विराजते हैं, उनके समवसरण में भी अनन्त बार गया, वाणी सुनी परन्तु वह सुनने का विकल्प है, वह स्वयं दुःखरूप है, यह बात कैसे जँचे? आहा...हा...! इस दुःखरूप को छोड़कर **कषाय के वेग में बहने से अटकना, गुणग्राही....** अन्तर के गुण को पकड़ना।

मुमुक्षु - दूसरे के गुण तो अनन्त बार....

पूज्य गुरुदेवश्री - वह तो विकल्प है।

मुमुक्षु - लोगों में तो वह गिना जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री - उसका था कहाँ?

यह अन्तर गुणग्राही, अनन्त स्वभाव है, उसे पकड़ने का... आहा...हा...! ऐसी बात है। **गुणग्राही बनना।** अन्तर के अनन्त... अनन्त... अपार गुणों का सागर प्रभु है, उसे जानना और पकड़ना। आहा...हा...! दूसरे के गुण हों, उन्हें जानना, वह भी विकल्प है। अरहन्त को जानना (कि) यह केवली है-यह भी परलक्ष्यी विकल्प / राग है। आहा...हा...! बहुत कठिन काम! पण्डित चर्चा करके शास्त्रों के आधार देकर (बातें करें)। ग्यारहवीं गाथा में नहीं कहा? कि वीतराग की वाणी में भी सहचारी गिनकर व्यवहार आया है, उसे पकड़ते हैं कि देखो! व्यवहार.... परन्तु उसका फल संसार है। आहा...हा...! वीतराग की वाणी में भी जितना व्यवहार का कथन आया कि यह व्रत लेना और ऐसा करना तथा वैसा करना और अमुक करना, और अपवास करना, ब्रह्मचर्य पालना, यह सब भी विकल्प और राग है, इसका फल संसार है। यह बात कठिन, बापू! बहुत कठिन, भाई! क्या हो? अरे... इसे अपनी निज सत्ता शुद्ध से भरपूर है, उसका तो पता नहीं और अपनी सत्ता की प्राप्ति मानो बाहर से होगी (— ऐसा मानता है)। यहाँ तो कहते हैं कि पाँच-दस लाख खर्च करके गिरनार की बड़ी यात्रा निकालकर उसमें राग की मन्दता की हो (तो शुभ है और) मान के लिए हो तो पाप है।

मुमुक्षु - आपने तो लम्बी यात्रा निकाली थी।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री – कहाँ यात्रा कौन निकाले ? विकल्प हो परन्तु है वह दुःखरूप। आ...हा... ! जयपुर में तो बड़े ग्यारह हाथी निकले थे, रथयात्रा ! सामने इक्कीस हाथी ! लोग देखने निकले, पूरा गाँव ! लोग... लोग समाये नहीं, लोग इतनी महिमा करें परन्तु बापू ! उसमें तो राग मन्द हो तो शुभ है। यह सब रथ चलें, हाथी चले, वह तो सब पर की क्रिया है। आहा...हा... ! उसमें कदाचित् राग मन्द किया हो तो वह शुभ है, वह भी दुःख है। आहा...हा... ! ऐसा वीतराग का मार्ग कहा जाये ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! और एकान्त है — ऐसी बेचारे पुकार करते हैं... एकान्तवादी हैं, एकान्तवादी हैं, सोनगढ़ का एकान्तवाद है... क्योंकि व्यवहार से होता है, इससे इनकार करते हैं।

यहाँ तो यह कहते हैं, अन्तरस्वरूप के आश्रय से धर्म होता है; राग के विकल्प से धर्म नहीं होता (क्योंकि) वह दुःख है — इसका नाम अनेकान्त है। आज आया है, जैनगजट में। एकान्तवादी है, एकान्तवादी हैं। सुन न बापू ! भाई ! आहा...हा... ! जहाँ सम्यक् एकान्त ऐसा तत्त्व पड़ा है, प्रभु ! नय का विषय ही एकान्त है, एक ही अंश है, दो नहीं। आहा...हा... ! निश्चयनय का जो ज्ञान, वह तो अकेले चैतन्यस्वरूप को ही पकड़ता है। सम्यक् एकान्त में पर्याय का लक्ष्य छोड़कर... आहा...हा... !

(रमेश ने एक गीत बनाया है) (उसमें ऐसा आता है) शुभभाव में धर्म नहीं परन्तु पर्याय में तुझे अटकने नहीं दूँ अब। – रमेश में (रमेशभाई 'कमल') आता है। यहाँ व्याख्यान में आया हो, वह उसमें रच डाला। घाटकोपर की भजन मण्डली, आहा...हा... ! शुभभाव में तो तुझे नहीं रहने दूँ परन्तु पर्याय में नहीं अटकने दूँ — ऐसा एक भजन है। आहा...हा... ! क्योंकि एक समय की पर्याय प्रगट अंश जितनी दिखती है, उसमें कहीं पूरा आत्मा नहीं है। पूरा आत्मा तो अन्दर पड़ा है, बड़ा-पूरा तत्त्व जो है, आत्मतत्त्व वह चलती विचारधारा की समय की दशा से भिन्न अन्दर वर्तता है। आहा...हा... ! अभी शरीर से भिन्न, शरीर की क्रिया होने के काल में आत्मा से नहीं होती — ऐसी बात कठिन पड़ती है। क्या हो भाई ! आहा...हा... ! बोलना, चलना क्रिया तो जड़ की, मिट्टी की क्रिया है। आ...हा... ! उसमें होनेवाला विकल्प जो है, वह राग है। आहा...हा... !

मुमुक्षु – आप राग है — ऐसा कहाँ कहते हो, दुःख है — ऐसा कहते हो ?

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री – राग है, वह दु:ख है क्योंकि अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु आत्मा से राग है वह विरुद्ध है। चाहे तो दया का, दान का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का हो, प्रभु स्मरण — णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं.... यह भी विकल्प और राग और दु:ख है, बापू! कठिन पड़ेगा भाई! आहा...हा...! अरे...! तूने तेरी जाति को कभी सुना नहीं, प्रभु! भगवान तुझे प्रभुरूप से बुलाते हैं। भगवानरूप से भगवान बुलाते हैं, वह भगवान कैसा होगा, बापू! आहा...हा...! यह राग का अंश उठता है, शुभ का, हाँ! पुण्य का; इसे दु:खरूप जानकर अन्दर पुरुषार्थ झुका, गुण को पकड़। अनन्त... अनन्त... जो गुण हैं, उन्हें पकड़। आहा...हा...! दु:खरूप को छोड़ दे तो आत्मा का हित होगा, तो परिभ्रमण मिटेगा, वरना परिभ्रमण नहीं मिटेगा। आहा...हा...! दुनिया-दूसरे भले तेरी महिमा करे कि ओ...हो...! यह तो बहुत ऐसा है, हमेशा सामायिक करता है। आजीवन रात्रि में भोजन नहीं करता, पानी नहीं पीता, आठ पर्व में ब्रह्मचर्य पालन करता है, छह पर्व में कन्दमूल-हरितकाय नहीं खाता.... हुआ क्या परन्तु इसमें? आहा...हा...! अन्दर में विकल्प उठे, उसे अभी खाता है, उसे अनुभव करता है, वह मिथ्यात्व है। ऐसी बातें हैं। सम्प्रदाय में तो ऐसी बात होवे तो रहने न दे। यहाँ तो बाड़ा नहीं, जंगल है। आत्मा जंगलस्वरूप प्रभु अन्दर है। आहा...हा...! वह ज्ञान की ज्योति जलहल ज्योति प्रभु को राग का अंशमात्र दु:खरूप है; वह आत्मा का स्वभाव नहीं, आत्मा को लाभदायक नहीं। आहा...हा...! यह ४९ (बोल पूरा) हुआ।

तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जाएगा। सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल॥ ५०॥

५०। **तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर....** गहरी जिज्ञासा अर्थात्? ऊपर-ऊपर से आत्मा ऐसा है और ऐसा है और ऐसा है... शास्त्र से धारण किया – ऐसा नहीं। आहा...हा...! सत् की गहरी जिज्ञासा.... प्रभु अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप

www.vitragvani.com

सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा है, स्वभाव और शक्तिरूप से भगवान आत्मा है। आहा...हा...!

यहाँ जरा एक अनुकूलता (होवे), बाहर की जरा सी खाने-पीने की अनुकूलता में मैसूरपाक खाता हो और अरबी के.... क्या कहलाते हैं? अरबी के पान, अरबी के ऐसे-ऐसे घी में तले हुए (भुजिये हुए) और मैसूरपाक खाये.... अरे...! प्रभु! क्या है तुझे? प्रभु! यह तो जड़ है न? तुझे इनमें सुख कहाँ से लगा? आहा...हा...! उनकी मिठास का ज्ञान करना.... ज्ञान में मिठास आती नहीं। मिठास का ज्ञान करता है। उस ज्ञान में मिठास नहीं आती और मिठास में ज्ञान नहीं जाता। आहा...हा...! मात्र राग होता है (कि) ठीक है, मैसूरपाक ठीक है, यह चीज अच्छी है, यह रसगुल्ला है, यह स्त्री रूपवान और शरीर मक्खन जैसा है, इसे भोगता हूँ... उसे नहीं भोगता प्रभु! वह तो जड़ है न? उसके प्रति 'ठीक है' — ऐसे राग का / पाप का विकल्प उठाता है, उसका तू अनुभव करता है, भोगता है। आहा...हा...! तू क्या भोगता है, इसका तुझे पता नहीं है। आहा...हा...!

ऐसे दो-पाँच-दस लाख का फर्नीचर हो, बँगला बहुत कीमती हो... आहा...हा...! बीच में झूला डालकर रेशमी गद्दा (हो) (श्रोता : झूला नहीं पलंग।) पलंग कहो। ऐसा पड़ा हो और पचास लाख का मकान हो... आहा...हा...! ऐसी जहाँ नजर करे... क्या है? बापू! यह सब तो परवस्तु है, प्रभु! यह तो जड़ है, पर है, उसे तू स्पर्श नहीं करता, वे तुझे स्पर्श नहीं करते। यह तुझे क्या हो गया है? हम पैसे टके से सुखी हैं, लड़के सब अनुकूल, कर्मी जगे हैं। कर्मी!

मुमुक्षु - धर्मी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री - कर्मी! कर्म के करनेवाले जगे हैं। अभी हम सुखी हैं, निवृत्ति है, लड़के कमाते हैं और पाँच-दस लाख की आमदनी करते हैं। अरे... उसको साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है, सुमनभाई के सेठ को! जामनगर! 'अमर डाईंग कम्पनी!' जगमोहनदास सेठ उसके सेठ है न, यहाँ आये थे, वहाँ है न, जामनगर में। वर्ष में साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है, साढ़े तीन करोड़!

मुमुक्षु - अभी बढ़ानेवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - बढ़ानेवाले हैं न, सुना है न, अभी अधिक धन्धा करूँ तो चार-

पाँच करोड़ आमदनी होगी, इस प्रकार विचार करते हैं। यहाँ आये थे, वहाँ भी मिले थे। 'मुम्बई!' अरे! फट जाये प्याला! प्रभु! यह सब तो जड़ है न?

मुमुक्षु – पैसा मीठा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – धूल मीठा लगता है, मीठा लगता है इसे इसका राग। राग मीठा लगता है बापू! पैसा तो जड़ है, पैसे को तो आत्मा स्पर्श नहीं कर सकता। जड़ को आत्मा स्पर्श करे? प्रभु तो अरूपी है। रंग, गन्ध, स्पर्शरहित है। इस शरीर को आत्मा स्पर्श नहीं करता। शरीर से भिन्न चीज है; स्पर्श किये बिना रहती है। आहा...हा...! कैसे जँचे?

तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर.... गहरी जिज्ञासा कर, ऐसा। ठेठ ध्रुव का पता लेने के लिए (गहरी जिज्ञासा कर)। आहा...हा...! जिसका तल हाथ में आवे, चैतन्य का तल – तल हाथ में आवे — ऐसी गहरी जिज्ञासा कर। आहा...हा...! **जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा;....** प्रभु की गहरी जिज्ञासा... प्रभु स्वयं अन्दर साक्षात् भगवान ही है। आहा...हा...! ऐसे जँचे, यहाँ सबेरे दस-बारह बीड़ी पीवे, तब भाईसाहब का दिमाग ठीक रहे... आहा...हा...! तीन बार चाय पीवे सबेरे-दोपहर-शाम, सोते समय पीवे।

एक वृद्ध व्यक्ति था, वह नींद न आवे तो सोते समय नवटाँक घी खाये। आहा...हा...!... उसके पास उस समय अस्सी हजार रुपये थे। यह तो साठ वर्ष पहले की बात है। वृद्ध अवस्था हो गयी (उसे) सोने के समय नवटाँक घी चाहिए। वह घी खावे तो नींद आवे, वरना नींद न आवे। कहो! इन हिम्मतभाई का कुटुम्बी! केवलजी जोबालिया के पिता! (संवत्) १९७५ का चातुर्मास था न? १९७५ का चातुर्मास पाणीपाद में था। १९७५, कितने वर्ष हुए? ५९ वर्ष हुए। ५९ वर्ष पहले वहाँ चातुर्मास था। सब व्याख्यान में आते थे। आ...हा...! रात्रि में सोते समय घी चाहिए, रात्रि भोजन त्याग तो किसका करे? आहा...हा...! सोते समय नवटाँक (घी) चाहिए — ऐसा कुछ सुना था, तब उसे नींद आवे। कौन जाने? कोई घी कहते थे, सुना था। घी न? घी कहते थे। गृहस्थ पैसेवाला व्यक्ति, जामनगर छोटा, अस्सी हजार। पाणीपाद छोटा, साठ वर्ष पहले की बात है। ओ...हो...! ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है, दुनिया उसे सुखी कहती है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

अकेले दु:ख के कुंज में पड़ा है, विकल्प की जाल उठाता है, यह सब तो अशुभ ही है। यहाँ तो शुभभाव होता है, वह भी दु:खरूप है (— ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...!

इसलिए **तू सत् की गहरी जिज्ञासा....** (कर) शुभाशुभभाव से रहित, जिसमें चैतन्य भगवान अन्दर है, नित्य वस्तु है, ध्रुव है। आ...हा...! वह बैठने का, रहने का, विश्राम का स्थान है। विश्राम स्थान है। आहा...हा...! ऐसे सत् की गहरी जिज्ञासा कर। **जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा;....** सत् की जिज्ञासा में तेरा प्रयत्न चलेगा। आहा...हा..! जहाँ पूर्ण सत् प्रभु पड़ा है, ध्रुव है, आदिरहित-शुरुआतरहित, अन्तरहित तत्त्व जो ध्रुव पड़ा है, प्रभु! आहा...हा...! उसकी गहरी जिज्ञासा कर। ऊपर-ऊपर की जिज्ञासा नहीं। आहा...हा...! (यह वचनामृत) पुस्तक बाहर आ गयी है, सादी भाषा गुजराती है, हिन्दी हो गया है।

तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर.... आहा...हा...! **तेरी मति सरल....** (अर्थात्) पर की वक्रता और पर को अपना मानना छोड़कर और मति, स्वरूप क्या है, उस ओर लक्ष्य झुका। **तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जाएगा।** गहरी जिज्ञासा से.... आहा...हा...! उसका प्रयत्न बराबर चलने पर तेरी मति शुद्धरूप परिणमित हो जाएगी। आहा...हा...! इस शुभराग से भिन्न पड़कर, तेरा मतिज्ञान, तेरी बुद्धि, शुद्ध परिणमित हो जाएगी। आहा...हा...! स्वरूप की ओर ढलेगी अर्थात् शुद्ध परिणमित हो जाएगी। गहरे-गहरे जाना है न! आहा...हा...! जहाँ तल - बड़ा तल पड़ा है। आ...हा...! तुझे वहाँ जाने पर **तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जाएगा।** आत्मा में आनन्दरूप और ज्ञानरूप हो जाएगी।

अबुद्धिपूर्वक विकल्प रहने पर भी, बुद्धिपूर्वक का उपयोग अन्तर में गया... आहा...हा...! वह आत्मा में सम्यक् परिणमित हो जाएगा। सम्यग्दर्शनरूप, सम्यग्ज्ञानरूप, सम्यक्शान्तिरूप, अतीन्द्रिय आनन्द अंशरूप आत्मा हो जाएगा, परिणमित हो जाएगा, क्योंकि जिसे पकड़ा है, उसकी परिणति ऐसी निर्मल हो जाएगी। आहा...हा...! ऐसा उपदेश! ऐसा किस प्रकार का उपदेश यह ? आहा...हा...! यह वस्तु है।

सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे.... आहा...हा...! भविष्य में भी तेरा काम हो

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जाएगा — ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! शुद्ध सत्तास्वरूप पवित्र प्रभु ! पूर्णानन्द के संस्कार डाले कि यही वस्तु है, राग नहीं। सत्स्वरूप चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द है — ऐसा जिसने श्रद्धा में-व्यवहार श्रद्धा में भी जिसने ऐसा रखा... आहा...हा... ! उसके संस्कार अन्दर में जाकर परिणमित हो जाएँगे। आहा...हा... ! क्योंकि व्यवहार से भी जिसने ऐसी श्रद्धा रखी कि अन्तर में जाने का होवे, वही परिणमन और धर्म है तो उसका वीर्य, राग की रुचि में से हट गया है। आहा...हा... ! वहाँ अटका है, भले अन्दर गया नहीं परन्तु व्यवहार-श्रद्धा में राग की ओर ढलना और राग की रुचि करना, वह चला गया है। आहा...हा... ! उस श्रद्धा में आनन्दस्वरूप प्रभु है, वहाँ जाना, ढलना, वह श्रद्धा की है। इस कारण श्रद्धा वहाँ रुक गयी है। राग में जाये और राग से लाभ माने (ऐसा नहीं है)। इस व्यवहारश्रद्धा में रुक गया है। व्यवहार अर्थात् भले ही विकल्पसहित है परन्तु इसमें जाना ठीक है, यह बात रुक गयी है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी.... आहा...हा... ! भव पूरा हो जाएगा (तो भी) अन्य भव में मिल जाएगा। आहा...हा... ! पुरुषार्थ की कुछ कमी रह गयी हो तो वहाँ पुरुषार्थ पूरा हो जाएगा। आहा...हा... ! ऐसा करने के लिए इसकी पात्रता कितनी चाहिए ! आहा...हा... ! श्रद्धा में इसकी पात्रता ऐसी आवे कि अन्तर में गये बिना आत्मा का धर्म कभी तीन काल में नहीं होता। आहा...हा... ! यह दया, दान और व्रत, भक्ति, पूजा और यह सब भाव दुःखरूप है, मेरे आनन्द का घात करनेवाले हैं। आहा...हा... ! ऐसा जिसे रुचि में पर की ओर का (झुकाव) बदल डाला है, आहा...हा... ! और स्वसन्मुख में ढलने का ही जिसने प्रयत्न चालू किया है, वे संस्कार भविष्य में भी रहेंगे। आहा...हा... ! है न ?

तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। आहा...हा... ! विश्वास ला। प्रभु को पकड़ा, प्रभु मिले बिना नहीं रहेगा। आहा...हा... ! दूसरे सब विकल्पों का आदर श्रद्धा में से छोड़कर... भले यह श्रद्धा विकल्पवाली है... और अन्दर में जाने के लिए जिसका प्रयत्न है, वही पुरुषार्थ है, वही मुक्ति का कारण है — ऐसा जिसे संस्कार पड़ा, (उसे) भविष्य में भी सत् प्रगट होगा। आहा...हा... ! कोरा, कोरा... सकोरा होता है न ? कोरा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सकोरा... कोरा सकोरा (उस पर) पानी बूँद डालो तो चूस जाएगा परन्तु चूसते चूसते वह काम करेगा, बाद-बाद की बूँदें जो ऊपर रह जाएगी, वे नीचे पड़ी हुई है, उसे ऊपर ले जाएगी। समझ में आया ? क्या कहा यह ? यह उसमें पानी डालते हैं न, पहली बूँद डालो तो चूस जाएगा, दिखेगी नहीं परन्तु वह संस्कार ऐसा काम करेगा कि बाद की पच्चीस, पचास, सौ बूँदें डालने से ऊपर की बूँद गीली दिखेंगी, उन सबका कारण तो यह है। आहा...हा... ! इसी प्रकार जिसने अन्तर सत् के संस्कार डाले हैं... आहा...हा... ! उसे ऊपर आकर जब परिणति होगी, उस परिणति का कारण वे संस्कार पड़े हैं, वे हैं। समझ में आया ?

प्रश्न – परिणति का कारण पूर्व का पुरुषार्थ या वर्तमान पुरुषार्थ ?

समाधान – वर्तमान पुरुषार्थ है परन्तु पूर्व के संस्कार हैं, वे वर्तमान पुरुषार्थ को वहाँ एक न्याय से मदद करते हैं। यह व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। संस्कार डाले हैं न ? समाधिशतक में कहा है, समाधिशतक में। पूर्व के संस्कार आकर छूट जाये, सम्यग्दर्शन पाया हो, तथापि संस्कार... ऐसा आता है। वरना तो वर्तमान पुरुषार्थ उल्टा है और छूटता है। आहा...हा... ! समाधिशतक में मूल गाथा संस्कार की है। हेतु यह कहना है।

मुमुक्षु – समाधिशतक में तो ऐसा कहते हैं कि पूरा जगत् घाता गया।

पूज्य गुरुदेवश्री – घाता गया है। राग से पूरा जगत् घाता जाता है। आहा...हा... ! प्रभु ! तू रागरहित है न, प्रभु ! तुझे इस राग की क्रिया से — शुभाचरण से धर्म हो और समकित हो, यह मिथ्यात्वभाव है। आहा...हा... ! यह सब निगोद में जाने के लक्षण हैं और यह संस्कार (आत्मा के संस्कार) सिद्ध होने के लक्षण हैं। आहा...हा... ! है न ?

इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल। इसलिए सत् के, जो सत् वस्तु है, त्रिकाली सत् है, एक समय की पर्याय का सत् है परन्तु उस पर्याय के सत् को त्रिकाली सत् की तरफ झुका, उसमें तुझे सत् मिलेगा। एक समय की पर्याय पर लक्ष्य जाएगा तो तुझे सत् नहीं मिलेगा। वहाँ पूर्ण सत् है नहीं। आहा...हा... ! पूर्ण सत्स्वरूप अन्दर है, वस्तु है, बापू ! अन्दर अस्तिधारक तत्त्व है परन्तु पता नहीं पड़ता, कभी सुनने को नहीं मिलता। यह क्या है ? प्रभु ! शरीर से तो भिन्न है, वाणी से तो भिन्न है, अभी ! परन्तु विकल्प दया, दान का

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आता है, उससे भिन्न अन्दर पड़ा है। अरे... भिन्न तो है परन्तु इसे राग को जाननेवाली ज्ञान की वर्तमान पर्याय, उस पर्याय में भी पूरा तत्त्व नहीं आता है। आहा...हा... ! उस अंश को त्रिकाली में झुका तो त्रिकाली तत्त्व का तुझे परिणमन होगा। आहा...हा... ! पर्याय के ऊपर लक्ष्य रखकर परिणमेगा तो राग की दशा होगी। आहा...हा... ! और त्रिकाली सत् के ऊपर दृष्टि करके गहरे संस्कार डालकर परिणम (तो) वीतरागदशा होगी। आहा...हा... ! सादी भाषा गुजराती ! गुजराती सादी भाषा। अरे...रे... ! दुनिया को कहाँ पड़ी है ? आहा...हा... ! पागलपने जिन्दगी बिताते हैं — यह मैंने किया, मैंने यह किया, मैंने यह किया... मैं कमाता हूँ और उद्योगपति हुआ हूँ, मैंने पाँच करोड़ मेरे पुरुषार्थ से प्राप्त किये हैं, बाहुबल से प्राप्त किये हैं, पिता के पास कुछ नहीं था, हमने यह सब (किया)... धूल भी नहीं किया, सुन न ! राग और मिथ्याभाव सेवन किये हैं। आहा...हा... ! आहा...हा... !

अन्दर में गहरे संस्कार डाल, प्रभु ! गहरा तत्त्व जो अन्दर पड़ा है, तल – वह ध्रुव है, नित्य है, टिकता तत्त्व है। वहाँ बैठने से आत्मा को विश्राम मिलेगा। राग और पर्याय में रहने से, बैठने से तुझे दुःख होगा। आहा...हा... ! एक समय की पर्याय में रहने से भी पर्यायबुद्धि है। उसकी दृष्टि आगे जाने पर राग पर जाएगी, दुःखी होगा। वह तेरा विश्राम स्थान, धाम, तेरा ध्रुवधाम नहीं है। आहा...हा... ! जहाँ ध्रुवधाम भगवान है, आहा...हा... ! वहाँ जा, गहरे संस्कार पड़ेगे, (गहरे संस्कार) डाल। आहा...हा... !

आकाश-पाताल भले एक हो जायें परन्तु भाई! तू अपने ध्येय को मत चूकना, अपने प्रयत्न को मत छोड़ना। आत्मार्थ को पोषण मिले वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ उसे पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी॥ ५१ ॥

५१ – आकाश-पाताल भले एक हो जायें.... आहा...हा... ! भले ही पूरी दुनिया तुझसे विपरीत पड़ जाये परन्तु तेरा ध्येय चूकना मत ! अन्तर आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे ध्येय करके चूकना मत। आकाश-पाताल एक हो जाये, दुनिया बदल जाये, पूरी दुनिया ऐसा कहे कि यह तो भ्रष्ट हुआ, यह तो निश्चयाभासी है, व्यवहार की तो कोई

www.vitragvani.com

कीमत नहीं करता। पूरी दुनिया कहे परन्तु तू अन्दर गहरा उतर जा। आहा...हा... ! भाषा कैसी है, देखा! आकाश और पाताल भले ही एक हो जायें,... कभी एक तो होते नहीं परन्तु कहते हैं कि उल्टे पड़े हुए लोग सब तेरा विरोध करें, पूरी दुनिया विरोध करे, त्यागी नाम धरानेवाले, बाबा नाम धरानेवाले, साधु नाम धरानेवाले (ऐसा कहे) ऐसा धर्म! यह व्रत, तप, भक्ति, सब करते हैं, वह धर्म नहीं। आहा...हा... ! यह दुनिया पूरी भले ही बदल जाये, कहते हैं।

परन्तु भाई! तू अपने ध्येय को मत चूकना,.... आहा...हा... ! तू स्वयं आनन्द का नाथ अन्दर है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, तुझे पता नहीं। देह से तो भिन्न; दया, दान के विकल्प से भी भिन्न और उन्हें जाननेवाली एक समय की पर्याय से भी प्रभु अन्दर पूरा भिन्न है। आहा...हा... ! ऐसे तत्त्व में तू जा। पूरी दुनिया भले आकाश और पाताल इकट्ठे हो जायें और विरुद्ध हो जायें परन्तु तेरा ध्येय चूकना मत। जहाँ आनन्द के नाथ में जाना है, उसके संस्कार डालकर, उसमें से सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न कर। आहा...हा... ! दूसरा कोई साधन होगा नहीं। आहा...हा... ! यह तो हड्डियों की माला है, शरीर तो हड्डियों, चमड़े की (माला है)। अन्दर में पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा का भाव आता है, परन्तु वह तो राग है और दु:ख है। अर...र... ! यह बात इसे कैसे जँचे ? प्रभु! तू इस राग और दु:ख से भिन्न चीज है। आ...हा... ! पूरी दुनिया तेरा विरोध करे परन्तु तू अपने ध्येय को चूकना मत। आहा...हा... !

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

जेठ शुक्ल १, बुधवार, दिनाङ्क २१-०६-१९७८
प्रवचन-१६ वचनामृत- ५१-५३

५१ बोल चलता है, ५१ चलता है न? क्या कहते हैं? **आकाश-पाताल भले एक हो जायें...** क्या कहते हैं? तू आत्मा जो अन्तर नित्य ध्रुव है, उसे पकड़ने के लिए ऐसा प्रयत्न कर कि (जिससे) अनन्त संसार का अन्त आवे। उसमें दुनिया पूरी फेरफार हो जाये... आकाश-पाताल एक हो जाये उसका अर्थ क्या? पूरी दुनिया विरुद्ध हो जाये तो भी तेरा ध्येय चूकना नहीं। तेरी निन्दा हो, प्रतिकूलता हो परन्तु आत्मा अन्दर वस्तु है, शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, उसे प्राप्त करने के लिए ध्येय चूकना नहीं। आहा...हा...! ध्येय पर चीज का नहीं, ध्येय राग का नहीं, ध्येय पर्याय का नहीं आहा...! स्वरूप जो चैतन्य, भरपूर स्वभाव से भरी हुई अस्ति है, अस्ति है, उसके अस्तित्व का अस्तित्वरूप से ध्येय बनाकर मानना और अनुभव करना, उसमें दुनिया की प्रतिकूलता हो जाओ या अनुकूलता हो, उसे देखना नहीं।

तू अपने ध्येय को मत चूकना,... आहा...हा...! करने का जो है, वह विकल्प को तोड़कर स्वरूप में निर्विकल्प अनुभव करना, (वह करना है)। आहा...हा...! यह प्रथम में प्रथम कर्तव्य तो यह है। आहा...हा...! दुनिया के अनेक प्रकार के — विविध प्रकार देखकर, तू ध्येय को मत चूकना। कितने ही व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है — ऐसा कहें, कितने ही देव-गुरु की कृपा मिले तो मिल जाये (— ऐसा कहें) कितने ही केवलज्ञानी के समवसरण में जाये तो प्राप्त हो ही — ऐसे अनेक प्रकार के जगत के स्वच्छन्द चलते हों तो उनका लक्ष्य छोड़कर तू तेरा ध्येय अन्दर चैतन्यस्वरूप वस्तु है, वही करना है। आहा...हा...! उसे चूकना नहीं।

अपने प्रयत्न को मत छोड़ना।... आहा...हा...! स्वरूप की ओर का जो पुण्य-

www.vitragvani.com

पाप के विकल्प से रहित प्रयत्न... बाहर की क्रिया का प्रयत्न तो आत्मा नहीं कर सकता परन्तु अज्ञानभाव से अशुद्धभाव को करता है और मानता है कि यह मेरा भाव है, उसे भी छोड़कर। आहा...हा...! **प्रयत्न को मत छोड़ना।...** अन्तर में जाने के लिए देरी लगे, अकुलाहट हो, उलझन हो परन्तु ध्येय को चूकना नहीं, उसे पाकर ही रहना है — ऐसा अन्तर निर्णय कर। आहा...हा...! ऐसी बात है। **अपने प्रयत्न को...** अपने प्रयत्न को अर्थात् अन्तर्मुख जाने का (प्रयत्न)। राग के आश्रय को छोड़कर... 'भेदज्ञान सिद्धा' ऐसा कहा है न? जितने अभी तक सिद्ध हुए, वे भेदज्ञान से हुए हैं और जो कोई बँधे हैं, वे कर्म से बँधे हैं — ऐसा नहीं कहा; भेदज्ञान का अभाव, उससे बँधे हैं। आहा...हा...! अत: भेदज्ञान करने का तेरा जो अभ्यास है, उसका प्रयत्न चूकना नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है। बाहर में लोग तो बाह्य में (धर्म) मानते हैं कि यह करना और वह करना। आहा...हा...!

यहाँ तो राग को भिन्न करने का जो भेदज्ञान का प्रयत्न है, वह तेरा ध्येय है कि द्रव्य को प्राप्त करना। धर्मी की दृष्टि अथवा योग्यता और दृष्टि भी यह है। पात्र जीव की दृष्टि भी, शुद्ध चैतन्य को प्राप्त करना यही ध्येय है, उसके प्रयत्न को चूकना नहीं। आहा...हा...! दुनिया प्रशंसा करे या अप्रसंगी (अप्रशंसा) करे, उस पर तुझे आधार नहीं रखना। आहा...! ऐसी बात है।

आत्मार्थ को पोषण मिले वह कार्य करना।... आत्मा का प्रयोजन जो सिद्ध, शुद्ध को अनुभव करना — ऐसा जो आत्मा का ही पोषण, वह कार्य करना। आहा...हा...! राग का शुभविकल्प आवे, होवे, सुनने का—पढ़ने का (विकल्प आवे), तथापि आत्मा को पोषण मिले वह कार्य करना, उससे (शुभराग से) पोषण नहीं मिलता। आहा...हा...! दृष्टि में पूर्णानन्द का स्वीकार, पूर्ण अस्ति का पर्याय में स्वीकार (करना), वह जीव का कार्य है। आहा...हा...! **आत्मार्थ को पोषण मिले, वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ...** आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्यघन प्रभु ध्रुव परमार्थ / निश्चय आत्मा, उसे पकड़ने की, उसके सन्मुख होकर उस पर आरूढ़ हुआ, आत्मा में चढ़ा, आरूढ़ होने को चढ़ा... आहा...हा...! **उसे पूर्ण करना,...** आहा...हा...! ऐसे वाक्य हैं?

आज किसी का लेख आया है, नहीं? किस गाँव का है? कोई बड़ा वकील है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

हिन्दी, हिन्दी भेजा है, कोई ग्राहक है उसने दिया है परन्तु पढ़कर इतना प्रसन्न हुआ। बड़ा वकील है, ऐसा प्रसन्न हुआ, ओहो...हो...! ऐसी चीज बाहर किसने प्रकाशित की ? ऐसी चीज लिखी किसने ? ऐसा लिखा है और ऐसी चीज के पैसे घटाने के लिए पैसे देनेवाले कौन निकले ? उसमें कोई चौहत्तर हजार रुपये हैं। (कीमत) घटाने के लिए पैसे का पता पड़ा होगा (श्रोता : पीछे लिखा है।) ऐसा! अपने को कुछ (पता नहीं) लिखनेवाली लड़कियों को धन्य है, जिन्होंने, ट्रस्ट ने प्रकाशित किया उसे धन्य है। आहा...हा...! ऐसा लिखा है और जिन्होंने पैसे देकर सस्ता करके दिया है उन्हें, धन्य है (ऐसा) बहुत प्रसन्न हुआ। संस्था धर्म की प्रभावना के लिए लगती है — ऐसा करके (लिखा है)। कोई बड़ा वकील है, बापू! यह तो उसको घर की बात है। भाई! वकील हो या बालक हो या नारकी हो या पशु हो, आहा...हा...! वस्तु स्वयं कहाँ पशु और नारकी, वकील और बालक है! आहा...हा...! एक समय में वर्तमान त्रिकाल! आहा...हा...! पूरा ध्रुव अस्तिरूप पदार्थ है न, प्रभु! उसके ध्येय को... आहा...हा...! पूर्ण करना। जिस ध्येय में आरूढ़ हुआ, वहाँ अब जाना। आहा...हा...! **अवश्य सिद्धि होगी।** आहा..हा...! वस्तु अन्दर पड़ी है, पूरी है; है उसे प्राप्त करना है — इसका अर्थ क्या ? आहा...हा...! राग को अपना करना हो तो नहीं हो सकता; शरीर को-परवस्तु को बहुत प्रयत्न करके रखना चाहे तो नहीं रहती। आहा...हा...! यह तो है, उसे प्राप्त (करना है)। है और वह तुझे प्राप्त है; वह तू है। आहा...हा...! पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है, उसे जिसने ध्येय में लिया है, दृष्टि में उसे जिसने ध्येय बनाया है, ज्ञान की वर्तमान पर्याय में उसे ज्ञेय बनाया है, आहा...हा...! तू पूर्ण करना, उस ध्येय में जाकर पूर्ण करना। आहा...हा...! है ?

(आत्मार्थ को) **पोषण मिले वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ उसे पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी।** आहा...हा...! पड़ा है, वस्तु पड़ी है, तुझे अपनी करना उसमें क्या ? ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! पूरी चीज ही है। परमात्मस्वरूप एक समय में प्रभु विराजमान है, उसे ध्येय में लेकर पूर्ण करना; जरूर पूर्ण होगा। आहा...हा...! ऐसी बात है! लोग जरा मध्यस्थ होकर (सुने तो सही)।

कोई कहता था, नहीं ? कलकत्तावाला। यह तो लोग पढ़ेंगे, विरोध करनेवाले का

www.vitragvani.com

विरोध मिट जायेगा। यह पुस्तक पढ़ेंगे, मुनि पढ़ेंगे तो (उनका भी) विरोध मिट जायेगा। ऐसी शैली है। ऐसा मुनिपना होता है, ऐसा मुनिपना होता है। आहा...हा...! यह आयेगा। आहा...हा...! उसमें उनकी जो स्थिति है, वस्तु का अस्तित्व जैसा है, और मुनिपने की प्राप्ति का जितना जैसा अस्तित्व है, उसे इसमें वर्णन करके (कहा है कि) इसका नाम मुनिपना है। इसमें किसको विरोध लगेगा? कहते हैं। उसे ऐसा लगता है कि भाई... आहा...हा...! हम मुनि इस दशा में तो नहीं और मुनिपना तो ऐसा कहते हैं। न्याय और लॉजिक से भी ऐसा है तो विरोध मिट जाता है। वे कहते थे। यह ५१ (बोल पूरा) हुआ।

शरीर शरीर का कार्य करता है, आत्मा आत्मा का कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र हैं, उनमें 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा। देह के लिए अनन्त भव व्यतीत हुए; अब, सन्त कहते हैं कि अपने आत्मा के लिए यह जीवन अर्पण कर॥ ५२॥

५२, **शरीर शरीर का कार्य करता है,...** करेगा — ऐसा नहीं; करता ही है। यह हिलना-चलना बोलना, यह भाषा वह सब जड़, जड़ का काम करता ही है। वह काम तुझसे होता है — ऐसा नहीं तथा तुझमें वह चीज नहीं कि जिससे उसका कार्य तुझसे हो। आहा...हा...! अब यहाँ तो शरीर को लिया। तुम्हारे व्यापार-धन्धे कहाँ गये? घड़ियाल के सब व्यापार... आहा...हा...! मूलचंदभाई! वह कहाँ गये तुम्हारे चद्दर के व्यापार? आहा...हा...! वह तो उसका कार्य करता है, यह बात यहाँ नहीं ली, यहाँ तो एक क्षेत्रावगाह, शरीर एक क्षेत्रावगाह में है। वह बाकी है न, सबेरे आया था। तीसरा, तीसरा बोल। एक क्षेत्रावगाह में है, तथापि एक-दूसरेरूप नहीं होते। आहा...हा...!

एक क्षेत्र में व्यापक-रहा है, एक क्षेत्र अर्थात् आकाश का क्षेत्र। इसका क्षेत्र-शरीर का क्षेत्र और आत्मा का क्षेत्र तो भिन्न है परन्तु आकाश के क्षेत्र में एक जगह मानो शरीर है, वहाँ आत्मा है और आत्मा है, वहाँ शरीर है परन्तु **शरीर शरीर का कार्य करता है,...** वह उसका कार्य करता ही है। आहा...हा...! शरीर की अवस्था का कार्य वह उससे होता ही है।

www.vitragvani.com

आत्मा आत्मा का कार्य करता है।... आत्मा स्वयं अपना कार्य करता है, पर का कार्य नहीं करता तथा अपने कार्य के लिए पर की मदद की — सहायता की आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! आत्मा, आत्मा का कार्य करता है और जड़, जड़ का कार्य करता है। करता है, करता है, उसमें तू करेगा यह कहाँ से आया? शरीर, शरीर का कार्य करता है; करता है, उसे मैं करूँ (यह कहाँ से आया)? आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। लोग मध्यस्थ हों उन्हें तो बहुत अच्छा लगता है। आहा...हा...! तत्त्व वस्तु ऐसी है न भाई! और वह तेरे हित के लिए है न, बापू! आहा...हा...! देह छूट जायेगी, आँख बन्द हो जायेगी, सब भिन्न पड़कर चला जाएगा। आहा...हा...! जिसका अभिमान किया होगा — हमने ऐसा किया और हमने मकान बनाया और उसमें ऐसा कराया, और उसमें ऐसा कराया, लड़कों को समय पर विवाहित किया, लड़कियों को ठिकाने लगाया, चाहता हो उसे पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार का दहेज दिया। अरे... प्रभु! क्या है? भाई!

यहाँ तो शरीर, शरीर का कार्य करता है — ऐसा कहा तो पर पदार्थ पदार्थ का कार्य करे जो है, उसमें तेरा अधिकार क्या है? आहा...हा...! शरीर का काम शरीर (करता है) और आत्मा आत्मा का कार्य करता है। **दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र हैं,...** आहा...हा...! दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र हैं। शरीर की पर्याय भी जिस समय जिस प्रकार होनी है, उसके निज क्षण में (होनी ही है)। आहा...! यह लोगों को कठिन पड़ता है। उसकी काललब्धि है, आत्मा में भी राग होने का और ज्ञान होने का स्वकाल है, उसका कार्य आत्मा करता है, और शरीर आदि का कार्य तो शरीर स्वयं करता है, उसमें मुझे अभी उसका इतना काम बाकी रहा — ऐसा कहाँ रहा? आहा...हा...! कितने ही काम धार पर चढ़ाये और कितने ही बाकी हैं परन्तु यह है कहाँ? आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। भाषा बहुत सादी और भाषा एकदम भिन्न। दोनों चीजें स्वतन्त्र, आहा...हा...! **उनमें 'यह शरीरादि मेरे'...** वह उसका कार्य करे, उसमें फिर तू मेरा — ऐसा कहाँ से लाया? कहते हैं। शरीर-शरीर का कार्य करता है, उसमें तू यह मेरा — ऐसा कहाँ से लाया? आहा...हा...! मैं हूँ तो यह शरीर चलता है। कहीं मुर्दा चलता है? अरे... सुन न भाई! मुर्दे के समय उस शरीर की पर्याय शरीर करता है और यहाँ भी शरीर की पर्याय का कार्य शरीर करता है। आत्मा को और उसे

www.vitragvani.com

कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा...! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ही कर्ता-कर्मपने को उड़ा देता है। आहा...हा...!

उनमें 'यह शरीरादि मेरे'... शरीर आदि सब लिया न? वाणी, मकान, कुटुम्ब, कबीला... आहा...हा...! ये जो हैं, जिसमें रहता है, वह धरती। आहा...हा...! जिसमें जो रहता है, वह मकान; जिसमें जो रहता है, वहाँ फर्नीचर, चारों ओर दिशाओं में जहाँ देखे वहाँ फर्नीचर लगाया हो। अरे! शरीरादि मेरे कार्य हैं — ऐसा नहीं; वहाँ ये मेरे हैं — ऐसा कहाँ से आया? आहा...हा...! यह लड़की मेरी, मुझे इसे ठिकाने लगाना चाहिए (इसका विवाह करना चाहिए) प्रभु! परन्तु उसका कार्य तो जहाँ होता है, उसे तू कार्य किस प्रकार करेगा? आहा...हा...! ये लड़के छोटे से बड़े करना, छोटे बालक बेचारे चल नहीं सकते, उनका हाथ पकड़ना चाहिए, सहारा देना चाहिए।

मुमुक्षु : लड़कों को झूले में बैठाकर बड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी खोटा बैठाया है। पैसा पाप से पैदा किया और पैसा पाप के लिए खर्च किया। आहा..हा...!

मुमुक्षु : पहले कहना था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही था, भाई! यह तो घर का दृष्टान्त दिया। मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : लड़की को ठिकाने करना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन ठिकाने करे? जो वह द्रव्य-वस्तु है (वह) उसका कार्य करता है, उसे ठिकाने करना, तुझे कहाँ रहता है? आहा...हा...! उस-उस समय में वह-वह पदार्थ अपनी अवस्था की हालत के कार्य करे, उसमें तू वहाँ कर, यह कहाँ रहता है? प्रभु! आहा...हा...! बापू! मार्ग अलग है। अभी वीतराग मार्ग बहुत कुचल डाला है। आहा...हा...! आ...हा...!

यहाँ तो आत्मा का कार्य वास्तव में तो आनन्द और ज्ञान वह उसका कार्य करना है। वह तो पर से भिन्न करने के काल में ऐसा कहते हैं कि इसका राग है, वह अज्ञानभाव से इसका कार्य है परन्तु भान भाव से तो आत्मा तो ज्ञान का ही कार्य करता है, जानने का

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ही कार्य करता है; पर का कार्य होता है, वह वहाँ पर से होता है, उसे जानने का कार्य करता है — ऐसा भी कहना वह व्यवहार है। आहा...हा...! उनके — शरीर, वाणी, आदि के कार्य को नहीं करता, यह मन्दिर और यह सब (कार्य नहीं करता)। प्रातः काल हो, घड़ी संभाले, चाबी दे तब चले, चाबी देने का ध्यान रखे, लो! यह तुम्हारा आया, घड़ी का। आहा...हा...! इस घड़ी को सुधारकर देना, चलती नहीं। आहा...हा...! यह मोटर है, यह पहियों से चलती है — ऐसा नहीं है। इस मोटर के परमाणु-परमाणु अपने कार्य को उस-उस समय में स्वतन्त्ररूप से करते हैं। आहा...हा...! यह बात कैसे जँचे? प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! और उसका फल भी महाशान्ति है न? आहा...हा...! आहा...हा...!

जिसने आत्मा को ध्येय किया और पर-पदार्थ पर का कार्य करते हैं, उसमें से दृष्टि उठा दी, आहा...हा...! मेरा उनमें अधिकार है ही नहीं तथा उनका अधिकार मेरे कार्य के लिए नहीं। आहा...हा...! यह प्लेन-विलेन के तूफान नहीं करते वहाँ? टोपी पहनकर, १५०० का मासिक वेतन। प्लेन में। क्या कहलाता है वह? प्लेन ही कहलाता है न? एयरोप्लेन, एयरोप्लेन है न? उसमें थे। १३०० का वेतन था फिर १५०० (हुआ), दो वर्ष से छोड़ दिया। मासिक १५०० का वेतन... परन्तु वेतन किसका? आहा...हा...! पैसा पैसे का कार्य आना-जाना उसके कारण करता है, और इतने पैसे यह मैं प्राप्त करता हूँ और इतने मैंने खर्च किये, इतने इकट्ठे किये और इतने मैंने अच्छे कार्य में लगाये...

प्रश्न : संस्था के कार्य में ध्यान रखना या नहीं?

समाधान : कौन रखे? ध्यान रखने से होते होंगे? इसमें बहुत ध्यान रखा था, आहा...हा...! ऐसा काम है। यह नवनीतभाई चले गये बेचारे, लो! आहा...हा...! कितने उत्साह से किया? लड़कों ने मूल में नाश किया। पूरा मकान बेच डाला। कौन है? बापू! किसका कौन है? व्यर्थ का... आहा...हा...! जब मकान बनाया होगा तब कितना उत्साह होगा कि यहाँ रहूँगा और कुटुम्बी भी आयेंगे और रहेंगे। आहा...हा...! हो गया, यहाँ से पूरा मकान बेच दिया, यहाँ जो कोई अपना अधिकता का था (वह) ले गये। जाओ! अब हमारे सोनगढ़ में पिता का स्थान था, वह (रहा) नहीं। अर..र..! यह जगत कैसा? यह अपना-

www.vitragvani.com

अपना कार्य को करे। आत्मा राग और द्वेष को तथा मिथ्याभाव को करे, इससे पर के कार्य करता है, यह बात कहाँ है ? कहते हैं। आहा...हा... !

उनमें 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर,... यह शरीरादि मेरे ऐसा मानकर कल्पना में यह ठीक है — ऐसे सुख मानता है और शरीरादि में रोग हो, स्त्री परिवार को कठोर रोग हो, मरने की तैयारी हो, उससे दुःख न कर, प्रभु! वह उसका कार्य है। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं। यह किस प्रकार का उपदेश ? यहाँ तो अभी सम्प्रदाय में जाये तो (ऐसा कहते हैं) यह करो, अपवास करो, गिरनार की यात्रा करो, अरे..! सम्मेदशिखर की (यात्रा करो), जहाँ बहुत तीर्थङ्कर मोक्ष पधारे हैं, उसकी यात्रा करो। अरे... ! लाख यात्रा कर न... वह तो पर का कार्य है। शरीर चढ़े-उतरे, वह शरीर का कार्य है। आहा...हा... ! यह शरीर वहाँ के पत्थर को स्पर्श ही नहीं करता। आहा...हा... ! और आँख भी भगवान की मूर्ति को स्पर्श नहीं करती। परन्तु ऐसा क्या ? और इस ज्ञान में यह मूर्ति है ऐसा जानता है, वह ज्ञेय है, इसलिए ज्ञान जानता है — ऐसा भी नहीं। ज्ञेय का कार्य ज्ञेय में है, ज्ञान का कार्य ज्ञान में है। आहा...हा... ! ऐसी बात है। आहा...हा... !

इसके अभिमान सब उड़ जानेवाले हैं। जिसने आत्मा को ध्येय बनाया और अपना कार्य मैं कर्ता हूँ तथा पर, पर का (करता है) — सब अभिमान उड़ जाता है। आहा...हा... ! अहं... अहं — मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... आहा...हा... ! और पर को अपना मानकर अनुकूलता में सुख तथा प्रतिकूलता में दुःख (मानता है)। परचीज तो ज्ञेयरूप से व्यवहार से ज्ञेय है। शरीर आदि तो ज्ञेय है परन्तु वह भी व्यवहार से ज्ञेय है। निश्चय से ज्ञेय तो तू तुझे है; उसके बदले पर की अनुकूलता देखकर मुझे ठीक है, मजा है। यह क्या लाया-कहाँ से ? उस पदार्थ में तो ऐसा है नहीं पदार्थ तो मात्र ज्ञान में ज्ञात हो — ऐसा ज्ञेयपना उसमें पड़ा है। उसमें तो प्रमेयपना पड़ा है। वह तेरे ज्ञान में प्रमेयरूप से ज्ञात हो इतना निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध / पृथक् सम्बन्ध है। आहा...हा... ! उसमें यह ज्ञेय अनुकूल है, यह स्त्री, यह पुत्र, यह पत्नी, यह पति... पत्नी को पति अनुकूल हो, होशियार पढ़ा हुआ (हो) पाँच-दस हजार का वेतन लाता हो, आहा..हा.. ! टोपी पहनता हो... अरे... ! प्रभु ! परन्तु वस्तु तेरी कहाँ है ? भाई ! इसे मेरा मानकर तू सुख की कल्पना करता

www.vitragvani.com

है, वह मिथ्यात्वभाव है और मेरा मानकर उसे रोग हो, उसे देखकर तुझे दुःख होता है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहा...हा...! झूठा भाव है। वे ज्ञेय नहीं कहते है कि तू हमें तेरे मान। आहा...हा...! ज्ञेय ऐसा नहीं कहते कि हम अनुकूल-प्रतिकूल हैं। आहा...हा...! ज्ञेय तो ऐसा कहते हैं कि वे तो प्रमेय हैं। प्र-मेय (अर्थात्) तेरे प्रमाण में प्रमेयरूप से ज्ञात हों ऐसा है। आहा...हा...!

शक्ति आती है न? प्रमेय प्रमाण। आहा...हा...! तेरी शक्ति है। उसे ज्ञेयरूप से जानना और पर में ज्ञेयरूप से ज्ञात होना, बस इतना। आहा...हा...! ज्ञानियों के ज्ञान में ज्ञात होना, इतना व्यवहार। यह आत्मा है — ऐसा ज्ञानी के ज्ञान में (ज्ञात हो) और तू भी उस ज्ञेय को ज्ञान में जाने — इसके अतिरिक्त अधिक करने जाये कि यह मेरा और यह मेरा नहीं, अनुकूलता, वह सुखरूप और प्रतिकूलता, दुःखरूप, यह मिथ्याश्रद्धा (है और) आत्मा के मिथ्यात्व पोषण के ये सब कार्य हैं। आहा...हा...! यह तो गजब बात है।

मुमुक्षु : यह बात बहुत देर से की।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि पहले हमने यह सब कर दिया। आहा...हा...! क्या किया? कुछ नहीं किया। राग और द्वेष किया है। आहा...हा...! सुमनभाई पढ़कर आया हो वहाँ, आहा..! (हो जाता है।) क्या किया? राग किया है। आहा...हा...! लड़के कुछ कमाऊँ जगे, वहाँ अपने को ठीक लगता है, परन्तु बापू! परवस्तु मेरी है यह आया कहाँ से? कि जिससे तुझे ठीक लगा। हमारे लड़के आज्ञाकारी, हमारी आज्ञा को टालते नहीं... परन्तु तेरे थे कब? आहा...हा...! और यह एक लड़का ऐसा जगा कि हमारा कुल बोला, परन्तु लड़का था कब तेरा? आहा...हा...! भारी भ्रम!

यह यहाँ कहते हैं, **सुख-दुःख न कर,...** यह शरीरादि परवस्तु — शरीर, वाणी, मकान, ये मकान का उजाला और इसकी खिड़कियाँ दरवाजे, इसका फर्नीचर, नीचे मखमल बिछाये, ऊपर बिजली के साँचे-पंखे और... भाई! वह तो परद्रव्य के कार्य पर में होते हैं। उसे यह मेरा संचा / पंखा हिलाने से हिलता है, जिस पलंग पर सोता होऊँ, उस पर यह संचा रखो। पंखा... पंखा...! क्या है तुझे यह प्रभु? यह सुख-दुःख न कर — ऐसी कल्पना मानकर (सुख-दुःख न कर) आहा...हा...! बात मानो छोटी (लगती है) परन्तु है बड़ी। अपनी मानी तो बड़ा मिथ्यात्व है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

ज्ञाता बन जा।... आहा...हा... ! वह तू है, तेरा स्वरूप ही ज्ञानस्वरूप है। यह ज्ञान है, वह जिस प्रकार जिस तरह, जिस काल में जिस क्षेत्र में जो कार्य हो, उसका जाननेवाला है, बस ! इससे अधिक विशेष करने जायेगा, वहाँ व्यभिचार-मिथ्यात्व होगा। आहा...हा... ! होशियार ऐसे दुकान में बैठा हो, चलाये ऐसे... आहा...हा... ! माल लेने को हमारा (व्यक्ति) मुम्बई जाता न, वह रखा था। पालेज से मुम्बई की क्या कहलाता है वह ? मासिक पास। पास रखा था, क्योंकि महीने में बहुत बार जाना पड़े। तीसरे-चौथे दिन, तीसरे-चौथे दिन जाना पड़े, इसलिए महीने का पास (रखा था)। हम दुकान पर बैठे हो और वह माल लेकर आवे और हाथ में वह हो, छतरी ! मैं तो दुकान पर बैठा होऊँ, वह माल लेकर उतरे तो इस प्रकार चले, उसकी गति मानो, आहा...हा... ! मान... मान... मान... कहाँ मैं जाकर आया और कौन लेकर आया और कैसा माल लेकर आया ! डिब्बे के डिब्बे भरे हुए लेकर आये। आहा...हा... ! कौन लावे ? प्रभु ! वे जड़ के कार्य जड़ से होते हैं, उन्हें कौन लावे ? कौन दुकान में उन्हें रखे ? आहा...हा... ! और कौन दुकान में से उन्हें बेचे ? क्या है यह ? आहा...हा... ! एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में मिलावट कर डालना.... सर्वसंकर दोष आया था न ? सबेरे आया था, आहा...हा... ! निमित्त तो है न, निमित्त तो है न (ऐसा लोग कहते हैं) परन्तु निमित्त है अर्थात् क्या ? आहा...हा... !

ज्ञाता बन जा।... जो कुछ शरीर का, वाणी का, मकान का, स्त्री-पुत्र का, व्यापार का ***वेविसाल*** हो, लग्न हो, मण्डप बंधे... आहा...हा... ! बैण्ड बजे। क्या कहलाता है यह सब ? बैण्ड-बाजा ! आहा...हा... ! उसमें फिर यहाँ धर्म के नाम से पच्चीस-पच्चीस हजार लोग रथ में (रथयात्रा में हों), एक-एक हजार लोगों के बीच एक बैण्डबाजा और पच्चीस हजार (लोगों में दूर हों) वे दूसरे तो सुने नहीं। हजार लोगों में बैण्डबाजा, हजार लोगों में बैण्डबाजा। हमारे हुआ था न वहाँ, नहीं ? जयपुर ! ओ...हो...हो... ! कितने लोग ! चालीस हजार लोग तो ऐसे रथ के साथ (चलते थे)। इक्कीस तो हाथी... उन्हें कौन करे ? बापू ! तुझे पता नहीं, भाई ! उस काल में उस परद्रव्य की पर्यायरूपी कार्य होने का (है,) उसका ज्ञाता हो जा। जाननेवाला रह जा। कर्ता मानता है, उसे छोड़ दे तथा मुझसे मेरी उपस्थिति है, इसलिए यह काम व्यवस्थित चलता है (ऐसा) छोड़ दे... छोड़ दे...। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

भाई! बहुत समय से छूटा है परन्तु वहाँ लड़कों में पड़ जाना है, यह तो दृष्टान्त है, बाकी हर घर में यही चलता है न? आहा...हा...!

आहा...हा...! **देह के लिए अनन्त भव व्यतीत हुए;...** यह श्रीमद् का वाक्य है, उसमें से है। श्रीमद् में आता है न? देह के लिए — इसका करूँ... इसका करूँ... इसे रखूँ, आहा...हा...! सबेरे चाय, भाखड़ी, चाय और भुजिया, दोपहर में वापस दाल-भात-सब्जी और चूरमा, बाद में दो बजे फिर कुछ दूसरा, शाम को फिर कुछ दूसरा। आहा...हा...! क्या मुँह माँगता है? ऐसा पूछे वे घर के लोग (पूछते हैं) क्या आपको कुछ इच्छा है? आपको मुँह को ठीक क्या लगेगा? भुजिया, पूड़ियाँ...? अरे...रे...! ऐसा क्या है यह सब? मुँह किसका रुचे -ठीक पड़ेगा, इसे? और चीज किसकी कि इसे ठीक पड़ेगी? आहा...हा...! स्वयं भगवानस्वरूप विराजमान है। भगवान में ऐसा भ्रम, वह भगवान को हैरान करनेवाला है। परचीज हैरान करनेवाली नहीं है। आहा...हा...!

देह के लिए अनन्त भव व्यतीत हुए;... अर्थात् उसके लिए अनन्तभव रहे। **अब, सन्त कहते हैं...** श्रीमद् में आता है न! **अपने आत्मा के लिए यह जीवन अर्पण कर।** आहा..हा...! **आत्मा के लिए यह जीवन अर्पण कर।** मैं तो आत्मा हूँ, मैं हूँ परमात्मा — यह लड़के गाते हैं, भाषा नहीं, परिणमन होना चाहिए — ऐसा कहते हैं। पर्याय में परिणमन होना चाहिए। मेरा कार्य पर का नहीं, मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है — ऐसा ज्ञान-दर्शन का पर्याय में त्रिकाली स्वभाव का स्वभावरूप रहकर ज्ञान-दर्शन का परिणमन होना... आहा...हा...! अनजान व्यक्ति को ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? यह किसका कहते हैं? हमने इतने वर्ष बिताये, पचास वर्ष, चालीस वर्ष, परन्तु ऐसा तो कहीं सुनते नहीं थे। यह नया धर्म निकाला होगा? अरे... बापू! भाई तुझे पता नहीं है।

तूने परपदार्थ के लक्ष्य से अनन्त भव किये। अब, आत्मा के लक्ष्य से एक बार जीवन (अर्पण) कर। आहा...हा...! दुनिया की सब चीजें एक ओर रहीं, एक ओर तू जाननेवाला रह जा। आहा...हा...! **अपने आत्मा के लिए यह जीवन अर्पण कर।** आहा...हा...! दुनिया ऐसा कहती है, यह तो फालतू है, धन्धा करना नहीं आता, यह है। आहा...हा...! और हम धन्धा में पावरदार हैं, यह मूर्खता छोड़ दे। आहा...हा...! एक बार

आत्मा का (हित) करने के लिए आत्मा में (जीवन) दे दे। आहा...हा...! मुझे तो मेरा जानना-देखना आनन्द, वह मुझे तो करना है। आहा...हा...! यह पुस्तक तो बाहर आयी है, देखो न! पढ़ी है या नहीं? कान्तिभाई! पूरा? ठीक। आहा...हा...! संक्षिप्त भाषा में (बहुत गम्भीर) यह ५२ (बोल पूरा हुआ)।

निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। शरीर का रोग मिटना हो तो मिटे परन्तु उसके लिए प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहर का कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं॥ ५३॥

(५३) **निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।** आहा...हा...! राग से रहित प्रभु चैतन्यमूर्ति निवृत्ति (स्वरूप है) आहा...हा...! वह निवृत्तिमय जीवन किया है, उसे प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता (अर्थात्) राग की प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। आहा...हा...! लड़के की बहू के लिए पाँच हजार की साड़ी लाये हों... आहा...हा...! ***छेड़ामां*** भरा हुआ होता है न? पाँच-पाँच हजार के होते हैं न, दस-दस हजार के होते हैं। ***छेड़ा*** होते हैं न? ***छेड़ा*** यहाँ रखते हैं, लोग देखें इसलिए। दूसरी सब साड़ियाँ खाली (होती हैं), छेड़ा भरा हुआ हो न सब, हीरा... क्या कहलाता है वह? जरी... जरी...! जरी भरी होती है न, उसे ऐसा रखे, लोग देखें। मुझे तो दूसरा कहना है। उसे देखनेवाला दूसरा युवक हो, उसकी नजर दूसरी होती है कि यह... मेरी स्त्री है और उसे देखनेवाला ससुर ऐसा मानता है कि मैंने साड़ी दी है, वह बाहर पड़ती है और हमारे लड़के की बहू भी ऐसी साड़ी पहनती है वह बाहर पड़ती है। इसमें हमारी विशेषता है। अर...र..! यह क्या? प्रभु!

वह बहिन अभी मर नहीं गयी? प्रेमचन्दभाई का लड़का अभी महीने पहले विवाहित हुआ था, वैशाख शुक्ल अष्टमी, एक महीने में (मर गयी)। साड़ी बहुत कीमती होगी और वह तुम्हारा क्या कहलाता है? प्रायमस! प्रायमाल कर डाले। वह जला, फिर पकड़े रहे? समाप्त हो गयी। महीने का विवाह और पाप की होंश का पार नहीं होता। आहा...हा...! भोग की वासना तो मानो अन्दर गल-गलिया उठता हो। अरे..रे! उसमें वह जल गयी। आहा...हा...! पानी छिड़के नहीं, पानी छिड़के तो चमड़ी उखड़ जाये। वह

www.vitragvani.com

जले, वहाँ दो घड़ी में तो समाप्त हो जाये। तेल लाना या दवा लाना, लगाना उस समय कहाँ (मिले)? आहा...हा...!

अरे! अपने नहीं? घाटकोपर! एक लाख चालीस हजार का पाण्डाल, एक क्षण में जलकर राख! मशीन में कुछ हो गया, नजदीक था और हम देख रहे थे, दो बजे जला। आहा...हा...! बड़ी ज्वाला उठी, कपड़े जले इतने, कपड़े पर कपड़े। एक लाख चालीस हजार का बड़ा पाण्डाल! बीमा किया था लाख का, लाख आये होंगे। आहा...हा...! क्षण में तो (जल गया)। पाँच-पाँच हजार लोग, छह-छह हजार लोग व्याख्यान सुनते थे। उसमें देखो तो समाप्त! सब जलकर राख। नाशवान चीज में क्या होगा? बापू! आहा...हा...! उस समय वह जड़ की अवस्था होने के काल में होती है, उसे कौन रोके? और उसमें अकस्मात् हुआ है — ऐसा कौन माने? आहा...हा...!

निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। आहा...हा...! राग का प्रवर्तन होता है, वह भी नहीं सुहाता। भक्ति का भाव आवे, वाँचन, श्रवण हो... आहा...हा...! परन्तु अन्दर स्वरूप भगवान निवृत्तस्वरूप है, उसका जहाँ जीवन निवृत्तिमय हुआ... आहा...हा...! राग से भी भिन्न पड़कर निवृत्तिमय जीवन किया, उसे प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। आहा...हा...! बाहर की प्रवृत्ति — शरीर की, व्यापार की, पकाने की, वह तो कहीं रह गयी। आहा...हा...!

निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। शरीर का रोग मिटना हो तो मिटे... परन्तु उसे प्रवृत्ति के लिए यह दवा और इसका यह और उसका यह, उसमें रुकना नहीं सुहाता। आहा...हा...! **शरीर का रोग...** यहाँ क्या कहना चाहते हैं? कि निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्ति - राग — ऐसा करूँ और इसे ऐसा करूँ और इसे ऐसा करूँ। दवा ऐसी लावे और वैद्य ऐसा आवे और अमुक ऐसा आवे... आहा...हा...! ऐसा प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। **परन्तु उसके लिए प्रवृत्ति नहीं सुहाती।... मिटना हो तो मिटे परन्तु उसके लिए प्रवृत्ति नहीं सुहाती।** आहा...हा...! जिस समय में शरीर की जो रोग की क्रिया (होनेवाली हो वह होती है) आहा...हा...! आज भाई गये न? भावनगर गये। जयन्ती कामदार! बेचारे को श्वाँस बहुत चलती थी, भावनगर अस्पताल में (गये) आज

आये, श्वाँस बैठे नहीं, **उधरस** बैठे नहीं। बुखार मिटे नहीं और हरस... शरीर का हरस... क्या कहलाता है। हरस कहते थे बेचारे। आहा...हा...! भावनगर के अस्पताल में जाना चाहता हूँ। पहले रहे थे फिर आये थे, अभी उन्हें शरीर में जरा श्वाँस बैठती नहीं। आहा...हा...! और शरीर में बुखार तथा उघरस वह कफ निकलता नहीं और उन्हें खाँसी... खाँसी... खाँसी... और चौथा यह हरस, उसका दर्द। बापू! आहा...! वह जड़ की पर्याय का काल है, वह काल खाता है, प्रभु! उसे बदलने में मत लग, उसे मिटाने में प्रवृत्ति न कर। आहा...हा...! है न? **उसके लिए प्रवृत्ति नहीं सुहाती।** आहा...हा...! गलित कोढ़, सनतकुमार चक्रवर्ती पुण्यशाली प्राणी! आहा...हा...! जिनके शरीर को देखकर देव भी ऐसा कहते... आहा...हा...! क्या इनका सुन्दर रूप! एक-एक अवयव सुन्दर और विधि ने ऐसे बनाये हों, जहाँ-जहाँ चाहिये वहाँ (उस) प्रमाण (बनाये हुए हों) आहा...हा...! वे ऐसे बैठे, देव आकर देखे कि ओ...हो...! बहुत सुन्दर शरीर! बहुत! चक्रवर्ती को अभिमान आया (कहा), अभी मैं नहाया नहीं, अभी सबेरे उठकर पसीना और मैल है, अभी वस्त्र बदले नहीं। नहाकर वस्त्र पहनकर बैठूँ, तब देखने आना। आहा...हा...! अभी तो सोकर उठा हूँ। रात के पसीने के वस्त्र अलग होते हैं। राजा हो राजा, रात को सोने के (वस्त्र) अलग होते हैं, दिन के अलग होते हैं। आहा...हा...! उन्हीं वस्त्रों में बैठा हूँ, अभी कहीं शरीर नहाया नहीं। देव को कहा कि मैं नहाकर आऊँ और सभा में जब दीवानखाने में बैठूँ, (तब आना), बड़े देव जिनकी सेवा में वहाँ खड़े हों, तब देखने आना।

आये, बैठे, देवों ने देखा (और सिर धुन लिया तो चक्रवर्ती ने पूछा) क्या हुआ? ऐसा क्यों किया? (तब देव कहते हैं) शरीर बिगड़ गया है, कीड़े पड़ (गये हैं) थूको! थूक डालो, कीड़े पड़ गये हैं। आहा...हा...! जिन्हें देखकर देव प्रसन्न होते थे, उसका अभिमान आया कि यह नहीं परन्तु अभी तो नहाऊँगा, ऐसा करूँगा। महा मूल्यवान साबुन हो और उसमें कपड़े पहनकर दीवानखाने में बैठूँ! अरे... प्रभु! क्या है? बापू! देवों ने देखकर ऐसा किया। क्यों देव? (तब देव ने कहा) बिगड़ गया है, भाई! तुम्हारा शरीर बिगड़ गया है। पहले देखा था, उसकी अपेक्षा अभी शरीर बिगड़ गया है। हैं...! ऐसा जहाँ थूक डालता है... आहा...हा...! छोटी चींटियाँ! शरीर बिगड़ा। सात सौ वर्ष गलित कोढ़

www.vitragvani.com

रहा, चक्रवर्ती! आहा...हा..! जिसे पुण्य का पार नहीं होता, उसे सात सौ वर्ष तक गलित कोढ़ (रहा, तथापि अन्दर में) आनन्द... आनन्द है। जिसके पास ऐसी औषधि थी कि थूक लगाये तो कोढ़ मिट जाये परन्तु वह मिटे या न मिटे, वह तो उसकी पर्याय है। मैं तो एक जानने-देखनेवाला आनन्द का करनेवाला हूँ। आहा...हा...! ऐसा उसका जो कर्तव्य है, वह तू छोड़ना मत।

उसके लिए प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहर का कार्य उपाधि लगता है,.... आहा...हा...! बाहर के कार्य — यह करूँ और यह करूँ और... आहा...हा...! सबेरे से उठकर सब लड़के छोटे हों, उनमें दो-दो वर्ष में लड़के हुए हों, एक दो वर्ष का, एक चार वर्ष का, एक छह वर्ष का और एक आठ वर्ष का तथा दस वर्ष का — सात-आठ लड़के सोलह वर्ष में हुए हों, उन्हें सम्हालना... आहा...हा...! क्या है? प्रभु! इस निवृत्ति में प्रभु! तुझे प्रवृत्ति नहीं सुहाती — ऐसी यह है। इसके बिना तेरा उद्धार आयेगा नहीं।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अनुकूलता में नहीं समझता तो भाई! अब प्रतिकूलता में समझ तो! किसी प्रकार समझ... समझ, और वैराग्य लाकर आत्मा में जा॥ ५४॥

जेठ शुक्ल २, गुरुवार, दिनाङ्क २२-०६-१९७८
प्रवचन-१७ वचनामृत- ५४-५८

मुझे दो। ऐसी चीज मुझे पढ़ना है, दो। अनुकूलता में तो इसे पसन्द पड़े — ऐसी चीज है परन्तु प्रतिकूलता में पसन्द पड़े ऐसी चीज है। आहा...हा...! प्रतिकूलता में तो समझ, कहते हैं भाई! जीवानी झोला खाये जीर्ण होगी, रोग आयेगा, आहा...हा...! भाई अभी गये न कल? जयन्ती कामदार! ऐसा बोलता था कल। पैर स्पर्श करने आये थे। महाराज! कहीं श्वाँस बैठता नहीं! उधरत का पार नहीं, उधरत... उधरत... शरीर में बुखार उतरता नहीं, आहा...हा...! और कक्या कहते हैं? हरस... हरस की व्याधि साथ में। मैंने कहा — बापू! आहा...हा...! ....जयन्ती कामदार! ....बापू! अब आत्मा को तो समझने योग्य है। आहा...हा...! चारों ओर घेरा डाला — बुखार हरस, उधरस और श्वाँस बन्द! आहा...हा...! क्या करे साथ में। अरे! ऐसे समय में – प्रतिकूलता में घेराव में प्रभु अनुकूल पड़ा है, न अन्दर चैतन्य! आहा...हा...! यह तो पहला शब्द है — यदि तुझे कहीं न रुचे तो — यह पढ़कर.... प्रसन्न हो गया चिदाभानु! यह पुस्तक तो दो मैं अमेरिका ले जानेवाला हूँ। निहालभाई! बुद्धिवाला व्यक्ति है। पढ़ता है न! देखा? ठीक! ले जाओ! आहा...हा...! अभी तो लोगों के हाथ में जाएगी, कुछ पढ़ेंगे-विचारेंगे। भाई! यह क्या चीज है! सादी गुजराती.... सादी गुजराती! चार पुस्तकें (कक्षा) पढ़ा हुआ भी... प्रभु! तुझे अनुकूलता में इस ओर ढलना ठीक नहीं लगा, कारण कि वहाँ ललचा गया – खिंच गया। (अब) प्रतिकूलता के समय तो अब तो समझ! आहा...हा...! चारों ओर पाप ने घेरा डाला हो,

www.vitragvani.com

परन्तु प्रभु! तू उससे भिन्न है न अन्दर! ये सोलह रोग! सातवें नरक का नारकी उत्पन्न हो तो सोलह रोग! जन्म से सोलह रोग! ओ...हो...हो...! मिथ्यादृष्टिरूप से जन्मा सातवें नरक का नारकी! सोलह रोग! आहा...हा...! उसमें भी अन्दर पूर्व में सुना था, परन्तु प्रयोग में नहीं लाया था। आहा...हा...! ऐसे समय तू अन्दर जा! जहाँ अनुकूलता का आनन्द है। आहा...हा...! जहाँ ज्ञायकभाव अतीन्द्रिय आनन्द का ढेर पड़ा है। प्रतिकूलता के काल में वहाँ जा, वहाँ अनुकूलता है। भाषा सरल है, भाव... आहा...हा...! भाव कठिन है!

अन्दर वस्तु है, विद्यमान चीज है। भक्ति चीज है, मौजूदगी है। आहा...हा...! ध्रुवपने अन्दर पड़ी है। आहा...हा...! बदलती पर्याय से भी जहाँ भिन्न है। जहाँ बदलती पर्याय को वहाँ ले जा न! वहाँ अकेला आनन्द और ज्ञान है। समझ! और वैराग्य लाकर आत्मा में जा। इस ओर की दृष्टि करके और इस ओर वैराग्य करके, चाहे तो प्रतिकूलता के ढेर हो परन्तु परतरफ से उदासीन — पर की ओर के राग से विरक्त — वैराग्य लाकर, आहा...हा...! स्व में जा! स्व का माहात्म्य करके, पर से वैराग्य करके अन्दर में जा। ऐसी बात है। आत्मा में जा!

चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है॥ ५५॥

(वचनामृत) ५५। **चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती,...** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु (है)। उसकी रुचि करके... आहा...हा...! उसका पोसाण करके, उस ओर की भावना करे तो वह निष्फल नहीं जाती। आहा..हा...! और सफल होगी, प्रभु! आहा...हा...! तेरा प्रयत्न अन्दर में ले जा! तेरा जीवन सफल होगा। आ...हा...! **निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है।** वस्तु है, चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द का ध्रुव दल पड़ा है, उस ओर की भावना निष्फल नहीं जाएगी, सफल होगी। तुझे आत्मज्ञान होगा, आत्मदर्शन होगा, आत्म-आनन्द होगा। आहा...हा...! ऐसी बात है। **सफल ही होती है।**

भले ही थोड़ा समय लगे,... आहा...हा...! अन्दर में जाने के लिए थोड़ा समय लगे। भगवान ध्रुवधाम है, महाप्रभु विराजमान है, उसका अनुभव करने के लिए थोड़ी देर

www.vitragvani.com

लगे परन्तु देर लगे, उसके लिए देखना नहीं; तुझे उसका परिणाम आयेगा। आहा...हा...! लो, **समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है।** आहा...हा...! थोड़ा समय लगे। अन्तर प्रयत्न करते-करते; स्वभाव की पूर्णता की ओर जाने से भावना से थोड़ा समय कदाचित लगे परन्तु उस भाव को जिसने भावना में लिया है, वह मिलेगा। आहा...हा...! यहाँ पण्डिताई काम नहीं करती, आगमज्ञान भी काम नहीं करता। आहा...हा...! आगमज्ञान धारणा में लेकर किया हो, वह कोई काम नहीं करता। आहा...हा...!

इस चैतन्य की अन्तर की रुचि से जो एकाग्र करने का भाव है... आहा...हा...! उसमें चैतन्य ध्रुव में एकाग्र होने का भाव है, (वह) सफल होगा। आहा...! आगमज्ञान किया हो, वह भी यहाँ काम नहीं करता। आहा...हा...!

(एक) पत्र आया है। उस वकील ने यह लिखा है, जिसने लिखा उन लड़कियों का आभार मानता हूँ, जिसने — जिस ट्रस्ट ने प्रकाशित किया, उसका मैं आभार मानता हूँ, जिसने इसमें पैसा दिया, उनका मैं आभार मानता हूँ। आहा...हा...! ऐसा लिखा है, बड़ा वकील है। आत्मधर्म का ग्राहक है न, उसे पता नहीं कि ऐसी पुस्तक भेंट आयेगी। तुमने भेजा, वह हमें मिला है, मैं, मेरी पत्नी और मेरा परिवार यह सब पढ़ेंगे और कषाय की निर्जरा करेंगे — ऐसा लिखा है। आहा...हा...! कल पत्र पढ़ा था, पत्र पढ़ा था। आहा...हा...! कहो, कहाँ के कहाँ लोग... मध्यस्थ जीव हो तो (यह जँच जाता है)। बापू! तेरा मार्ग तो तुझमें से निकलेगा या पर से निकलेगा? आहा...हा...! जहाँ तू है, वहाँ जा तो मार्ग निकलेगा। राग और पुण्य में आत्मा कहाँ है तो उसमें से मार्ग निकले? आहा...हा...!

जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता, और एक वस्तु खो गई तो मानों स्वयं पूरा खो गया, रुक गया; रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है। अरे! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा! बाहर का बाहर ही रुक गया, तो भाई! वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी?॥ ५६॥

५६। **जीव स्वयं पूरा खो गया है...** आहा...हा...! इसकी नजरों में राग और पुण्य और अधिक तो वर्तमान पर्याय की प्रगटता, इसमें इसका प्रेम और यही मानो अस्तित्व,

www.vitragvani.com

बस! पूरा प्रभु अन्दर ध्रुव है, वह इसे खो गया है। आहा...हा...! वर्तमान एक समय की प्रगट / व्यक्त दशा के प्रेम में... आहा...हा...! और कोई दया, दान आदि राग की मन्दता के प्रेम में प्रभु पूरा खो गया है। आहा...हा...! जिसमें नजर पड़ी, वहाँ वह नहीं। इसलिए स्वयं नजर में से खो गया है। जिसमें-पर्याय, राग (में) नजर पड़ी है, वहाँ वह नहीं है। आहा...हा...! जहाँ है, वहाँ जा। वह खो गया है। अब दृष्टान्त देते हैं। **वह नहीं देखता,....** पूरी चीज खो गयी है। आहा...हा...!

एक वस्तु खो गई तो मानों स्वयं पूरा खो गया,... आहा...हा...! वस्तु पच्चीस-पचास सौ घर में हो और एकाध वस्तु कोई ले गया, ध्यान बाहर गया तो भी उसे ऐसा होता है कि अरे...रे..! कहाँ गयी होगी? किसने ली? आहा...हा...! उसकी शोध में उसी-उसी में रुक गया परन्तु यह पूरा आत्मा खो गया है, उसे नहीं देखता।

मुमुक्षु : आत्मा हूँ — ऐसा माना कब है?

पूज्य गुरुदेवश्री : माना नहीं परन्तु वस्तु अन्दर है। वैसे तो सुनकर माना है परन्तु जैसा है, वैसा जाना नहीं। वैसे तो आत्मा है (ऐसा मानता है)। एक नास्तिक के अतिरिक्त (सब मानते हैं)। यह आता है न? नास्तिक के अतिरिक्त कहते हैं शास्त्र से पढ़कर भी मानते हैं, ऐसा नहीं। उसके तल में जाकर यह है — ऐसा अनुभवे, माने, तब वह इसे हाथ आये। एक चीज खो जाये तो बारम्बार ढूँढ़ा करता है, कहाँ गयी? कहाँ गयी? कहाँ गयी? नामा लिखते हुए नामा में मिलान नहीं खाये, दो आने का अन्तर क्यों पड़ा यह? लड़का ले गया? या हमने कोई... ले गया। इसमें पैसा बढ़ गया या अधिक दिया? नौ हो गया, साढ़े नौ हो गया, दस हो गया। आहा...हा...! (लड़की) कहाँ गयी? वह गयी कहाँ? यहाँ क्यों नहीं आयी, वहाँ ढूँढ़ने की चटपटी लगती है। आहा...हा...! यह प्रभु अनादि से खो गया उसकी तुझे चटपटी नहीं। आहा...हा...! जो कुछ स्वयं करना है, वह हाथ में लिया नहीं और जो हाथ में लिया है — पर्याय को, उसमें वह आत्मा खो गया है। ऐसी बातें हैं। भाषा सादी है, भाव तो बहुत अच्छा है। आहा...हा...!

भाई! तू पूरा खो गया, कोई एकाध चीज खो जाये तो ढूँढ़ने के लिये रात और दिन मेहनत करता है। आहा...हा...! यह पूरा खो गया (इसके) लिए मेहनत एक क्षण नहीं। आहा...हा...! क्या तुझे कहाँ जाना है? क्या करना है?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

स्वयं पूरा खो गया, रुक गया;... वहाँ... आहा...हा... ! आहा...हा... ! एक गाँव में महिला को लड़कियाँ हुईं, उसकी सासु बोल गयी कि मेरे लड़के को यह बहू तो है परन्तु कोई लड़का नहीं होता। सब लड़कियाँ हुईं। मेरे लड़के का नया विवाह करूँगी — ऐसा बोली, उसमें उस बहू को ऐसी लग गयी। यह तो बना हुआ (प्रसंग) है। हमारे उमराला में बना है। लड़कियों को लेकर कुएँ में गिर गयी, एक के बाद एक लड़की कुएँ में डाली और स्वयं गिर गयी। आहा...हा... ! इतना शब्द सहन नहीं कर सकी। बहू ! तुम्हें लड़कियों के अतिरिक्त लड़का नहीं होता और मेरे लड़के को लड़का चाहिए। अब उसका दूसरा विवाह करूँगी। आहा...हा... ! उस महिला को कहा और लग गया। वह रात के दस बजे, बापू ! अंधेरा कुँआ... अंधेरा कुँआ कहलाता है। अन्धेरा — कुछ भाषा कहते हैं, अन्धेरा वह कुँआ गहरा, (वहाँ) लड़कियों को लेकर गयी, एक के बाद एक डाल दी, स्वयं गयी। क्या है यह ? आहा...हा... ! यह स्थिति, क्या है यह ? आहा...हा... ! इतना भी सहन नहीं कर सकी। प्रभु ! इस प्रतिकूलता के समय तो अन्दर जा न ! कुएँ में गिरकर मरना है, उसकी अपेक्षा (अन्दर जा न)। परन्तु आत्मा कौन है — यह कहाँ पड़ी है ? अन्दर आत्मा है, महा प्रभु है, सर्वोत्कृष्ट वस्तु है, उससे कोई उत्कृष्ट जगत में परमात्मा परमेश्वर भी पर्याय में... वस्तु उससे कोई बड़ी है नहीं। आहा...हा... !

रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है। पैसा कमाने में और पैसा रखने में, पैसे में और व्यापार चलाने में (रुक गया है)। आहा...हा... ! घर में खो गया। घर को रखने में रुक गया। ऐसी पुताई करना और ऐसी मिट्टी लगाना और ऐसी नालियाँ करना और ऐसा करना... आहा...हा... ! पूर्व-पश्चिम का दरवाजा रखना कि जिससे हवा और प्रकाश आवे, ऐसा अमुक करना। ओहो...हो... ! कहाँ रुका ? प्रभु तू ! **घर, शरीर...** शरीर में रुक गया। इसे कैसे रखूँ ? वह तो उसकी पर्यायरूप रहा है, तेरे रखने से रहता नहीं और तू प्रयत्न करे तो प्राप्त रहे, वह चीज है ही नहीं। आहा...हा... ! वहाँ रुक गया।

पुत्र... आहा...हा.. ! पुत्रादि पाँच-छह हुए। एक के बाद एक का विवाह करना, आहा...हा... ! उसमें फिर बहू कुछ दूसरी निकले और खराब निकले या मर जाये, उसमें फिर दूसरा विवाह करना। आहा...हा... ! कहाँ रुक गया परन्तु तू ? कहते हैं। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

लड़का न हो तो गोद लेकर भी उसे सम्भालने में रुकता है। आहा...हा...! तू कहाँ रुक गया? कहाँ जाना है? प्रभु! जहाँ हो, खो गया, उसका पता नहीं। आहा...हा...! **आदि...** (आदि अर्थात्) लड़कियाँ, महिलाएँ, नौकर, व्यापार-धन्धा इत्यादि **आदि में तू रुक गया है।**

अरे! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा! आहा...हा...! चौबीस घण्टे न आया हो तो उसका पिता भी (ऐसा कहता है) तू कहाँ चला गया? हमने यहाँ खाने के समय तेरी बहुत इन्तजार देखी। आहा...हा...! आहा...हा...! **अरे! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा!** आहा...हा...! चौबीस घण्टे में प्रभु अन्दर पड़ा है, उसकी तरफ तूने कभी सन्मुख देखा है? उसकी सत्ता की सम्हाल की है? उसके बिना इस जगत की चीजों की सम्हाल की। आहा...हा...! स्त्री हो तो यह खुशामद करे, आता है न? छोटा ***आभला***! घर को श्रृंगारित करे। आहा...हा...! किसका घर? बापू! तू कहाँ रुक गया? भाई! तेरे घर को छोड़कर पड़ोसी को आटा। घर का लड़का चक्की चाटे... कहते हैं न? इसी प्रकार तेरे घर में जाने के लिए प्रयत्न नहीं होता और यह सब पुण्य और पाप के फल, उसके संयोग की मिठास में... आहा...हा...! तू रुक गया। इज्जत मिले, कोई मुझे अच्छा कहे... आहा...हा...! व्रतादि पाले, लो न, उसे अच्छा कहे तो वहाँ रुक गया। आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, दूसरे महिमा करे तो वहाँ रुक गया। अरे... परन्तु तू कहाँ है? बापू! आहा...हा...! है?

सारे दिन कहाँ रुका रहा! बाहर का बाहर ही रुक गया,... आहा...हा...! अपने लिए कोई एक क्षण और घड़ी भी नहीं ली। आहा...हा...! **बाहर का बाहर ही रुक गया, तो भाई! वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी?** आहा...हा...! बाहर के प्रसंगों में व्यवस्थित करने में, सभी चीजों को वर्तमान में व्यवस्थित करने में रुक गया। व्यवस्थित प्रभु अन्दर ध्रुव पड़ा है। पूरे दिन कहीं रुककर अन्दर में नहीं गया। आहा...हा...! देखनेवाले को, प्रभु! देखने नहीं गया और देखनेवाला पर को देखने में रुक गया। आहा...हा...! यह बहियाँ, पृष्ठ और शास्त्र और पूरे दिन वहीं का वहीं वाँचन, और वहाँ रुक गया।

मुमुक्षु : ....लिखता है।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखे तो... सही न परन्तु वहाँ का वहीं रुक गया। श्रीमद् कहते हैं, जिसका अकेला शास्त्र का वाँचन बहुत, पूरे दिन ग्रन्थ पढ़ा ही करता है, उसकी मति मन्द हो जायेगी। मति अन्दर प्रयोजन की ओर नहीं जा सकेगी। वहीं का वहीं रुकेगा, यह और यह और यह... ये सब रुकने के साधन हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : यहाँ कहते हैं शास्त्र पढ़ और यहाँ वेदियो कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आवे, वाँचन आवे परन्तु वहीं का वहीं रुककर अन्दर में जाने के लिए कुछ प्रयत्न नहीं। यह क्या? आहा...हा...! ऐसा तो ग्यारह अंग नौ पूर्व का ज्ञान (करके) वहाँ रुक गया। अन्दर वस्तु है, वहाँ जाने को तुझे समय ही नहीं मिला। लोग ऐसा कहते हैं न कि तेरा इन्तजार करते थे, दिन अस्त होने आया, हमने तीन बजे तक तेरा इन्तजार किया परन्तु तू क्यों नहीं आया? यहाँ प्रभु कहते हैं, तू कहाँ रुक गया? अन्दर प्रभु पड़ा है। अन्तर्मुख देखने का समय तूने नहीं निकाला। आहा...हा...! रुक गया, वहाँ भाई! आत्मप्राप्ति कैसे होगी? आहा...हा...! यह ५६ (बोल पूरा) हुआ।

पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से स्वयं जिस तत्त्व को ग्रहण किया हो उसका मन्थन करना चाहिए। निवृत्ति काल में अपनी परिणति में रस आये ऐसी पुस्तकों का पठन करके अपनी लगन को जागृत रखना चाहिए। आत्मा के ध्येयपूर्वक, अपनी परिणति में रस आये ऐसे विचार-मन्थन करने पर अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है॥ ५७॥

अब यहाँ बहिन लिखती हैं (गुरुदेव के) मुख से सुना हो, स्वयं ने जो तत्त्व को पकड़ा हो, उसका मन्थन करना चाहिए। सुन-सुनकर वहीं का वहीं रखे (— ऐसा नहीं)। आहा...हा...! सुना अर्थात् क्या हुआ? ऐसा कहते हैं। सुना तो, अनन्त बार सुना है। समवसरण में भी अनन्त बार गया है, भगवान की वाणी भी अनन्त बार सुनी है। आहा...हा...! **तत्त्व को ग्रहण किया हो...** वास्तविक तत्त्व क्या है — ऐसा यदि ख्याल में आया हो तो **उसका मन्थन करना चाहिए।...** आहा...हा...! उसका बारम्बार मनन और मन्थन करना चाहिए। **निवृत्ति काल में अपनी परिणति में रस आये ऐसी**

www.vitragvani.com

पुस्तकों का पठन करके... निवृत्ति काल में अपनी परिणति में रस आये... आहा...हा...! अपनी वीतरागीदशा, जो वस्तु की निर्मलपरिणति, आहा...हा...! उसमें रस आवे — ऐसे पुस्तकों का पठन करके, फिर करना है, वह यह है, वहाँ जा न। **अपनी लगन को जागृत रखना चाहिए।** आहा...हा...! वाचन करके भी फिर करना तो यह है। आहा...हा...! इसे तो यह समय भी नहीं मिलता कि निवृत्ति में पठन (करे)। ऊपर से ऐसा का ऐसा धर्म हो जाता होगा... रात्रि में आहार नहीं किया, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, कुछ व्रत किये, बस! वहाँ रुक गया। अन्दर में **अपनी लगन को जागृत रखना चाहिए।**

शुद्ध चैतन्य ध्रुवस्वभाव को पकड़ा हो तो उसकी लगन को जागृत रखना। आहा...हा..! शुभाशुभभाव आवे, उनसे नजर उठा लेना चाहिए। आहा...हा...! और चैतन्य के स्वभाव के रस में ही अन्दर जाना चाहिए। चैतन्य का रस अर्थात् अन्दर एकाग्रता आहा..हा...!

परिणति में रस आये ऐसी पुस्तकों का पठन करके... वैसी पुस्तकों का, आहा...हा...! **अपनी लगन को जागृत रखना चाहिए।** स्वरूप की ओर की दृष्टि को ऐसी जागृत रखना चाहिए। आहा...हा...! भाषा बहुत सादी, भाव तो है वह है अन्दर... सादी गुजराती भाषा, आहा...हा...! **आत्मा के ध्येयपूर्वक,...** जिस वस्तु को पाना है, उसके ध्येयपूर्वक। आहा...हा...! **अपनी परिणति में रस आये...** स्वयं को शान्ति का रस आवे। आहा...हा..! **ऐसे विचार-मन्थन करने पर...** ऐसे विचार-मन्थन करने पर, ऐसा। आहा...हा...! पठन के समय भी (ऐसा रखे कि) धारणा कर लूँ और धारणा करके फिर कहूँगा, ऐसी मुझमें शक्ति रहेगी तो जवाब दूँगा, वह पठन कहीं स्व के लिये नहीं किया है। आहा...हा...! पठन होवे तो मैं अधिकार होऊँगा। संस्था का अधिकारी, संस्था के उसका अधिकार... आहा...हा...! मुझे पदवी मिलेगी। अरे! कहाँ रुका? प्रभु!

आत्मा के ध्येयपूर्वक, अपनी परिणति में रस आये — ऐसे विचार-मन्थन करने पर अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है। आहा...हा...! अन्तर से, अपना मार्ग अन्तर से (मिल जाता है)। स्वरूप की ओर का भलीभाँति ज्ञान करके, उसका मन्थन करके अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है। आहा...हा...! **दुविहं पि मोक्खहउं झाणे**

www.vitragvani.com

पाउणदि जं मुणी णियमा। द्रव्यसंग्रह का सैंतालीसवाँ श्लोक है। आहा...हा...! दो मोक्षमार्ग —निश्चय और व्यवहार। कठिन पड़ता है। मार्ग जो है, वह अन्तर की ओर के ध्यान में प्राप्त हो ऐसा है। अन्तर वस्तु जो पूर्ण है, उसके ध्येय का ध्यान करके... आहा...हा...! अन्तर से मार्ग मिल जाये — ऐसा है; बाह्य से किसी प्रकार मिले — ऐसा नहीं है। देव-शास्त्र-गुरु से या पुस्तक से मिले — ऐसा नहीं है। 'सर्व जीव है सिद्धसम, जो समझे वे होंय' एक, और 'सद्गुरु आज्ञा जिनदशा' यह तो निमित्तकारण (है) इसलिए यह कुछ नहीं कर सकता — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! सद्गुरु आज्ञा अर्थात् निमित्त, उसका अर्थ कि वह कुछ नहीं करता। आहा...! मुनिदशा वीतरागी केवलज्ञान, उसका लक्ष्य रखना, वह सब निमित्तकारण है। गुरु की आज्ञा, देव की दशा... आहा...हा...! वे निमित्तकारण हैं, अर्थात् वे निमित्तकारण तेरे कार्य के लिये... आहा...हा...! अकिंचित्कर है। यह सब बातें कठिन हैं। आहा...हा...!

तुझे सुख-दुःख की कल्पना होने में पाँच इन्द्रिय के विषय अकिंचित्कर है। प्रवचनसार में आता है। आहा...हा...! क्या कहा है? पाँच इन्द्रियों के विषय-स्पर्शन इन्द्रिय, सुन्दर रूप, स्पर्श, रस आदि सब अनुकूल हों वह कहीं तेरे सुख-दुःख के लिये तो अकिंचित्कर है, तू अपने अशुद्ध उपादान में कल्पना खड़ी करता है, उससे दुःख होता है, उससे सुख की कल्पना मानता है। पाँच इन्द्रियों के विषय अर्थात् निमित्त अकिंचित्कर है। आहा...हा...! इस प्रकार यहाँ देव-शास्त्र-गुरु, उनकी आज्ञा और अरहन्त की दशा-केवलज्ञानमय दशा, यह सब निमित्तकारण है अर्थात् तेरे कार्य के लिये अकिंचित्कर है। आहा...हा...!

अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है। आहा...हा...! क्योंकि मार्ग का आश्रय और आधार तो भगवान स्वयं है। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र — ऐसा जो मोक्षमार्ग है, वह पर्याय है परन्तु उसका आधार-आश्रय... व्यवहार से तो द्रव्य आश्रय है। निश्चय से तो मार्ग, मार्ग के आश्रय से है। आहा...हा...! परन्तु अन्तर्मुख (नजर) करे तो न! आहा...हा...! जब अन्तर्मुख ढले, तब अन्तर से मार्ग निकलता है न? आहा...हा...! **ऐसे विचार-मन्थन करने पर अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है।** बाहर सब निमित्त है परन्तु निमित्त है, वे तेरे कार्य के लिये तो अकिंचित्कर है। यह आया है न?

www.vitragvani.com

द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये अर्थात् मोक्षमार्ग के लिये अन्य द्रव्य की राह देखना नहीं पड़े। आहा...हा...! अन्य द्रव्य, तीर्थंकर की वाणी की राह भी देखना न पड़े। आहा...हा...! महाविदेहक्षेत्र मिले... हम समवसरण में जायें तो मार्ग मिले — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अर्थात् कि अभी ऐसा पुण्य करूँ, व्रत, तप, भक्ति (करे तो) उससे तुझे भगवान के पास जाने का होगा अर्थात् स्वर्ग में जायेगा और स्वर्ग में जायेगा, वह भगवान के पास जायेगा, जा सकेगा, वहाँ समकित पायेगा — ऐसा लेख में आया है। शान्तिसागर की पुस्तक है न? उसमें आया है। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि तेरी चीज जो अन्तर में है... उसके लिये देव-गुरु-निमित्तकारण अर्थात् अकिंचित्कर है। आहा...! निमित्त कुछ करता नहीं। (यदि करे) तो निमित्त नहीं कहलाये। आहा...हा...! विचार और मन्थन किसका? अपनी निर्मलपरिणति में रस आवे उसका। विकथा उत्पन्न हो... आहा...हा...! ऐसा पठन नहीं। आहा...हा...! **अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है।** आहा...हा...! अपना मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह अन्तर्मुख की दृष्टि से मिल सकता है। इस अन्तर के कारण से वह मिलता है; बाहर के कोई कारण वहाँ काम नहीं करते। अब इतना अधिक कब (समझे)? अकेला अन्दर शरण... शरण... शरण... आहा...हा...! शास्त्र का पठन भी वहाँ अकिंचित्कर है। देव-गुरु की भक्ति भी वहाँ अकिंचित्कर है। आहा...हा...! गुरु की भक्ति से मिल जायेगा... वह अकिंचित्कर है। आहा...हा...! अन्तर से मन्थन करने पर **अन्तर से अपना मार्ग मिल जाता है।** वस्तु को ध्येय में लेकर उसका मन्थन करने से, मनन करने से अन्तर में वस्तु मिल जाती है। मार्ग कहीं बाहर से नहीं आता। आहा...! ५७ (बोल पूरा) हुआ।

ज्ञानी को दृष्टि-अपेक्षा से चैतन्य एवं राग की अत्यन्त भिन्नता भासती है, यद्यपि वे ज्ञान में जानते हैं कि राग चैतन्य की पर्याय में होता है॥ ५८॥

धर्मी को **ज्ञानी को...** पहले धर्मी क्यों कहा? कि जानपना अधिक हो तो ज्ञानी कहलाये — ऐसा यहाँ नहीं है। ज्ञानी अर्थात् धर्मी। आहा...हा...! जिसे आत्मा के अनुभव का ज्ञान है, वह ज्ञानी। ज्ञानी अर्थात् बहुत पठन है, बहुत घोलन है, और बहुत पढ़ते आता

www.vitragvani.com

है, इसलिए ज्ञानी (ऐसा नहीं है)। इसलिए पहले धर्मी कहा है। आहा...हा... ! धर्मी ऐसा जो प्रभु, उसका जो निर्विकल्पस्वभाव — ऐसा जो धर्म, उसके आश्रय से होनेवाली दशा, वह धर्म है, वह धर्मी है। आहा... !

धर्मी ऐसा जो आत्मा, उससे जिसे धर्मी होना है; धर्मी ऐसा आत्मा, धर्म ऐसे जो उसके गुण... आहा...हा... ! उसमें से जिसे धर्म करना है, वह द्रव्य और गुण के आश्रय से पर्याय में धर्म होता है, वह धर्मी है। आहा...हा... ! यह आता है न ? निरालम्बी। कुछ.. कुछ... कुछ साधन चाहिए (ऐसा कहते हैं)। यह साधन नहीं ? आहा...हा... ! क्यों ? कि आत्मा में करण नाम का गुण तो अनादि से पड़ा है, साधन नाम का गुण। आहा...हा... ! ऐसे गुणी को दृष्टि में लेने से, उस गुणी को दृष्टि में (लेने पर) कि जिसमें साधन नाम का गुण पड़ा है, करण नाम का गुण पड़ा है, है न ? किसमें ? कर्ता, कर्म, करण... छह कारक हैं। आहा...हा... ! जहाँ साधन नाम का गुण है, उसका धारक गुणी है, उसकी दृष्टि करे तो वह साधन प्रगट होगा। राग के कारण निमित्त के कारण, साधन (हो), वह साधन है ही नहीं — ऐसी बात है। बहुत व्रत पाले, भक्ति करे, तपस्यायें करे, नग्नपना लाखों वर्षों तक रखे तो उसे अन्तर में निश्चय की भावना हो तो उससे पाता है — यह बात मिथ्या है। आहा...हा... ! वह कारण नहीं है। आहा...हा... ! कठिन बातें। इसे कुछ आधार चाहिए है।

श्रीमद् में ऐसा आया न ? 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोय' वह साधन क्या ? निश्चय लक्ष्य में रखना, वही साधन है। दृष्टि में निश्चय... आहा...हा... ! द्रव्य जैसा है, वैसा स्वीकार ज्ञान में होना, वह साधन है। निश्चयदृष्टि में रखकर साधन क्या करना ? भक्ति और पूजा वह साधन ? उसमें से निकालते हैं। आहा...हा... ! कठिन बातें प्रभु !

ज्ञानी को दृष्टि-अपेक्षा से... भगवान आत्मा पूर्णस्वरूप है, उसकी दृष्टि होने पर, दृष्टि की अपेक्षा से **चैतन्य एवं राग की अत्यन्त भिन्नता भासती है,...** चैतन्य और राग.... दृष्टि की अपेक्षा से कहा है, तथापि उसका स्पष्टीकरण अब होगा। क्योंकि दो भिन्न जानना है, वह दृष्टि का विषय नहीं है। **ज्ञानी को दृष्टि-अपेक्षा से चैतन्य एवं राग की अत्यन्त भिन्नता भासती है,...** भगवान आनन्दस्वरूप और राग आकुलतास्वरूप — ऐसा धर्मी को भिन्न भासित होता है। आहा..हा... ! दृष्टि की अपेक्षा से अर्थात् ? त्रिकाल

www.vitragvani.com

स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा करने से जो ज्ञान हुआ है (उस अपेक्षा से)। समझ में आया?

त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करने से उस दृष्टि के साथ जो ज्ञान होता है, वह चैतन्य और राग को भिन्न जानता है। समझ में आया? दृष्टि की अपेक्षा से क्यों कहा? जहाँ दृष्टि हुई है, वहाँ सम्यग्ज्ञान होता है। जहाँ तत्त्व की दृष्टि नहीं, उसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता। इस कारण दृष्टि की अपेक्षा से धर्मी को चैतन्य और राग की अत्यन्त भिन्नता... अत्यन्त भिन्नता (भासित होती है) कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आहा...हा...! अत्यन्त भिन्नता! आहा...हा...! राग के प्रदेशों का अंश भी भिन्न है। चैतन्य के प्रदेश और राग के प्रदेश... आहा...हा...! अत्यन्त भिन्न है। (समयसार में) संवर अधिकार में नहीं आया? व्यवहारसाधन जो है, वह एक वस्तु है, उसके प्रदेश भिन्न हैं। आहा...हा...! यहाँ तो भाव भिन्न भासित होने पर उसका क्षेत्र भी भिन्न भासित होता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। संवर अधिकार में आया है। दया, दान, देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता, यह सब राग है। आहा...हा...! इस राग के प्रदेश / भाव भिन्न तो है, यह चैतन्यस्वरूप आनन्द और रागस्वरूप आकुलता — इस प्रकार भाव भिन्न तो है, ऐसे ज्ञान दोनों की भिन्नता को जानता है, दृष्टि की अपेक्षा हुई है उसे। जिसे दृष्टि हुई नहीं, उसे तो ज्ञान, चैतन्य और राग की भिन्नता जाने — ऐसी ताकत नहीं है। आहा...हा...! यह ऐसा है।

यद्यपि... अब स्पष्टीकरण करते हैं। **वे ज्ञान में जानते हैं...** जानते तो ज्ञान में हैं। दृष्टि में तो ध्येय द्रव्य ध्रुव ही है। दृष्टि में ध्येय तो ध्रुव ही है, द्रव्य है परन्तु दृष्टि हुई है, उसके साथ जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान, चैतन्य और राग को भिन्न जानता है क्योंकि चैतन्य का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है। दृष्टि का स्वभाव निर्विकल्प है, अकेला अत्यन्त द्रव्य को ही ध्येय में लिया है, उस द्रव्य को ध्येय में लिया है — ऐसा वह ज्ञान, ज्ञान करता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

दृष्टि है, वह स्वयं नहीं जानती कि मैं द्रव्य को ध्येय करूँ, क्योंकि वह तो स्वयं को नहीं जानती तो फिर ध्येय है — ऐसा जानना वहाँ कहाँ रहा? परन्तु दृष्टि का विषय ध्रुव हो जाता है क्योंकि दृष्टि बाह्य से हटकर जहाँ अन्दर जाती है, वहाँ ऐसा विषय-ध्येय है, ऐसा हो जाता है। ऐसा कौन जानता है? ज्ञान। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा मार्ग

www.vitragvani.com

है। सूक्ष्म पड़े परन्तु क्या हो? भाई! अभी तो पूरी प्रथा बदल डाली है — लोगों ने वीतरागमार्ग की जो शैली है, उसे बदल डाली है, इसलिए यह कठिन पड़ता है। सुनना ठीक मिलता हो, तब तो उसे समझने में जरा सरलता पड़े, यह तो फेरफार... फेरफार.. आहा...हा...!

यद्यपि वे ज्ञान में जानते हैं... आहा...हा...! **कि राग चैतन्य की पर्याय में होता है।** देखा? राग कहीं जड़ में होता है और जड़ का राग है — ऐसा नहीं है। जड़ का अर्थात् पर का। है तो राग स्वयं जड़ और भगवान आत्मा चैतन्य; यह दो लिये न? यह चैतन्यस्वरूप है और राग है, वह चैतन्य के स्वरूप के अभावस्वरूप जड़ है परन्तु वह चैतन्य की पर्याय जो ज्ञान की दशा, वह चैतन्य और राग को भिन्न जानती है। दृष्टि की अपेक्षा में जो ज्ञान हुआ, दृष्टि तो ध्रुव एक ही बात है, दृष्टि का विषय राग को जानना (— ऐसा है नहीं) आहा...हा...!

यद्यपि वे ज्ञान में जानते हैं कि राग चैतन्य की पर्याय में होता है। देखा? मेरी पर्याय में राग है, भले ही उसे पुद्‍गल कहा हो, अचेतन कहा हो, जड़ कहा हो, अजीव कहा हो; वह तो उसके स्वभाव की अपेक्षा से; स्वभाव उसरूप नहीं — इस अपेक्षा से (कहा है) परन्तु होता है इसकी पर्याय में ऐसा ज्ञान भलीभाँति जानता है। मेरी पर्याय में राग होता है — ऐसा भलीभाँति जानता है।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जिस जीव का ज्ञान अपने स्थूल परिणामों को पकड़ने में काम न करे वह जीव अपने सूक्ष्म परिणामों को कहाँ से पकड़ेगा? और सूक्ष्म परिणामों को न पकड़े तो स्वभाव कैसे पकड़ में आएगा? ज्ञान को सूक्ष्म-तीक्ष्ण करके स्वभाव को पकड़े तो भेदविज्ञान हो॥ ५९॥

जेठ कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनाङ्क २३-०६-१९७८
प्रवचन-१८ वचनामृत- ५९-६१

वचनामृत ५९, ५९ है न? ५८ हो गया। **जिस जीव का ज्ञान अपने स्थूल परिणामों को पकड़ने में काम न करे...** क्या कहते हैं? जो शुभ और अशुभपरिणाम हैं, वे स्थूल हैं। उन्हें जो अभी पकड़ने में न आवे, इसे ख्याल में न आवे, वह सूक्ष्म परिणाम को तो कैसे पकड़ेगा? धीरज की बातें हैं यह। **जिस जीव का (ज्ञान) अपने स्थूल परिणामों को...** पर की तो बात ही छोड़ दी, वरना शरीर की पर्याय प्रतिक्षण होती है, वह जड़ का परिणाम है, उसे भी अपना माने और भिन्न करना न आवे, वह तो बहुत स्थूलबुद्धि है। आहा...हा...!

अपने जो कुछ शुभ-अशुभभाव होता है, वह स्थूल है। उन **स्थूल परिणामों को पकड़ने में अपना ज्ञान काम न करे वह जीव अपने सूक्ष्म परिणामों को कहाँ से पकड़ेगा ?...** सूक्ष्म अर्थात् ज्ञान के परिणाम। शुभाशुभभाव स्थूल परिणाम हैं, उन्हें भी अभी पकड़ना न आवे, उसे ज्ञान की वर्तमान पर्याय सूक्ष्म है, उसे वह पकड़ नहीं सकेगा। आहा...हा...! सार है। यह तो बहुत धीरे से धीरज से पकड़े, समझे उसकी बात है भाई! आ...हा...! **स्थूल परिणामों को पकड़ने में अपना ज्ञान...** अपना ज्ञान काम न करे तो वह सूक्ष्म परिणाम को नहीं पकड़ सकता। वह **सूक्ष्म परिणामों को कहाँ से पकड़ेगा ?...**

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! अर्थात् ज्ञान के परिणाम, जो पर्याय सूक्ष्म है, उसे कहाँ से पकड़ेगा? आहा...हा... ! वर्तमान जो परिणाम, आत्मा के गुण के जो परिणाम... स्थूल परिणाम तो शुभ-अशुभ में गये, अब जो अनन्त गुण का परिणमन — सूक्ष्म पर्याय है, उसे पकड़े नहीं, वह परिणाम कहाँ से पकड़ेगा?

और सूक्ष्म परिणामों को न पकड़े तो स्वभाव कैसे पकड़ में आएगा? आहा...हा... ! तीन बातें ली हैं — एक-शुभाशुभभाव, वह स्थूल। यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हैं, वे तो स्थूल परिणाम हैं। (समयसार के) पुण्य-पाप अधिकार में है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, अशुभभाव स्थूल है, उस स्थूल को जानना न आवे, पकड़ना न आवे, वह उसकी वर्तमान पुण्य-पाप के रागरहित पर्याय को कैसे पकड़ सकेगा? आहा...हा... ! जिसे यह सूक्ष्म परिणाम पकड़ना नहीं आता, उसे पूरा तत्त्व-स्वभाव शुद्ध है, (वह कहाँ से पकड़ में आयेगा?) वह तो प्रगट है — सूक्ष्म परिणाम तो प्रगट है। ऐसे परिणाम को भी अन्दर में पकड़ना न आवे तो उसे सम्यग्दर्शन का विषय जो त्रिकाली सूक्ष्म, अखण्ड सूक्ष्म में सूक्ष्म... ओहो...हो... ! और वह भी अव्यक्त है, पर्याय में वह नहीं आता। आहा...हा... ! ऐसा जो सूक्ष्म स्वभाव... परिणाम सूक्ष्म को न पकड़े, वह सूक्ष्म त्रिकाली स्वभाव को कैसे पकड़ सकेगा? बहुत मुद्दे की बात है। आहा...हा... !

तो स्वभाव कैसे पकड़ में आएगा? चैतन्य का स्वभाव अरूपी है। वह स्थूल शुभ-अशुभ परिणाम (भी) है तो अरूपी परन्तु स्थूल है और इसकी पर्याय का परिणाम है, वह सूक्ष्म है, उस पर्याय का भी ज्ञान करना न आवे, वह त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, जो पर्याय के समीप में है, वह तत्त्व अनन्त काल में अनजान रह गया, उसे कैसे पकड़े? समझ में आया? शरीर आदि जड़ हैं, उनकी तो जो पर्याय होती है, वह तो पर-परिणाम है, उसे भी जो अपना परिणाम मानता है, वह तो बहु स्थूल मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! अब यहाँ शुभ-अशुभ स्थूल परिणाम है, उन्हें भी जानना न आवे और जानकर अपना माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। अब एक समय के जो परिणाम, जो राग को जाननेवाली वर्तमान प्रगट पर्याय है, उसे पकड़ना न आवे... आहा...हा... ! तो उसकी पर्यायबुद्धि का भी ठिकाना नहीं होता। आहा...हा... ! भाषा सादी है परन्तु गम्भीर है।

www.vitragvani.com

यह तो प्रतिष्ठित हो, और इसे पढ़े तो ऐसा हो जाता है कि बात कुछ दूसरी है। आहा...हा... ! कहा न उसने चित्रभानु ने (मन्दिरमार्गी साधु ने) हाथ में पुस्तक आयी तो (बोला) ओ...हो... ! यह क्या ? भाई ! मुझे दो न। ले जाओ, जाओ, ले जाओ, हम दूसरा ले लेंगे। लो, वह साधु था, फिर विवाह किया, स्त्री की, वहाँ भाषण करता है, वहाँ संस्था में बड़ा अध्यक्ष है, मन्दिरमार्गी साधु था। अमेरिका में उसने विवाह किया है, यहाँ बीस-पच्चीस... उसके भक्त लेकर आया था, उसने यह देखा और जहाँ यह पढ़ा। ओ...हो... ! बहुत प्रसन्न हुआ।

यहाँ तो तीन सूक्ष्म कहे। हैं तो शुभ-अशुभ वह सूक्ष्म, क्योंकि वह अरूपी है, उसमें कहीं रजकण नहीं हैं। क्या कहा ? हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, यह परिणाम कहीं रूपी नहीं हैं, इनमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है परन्तु निमित्त जो रूपी है, उसके संग से हुए; इस कारण इन्हें रूपी कहा गया है और इन्हें अजीव कहा गया है। आहा...हा... ! यह व्रत के, तप के, भक्ति के भाव जो शुभ हैं, वे स्थूल हैं और अजीव हैं। आहा...हा... ! क्योंकि अपने परिणाम जो हैं, जिनमें चैतन्यस्वरूपी स्वभाव, चैतन्यस्वभाव का जिनमें अभाव है, उन्हें भी पकड़ना नहीं आता, क्योंकि वह तो अनादि का किया हुआ है और अनादि का अभ्यास है। आहा...हा... ! तो इसके वर्तमान ज्ञान की पर्याय के परिणाम-पर्याय वह कैसे पकड़ सकेगा ? और जब उस सूक्ष्म प्रगट परिणाम को नहीं पकड़ सकता तो जो अप्रगट पूरा तत्त्व ज्ञायकस्वरूप परमात्मा स्वयं प्रभु है, उसे वह कैसे पकड़ सकेगा ? कहो देवीलालजी ! माल है यहाँ तो, भाई ! आहा...हा... ! यह करना और यह करना और... आहा...हा... !

यह विकल्प शुभ हो परन्तु किसे करता हूँ और करने योग्य है (— ऐसा जो मानता है), वहाँ तो आत्मा की मृत्यु है, क्योंकि जो ज्ञानस्वभाव है, उसका जाननेवाला, जानना स्वरूप है, ऐसे जानन स्वभाव को राग का और क्षणिक का और विकृत का, स्थूल परिणाम का कर्तृत्व सौंपना... आहा...हा... ! वह आत्मा की हिंसा है। आहा...हा... ! क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह तो जानने-देखनेवाला है — ऐसा इसने नहीं माना और इसने इस राग का कर्तृत्व स्वीकार किया, यह ज्ञाता-दृष्टा इसका त्रिकाली स्वभाव, उसका जिसने नकार किया, उसने अपनी हिंसा की है। यह बात कैसे जँचे ? कन्नूभाई ! ये सब ऐसी बातें हैं। तुम्हारे जज के नियम की अपेक्षा ये सब नियम अलग हैं। आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जिसे अपने परिणाम... ऐसा कहना है न ? पर का तो एक ओर रख — शरीर, वाणी, कर्म, जड़। अपने में होनेवाले शुभाशुभभाव को भी जानने में और पकड़ने में जो ज्ञान काम नहीं करता, वह ज्ञान, ज्ञान के परिणाम को पकड़ने में काम कैसे करेगा ? आहा...हा... ! और जो ज्ञान के परिणाम, इसके अपने परिणाम को पकड़ने में काम नहीं कर सके, वह अपने से पर भिन्न महा भगवान पूर्ण है, उसे कैसे पकड़ सकता है ? ठीक है देवीलालजी ? आहा...हा... !

तो स्वभाव कैसे पकड़ में आएगा ? आहा...हा... ! एक तो बड़ा पढ़ा हुआ — ग्यारह अंग का पढ़ा हुआ हो तो भी एक बार चोट खा जाये ऐसा है कि आ...हा... ! क्या है यह ? थोड़े शब्दों में क्या कहते हैं यह ? आहा...हा... ! जिसे प्रगट पर्याय है, जिसमें अनादि से रमा है, उसमें इसका तत्त्व पूरा टिका है (ऐसा) मानकर (रमा है), उसके परिणाम का भी जिसे पता नहीं, ज्ञान उन्हें पकड़ नहीं सकता — ऐसे परिणाम को, अपने सूक्ष्म परिणाम को ज्ञान पकड़ नहीं सकता, वह ज्ञान त्रिकाली स्वभाव को कैसे पकड़ सकेगा ? आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं।

इसलिए **ज्ञान को सूक्ष्म-तीक्ष्ण करके...** आहा...हा... ! वर्तमान ज्ञान की पर्याय को... आहा...हा... ! सूक्ष्म और तीक्ष्ण — बारीक... आहा...हा... ! करके **स्वभाव को पकड़े...** त्रिकाली प्रभु अस्ति चीज प्रभु स्वयं है। आहा... ! ऐसा प्रभुत्व स्वभाव को सूक्ष्म, तीक्ष्ण ज्ञान द्वारा **स्वभाव को पकड़े तो भेदविज्ञान हो।** आहा...हा... ! राग से तो भेदज्ञान हो परन्तु पर्याय सूक्ष्म होकर उसे पकड़े तो ज्ञान से, पर्याय से भी द्रव्य का भेदज्ञान हो। आहा...हा... ! समझ में आया इसमें कुछ ?

प्रश्न : ज्ञान को पहले सूक्ष्म कैसे करना ? यह पहले बताईये।

समाधान : अन्दर सूक्ष्म (करना)। अन्दर अन्दर में सूक्ष्मता, अन्दर जो स्थूल है, उसे सूक्ष्म करना, उपयोग बहुत सूक्ष्म करना। करना है यहाँ तो उसकी बात है न ? आहा...हा... ! पर के उपयोग में जो जुड़ गया है, वह तो स्थूल में जुड़ गया है। यहाँ तो उससे मन्द करके, धीर, सूक्ष्म, ज्ञान को बारीक करके, करना है, वह कैसे करना ? यह प्रश्न (कहाँ है) ? करना है। आहा...हा... ! अब ऐसी बात ! अन्तर में त्रिकाली स्वभाव पकड़ में आये — ऐसे परिणाम करना। ऐसे करना कैसे — ऐसा करना। आहा...हा... ! थोड़े शब्दों में बहुत गम्भीर भरा है।

www.vitragvani.com

ज्ञान को सूक्ष्म-तीक्ष्ण करके... परिणाम, हों! ज्ञान की पर्याय को, जो स्थूल है, उसे सूक्ष्म — धीर करके **स्वभाव को पकड़े तो भेदविज्ञान हो।** तो सम्यग्दर्शन हो। यह सम्यग्दर्शन की विधि! आहा...हा...! मूल चीज की यह विधि है। अब इसका तो कुछ पता नहीं पड़ता और व्रत ले लो, तपस्या करो, भक्ति करो, हो गया कल्याण! आहा...हा...! तू कहता है, ये सब स्थूल परिणाम हैं, ये भी स्थूल हैं — ऐसे भी जिस ज्ञान को जानने की ताकत नहीं। ज्ञान पर्याय तो स्वयं की है। आहा...हा...! उस ज्ञान की पर्याय को ज्ञान सूक्ष्म किस प्रकार जाने? वह ज्ञान का परिणाम, वह ज्ञान की पर्याय उस ज्ञान के सूक्ष्म परिणाम को वह ज्ञान किस प्रकार जाने? और ज्ञान के सूक्ष्म परिणाम को भी जब न जाने, जो व्यक्त है, उसमें कार्य हो रहा है, प्रगट है - ऐसे सूक्ष्म परिणाम को भी पकड़ने की शक्ति न हो, वह अन्दर सूक्ष्म त्रिकाली प्रभु... आहा...हा...! चैतन्य परमात्मस्वरूप भगवान स्वयं... आहा...हा...! जो एक समय की पर्याय में भी नहीं आता, (उसे कहाँ से पकड़ेगा)? जो एक समय की पर्याय में नहीं आता, एक समय की पर्याय को जो स्पर्श नहीं करता और स्वभाव का ध्रुवपना कायम रखता है, वह सूक्ष्म परिणाम ऐसा कर... आहा...हा...! अर्थात् बहिर्मुख में से हटकर अन्तर्मुख जाने के जो परिणाम, वे सूक्ष्म और तीक्ष्ण करके पकड़े तो वास्तव में राग से तो भिन्न होता है, परन्तु पर्याय जिसे जानती है, उस पर्याय से भी वस्तु भिन्न है — ऐसा भेदज्ञान हो, भोगीरामजी! ऐसा राम है।

क्या करे? अभी प्रभु के मार्ग का बहुत वैसा कर डाला है - सबने मिलकर कुचल डाला है, जैसे वह गोदड़ा होता है न गोदड़ा? रजाई... रजाई। आहा...हा...! वह गुड़ के रस के पास रजाई पड़ी हो, गुड़ का रवा... गुड़ का रवा होता है न? बड़े-बड़ चार-चार मण के हो उसमें से पिघले, गुड़ पिघले, तो रजाई या गोदड़ा सब मीठे हो जाएँ; उसे कुत्ता आवे तो स्वाद लेने के लिये पूरी रजाई को फाड़ डालें। आहा...हा...! इसी प्रकार यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अखण्ड अभेद में विश्राम लेने जैसा है - उसमें रहने जैसी चीज है, उसे इस पर्यायबुद्धिवाले, रागबुद्धिवाले ने नोंच डाला है, उसे कुचल डाला है। आहा...हा...! कठिन बात बापू! यह तो सत्य के उद्घाटन के लिये है। किसी व्यक्ति के अनादर के लिये यह नहीं है। प्रभु! वह आत्मा भगवान है, भाई! आहा...! किसी व्यक्ति का अनादर (करने के लिये या) उसकी निन्दा करने के लिये यह बात नहीं है, प्रभु! यह

www.vitragvani.com

तो सत्य कैसा होता है और सत्य कैसे पकड़ में आये? यह तो सत्य के उद्घाटन का समय है। है? आहा...हा...! अरे! मनुष्यपना अनन्त काल में मिला, उसमें इस प्रकार सूक्ष्म परिणाम से त्रिकाली सूक्ष्म (स्वभाव) अनुभव में न आवे तो करने का तो यह था। आहा...हा...!

मुमुक्षु : त्रिकाली को सूक्ष्मरूप से पकड़े किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान के परिणाम सूक्ष्म है। इस राग जैसे ये परिणाम नहीं हैं। राग जैसे ये जानने के परिणाम नहीं हैं। इस कारण इसे परिणाम में जरा लक्ष्य जाये तो उसकी सूक्ष्मता हो। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तब इसे पकड़े। यह परिणाम है, उसका जाननेवाला यह है अथवा इसका जाननेवाला इस प्रकार है। आहा...हा...! ऐसा अटपटा है। यह ५९ (बोल पूरा) हुआ। ५९ हुआ न! आहा...हा...!

अनादि काल से अज्ञानी जीव संसार में भटकते-भटकते, सुख की लालसा में विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दुःखों को सहता रहा है। कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शङ्का रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवाले की उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करने से वंचित रहा, कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़े से पुरुषार्थ के लिए वहाँ से अटका और गिरा। इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। पुण्योदय से यह देह प्राप्त हुआ, यह दशा प्राप्त हुई, ऐसे सत्पुरुष का योग मिला; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भव में करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे॥ ६०॥

अब, ६० — **अनादि काल से अज्ञानी जीव संसार में भटकते-भटकते,...** गति-गति की, जन्म-मरण की गति में लाईन में... आहा...हा...! परिभ्रमण करते-करते

www.vitragvani.com

एकेन्द्रिय के, दोइन्द्रिय के, त्रिइन्द्रिय के, चतुरिन्द्रिय के, पंचेन्द्रिय के मनुष्य के, नारकी के, चींटी के, कौवे के, पशु के ऐसे अवतार अनादि से किये हैं। **भटकते-भटकते, सुख की लालसा में...** आत्मा में सुख है, उसका पता नहीं; मेरा प्रभु ही सुखरूप है, मेरे सुख के लिये किसी परपदार्थ की अपेक्षा नहीं है — ऐसा जिसे पता नहीं है, वह **सुख की लालसा में विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते,...** आ...हा...! सुन्दर रूप, प्रशंसा की भाषा... आहा...हा...! पैसा प्राप्त करने में, अनुकूल स्त्री प्राप्त करने में, लड़के ठीक जगह हों, उसमें दौड़ते-दौड़ते स्वयं उनमें से सुख मिलेगा, इस प्रकार विषयों की लालसा में अनादि से दौड़ता फिर रहा है। आनन्द का सागर तो स्वयं है, वहाँ तो जाता नहीं, वहाँ देखने को निवृत्ति-फुरसत लेता नहीं, आहा...हा...!

सुख की लालसा... सुख की भावना, इच्छा। **विषयों के पीछे...** निन्दा-प्रशंसा के शब्द, रूप-कुरूप-सुरूप, ऐसे रस अनुकूल-प्रतिकूल, स्पर्श अनुकूल-प्रतिकूल, आहा...हा...! इन विषयों के पीछे... आहा...हा...! **दौड़ते-दौड़ते...** आहा...हा...! वहाँ गति कर रहा है। परन्तु जहाँ भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप अन्दर है, वहाँ गति करने की सूझ नहीं पड़ती है। आहा...हा...! भगवान को नजर से-आँखों से देखना, वह भी विषय है, इन्द्रिय का विषय है। भगवान की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है और इन्द्रिय है। भगवान स्वयं साक्षात् तीन लोक का नाथ हो परन्तु वह भी इन्द्रिय का विषय और इन्द्रिय है। आहा...हा...! इन पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुख के लिये, धर्म के लिये... धर्म के लिये अर्थात् सुख के लिये आहा...हा...! **विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दुःखों को सहता रहा है।** अनादि काल से इसका एक भी पल अनन्त दुःखों को सहन किये बिना नहीं गया है। आहा...हा...!

अरबोंपति हो या जैन का पंच महाव्रत पालनेवाला साधु हो... आहा...हा...! उसे वास्तव में पर की लालसा है। आहा...हा...! उसके पीछे दौड़ते-दौड़ते, आहा...हा...! भगवान के पीछे दौड़ते-दौड़ते, वह भी पीछे दौड़े तो यह तो राग है। आहा...हा...! गिरनार, शत्रुंजय और सम्मेदशिखर।

मुमुक्षु : सोनगढ़ आवे...

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ कहाँ उसका सुख पड़ा है? सुख के लिये वहाँ ढूँढकर जाऊँ तो सुख मिलेगा - ऐसा है? आहा...हा...! उन केशुभाई ने कहा था न? बढ़वान में नहीं? (केशुलाल) आता है न? उसे किसी ने पूछा कि अरे, तुम निमित्त से नहीं होता ऐसा तो मानते हो, फिर भी तुम बारम्बार सोनगढ़ जाते हो तो वह निमित्त है, यह क्या? तब उन्होंने जवाब दिया कि निमित्त से नहीं होता और निमित्त कुछ नहीं करता — ऐसा निर्णय करने के लिये वहाँ जाते हैं। आहा...हा...! जरा चतुर व्यक्ति है। दूसरे एक भाई थे वे स्वर्गस्थ हो गये, नहीं? वे दिशाश्रीमाली (थे), यह दशाश्रीमाली है। आहा...हा...!

वह **अनन्त दुःखों को सहता रहा है।** समयसार की ७४ गाथा में तो ऐसा कहा है कि जो शुभराग है वह वर्तमान दुःखरूप है और भविष्य में दुःख का कारण है — ऐसा कहा है। आहा...! गजब बातें हैं, बापू! अर्थात् क्या? कि तू जो शुभभाव करे —दया, दान, व्रत, तप आदि शुभ (भाव करे), उससे पुण्य बँधेगा। पुण्य बँधेगा, उससे संयोग मिलेंगे, चाहे तो वीतराग की वाणी मिले और वीतराग मिले तो वह संयोग है और तुझे शुभभाव वर्तमान दुःखरूप है तथा उसके फलरूप में भी दुःखरूप है, क्योंकि तू सुनने जायेगा, वहाँ राग होगा और राग दुःखरूप है। आहा...हा...! ऐसी बात! कठिन बात है, प्रभु! क्या हो? आहा...हा...!

अनन्त दुःखों को सहता रहा है। आहा...हा...! **कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले...** सच्चा सुख। सुख तो आत्मा में है, भाई! पाँच इन्द्रिय के विषय, अर्थात्? विषय अर्थात् यह भोग और पैसा और इतना — ऐसा नहीं। आहा...हा...! जो कुछ कान से और आँख से देखने में चीज आती है, वे सब विषय हैं। आहा...हा...! इसने पर को देखने के लिये और पर को प्राप्त करने के लिये तेरी लगन, वह सब दुःख सहन किया है। आहा...हा...! ऐसी बात सुनने में कठिन पड़ती है। अरे! कभी इसने वीतराग परमेश्वर का मार्ग क्या है अर्थात् तेरा स्व-आश्रय मार्ग क्या है? (— यह समझने की दरकार नहीं की है)। आहा...हा...! (स्व आश्रय से मार्ग है) ऐसा न मानकर पर आश्रय में दौड़ता हुआ, पर आश्रय में जहाँ हो वहाँ भटकता-भटकता (भ्रमता है)। आहा...हा...! शत्रुंजय जायें तो धर्म हो, गिरनार जायें तो हो, सम्मेदशिखर से तो बहुत भगवान मोक्ष पधारे,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वहाँ जायें तो हो... वहाँ जायें तो वहाँ कहाँ धर्म है ? वहाँ कहाँ सुख है ? धर्म और सुख तो यहाँ अन्दर है। आहा...हा... !

कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शङ्का रखकर अटक गया,... (कोई ऐसा कहे कि) ऐसी बातें क्या करते हो ? ऐसा सूक्ष्म ? लो, सुख मेरे आत्मा में है, तो हम तो अनादि से हैं, क्यों हमको सुख नहीं आता ? सुख आत्मा में है ? तो हम तो अनादि के हैं और हमें सुख तो कुछ मिला नहीं। ऐसे बतलानेवाले मिले तो भी ऐसी शंका करता है परन्तु वह सुख जहाँ है, वहाँ तू गया नहीं। उसका आदर नहीं किया तो किस प्रकार मिले ? आहा...हा... ! **मिले तो शङ्का रखकर अटक गया,...** एक बात। अटकने की बात है।

कभी सच्चा सुख बतलानेवाले की उपेक्षा करके... यह तो बहुत सूक्ष्म बातें किया करते हैं – ऐसा कहकर छोड़ दिया। कहाँ आत्मा और आत्मा के अन्दर में सुख है, अन्दर में जा तो तुझे आनन्द मिलेगा, ये सब बातें करते हैं। कुछ करने को नहीं कहते और यह देखो (ऐसा कहा करता है)। करने को कहते नहीं, करने को कहे तो कर भी सकते हैं। यह तो कहते हैं, कुछ करने जायेगा तो तुझे दुःख, मिथ्यात्व होगा। आहा...हा... ! ऐसा वीतराग का मार्ग होगा ? आ...हा... ! **सच्चा सुख बतलानेवाले की उपेक्षा करके...** आहा...हा... ! **अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करने से वंचित रहा,....** ऐसा मार्ग, ऐसा नहीं होता। ऐसा कुछ अभी पकड़ में नहीं आता, समझ में नहीं आता, ऐसा मार्ग ? आहा...हा... ! बापू ! यह मार्ग ऐसा है। आहा...हा... ! दो बातें हुईं।

कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा,... अन्तर में जाने का जो पुरुषार्थ है, वह नहीं किया और बाहर के इस पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति, यह पुरुषार्थ करके वहाँ अटक गया। उसमें आत्मा प्राप्त नहीं किया। **कभी पुरुषार्थ किये बिना भटका रहा.... कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़े से पुरुषार्थ के लिए वहाँ से अटका और गिरा।** शुभ में अटका, वह तो वापस गिरा, अन्दर जाना है, वह पुरुषार्थ नहीं किया। आहा...हा... ! शुभभाव का पुरुषार्थ किया – वाँचन का, मनन का, वह पुरुषार्थ किया परन्तु अन्दर जाने के लिये जो पुरुषार्थ चाहिये, वह पुरुषार्थ नहीं किया। बहुत सूक्ष्म बात है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

पुरुषार्थ किया भी तो थोड़े से पुरुषार्थ के लिए... अन्दर में जाने का जो कुछ पुरुषार्थ चाहिये, वह नहीं किया। वहाँ से अटका और गिरा। आहा...हा... ! द्रव्यसंयम पालन किया — 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक उपज्यो फिर पीछे पटक्यो' — सज्झाय में आता है। पंच महाव्रत हजारों रानियाँ छोड़कर, दया, दान, अपने लिये बनाया हुआ आहार न ले — निर्दोष आहार ले, हमें यह नहीं चलता, हमें यह नहीं चलता,... (जैसे) चाण्डाल का लड़का था, (वह) ब्राह्मण के घर गया तो (कहता है) हमारे यह नहीं चलता, हमारे यह नहीं चलता। इसी प्रकार शुभभाव में आया तो यह हमारे नहीं चलता, पुत्र नहीं चलता, स्त्री नहीं चलती (ऐसा कहता है) परन्तु शुभभाव वह स्वयं चाण्डालनी का पुत्र है। उसमें लिखा है, कलश टीका में। आहा...हा... ! जैसे वह चाण्डालनी के घर में उत्पन्न हुए दो लड़के, एक वहाँ घर में रहा, एक ब्राह्मण के घर गया। वह कहता है, हमारे यह नहीं चलता, हमारे यह नहीं चलता; हैं तो दोनों चाण्डालनी के पुत्र। इसी प्रकार शुभभाववाला... चाण्डालनी के घर में रहा वह तो अशुभभाव (में रहा)। शराब पीवे, शराब में नहाये — ऐसा करे और यह कहता कि हमारे यह नहीं चलता। विषय-कषाय चलते हैं — ऐसा माननेवाला तो अशुभ में जाता है परन्तु यह विषय-कषाय नहीं चलते, यह हमारे नहीं चलता, परन्तु वह सब तो शुभभाव है। आहा...हा... ! आत्मा चलता है, इसमें यह सब नहीं चलता — ऐसा आ गया परन्तु यह आत्मा चलता है, इस ओर नहीं आया। आहा...हा... ! कितनों ने ही तो ऐसा पहली-पहली बार सुना हो... ऐसा क्या होगा यह ? बापू ! मार्ग तो यह है, भाई ! आहा...हा... !

इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। आहा...हा... ! किसी समय ऐसा हुआ कि अभी थोड़ा समय है, अभी तो जवानी है, बाद में करेंगे। आहा... ! कल समाचार-पत्र में आया था, पढ़ा था ? बिहार में देश है। कैसा ? सहेद गाँव ! भाई कहते थे, विवाह का दिन था, मण्डप (बँधा हुआ) था। विवाह के दिन दोनों आये। पति-पत्नी दोनों बैठे, मन्त्र जपते हैं, तुरन्त मन्त्र जपते-जपते वहाँ हार्टफेल, वहाँ वर का हार्टफेल, कल आया है। आहा...हा... ! ऐसा तो अनन्त बार हो गया है, एक बार नहीं हुआ। यह किसी को होता है, ऐसा अनन्त बार हो गया है। अनन्त काल में अनन्त बार तुझे भी

www.vitragvani.com

हो गया है। इसका दृष्टान्त देकर उसे ही हुआ है — ऐसा नहीं। आहा...हा...! वह युवा व्यक्ति होगा। आहा...हा...!

एक तो पहले यह सुना था कि विवाह के समय पैर नीचे था और मण्डप में सर्प आया, काटा, और वहीं स्वामी मर गया — वर वहीं का वहीं मर गया। ऐसा तो सुना था परन्तु यह तो एकदम हार्ट बन्द हो गया। आहा...हा...! नाशवान चीज में क्या नहीं होगा? आहा...हा...! उसे जरा पहले दर्द तो उत्पन्न हुआ होगा परन्तु विवाह करने के उत्साह में... आहा...हा...! एकदम हृदय बन्द हो गया, हार्ट बन्द हो गया। आहा...हा...! लग्न के मण्डप के नीचे। चिट्ठी थी, कोई लाया था, किसमें थी वह? हिन्दी? गुजराती। गुजरात समाचार। ठीक, आहा...हा...! कैसी स्थिति! आहा...हा...! ऐसे भाव में मरकर बेचारा कहाँ जाये? तिर्यंच हो, क्योंकि बेचारा आर्य मनुष्य हो, माँस तो खाता न हो... शराब-माँस खाता न हो तो नरक में तो नहीं जायेगा परन्तु आहा...हा...! यहाँ वर विवाह करने का प्रसंग और मरकर मुर्गी और बकरी का बच्चा हो... आहा...हा...! ऐसे अवतार किये बापू! ऐसे अनन्त अवतार किये। आहा...हा...! ऐसा कहते हैं न? देखो न?

यह जीव **इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका।** आहा...हा...! अभी जवानी है, कुछ वृद्धावस्था आयेगी तब करूँगा। आहा...हा...! उसमें यह वृद्धावस्था आवे, रोग आवे, आहा...हा...! हो गया। अब हम क्या करें? ऐसे कई-कई प्रसंग में स्वरूप में जाने में अटका है, कहते हैं। आहा...हा...! अटकने के अनन्त कारण और अन्तर जाने का एक ही कारण। आहा...हा...! अन्तर भगवान पूर्णानन्द का आश्रय लेना, वह एक ही कारण और अटकने के तो अनन्त कारण हैं। हमने इतना तो किया, ब्रह्मचर्य तो पालते हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य है, हमने स्त्री को कभी छुआ नहीं, स्त्री ऐसा कहे कि हमने पुरुष को छुआ नहीं, इतना तो किया है या नहीं? परन्तु उसमें तूने क्या किया? यह तो कोई राग की मन्दता रखी हो तो उसे शुभभाव कहा जाता है। यह ऐसा मानकर अटका और अन्दर नहीं गया। आहा...हा...! हमें इतना ज्ञान तो है न! बस, जानपना है तो धीरे-धीरे काम करेंगे — ऐसा करके भी अटका है।

इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। पुण्योदय

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

से यह देह प्राप्त हुआ,... अब देह की बात करते हैं। पूर्व के पुण्य के कारण देह मिला... **यह दशा प्राप्त हुई...** सुनने की... **ऐसे सत्पुरुष का योग मिला;...** धर्मात्मा (का योग प्राप्त हुआ)। **अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा...** आहा...हा...! कब करेगा? प्रभु! आहा...हा...! **पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भव में करेगा?** आहा...हा...! अभी नहीं, अभी नहीं; बाद में करूँगा, बाद में करूँगा (ऐसा माननेवाला) का बाद में ही रहेगा। यहाँ तो शास्त्र के शब्द ऐसे हैं, आज ही कर! आहा...हा...! और हमने देह तथा आत्मा को भिन्न करके बतलाया है... किसे यह भिन्न अनुभव नहीं होगा? आहा...हा...! वाणी तो देखो! एक श्लोक आता है न? देह, काया... आहा...हा...! काया में तो रागादि आ जाते हैं। राग और काया दो (से) भिन्न प्रभु अन्दर है। आहा...हा...! ऐसा जिनने बताया और जिसने सुना तथा जिसके लक्ष्य में आया... आहा...हा...! ऐसा कौन जीव है कि अब प्राप्त न करे? ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! दिगम्बर सन्तों की वाणी... आहा...हा...! उसके समक्ष दूसरे भरे पानी! ऐसी वाणी है। आहा...हा...!

अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भव में करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर;... आहा...हा...! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी ओर का प्रयत्न कर। शुभराग और पर्यायबुद्धि में अटका है, तो अब उस बुद्धि को छोड़। आहा...हा...! महाप्रभु अनन्त गुण की राशि! आहा...हा...! ऐसा चैतन्य हीरा, जिसमें अनन्त चैतन्य रत्नाकर-समुद्र! चैतन्यरत्न का पूरा सागर भरा है! ओ...हो...! उसे (प्राप्त करने के लिये) अब तो पुरुषार्थ कर। आहा...हा...!

ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप... आहा...हा...! **बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे।** आहा...हा...! ऐसा स्वरूप और ऐसा योग अनन्त काल में मिलता है, उस समय नहीं करे तो कहाँ करेगा? कब (करेगा)? आहा...हा...! परन्तु करना क्या? राग से भिन्न करके स्वरूप में दृष्टि करना, वह करना है। आहा...हा...! कठिन बातें हैं, बापू! शास्त्र की जानकारी लाख करोड़ की हो तो भी उसे छोड़कर अन्तरवस्तु में जाना, वह करना है। उसका नाम सम्यग्दर्शन, आहा...हा...! यहाँ तो देव-गुरु और शास्त्र मिले तथा भक्ति हुई तो समकित हो गया। अरे... बापू! ऐसा तो अनन्त बार माना है, तूने

www.vitragvani.com

किया है, वहाँ अटका है। अटकने का साधन, वहाँ फिर अटका। आहा...हा...! **ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे।** आहा...हा...! ६० (बोल पूरा) हुआ।

जिसे सचमुच ताप लगा हो, जो संसार से ऊब गया हो उसकी यह बात है। विभाव से ऊब जाये और संसार का त्रास लगे तो मार्ग मिले बिना नहीं रहता। कारण दे तो कार्य प्रगट होता ही है। जिसे जिसकी रुचि - रस हो, वहाँ उसका समय कट जाता है; 'रुचि अनुयायी वीर्य'। निरन्तर ज्ञायक के मन्थन में रहे, दिन-रात उसके पीछे पड़े, तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे॥ ६१॥

६१। **जिसे सचमुच ताप लगा हो,...** भव-भ्रमण का ताप-दुःख (लगा हो)। सबेरे आया था न? भ्रमण — द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। आहा...हा...! जिसे भ्रमण प्रगट हुआ है। भटकाऊ जीव, उसे भ्रमण प्रगट हुआ है। आहा...हा...! सबेरे आया था। सभी जीवों को — इस प्रकार लिया। समस्त जीव, कितने ही तो अभी सभी संयोगों को प्राप्त नहीं — ऐसे जीव हैं। सभी क्षेत्र में जन्मे नहीं — ऐसे भी जीव हैं। प्रत्येक काल में प्रति समय जन्में नहीं — ऐसे भी जीव हैं। कोई अनन्त भव बाहर के किये नहीं — ऐसे भी जीव हैं। आहा...हा...! शुभाशुभभाव किये — ऐसे भी जीव हैं। आहा...हा...! इन सब को, ऐसा किया — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

जिसे सचमुच ताप लगा हो,... भव का दुःख लगा हो। आहा...हा...! **जो संसार से ऊब गया हो...** संसार शब्द से नरक और तिर्यंच गति — ऐसा नहीं; चारों गति। ये चारों गतियाँ संसार हैं। स्वर्ग भी संसार है। आहा...हा...! पंचास्तिकाय में आता है न? उस गाथा में नहीं? चार गति परावलम्बन। आहा...हा...! उससे छूटने का उपाय भगवान बताते हैं। चारों गति। उसमें आता है, (योगसार) दोहा में आता है 'भव भय से डरि चित्त' भव भय से, हों! नरक के दुःख और तिर्यंच के दुःख से — ऐसा नहीं। आहा...हा...! भव करना, वह भव, 'भव भय से डरि चित्त' चित्त में भव (करने का) डर। आहा...हा...! ऐसा

जिसका चित्त भव-भय से डरा है, जो जीव **संसार से ऊब गया...** ऐसा। **उसकी यह बात है।** जिसे संसार में मजा लगता हो... आहा...हा...! उसकी यह बात नहीं। पैसा है, शरीर ठीक है, निरोगता है, पुत्र अच्छे हैं — ऐसा कुछ भी जिसे ठीक लगता है और उससे ताप न लगा हो, वह सब ताप और दुःख है, उसके लिये यह बात नहीं है। उसे यह विचार करने का अवसर ही कहाँ है? आहा...हा...! और जगत के प्राणी जन्मने के बाद बालक और फिर विवाह करे, और फिर कमाये; इस प्रकार का पूरी दुनिया का अभ्यास। उसके सन्मुख देखने से यह दुनिया करे — ऐसा मुझे करना है (ऐसा होता है)। सब बड़े राजा, बड़े पैसेवाले करोड़पति के लड़के दुकान में बैठते हैं, फिर विवाह करते हैं, नौकरों को सम्हालते हैं और पूरी दुनिया करती है, उस प्रकार का मुझे करना है। आहा...हा...!

विभाव से ऊब जाये और संसार का त्रास लगे... देखा? पुण्य-पाप का भाव है, वह विभाव है, उससे-विभाव से ऊब गया हो। आहा...हा...! **और संसार का त्रास लगे तो मार्ग मिले बिना नहीं रहता।** आहा...हा...! **कारण दे तो कार्य प्रगट होता ही है।** आहा...हा...! जितना स्वरूप की दृष्टि का, स्थिरता का कारण दे, उतना कार्य होता ही है। कारण कम दे, कार्य अधिक आवे — ऐसा नहीं हो सकता। आहा...हा...! अन्तर के लिये राग से भिन्न पड़कर और भेदज्ञान का कारण दे, उसे कार्य हुए बिना नहीं रहता। आहा...हा...! उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए बिना नहीं रहता। आहा...हा...! कारण दे और कार्य न हो, यह वस्तु है नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि हम बहुत पढ़ते हैं, निवृत्ति भी है परन्तु होता नहीं (उससे कहते हैं) परन्तु जितना कारण देना चाहिये, उतना कारण दिया नहीं, इसलिए कार्य नहीं होता। आहा...हा...! जितना कारण अन्दर में देना चाहिए, उतना कारण दिये बिना कार्य करना चाहे (तो वह) भ्रम में पड़ा है। आहा...हा...! ऐसी बात! ऐसा उपदेश!

जिसे जिसकी रुचि — रस हो, वहाँ उसका समय कट जाता है;... जिसमें जिसका रस हो, उसे कितना काल गया — इसका पता नहीं पड़ता — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! **जिसे जिसकी रुचि अर्थात् रस हो, वहाँ...** काल कट जाता है, पता नहीं

www.vitragvani.com

पड़ता, दिन गये। आहा...हा...! अपने स्वरूप के रस में आवे तो कितना काल गया, इसका पता नहीं पड़ता। आहा...हा...! **रुचि – रस हो, वहाँ उसका समय कट जाता है;...**

‘**रुचि अनुयायी वीर्य**’। देखो! देखो! देवचन्दजी! जिसकी रुचि है, जिसकी आवश्यकता ज्ञात होती है, वहाँ पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! दुनिया की इसे आवश्यकता लगी है, दूसरे जिस प्रकार करते हैं, उस प्रकार हम करें — ऐसी रुचि लगती है तो यह पुरुषार्थ किया करता है। पूरे दिन कमाना और यह और यह और यह पाप... आहा...हा...! पुत्र को सम्हालना, स्त्री को सम्हालना... आहा...हा...! जिसमें जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ वह पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! इसी प्रकार आत्मा की आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ अन्दर में पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! है?

निरन्तर ज्ञायक के मन्थन में रहे,... आहा...हा...! ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकभाव **दिन-रात उसके पीछे पड़े,...** रात और दिन उसके पीछे पड़े। **तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे।** विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे, मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है॥ ६२॥

जेठ कृष्ण ४, शनिवार, दिनाङ्क २४-०६-१९७८
प्रवचन-१९ वचनामृत- ६२-६४

(वचनामृत) ६१ बोल हुए हैं, नहीं? ६२। **जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,...** अर्थात् क्या? कि उसके लक्ष्य में तो ऐसा आना चाहिए कि मैं एक ज्ञायक हूँ। भले ही सम्यग्दर्शन तुरन्त प्राप्त न हो परन्तु मैं तो एक ज्ञायक ध्रुव चैतन्यपदार्थ हूँ, परिपूर्ण ज्ञानानन्दस्वभावी — ऐसी चीज स्वयं सत् है, ऐसा उसे लक्ष्य में पहले लेना चाहिए। लक्ष्य रखकर जीव सुने। जोर वहाँ लक्ष्य में जाये, सुनने पर भी वह वस्तु जो चैतन्य है, परमानन्द परिपूर्ण तत्त्व जो है, उस पर लक्ष्य रहने से सुनते हुए भी वहाँ लक्ष्य का जोर रहे। आहा...हा...!

चिन्तवन करे,... उसका लक्ष्य करके चिन्तवन करे कि आत्मा परिपूर्ण है, शुद्ध है, आनन्द है, अखण्ड है, अभेद है, वह महाप्रभु चैतन्य का महा अस्तित्व है — ऐसे उसके चिन्तवन में बात ले। यह उसे अन्दर पाने के लिये की सन्मुखता है। सम्यग्दर्शन पाने की यह सन्मुखता है। पहले ऐसा कि व्रत पालना और भक्ति करना और पूजा करना, यह करते-करते होगा, इस बात को छोड़कर, चैतन्य महाप्रभु अन्दर है... बाकी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

तो परिभ्रमण के भाव तो अनन्त किये, अनन्त बार किये हैं। उसमें तो जगत जिन्दगी बीताता है परन्तु इसके लक्ष्य में महाप्रभु चैतन्य, उसके लक्ष्य से सुने, उसके लक्ष्य से चिन्तवन करे।

मन्थन करे... आहा...हा...! यह चैतन्य ज्ञायकभाव ध्रुवभाव क्या है वह? ऐसे उसकी ओर का मन्थन करे। है अभी सम्यग्दर्शन के सन्मुख परन्तु उसके विचार के मन्थन में यह होता है। आहा...हा...! **उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो...** तत्काल कदाचित् उसमें जितना कारण देना चाहिए, उतना कारण न दिया हो, इससे सम्यग्दर्शन न हो परन्तु उसके लक्ष्य से — चैतन्य के लक्ष्य से यह सुनकर चिन्तवन और मन्थन करे तो **सम्यक्त्वसन्मुखता होती है।** (अर्थात्) समकित के सन्मुख होता है। यह वस्तु क्या है वह? जिसे परिपूर्ण कहते हैं, अखण्ड अभेद कहते हैं, सर्वोत्कृष्ट कहते हैं... चन्द्रकान्त उसका ससुराल है न ठाकुरादास! वे ऐसा कहते थे मुम्बई में, व्याख्यान में आवे न, सभी आते थे, चिमनभाई हैं, बड़े नहीं, वृद्ध? उनका लड़का, आँख का बड़ा (डॉक्टर) है। अपने दोनों आ गये। चिमनभाई है, स्वरूपचन्द भाई है और छोटे ठाकुरभाई है, और ...धीरुभाई — वे ऐसा कहते थे कि जगत् में सर्वोत्कृष्ट हो तो आत्मा है — ऐसा कहते थे। ...अभी गये न? आहा...! सर्वोत्कृष्ट चौदह ब्रह्माण्ड में, चौदह राजू लोक में (आत्मा सर्वोत्कृष्ट है) ऐसा कहते थे। आहा...हा...! प्रभु आत्मा सर्वोत्कृष्ट है — ऐसा इसे लक्ष्य में तो आना चाहिए, कहते हैं। आहा...हा...!

उसे **सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले,...** आहा...हा...! यह वस्तु परिपूर्ण अभेद अखण्ड चैतन्यदल स्वयं सत् (है), उसके बारम्बार सुनकर संस्कार डाले। आहा...हा...! दृढ़ संस्कार डाले — ऐसा कहा; जो संस्कार बदले नहीं। आहा...हा...! जैसे सम्यग्दर्शन होने पर अप्रतिहत भाव वर्णन किया है। आहा...हा...! वैसे ही सम्यग्दर्शन के सन्मुख होने पर भी ऐसे दृढ़ संस्कार पड़ते हैं कि उसे सम्यग्दर्शन होता ही है। आहा...हा...! मुनि तो ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन हुआ, वह अब हमारे पढ़नेवाला नहीं है। आहा...हा...! हमारा प्रभु पूर्णानन्द सच्चिदानन्द आत्मा अन्दर हमें अनुभव में आया है, यह आत्मा शुद्ध परिपूर्ण है, यह हमारा अनुभव अब पलटे — ऐसा नहीं है।

www.vitragvani.com

आहा...हा...! अब हम वहाँ से गिरें ऐसा नहीं है। ऐसी पंचम काल के सन्तों की पुकार यह है। आहा...हा...! यहाँ भी उसके सन्मुख होने के लिये भी दृढ़ संस्कार (डाले), उसमें से यह निकाला। वह अप्रतिहत है न! आहा...हा...! अन्दर उसकी ऐसी लगन लगनी चाहिए, ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, परिपूर्ण हूँ, जगत का साक्षी हूँ, जगत ज्ञेय है, मैं ज्ञाता हूँ; जगत दृश्य है, मैं दृष्टा हूँ — ऐसा अन्दर में लक्ष्य रखकर दृढ़ संस्कार डाले। आहा...हा...!

उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले,... विचारश्रेणी में एक ही बात में उपयोग न टिक सके तो विचारधारा में अनेक प्रकार से बदले, उसी-उसी में, उसके लक्ष्य में (बदले) कि यह गुण अनन्त है, इसकी पर्यायें अनन्त, परिणति शुद्ध होनी चाहिए — ऐसे उपयोग में द्रव्य अखण्ड अभेद है, अकेला विचार वहाँ काम न करे तो गुणभेद और पर्यायभेद का भी विचार करे। समझ में आया? आहा...हा...! **उपयोग एक में न टिके...** एक विचारधारा कदाचित् न रह सके तो अन्यत्र बदले - गुण की संख्या अनन्त-अनन्त अमाप... आहा...हा...! जिसकी पर्याय की संख्या अमाप, जिसकी पर्याय एक समय में इतनी अनन्त है कि जिसे यह अन्तिम पर्याय — ऐसा जो पर्याय में छोर नहीं, इतनी अनन्त पर्यायें हैं। आहा...हा...! गुण भी इसके इतने हैं कि एक गुण की संख्या को अन्तिम यह — ऐसा अन्त नहीं है। आहा...हा...! ऐसा वह द्रव्य है, ऐसे उपयोग को द्रव्य के लक्ष्य से, गुण के लक्ष्य से, पर्याय के लक्ष्य से उपयोग बदले परन्तु उसी-उसी में... आहा...हा...! आहा...हा...!

उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,... जैसे बने वैसे अन्दर पकड़ने को ज्ञान के वर्तमान परिणाम का उपयोग धीर होकर सूक्ष्म करे। आहा...हा...! प्रभु! सूक्ष्मस्वरूपी है, उसे जानने के लिये उपयोग को जरा सूक्ष्म करे। आहा...हा...! यह उसे प्राप्त करने की विधि और कला है। आहा...हा...! बाकी यह व्रत पाले और भक्ति करे, तथा उसमें से प्राप्त हो — यह तो दृष्टि फेर है, उसका लक्ष्य ज्ञायक पर नहीं है। उसे व्यवहार से निश्चय हो, उसका जोर व्यवहार के ऊपर है। आहा...हा...! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु परिपूर्ण बादशाह है। आहा...हा...! सबेरे नहीं आया था? एकछत्र राज्य से मिथ्यात्व

www.vitragvani.com

चलता है। आहा...हा...! ऐसे एकछत्र राज से ज्ञायकभाव की महिमा अन्दर आना चाहिए। आहा...हा...!

जिसमें ज्ञात होता है, वह ज्ञायकभाव है। जाननेवाला पर में जाकर नहीं जानता; जाननेवाला अपने में रहकर पर को जानता है — ऐसा कहना वह व्यवहार है, ऐसे इसे उपयोग में विचार को वहाँ रोकना। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है भाई! मूल चीज को प्राप्त करने की विधि ही पूरी अलग है। उसकी विधि ही (लोगों ने) दूसरे प्रकार से कर डाली है। आहा...हा...! प्रतिमा लो और यह लो और वह लो... ऐसे करते-करते हो जायेगा... भाई! जिसमें विकल्प नहीं है, उसके विकल्प द्वारा उसकी प्राप्ति हो (— ऐसा नहीं होता)। ऐसे विचार के उपयोग में भी यह बात लेना। उपयोग को बदलते-बदलते वहाँ भी ले जाना कि वह तो निर्विकल्प चीज है; अतः वह तो निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प आनन्द से ज्ञात हो — ऐसा है। ऐसे सम्यग्दर्शन पाने से पहले भी सम्यग्दर्शन के सन्मुख होने के लिये ऐसा वहाँ विचारधारा में ऐसा करना। आहा...हा...!

उपयोग में सूक्ष्मता करते करते,... यह चैतन्य बहुत ही अरूपी और सूक्ष्म है। उसकी ओर के झुकाव का जानने का उपयोग सूक्ष्म करके... आहा...हा...! **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए...** ज्ञायक है, उसके लक्ष्य में विशेष जोर करते हुए। ग्रहण करते हुए अर्थात् यह। **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए...** अर्थात् ज्ञान में उसे लेते हुए, **आगे बढ़े,...** आहा...हा...! **वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** इसमें कहीं ऐसा नहीं आया कि यह इतने व्रत करे या शुभराग ऐसा करे तो वह क्रम से प्राप्त हो।

मुमुक्षु : उसका निषेध करनेवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसमें है कहाँ? है उसका विचार करे। आहा...हा...! जो द्रव्य परिपूर्ण है.... बहुत कठिन काम भाई! अरे...रे...!

यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी के लिये भी इस प्रकार स्व के लक्ष्य में उपयोग को जोड़ दे। आहा...हा...! उसका विचार, उसका मन्थन और उसके दृढ़ संस्कार सूक्ष्म उपयोग करके उस तरफ में ढले। आहा...हा...! कठिन है, दूसरा क्या होगा? मार्ग तो यह है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। ऐसा जीव बीच में घोटाला नहीं रखता कि यह शुभभाव की क्रिया करूँगा और इससे होगा तथा ऐसे विकल्प उठते हैं, इसलिए विकल्प से यह प्राप्त होगा। उपयोग में विकल्प आवे परन्तु उसके विचार में ऐसा नहीं आता कि उससे प्राप्त होगा ? समझ में आया ? इस प्रकार का उपदेश ! अरे...रे ! जन्म-मरण का थोक अन्दर पड़ा है, भाई ! देह छूटेगी, आत्मा अकेला चला जायेगा। आहा...हा... ! उसे कोई देह की पर्याय स्पर्श नहीं हुई है। आहा...हा... ! यह प्रभु तो देह की पर्याय को स्पर्शित भी नहीं हुआ है। अपनी पर्याय कर्म के उदय को स्पर्शित नहीं हुई है। आहा...हा... ! कर्म का उदय जड़पर्याय, वह चैतन्य के राग को स्पर्शित नहीं हुई है। आहा...हा... ! कृत्रिम क्षणिक राग, वह त्रिकाली स्वभाव में नहीं है; इसलिए त्रिकाली स्वभाव, राग को भी स्पर्शित नहीं हुआ है — ऐसा उपयोग लक्ष्य में रखकर, चैतन्य की ओर के संस्कार डालना, कहते हैं। आहा...हा... ! यह बात है। दूसरों को समझाने के लिये बहुत पढ़ना और वाँचना.... यह बात नहीं आयी।

जगन्मोहनलालजी ने एक लिखा है, यह जन्म-जयन्ती मनाते हैं, वह ठीक नहीं है क्योंकि देह है, उसका जन्म-उत्पत्ति हुई है, तो उस देह की उत्पत्ति हुई, उसकी जयन्ती किसकी ? एक न्याय दिया है। ऐसा कि देहरहित हो और मुनिपना हो। अरे... ! मुनिपने और दीक्षा का काल, वह जन्म-जयन्ती का है। एक न्याय दिया है। यह तो साधारण मनुष्य परन्तु जरा वह करे तो जन्म-जयन्ती मनावे परन्तु किसकी जन्म-जयन्ती ? वह तो दुनिया के मान में पोषित होना है, मान में ! आहा...हा... ! बात एक न्याय से ठीक है, क्योंकि देह का संयोग हुआ है।

मुमुक्षु : इसलिए मनाने जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, अपने को तो इतना लेना। देह का संयोग हुआ, इसलिए मनाने जैसा है (— ऐसा नहीं)। आहा...हा... ! कितने ही तो मनाने के लिये लोगों को तैयार करते हैं और जहाँ मनाने का हो वहाँ जाते हैं, मनाते हैं। आहा...हा... ! बहुत हैं ऐसे। यह तो एक बात उसकी आयी। जितना न्याय है, उसे तो अपने को (समझना चाहिए)। उसे मनाने के प्रसंग में कहना कि तुम ऐसा प्रसंग मनाओ अथवा मनाने के प्रसंग में विशेष जाना, वह तो सब (मान का पोषण है)।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : ज्ञानी तो नहीं चाहते परन्तु भक्तों को राग आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसने कहा कि उसे राग आवे परन्तु उसका भी निषेध करना। देह के संयोग का (महोत्सव) मनाना क्या? ऐसा कहते हैं। एक न्याय इतना। लोग तो भक्ति से और कुछ पैसा आवे, शास्त्र में देने के लिये, इसलिए भी करे। जयन्ती में लाख-लाख, सवा लाख रुपये आते हैं। हमें तो यहाँ इतना अंश लेना है कि देह का संयोग हुआ, इसलिए मनाना है, इसका अर्थ क्या? एक बात दूसरी है कि कोई आत्मा ऐसा हो, ऐसी शैली हो, ऐसा आत्मा (होवे कि) प्रकार अलग हो और ऐसा पक्का निर्णय हो गया हो, आहा...हा...! वह भी उसने स्वयं अपने (लिये) नहीं कहना चाहिए अथवा मनावे तो स्वयं उसका उत्साह नहीं करना। यह जन्म तो अन्दर आनन्द का नाथ जाग कर उठे... आहा...हा...! वह जन्म है। जन्म अर्थात् उत्पत्ति होना, स्वरूप की उत्पत्ति होना। आहा...हा...! आहा...हा...! और जिसे उस उत्पत्ति में भी ऐसा निर्णय आ गया हो कि इस उत्पत्ति से ही केवलज्ञान लिया जायेगा, बस! आहा...! वह जीवन है, बाकी सब जीवन दुनिया के मान के लिये है।

यहाँ कहते हैं, ऐसे चैतन्य को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े। आहा...हा...! ऐसे सब भावों पर से लक्ष्य छोड़ दे। आहा...हा...! **वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** यह ६२ (बोल पूरा) हुआ।

जैसा बीज बोये वैसा वृक्ष होता है; आम का बीज (गुठली) बोये तो आम का वृक्ष होगा और अकौआ (आक) का बीज बोयेगा तो अकौए का वृक्ष उगेगा। जैसा कारण देंगे वैसा कार्य होता है। सच्चा पुरुषार्थ करें तो सच्चा फल मिलता ही है॥ ६३॥

६३ — **जैसा बीज बोये, वैसा वृक्ष होता है;...** चन्द्रकान्त! अभी तुम्हारी बात हुई। तुम्हारे ससुर ठाकुरदास मुम्बई व्याख्यान में बोलते थे, पता है? अभी बात की, तुम्हारे जाने के बाद। वहाँ वे याद आये। इसके ससुर ऐसा बोले, इस चौदह राजू लोक में सर्वोत्कृष्ट हो तो आत्मा है। कहा न? कहा, वाह! परचीज नहीं, राग नहीं और पर्याय नहीं।

www.vitragvani.com

आहा...हा...! कहा था न? भाई! व्याख्यान में कहा था, मुम्बई! ठीक, भाई! यह तत्त्व सर्वोत्कृष्ट प्रभु अन्दर (विराजमान है)। आहा...हा...! जिसके समक्ष केवलज्ञान की पर्याय की भी कीमत नहीं, आहा...हा...! ऐसा सर्वोत्कृष्ट तत्त्व, उसके अस्तित्व की मौजूदगी का स्वीकार करके अन्दर में अनुभव करना.... आहा...हा...! यही वस्तु है, बाकी तो सब ठीक है। आहा...हा...!

यह सब चीजें, यह सब इनके स्थान में पड़ी रहेंगी। .... जो-जो परमाणु - पुद्गल, वाणी, देह जिस स्थान में जिस प्रकार होना है, उस प्रकार होकर वहाँ रहेंगे। तू बीच में दखल करने जायेगा (कि) इसके कारण ऐसा होता है, मुझे इसके कारण ऐसा होता है... आहा...हा...! उसे चैतन्य का लक्ष्य नहीं है। बाहर की चीज तो जहाँ जिस प्रकार होनी है वैसे होगी और उस प्रकार वहाँ रहेगी। वह तेरी कल्पना से होकर रहेगी ऐसा है नहीं। आहा...हा...!

आम का बीज (गुठली) बोये तो आम का वृक्ष होगा... आम की गुठली (बोये तो) आम का वृक्ष होगा। **और अकौआ (आक) का बीज बोयेगा तो अकौए का वृक्ष उगेगा।** इसी प्रकार जिसे आत्मा के लक्ष्य से आत्मा का अनुभव करने के लिये जिसने वह बीज बोया... आहा...हा...! उसे आत्मा फलेगा परन्तु जिसने बाहर इज्जत के लिये, राग के लिये, पुण्य के लिये... आहा...हा...! बाहर प्रसिद्धि के लिये, दुनिया में मुझे गिने... आहा...हा...! मुझे कुछ गिनती में ले, लोग पहचानें — ऐसे मिथ्यात्व के बीज बोये होंगे... आहा...हा...! वहाँ संसार फलेगा। आहा...हा...! ऐसा है।

आम की गुठली बोने से आम फलेगा, अकौए का बीज बोये तो अकौए फलेगा। आहा...हा...! इसी प्रकार पर्यायबुद्धि में रागादि की विशेषता अथवा परपदार्थ की कुछ भी अनुकूलता में विशेषता, प्रतिकूलता को छोड़ने में भी जहाँ उसे छोड़ने के लिये विशेषता लगे तो वे सब बीज तो पर के हैं। आहा...हा...! उसमें से तो संसार फलेगा। आहा...हा...! चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द प्रभु का अस्तित्व कितना महान है, इतने महान अस्तित्व का जिसने श्रद्धा में बीज बोया है... आहा...हा...! ज्ञान की पर्याय में ऐसा महा प्रभु है - ऐसा बीज जिसने बोया है... आहा...हा...! उसमें से तो ज्ञायक फलकर केवलज्ञान हुआ। समझ में आया? ऐसी बात है।

www.vitragvani.com

जैसा कारण देंगे, वैसा कार्य होता है। जैसा कारण दे, वैसा कार्य होता है। आहा...हा...! पुरुषार्थ से स्वभावसन्मुख का कारण दे तो उसका फल वह होता है (अर्थात्) आत्मा मिलता है और उसे छोड़कर बाहर में... आहा...हा...! किसी भी चीज में इसे आश्चर्य अर्थात् विशेषता (लगे), आत्मा के अतिरिक्त किसी भी बाह्य चीज की चमक, उसकी चमक इसे लगे... आहा...हा...! उसके फलरूप से तो संसार फलेगा। संयोगी चीज के माहात्म्य में संयोगी चीज - भव फलेगा। आहा...हा...! आत्मा का संयोगीभाव है, उसका जिसे प्रेम है और उसकी विशेषता (लगती है कि) हमने बहुत किया, पुण्य किया, शुभभाव किया, पूरे दिन शास्त्र स्वाध्याय करते हैं, भगवान की भक्ति (की है), भक्ति करते हैं, भक्ति कराते हैं, समझाते हैं... आहा...हा...! इसकी जिसे अन्तर में विशेषता लगे तो उसके फलरूप से संसार फलेगा। वहाँ परिभ्रमण (फलेगा) आहा...हा...! यह कौवे, कुत्ते के भव, बापू! उनमें जाना पड़ेगा। आहा...हा...! कषाय-मायाचारी बहुत की है, उसे ऐसे भव-निगोदादि में जाना पड़ेगा।

प्रभु कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो यहाँ तक कहते हैं, आहा...हा...! वस्त्र का टुकड़ा रखकर भी साधु माने, मनावे, माननेवाले को अच्छा माने, (वह) निगोद जायेगा। आहा...हा...! कठिन काम, भाई! कठिन काम, बापू! आहा...हा...! क्यों? उसमें नौ तत्त्व की भूल खड़ी होती है। उसके बीज में तो मिथ्यात्व है, आहा...हा...! और वह मिथ्यात्व जिसे पोसाता है, पोषण किया है, आहा...हा...! स्वयं किया है और दूसरे को ऐसे मिथ्यात्व का पोषण कराता है, प्रभु! उसका फल क्या? बापू! अकौए के फल में अकौआ (आक) पकेगा। आहा...हा...! वहाँ किसी की सिफारिश चले — ऐसा नहीं है कि हमने इतनों को समझाया था, इतनों को पक्ष में लिया था... आहा...हा...! इतने लोग मेरी प्रशंसा करते, प्रशंसा करते... भाई! तुझे वहाँ क्या काम आयेंगे? आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! सादी भाषा में परन्तु... आहा...हा...! उस (चित्रभानु जैसे को) पढ़कर ऐसा लगा... आहा...हा...! नहीं तो वह तो बड़ा साधु और सभा में भाषण देता है। उसने ऐसी (पुस्तक) देखी और, आहा...हा...! सादी भाषा और भाव... प्रसन्न हो गया। (कहा) मुझे पुस्तक दो, मैं ले जाऊँगा। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

जैसा कारण देंगे वैसा कार्य होता है। सच्चा पुरुषार्थ करें तो सच्चा फल मिलता ही है। आहा...हा... ! सच्चे पुरुषार्थ में यह (कि) स्वसन्मुख में वीर्य को रोककर... रुचि अनुयायी वीर्य। आहा...हा... ! रात और दिन इस बात में इसे खटक... खटक हो। आहा...हा... ! मेरा प्रभु चैतन्य है, ज्ञायक है। इस चीज के अतिरिक्त कोई चीज मेरी नहीं है। आहा...हा... ! चेले और चेलियाँ एकत्रित हों, मैंने इतने चेले बनाये और इतनी चेलियाँ बनायीं, प्रभु ! क्या करता है ? पर का तूने क्या किया ? हमें माननेवाले इतने इकट्ठे किये, भाई ! तूने क्या किया ? तू तो ज्ञायक जानने के अतिरिक्त किसी विकल्प का भी कर्ता नहीं है न ? तो किसने बनाये ? कौन तुझसे बने ? प्रभु ! आहा...हा... !

सादी भाषा में परन्तु (कैसा कहा है) ! **कारण देंगे वैसा कार्य होता है। सच्चा पुरुषार्थ करें तो सच्चा फल मिलता ही है।** आहा...हा... ! स्वभाव की रुचि करके वहाँ पुरुषार्थ करे तो फलता ही है। है, वह मिलता ही है। आहा...हा... ! जितना और जैसा प्रभु आत्मा है, उतना और वैसा ही पुरुषार्थ में-विश्वास में ले... आहा...हा... ! उसके विश्वास के लिये किसी की अपेक्षा नहीं — ऐसी कारण-पर्याय दे तो कार्य हुए बिना नहीं रहता। आहा...हा... ! बहुत सादी भाषा और बात अलौकिक है। अरे...रे... ! कठिनता से जन्मकर आया, उसमें पच्चीस-पचास वर्ष, साठ वर्ष स्त्री, पुत्र, परिवार और धन्धा... अर...र... ! अरे... प्रभु ! तुझे कहाँ जाना है ? भाई ! दुनिया में मुँह के सामने बड़ा कहलाया, इससे कहीं बड़ा हो जायेगा ? आहा...हा... ! दुनिया तो बाहर की लाईन से बड़ा कहती है। आहा...हा... ! परन्तु सच्चा पुरुषार्थ स्व की ओर का किया होगा तो पुरुषार्थ फले बिना नहीं रहेगा। आहा...हा... ! इसके लिये पुरुषार्थ किया होगा... आहा...हा... ! तो उसका फल फले बिना नहीं रहेगा। परिभ्रमण... आहा...हा... ! स्वर्ग का भव भी दुःखरूप है, वहाँ कहीं आनन्द नहीं है। आहा...हा... ! सम्यग्दृष्टि जीव है, उसे आनन्द है, वह कहीं स्वर्ग में उपजा है; इसलिए है — ऐसा नहीं है। उसके कारण नहीं। बहुत सामग्री मिली,... देव, निचले की अपेक्षा सामग्री कम परन्तु ऊँची, उससे क्या ? वह तो पर है, उसके लिये तू पर है, उसमें मेरापन मानकर रुक जायेगा तो पर तुझे नहीं छोड़ेगा, संयोग में तुझे अवतार में अवतरित होना पड़ेगा। आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अन्तर में, चैतन्यतत्त्व नमस्कार करने योग्य है; वही मङ्गल है, वही सर्व पदार्थों में उत्तम है, भव्य जीवों को वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है। बाह्य में, पञ्च परमेष्ठी — अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु – नमस्कार करने योग्य हैं क्योंकि उन्होंने आत्मा की साधना की है; वे मङ्गलरूप हैं, वे लोक में उत्तम हैं; वे भव्यजीवों के शरण हैं॥ ६४॥

(६४) **अन्तर में,...** बाह्य और अन्दर दो कहना है न? **अन्तर में, चैतन्यतत्त्व नमस्कार करने योग्य है;...** ...समझ में आया? आहा...हा...! उसमें (आत्मसिद्धि में) ऐसा आया 'जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त, समझाया...' यह गुरु आया। 'समझाया उन पद नमो' (इसमें) स्वयं आया। आहा...हा...! आहा...हा...! जो चीज अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु, अनाकुल शान्ति से भरपूर... आहा...हा...! अरे...रे! उसके ओर की विस्मयता नहीं, आश्चर्यता नहीं, अद्भुतता नहीं, उसका वीररस नहीं... आहा...हा...! और दूसरे के रस में रच जाता है। आहा...हा...! ऐसा चैतन्यप्रभु पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, वह अन्दर में चैतन्यतत्त्व वह पहले स्वयं को नमस्कार करने योग्य है। आहा...हा...! देव, गुरु को नमस्कार करना, वह तो शुभभाव है। यह बाद में आयेगा परन्तु मूल चीज यह है। आहा...हा...!

वही मंगल है,... वह मंगल है। ऐसे अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साधु मंगलं (बोले), वह तो सब व्यवहार है। उस विकल्प से-व्यवहार से ऐसे मांगलिक कहलाता है। मांगलिक तो प्रभु है। आहा...हा...! स्वयं चीज अन्दर चैतन्यमूर्ति भगवान, जिसका चमत्कार अल्पकाल में तीन काल को जाने और अल्पकाल के भाव की पर्याय में त्रिकाली ज्ञात हो जाये। आहा...हा...! अल्पकाल में एक समय में तीन काल जाने और एक समय में स्वयं त्रिकाली ज्ञात हो जाये, आहा...हा...! ऐसा प्रभु आत्मा है, वह नमस्कार करने योग्य है। सूक्ष्म तो है परन्तु मूल वस्तु यह है। आहा...हा...! वह मंगल ही है। **वही...** – फिर ऐसा है। 'दूसरा नहीं'। फिर व्यवहार से कहेंगे। आहा...हा...!

भगवान चैतन्यप्रभु अन्दर महान ध्रुवधाम जिसका देश है। ध्रुव जिसका देश है,

www.vitragvani.com

अनन्त गुण जिसका आश्रययोग्य चीज है। आहा...हा...! इसलिए कहा 'घट-घट अन्तर जिन बसै' वह जिन स्वयं ही वस्तु है। जिसे पर की ओर के राग और पर तरफ की मांगलिक की ओर की भी जिसे अपेक्षा नहीं है... आहा...हा...! ऐसा चैतन्यभगवान, वही मांगलिक वस्तु है। आहा...हा...!

वही सर्व पदार्थों में उत्तम है,... आहा...हा...! चार बोल लेना है न? मंगल, उत्तम, और शरण... अरिहन्ता मंगलं, अरिहन्ता उत्तम, अरिहन्ता शरणम् तीन बोल है न? अरिहन्ता लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा... परन्तु इन सब उत्तम की अपेक्षा पहले भगवान स्वयं मांगलिक, उत्तम है। आहा...हा...! **वही सर्व पदार्थों में उत्तम है,...** आहा...हा...! अरिहन्त और सिद्ध सभी भगवान अनन्त हैं परन्तु स्वयं के लिये सर्वोत्कृष्ट प्रभु स्वयं ही उत्तम है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग। अभ्यास न हो और सब बाहर की बातें सुनी — व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना, मन्दिर बनाना... आहा...हा...! पुस्तकें बनाना, और पुस्तकें इकट्ठी करना... आहा...हा...! परन्तु इन सबमें प्रभु तू स्वयं ही उत्तम है। आहा...हा...! यह पुस्तकें छपाना, वह उत्तम काम हुआ, समयसार जैसी पुस्तकें (प्रकाशित करना वह) उत्तम काम हुआ... बापू! यह सब बातें व्यवहार से है। आहा...हा...! शुभभाव हो, तब ऐसा कहा जाता है। पहला उत्तम तो तू है। आहा...हा...! तेरे जैसा सर्वोत्कृष्ट प्रभु जगत में कौन है? तू किसके साथ उसे मिलान करेगा? अनुपम कहा न? सिद्ध, सिद्ध जैसे; उसी प्रकार तू तेरे जैसा। आहा...हा...!

अमाप अतीन्द्रिय आनन्द, आनन्द अतीन्द्रिय अनन्त, उसके अतीन्द्रिय आनन्द का यह आनन्द... यह आनन्द... यह आनन्द... यह आनन्द... यह आनन्द ऐसे उसके अनन्त अंश कर तो अन्तिम अंश कौन सा? वहाँ ऐसा है नहीं। आहा...हा...! यह क्या कहा? अतीन्द्रिय आनन्द की अपरिमितता, क्षेत्र तो असंख्यात प्रदेशी देह जितना उसका क्षेत्र चौड़ा परन्तु उसके भाव की अपरिमितता इतनी कि एक आनन्द गुण लो तो आनन्द अनन्त... अनन्त... अनन्त... आहा...हा...! छोर कैसा आनन्द का? उस अनन्त का अन्त कब आया? क्षेत्र से अन्त आ गया, असंख्य प्रदेश में (अन्त आ गया), भाव से अन्त कहाँ? ओ...हो...! ऐसे प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द को उत्तम न मानकर... आहा...हा...! दया,

www.vitragvani.com

दान और भक्ति के परिणाम को उत्तम मानना... आहा...हा...! अरे...! एक समय की पर्याय को उत्तम माने... उत्तम मानना, वह पर्याय में, परन्तु उत्तम मानने की चीज है वह स्वयं। कैसे जँचे? आहा...हा...!

गन्ने का रस, गन्ना नहीं? गन्ना! खाता हो, आहा...! वहाँ पूरा अर्पित हो जाता है। ....प्रभु अनन्त आनन्द का रस तो तुझमें उत्पन्न है न! तुझे तेरे रस के अतिरिक्त कहाँ रस में उत्पन्न करने गया? आहा...हा...! वह स्वयं मंगल है, स्वयं नमस्कार करने योग्य है, स्वयं उत्तम है। समस्त पदार्थों में स्वयं उत्तम है। आहा...हा...! सिद्ध और अरिहन्तों में भी तेरा उत्तमपना तेरा पदार्थ है। उनका उत्तमपना उनमें रहा। आहा...हा...! और उनके उत्तम का स्वीकार करने जायेगा, वहाँ तुझे विकल्प होंगे और इस उत्तम का स्वीकार करने जायेगा तो निर्विकल्प रस होगा। आहा...हा...! यह बाहर गाँव में घुमते हों, वहाँ ऐसी बातें (नहीं आती), यह तो खड़ा पहोर है, यहाँ का गाँव है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है भाई! आहा...हा...! समस्त पदार्थों में यह उत्तम है — ऐसा कहा। उसका अर्थ यह हुआ कि सर्वोत्कृष्ट चैतन्य है, वही नमस्कार करने योग्य है और सर्व पदार्थों में उत्तम स्वयं है, वही मंगल है। आहा...हा...!

भव्य जीवों को वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है। यह शरण ली.... तीसरा। मंगल उत्तम और शरण। आहा...हा...! इन भव्य जीवों को वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है। आहा...हा...! इस देह को छोड़ने के समय आँतें में बैठ जाये, श्वांस निकले, वहाँ कफ इकट्ठा हो, आहा...हा...! अपार प्यास लगी हो और पानी की बूँद नहीं ली जा सके, गला बन्द हो जाये, यहाँ छेद करके पानी डाले, आहा...हा...! वहाँ क्या शरण है? प्रभु! छेद करके पानी डालते हैं न! आहा...हा...! ऐसे समय में सहनशीलता न हो, उसकी पुकार होती है कि अरे...! शरण तो एक आत्मा है। आहा...हा...! अभी तो भगवान का नाम लेना भी शरण नहीं है। आहा...हा...! यह स्वयं भगवान है, वही शरण है। समस्त पदार्थों में शरण हो तो तेरा प्रभु आत्मा, वह शरण है। आहा...हा...!

भव्य जीवों को... इतनी बात की है। योग्य प्राणी नहीं, उसे तो क्या कहना? आहा...हा...! जो पुण्य के शुभभाव की रुचि में रुक गया, वह तो अन्दर में जाने के लिये योग्य नहीं है। उसे अन्तरशरण है, वह पता नहीं है। णमोकार गिनो, शास्त्र सुनो, धुन

www.vitragvani.com

लगाओ... धुन लगाओ... उसमें क्या हुआ ? बापू! भगवान की धुन लगाओ। 'जूनागढ़' गये थे न ? तो एक साधु समाधि करता था। सब एकत्रित होकर नमस्कार (मन्त्र) गिनो, कहे। उसमें हम गये। नमस्कार गिनना — णमो अरिहन्ताणं! परन्तु वे तो असाध्य थे। जूनागढ़ गये थे न ? अरे... बापू! आहा...हा... !

चैतन्य कहाँ है और कौन है ? (उसका पता नहीं और) उपयोग राग में रुक गया। आहा...हा... ! स्व से तो अनादि से असाध्य है, स्व से तो असाध्य अनादि से है; साध्य में नहीं। आहा...हा... ! शुभ-अशुभभाव के साध्य में स्वयं असाध्य हो गया है। आहा...हा... ! परन्तु यह तो बाहर में असाध्य हो गया। बाहर में कोई कहे वह सुनने की इन्द्रिय भी बन्द हो गयी। आहा...हा... ! अरिहन्त का शरण.... परन्तु कौन सुने ? असाध्य है न ? अन्दर तो असाध्य है ही। आहा...हा... ! डबल निमोनिया हो, ऐसे श्वाँस लेते हुए चिल्लाये, आहा...हा... ! प्रभु ! वहाँ शरण कौन है ? गैस, क्या चढ़ाते हैं ? क्या कहलाता है ? ऑक्सीजन ! ऑक्सीजन दे, तो ठीक से श्वाँस निकले। आहा...हा... ! अरे प्रभु ! ऐसा कि श्वाँस ले नहीं सकता था। यह तो बहुत सों को देते हैं, सुना है। भाई ! वह शरण नहीं है। श्वाँस लेना आया तो वह शरण नहीं है। आहा...हा... ! उसकी ओर का लक्ष्य जाना, वह भी शरण नहीं है। आहा...हा... ! शरण प्रभु अन्दर चैतन्यदेव, चैतन्य देवादिदेव है। आहा...हा... !

आहा... ! तू ही बड़ा देव है, तू स्वयं देवादिदेव है। आहा...हा... ! सर्वार्थसिद्धि के देव भी जिन्हें — परमात्मा को नमस्कार करते हैं, पर्याय में प्रगट हुए को (नमस्कार करते हैं), यह तो महाप्रभु स्वयं अन्दर वस्तुस्वभाव ! आहा...हा... ! ऐसा जो आत्मा, वह भव्य जीव - योग्य जीव को शरण है। आहा...हा... ! यहाँ तो जरा णमो अरिहन्ताणं सुनकर देह छोड़े (तो कहते हैं) समाधिमरण हुआ। धूल में भी समाधिमरण नहीं, बापू! यह समाधिमरण नहीं है, भाई ! णमो अरिहन्ताणं सुनते-सुनते देह छोड़ा, समाधिमरण हुआ। अरे... प्रभु! वहाँ तू अन्दर में असाध्य है न! तुझे साध्य जो ध्येय है, वह तो लक्ष्य में आया नहीं। असाध्य है, उसमें णमो अरिहन्ताणं में तुझे साध्य कहाँ से आ गया ? आहा...हा... ! देवीलालजी ! बाहर से सब प्रकार से समेटकर प्रभु अन्दर है, वहाँ जा, तुझे शरण है, बड़े का शरण तुझे मिलेगा। आहा...हा... ! है न ? **आत्मतत्त्व ही एक शरण है।** अब बाहर की बात करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

जेठ कृष्ण ५, रविवार, दिनाङ्क २५-०६-१९७८
प्रवचन-२० वचनामृत- ६४-६६

(वचनामृत) ६४ बोल हुए हैं। ६४ हुए न? ६४ पूरा हो गया, नहीं हुआ? बाहर में पंच परमेष्ठी का बाकी है। फिर से, यह ६४ वाँ फिर से।

अन्तर में, चैतन्यतत्त्व नमस्कार करने योग्य है;...

प्रश्न : अन्दर में अर्थात् क्या?

समाधान : यह आत्मा, अन्तर आत्मा। अन्तर आत्मा जो शुद्ध चैतन्य परमानन्द की मूर्ति प्रभु वीतराग चैतन्य चमत्कार से भरपूर पदार्थ, वीतरागी चैतन्य चमत्कार से भरपूर सहजात्मस्वरूप यह आत्मा। शरीर अजीव में जाता है; पुण्य-पापतत्त्व वह आस्रव में जाता है, उससे भिन्न जो परमात्मा स्वयं है, वह नमस्कार करने योग्य है। आहा...हा...! निश्चय से तो वह नमस्कार करने योग्य है।

मुमुक्षु : हाथ जोड़कर नमस्कार करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात नहीं है, यहाँ तो आत्मा की बात है। यह बाहर का बाद में आयेगा। वह तो शुभराग है। अशुभ से बचने को ऐसा शुभराग होता है परन्तु वह बन्ध का कारण है, पुण्यबन्ध का कारण है, वह कहीं संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण नहीं है। आहा...हा...!

अन्तर चैतन्यतत्त्व ज्ञायकभाव स्वभावभाव पूर्ण जिनचन्द्र वीतरागी शीतलस्वभाव से भरपूर चैतन्यस्वरूप नित्यध्रुव... आहा...हा...! वह नमस्कार करने योग्य है। **वही मंगल है,...** वही मंगल है। आहा...हा...! मोक्ष जाने को योग्य है, उस जीव को मंगलिक कहते हैं। आहा...हा...! यों तो तीर्थंकर होने के योग्य आत्मा को भी मंगलिक कहते हैं। वह मंगलस्वरूप है, आहा...हा...!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : यह तो अनादि का मंगलिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि का है, धवल में लिया है। आहा...हा...! जो जीव तीर्थंकर होनेवाला है, वह जीव ही स्वयं मंगलस्वरूप है। आहा...हा...!

यहाँ तो उसी स्वरूप को नमस्कार करने योग्य है, जो वस्तु-द्रव्यस्वभाव अखण्ड आनन्द चैतन्य प्रभु भगवत्स्वरूप महिमावन्त भगवान स्वयं है। आहा...हा...! वह भगवान आत्मा नमस्कार करने योग्य है, वह मंगलिक है। अरिहन्त, सिद्ध आदि तो व्यवहार से मंगलिक कहे जाते हैं, वह तो शुभराग आवे, इसलिए उन्हें मंगलिकरूप से माना जाता है। वह तो शुद्धस्वरूप में-शुद्ध उपयोग में... वह शुद्ध उपयोग जिसमें से होता है, वह जीव भी नमस्कार करने योग्य है। सूक्ष्म बात, बापू! मार्ग ऐसा है! आहा...हा...! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव जिनेन्द्र की वाणी है। आहा...!

वही सर्व पदार्थों में उत्तम है,... समस्त पदार्थों में वही उत्तम है। यह सर्वोत्कृष्ट प्रभु! **भव्य जीवों को वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है।** आहा...हा...! जहाँ देव, गुरु भी शरण नहीं क्योंकि वह तो उनकी ओर लक्ष्य जाये, उनकी महिमा हो, वह तो शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है; शरण नहीं। शाश्वत् स्थायी चीज और वह भी पवित्रता से भरपूर, वह शरण है। पुण्य के परिणाम हैं, वे कहीं पवित्र नहीं है, आहा...हा...!

मुमुक्षु : पुण्य का अर्थ पवित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह पवित्र, यह पवित्र आत्मा है, उस पुण्य का अर्थ। शुभभाव पुण्य है, उसका अर्थ पवित्रता नहीं। बहुत से उसमें इसे खतौनी कर डालते हैं। यह तो कलश में आता है, नहीं? पुण्य, पवित्रता... अन्दर आनन्द प्रभु! आहा...हा...! वीतरागरस से भरपूर चैतन्य प्रभु, जिसके एक समय में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो; ऐसी जो खान... आहा...हा...! वही उत्तम, शरण है। आहा...हा...! देह के छूटने के समय चारों ओर की पीड़ा होगी... आहा...हा...! उस समय शरण कौन? णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं करे, वह तो राग है। आहा...हा...! शरण तो भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है, वही भव्य जीव को शरण है।

बाह्य में, पञ्च परमेष्ठी... अब यहाँ से (लेना है), वहाँ तक तो आया था। **बाह्य**

www.vitragvani.com

में पञ्च परमेष्ठी... शुभविकल्प-राग आवे, तब अरिहन्त का शरण है — ऐसा कहा जाता है। वास्तव में केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं, वह भी पर्याय है। केवलीपण्णत्तो धम्मो। आत्मा वीतराग परिणति से परिणमे, वह केवली द्वारा कथित धर्म है। वह भी पर्याय है। आहा...हा...! यह तो त्रिकाली भगवान आत्मा का शरण है — ऐसा यहाँ कहना है और उसकी शरण में नहीं रह सके, तब अरिहन्त के शरण का शुभभाव आता है। आहा...हा...! परन्तु वह अरिहन्त का शरण पुण्यबन्ध का कारण है; वह मुक्ति का कारण नहीं है। आहा...हा...! इसी प्रकार वीतरागस्वरूप पूर्ण प्राप्त न हो, तब वह धर्मी को भी आये बिना नहीं रहता; इसलिए व्यवहार से वह शरण है — ऐसा कहा गया है। आहा...हा...! आहा...हा...!

चारों ओर दु:ख से घिरा हो, कर्म के उदय की तीव्रता से श्वाँस नहीं लिया जा सके, ऐसे लेने जाये वहाँ ऐसे शोर मचाये (दर्द से चिल्लाये) आहा...हा..! शरीर में पीड़ा का पार न हो, पूरे शरीर में ऐसी दर्द चलता हो, दाह... दाह... पड़ती हो, उसकी जलन अन्दर में हो ***अमथी, अमथी,*** हाँ! पैर में से जलन हो, हाथ में से (हो) भाई! अपने हैं, नेमचन्द! नहीं? उसे ऐसी जलन अन्दर (होती है कि) इस शरीर के रजकण, उस प्रकार (परिणमते हैं)। वह ऐसे पकड़ कर रखे, वह पकड़े परन्तु अन्दर रजकण (ऐसे ही परिणमित होनेवाले हैं)। इतने में उसे इतनी (पीड़ा) होती है, किसी को पैर में ऐसी झनझनाहट चलती है, अग्नि की चिंगारियाँ जैसी लगती है। बापू! रोग है। एक-एक अंगुल में छियानवें रोग! एक प्रगट हो तब, बापू! शरण कौन है? आहा...हा...! यह औषधि वहाँ शरण है? वैद्य शरण है?

मुमुक्षु : डॉक्टर स्वयं मर जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं मर जाता है और एकदम देह छूट जाती है! है न हिम्मतकुमार, तुम्हारे भावनगर का सर्जन। दूसरे का ऑपरेशन करता था वहाँ (कहे) मुझे कुछ होता है। ऐसा कुर्सी पर जाकर बैठा, वहाँ समाप्त हो गया। है न, तुम्हारे यहाँ? आहा...हा...! क्षण में! आहा...हा...! यह परसों लेख नहीं आया। पति-पत्नी, विवाह का प्रसंग, विवाह करने बैठे हैं (मन्त्र) जपते हैं, जाप देकर अन्तिम स्थिति में मंगलिक पूरा होता है, वहाँ वर की देह छूट गयी, हार्ट बन्द हो गया। यह स्थिति, बापू! कहो! वह प्रसंग कैसा हुआ होगा? आहा...हा...! बापू! वहाँ कौन शरण है? भाई!

www.vitragvani.com

प्रभु! अन्दर शरण आत्मा है, परन्तु उसका इसे विश्वास और प्रतीति आयी हो, अनुभव हुआ हो तो शरण है वहाँ जाये। आहा...हा...! परन्तु जिसे अन्दर दृष्टि में, अनुभव में आत्मा ऐसा है — ऐसा जाना नहीं, अनुभव नहीं किया, वह कहाँ जायेगा? आहा...हा...! यह सब बाहर की चमक तो समाप्त हो जायेगी। आहा...हा...! देखो न, उस दिन नहीं? भाई कुंजरभाई का पुत्र अमोलक! राजकोट! (निहालभाई के) काका का लड़का था, उस दिन हमारा चातुर्मास वहाँ (था), अन्तिम स्थिति में दर्शन कराने गये परन्तु डबल निमोनिया! नवविवाहित... नानालाल कालीदास के काका का पुत्र अमोलक... आहा...हा...! इतनी पीड़ा, कुटुम्ब सब एकत्रित हुआ, नानालालभाई मोहनलालभाई बेचरभाई, सब करोड़पति भाई, पूरा कमरा भर गया, उसमें (किसी ने कहा) महाराज को मंगलिक सुनाने बुलाओ, उसे तो आँख में से आसूँ की धारा बहती जाये, इतनी पीड़ा! बापू! वहाँ कौन शरण है? भाई! आहा...हा...! अरिहन्त... अरिहन्त करे परन्तु वह भी विकल्प है, राग है, वह दु:ख है। अरे... प्रभु! आहा...हा...!

जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ विद्यमान है, उसका साक्षात्कार कर तो शरण हो। आहा...हा...! और राग का भाव-उपयोग में राग के भाव का एकत्व, वह मिथ्यात्व महादु:ख का कारण है। भले शुभभाव हो... अरिहन्त का शरण वह शुभभाव है परन्तु उस शुभभाव के (साथ में) जो उपयोग में — उपयोगभूमि में एकत्व कर डाला (तो वह मिथ्यात्व है)। बन्ध अधिकार में आता है न, उपयोगभू! आहा...हा...! जानना-देखना ऐसा प्रभु, उसकी भूमिका में दया का विकल्प या अरिहन्त की शरण का ऐसा विकल्प, उस उपयोग में एकत्व करना, वही बन्ध का कारण और अशरण और मिथ्यात्व है। आहा...हा...! गजब बात है, भाई! णमो अरिहन्ताणं, यह विकल्प उठे, उस राग को उपयोगस्वरूप जो चैतन्य है, उसमें एकत्व करना, वही मिथ्यात्व है। आहा...हा...! निर्मलानन्द के नाथ का उपयोग, उसमें मलिनता के राग का एकत्व करना, (वह मिथ्यात्व है)। बापू! यह बातें ऐसी हैं। आहा...हा...!

चालीस-चालीस लाख के बंगले (हों)। (शान्तिभाई साहूजी) दो-तीन महीने पहले यहाँ आये थे, सुनते थे, आहा...हा...! उड़ गये! छोटी उम्र-६६ वर्ष अर्थात्! वे

चालीस लाख के बंगले पड़े रहे और उद्योगपति तथा उद्योग बहुत किया। किसका ? पाप का। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं कि या तो शरण है चैतन्य का; और उसमें न रह सके तो व्यवहार में अरिहन्त का शरण सिद्ध का शरण। आहा...हा... ! **अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु - नमस्कार करने योग्य हैं क्योंकि उन्होंने आत्मा की साधना की है;....** आहा...हा... ! यह हेतु है। जिन्होंने आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु... जिसकी आनन्द की दशा जहाँ प्रगट हुई है... आहा...हा... ! पंच परमेष्ठी में आचार्य, उपाध्याय और साधु, वे तो प्रचुर स्वसंवेदन जिनकी मोहरछाप है। आहा...हा... ! स्व अर्थात् आत्मा जिन्हें अन्दर में (आनन्द) वेदन में आता है, वह जिनकी मोहरछाप है। समकिती में प्रचुर स्वसंवेदन नहीं है, इससे मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन कहते हैं। आहा...हा... ! समकिती को भी आनन्द का स्वाद है परन्तु बहुत थोड़ा है, उसमें शरण आत्मा है कि जहाँ आनन्द की खान है, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान है। आहा...हा... ! वह नमस्कार करने योग्य है। जिन्होंने इस प्रकार आत्मा का साधन किया है। आहा...हा... !

क्योंकि उन्होंने आत्मा की साधना की है;... वहाँ ऐसा नहीं आया कि उन्होंने व्रत पालन किये और पंच महाव्रत पालन किये; इसलिए वे नमस्कार करने योग्य हैं। आहा...हा... ! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अरूपी गुप्त अन्तर भण्डार जिसमें भरा है, आहा...हा... ! उसका साधन जिसने अन्दर से किया है... आहा...हा... ! इस कारण वे व्यवहार से नमस्कार करने योग्य है और व्यवहार से **मंगलरूप है, वे लोक में उत्तम हैं; वे भव्यजीवों को शरण हैं।** व्यवहार से। आहा...हा... ! यह ६४ (बोल पूरा हुआ)।

देव-गुरु की वाणी और देव-शास्त्र-गुरु की महिमा, चैतन्यदेव की महिमा जागृत करने में, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करने में तथा स्वरूपप्राप्ति करने में निमित्त हैं॥ ६५॥

६५। **देव-गुरु की वाणी और देव-शास्त्र-गुरु की महिमा, चैतन्यदेव की महिमा जागृत करने में, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करने में तथा स्वरूपप्राप्ति करने**

www.vitragvani.com

में निमित्त हैं। आहा...हा...! **देव-गुरु...** तो पहले तो देव किसे कहना? — इसकी परीक्षा पहले होना चाहिए। आहा...हा...! अरिहन्तदेव, (जो) अठारह दोषरहित (हों), जिन्हें आहार-पानी न हों, जिन्हें इच्छा न हों, जिन्हें वीतरागता (प्रगट हुई हो), जिन्हें निद्रा न हो, आहा...हा...! जिन्हें क्षुधा नहीं, तृषा नहीं — ऐसी जिन्हें सर्वज्ञ-वीतरागदशा प्रगट हुई है, उन्हें देव कहा जाता है। इस देव का पता न हो, उसे आत्मदेव कौन है? (इसका कब पता पड़ेगा?) आहा...हा...!

देव — जिन्हें दिव्यशक्ति का पूर्ण खजाना खिल गया है। आहा...हा...! वे देव जहाँ तक शरीर में हों तो भी उन्हें क्षुधा और तृषा तथा रोग नहीं है और शरीररहित सिद्ध हों, वे भी देव हैं परन्तु यहाँ तो देव-गुरु की वाणी लेना है न, तो जो अरिहन्तरूप से है, उन्हें वाणी होती है। सिद्ध को वाणी नहीं होती। आहा...हा...! अरिहन्तदेव, सर्वज्ञ परमात्मा।

गुरु — निर्ग्रन्थ गुरु - नग्न मुनि, जिनकी अन्तरदशा नग्न हुई है, बाह्यदशा जिनकी नग्न हुई है। आहा...हा...! अन्तर में विकल्प का कपड़ा नहीं, बाहर में वस्त्र का टुकड़ा नहीं, ऐसी जिनकी अन्तरदशा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में उग्ररूप से परिणमित हो रहे हैं, उन्हें गुरु कहते हैं। उनकी वाणी... आहा..हा...! कल्पित देव और गुरु की वाणी — ऐसा नहीं। जो वास्तविक देव-गुरु हैं, उनकी वाणी। वह समझने में - अनुभव में निमित्त होती है। आहा...हा...! देव-गुरु की वाणी का अर्थ किया कि देव और शास्त्र, गुरु ऐसा। उनकी महिमा **चैतन्यदेव की महिमा जागृत करने में निमित्त हैं।** निमित्त है। स्वयं जागृत करे तो उसे निमित्त कहा जाता है। आहा...हा...!

सर्वज्ञदेव, जिनकी एक समय की पर्याय में भूत-भविष्य और वर्तमान द्रव्य-गुण तथा पर्याय साक्षात् प्रत्यक्ष देखते हैं। आहा...हा...! भविष्य की पर्याय का अन्त नहीं, उसे भी वर्तमान में साक्षात् देखते हैं। आहा...हा...! भाई! यह क्या होगा? ऐसे देव की वाणी, आहा...हा...! उनकी महिमा! भविष्य का अन्त नहीं, भूत की आदि नहीं, दोनों का वर्तमानपने ऐसा दिखता है। आहा...हा...! क्योंकि जो केवलज्ञान है, वह स्वयं उपादान है, तब उसे निमित्त भी वर्तमान में एक समय में पूर्ण निमित्त चाहिए, भविष्य में होगा — ऐसा नहीं, आहा...हा...! भविष्य की पर्याय का भी वर्तमान में निमित्तरूप प्रत्यक्ष दिखता है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

यह क्या है ? यह उस ज्ञान की दशा क्या होगी ? कैसी है ? जिसे उसकी महिमा लगे, उसे चैतन्य की महिमा में उसका निमित्तपना होता है। आहा...हा... ! ऐसी बात गजब, बापू !

यह मनुष्यपना पाकर यह नहीं किया और दुनिया में करने में रुक गया, यह किया और वह किया, दुनिया में महिमा की और दुनिया अभिनन्दन दे, आहा...हा... ! जुलूस निकाले, पच्चीस वर्ष रहे, तीस वर्ष रहे, वह जाता है। आहा...हा... ! किसका (जुलूस) प्रभु ! तू भव छोड़कर जाता है, उसका जुलूस ? आहा...हा... ! और पाप करके नरक में जाता है, उसका जुलूस होता होगा ? आहा...हा... !

यहाँ तो देव उसे कहते हैं कि जिसकी वाणी वीतरागपने की वाणी निकले और वह वाणी स्वयं स्वतन्त्ररूप से निकले और उसका ज्ञान, वह वाणी जिस समय कैसी निकलेगी ? उसका ज्ञान भी उनकी पर्याय में वर्तमान में प्रत्यक्ष हो जाता है। आहा...हा... ! निकलती वाणी की पर्याय का ज्ञान भी वर्तमान ज्ञान में प्रत्यक्ष हो जाता है। भविष्य में जो वाणी निकलेगी और भविष्य में जो पर्याय होगी, उसका भी वर्तमान में... आहा...हा... ! यह क्या कहते हैं ? बापू ! तेरी पर्याय की महिमा क्या ! आहा...हा... ! ऐसे देव की पर्याय की जिसने महिमा की वह चैतन्य की महिमा में जो उतरे, उसे निमित्त कहलाती है। आहा...हा... ! इस चैतन्य की महिमा की, वह अरिहन्त के चैतन्य की महिमा की, इस चैतन्य की महिमा इससे कर दे — ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

बुद्धं शरणम् — उस बौद्धमत में नहीं आता ? बौद्धमत में आता है। अपने यहाँ नाटक करते थे न ? बुद्धं शरणम् गच्छामि ! वह बुद्ध शरण कौन सा ? प्रभु ! वह जो बौद्ध था, वह तो एकान्त मिथ्यादृष्टि था, भले ही राजा था। आहा...हा... ! बुद्धो शरणम् — यह बुद्ध ज्ञानस्वरूपी पूर्ण प्रभु, जिसकी दशा में वर्तमान बीता नहीं ऐसा, बीता और बीतेगा — ऐसी पर्याय का भी वर्तमान में प्रत्यक्षपना होता है। भाई ! यह किस प्रकार जँचे ?

गुरु की वाणी — आहा...हा... ! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी, आहा...हा... ! जिन्हें आत्मा की पर्याय में प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप लग गयी है... आहा... ! उनकी वाणी। इस प्रकार देव-शास्त्र-गुरु कहे जाते हैं। यहाँ तो वाणी कहनी है न ? इसलिए देव-गुरु की वाणी ऐसा (कहा है)। उनकी महिमा... आहा...हा... ! **देव-**

www.vitragvani.com

शास्त्र-गुरु की महिमा... देव की महिमा, गुरु की महिमा और शास्त्र की महिमा। अरे... ! वाणी भी कैसी ! एक समय में तीन काल-तीन लोक की बात करे ! आहा...हा... ! केवलज्ञान की बात करे। केवलज्ञान वह भाषा (की) पर्याय में नहीं, भाषा के भाव में वह केवलज्ञान नहीं, तथापि वह बात करे केवलज्ञान की ! आहा...हा... ! ऐसी वह दिव्यध्वनि !

परमात्मा के श्रीमुख से ओमध्वनि निकले, (उस) वाणी की महिमा जिसे आती है... यह श्रीमद् में नहीं आता अन्त में ? जिनवाणी महिमा, लिया वह नप जाता है — ऐसा आता है। 'मापवा थी निजमति मानी छे' आहा...हा... ! भाई वीतराग की वाणी क्या है ? वह परमाणु की पर्याय ओम् मुख से ध्वनि निकली और गणधरदेवों ने शास्त्र रचना की। ओम्मुख ध्वनि निकली और रची आगम उपदेश... आहा...हा... ! 'भविक जीव संशय निवारै' यह स्वभाव के आश्रय से संशय निवारे, उनकी वाणी की महिमा को निमित्त कहा जाता है। आहा...हा... ! सब अजब बातें हैं।

वाणी जड़ कि जिसे खबर नहीं कि मैं कौन हूँ ? और साथ में सर्वज्ञ हैं, वे कौन हैं ? उसका तो उसे कहाँ पता है ? उस वाणी में... आहा...हा... ! सर्वज्ञ का स्वरूप आता है, अनन्त-अनन्त गुणों से भरपूर भगवान आत्मा, पूर्ण केवलज्ञान ऐसा होता है, पूर्ण केवल दर्शन ऐसा होता है, उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द प्रगटा हो तो वह ऐसा होता है, यह वाणी कहती है। देखो तो ! आहा...हा... ! जड़ में स्व-पर को कहने की ताकत है। जड़ में स्व-पर को जानने की ताकत नहीं। आहा...हा... ! बापू ! वह वाणी क्या होगी ! ऐसे का ऐसा मानना, वह क्या चीज है ? आहा...हा... ! जिसकी रजकण की पर्याय... भाषा, वह भी कोई अद्भुत है ! जिसमें सर्वज्ञपना निमित्त है, आहा...हा... ! वह निमित्त है, इसलिए निमित्त से भाषा हुई है — ऐसा नहीं है। इसलिए निमित्त कहलाये न। आहा...हा... ! वाणी में ही उस समय की पर्याय का ऐसा चमत्कार है। आहा...हा... !

अनन्त-अनन्त सिद्धों को बतलाये। वाणी ऐसा कहे, भविष्य की पर्याय का अन्त नहीं, उसे भी भगवान जानते हैं — ऐसा भाषा कहे। आहा...हा... ! वाणी ऐसा कहे, भगवान ज्ञान का और दर्शन का उपयोग, दो होने पर भी एक समय में होते हैं। आहा...हा... ! ज्ञान की पर्याय तीन काल-तीन लोक को भिन्न-भिन्न जानती है और उस समय की दर्शन

www.vitragvani.com

की पर्याय सामान्यरूप से एक सत्तारूप है, (ऐसा) भेद बिना देखती है, यह वाणी कहती है। आहा...हा...! ऐसी वाणी की कोई महिमा जिसे लगे तो देव-शास्त्र-गुरु की महिमा, वह चैतन्य की महिमा लगे, उसे वह निमित्त कही जाती है। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है। वाद-विवाद करके झगड़ा खड़ा करे प्रभु! अरे... परन्तु ऐसा होगा? परन्तु उसे कहीं बाहर का साधन होता है या नहीं? सीधे फलांग मारकर आना है? (ऐसा कहते हैं) अरे... सुन न प्रभु! आहा...हा...!

वाणी ऐसा कहती है कि तेरे स्वभाव को प्रगट करने में किसी दूसरी चीज की अपेक्षा नहीं है — ऐसा वाणी कहती है न? आहा...हा...! तेरे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करने के लिये दूसरे किसी राग की, निमित्त की, देव-शास्त्र-गुरु की अपेक्षा नहीं है; उसे भेद की अपेक्षा नहीं है — ऐसा कहती है कौन परन्तु? आहा...हा...! प्रवीणभाई! यह सब सूक्ष्म बातें हैं। कहाँ लोहे का व्यापार और कहाँ आत्मा की (बातें)! तुम्हारा लड़का आया था न? आया था। आहा...हा...!

देव की महिमा, गुरु की महिमा... जिसके शरीर में... आहा...हा...! गलित कोढ़ हो तो भी वे सन्त आनन्द में हैं; वे रोग में नहीं और उस रोग की ओर के विकल्प में वे नहीं। आहा...हा...! ऐसी तो गुरु की दशा की महिमा! उनकी वाणी की महिमा का पार नहीं होता। आहा...हा...! ऐसी वाणी! और वह वाणी, देव-गुरु को पूर्ण ज्ञान हुआ है, इसलिए वह वाणी निकलती है — ऐसा भी नहीं। आहा...हा...! शशीभाई! आहा...! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी प्रभु पूर्णानन्द का नाथ है, अनन्त वचनातीत है — ऐसा वचन कहते हैं। आहा...हा...! वह वाणी ऐसा कहती है कि वस्तु का अनुभव वचनातीत, विकल्पातीत है, वह वाणी कहती है। आहा...हा...! ऐसी वाणी को यहाँ शास्त्र कहा जाता है। जो वे कल्पित बनाकर शास्त्र बनावे और उन्हें देव तथा गुरुरूप से कल्पित बनावे, बापू! उसे (देव-गुरु-शास्त्र नहीं कहा जाता है)।

आहा...हा...! अगाध जिनकी महिमा देव की, अगाध जिनकी महिमा गुरु की! वह तो चैतन्य है परन्तु जिनकी वाणी की अगाध महिमा! आहा...हा...! इसलिए श्रीमद् में आता है — 'वचनामृत वीतराग के' - वचन 'परम शान्त रस मूल, औषध जो भवरोग

www.vitragvani.com

के परन्तु कायर को प्रतिकूल, ऐ गुणवन्ता रे ज्ञानी, अमृत बरस्या रे पंचम काल मा...' आहा...हा...! वाणी आयी न? वाणी बरसी और अन्दर अनन्त आनन्द बरसा, उस अतीन्द्रिय आनन्द की बातें की है उस वाणी ने। वाणी अर्थात् यह बनिये? आहा...हा...!

देव-शास्त्र-गुरु की महिमा... परन्तु इस प्रकार, हाँ! आहा...हा...! **चैतन्यदेव की महिमा जागृत करने में, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करने में...** आत्मा में-पर्याय में गहरे संस्कार दृढ़ करने में देव-गुरु और शास्त्र की महिमा निमित्तरूप है। आहा...हा...! **उसके गहरे संस्कार दृढ़ करने में...** ध्रुव को ध्रुवरूप से पकड़ने में। आहा...हा...! गहरा प्रभु तो अन्दर तल में पड़ा है। आहा...हा...! उसे पकड़ने के लिये जो वाणी और देव-गुरु, उनकी महिमा उनके निमित्त में है। संस्कार डाले उसे। आहा...हा...! बापू! एक-एक वाणी अलौकिक है, बापू! यह कोई साधारण वार्ता नहीं। आहा...! तीन लोक का नाथ जिनेन्द्रदेव, उनका केवलज्ञान और उनका आनन्द तथा गुरु की साधकदशा का आनन्द और उसे कहनेवाली वाणी में चमत्कारिक कोई वाणी है! आहा...हा...! यह देव-गुरु-शास्त्र, दिगम्बर सन्तों ने जो बतलाया और है, ऐसा (अन्यत्र) कहाँ है? अन्यत्र कहीं नहीं है। दूसरे को दुःख लगे, बापू! भाई! क्या हो? आहा...! दूसरे का अनादर करना नहीं है, यह तो सत्य का उद्घाटन है। सत्य ऐसा है, भाई! आहा...! सत्य को आँच न देना, उसमें शिथिलता नहीं करना। आहा...हा...!

ऐसी जो महिमा **उसके गहरे संस्कार दृढ़ करने में तथा स्वरूपप्राप्ति करने में...** संस्कार में और स्वरूप की प्राप्ति में ऐसे देव और वाणी का निमित्तपना है। आहा...! निमित्तपना है, इसके अतिरिक्त दूसरे देव-गुरु-शास्त्र का निमित्तपना (नहीं है)। स्वरूप की प्राप्ति के लिये और दृढ़ संस्कार के लिये दूसरे निमित्त नहीं हो सकते, तथापि निमित्त कुछ करता नहीं है। आहा...हा...! ऐसा महिमावाला प्रभु,... वाणी ऐसा कहती है कि आत्मा के आनन्द के अनुभव के कार्य में पर के कारण से कार्य होता है, (उससे) वाणी इन्कार करती है। आहा...हा...! देखो! यह शास्त्र! देखो, इस वाणी में निकलती चमत्कृति! आहा...हा...! वह वाणी ऐसा कहती है, प्रभु! स्वयं शुद्ध चैतन्यघन है, वह राग और परपदार्थ की पर्याय का कारण नहीं है। आहा...हा...! परन्तु वह कहती है कौन? वाणी। आहा...हा...! बापू, पुद्गल में भी कैसा है!

www.vitragvani.com

उसमें लिखा है न? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में (लिखा है) ऐसा कि पुद्गल की शक्ति तो देखो! जो केवलज्ञान की पर्याय... आहा...हा...! उसे भी रोकता है। वहाँ व्यवहार से बात की है। उसमें भी विवाद उठता है। वहाँ तो ऐसा बतलाना है कि परमाणु की उत्कृष्ट पर्याय, जीव स्वयं उसके उल्टेपन के कारण केवलज्ञान नहीं करता, उसमें निमित्तपना किस वाणी (पुद्गल) का होता है। आहा...हा...! और वह भी परमाणु में परिणमन की अधिकतम हद की दशा कैसी होती है? वह बताते हैं। समझ में आया?

केवलज्ञान — ऐसा जो महाप्रभु! आहा...हा...! जिसकी उत्पत्ति के लिये पर की अपेक्षा तो नहीं परन्तु पूर्व की पर्याय की भी जिसे अपेक्षा नहीं है। वह तो नहीं परन्तु केवलज्ञान की पर्याय को उत्पन्न करने में द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, आहा...हा...! वह केवलज्ञान एक समय में अपने षट्कारक से परिणमित होकर उत्पन्न हुआ है — ऐसा वाणी कहती है। आहा...हा...! उस वाणी को शास्त्र कहते हैं। ऐसे शास्त्रों की महिमा, अपने चैतन्य की महिमा करे तो उसे निमित्त कहा जाता है। आहा...हा...! यह ६५ (बोल पूरा) हुआ।

थोड़ा भी परम सत्य, परम सत्य सत्रूप जैसा है, वैसा होना चाहिए। आहा...हा...! वाणी का ऐसा चमत्कार, तथापि वह वाणी, स्वरूप की महिमा स्वयं करे, उसको निमित्त कहलाती है। गजब प्रभु! आहा...हा...! वह वाणी ऐसा कहे, प्रभु! तुझमें अनन्त गुण हैं। कितने अनन्त हैं? कि उनका छोर नहीं। वह वाणी कहती है न? दशों दिशा में आकाश का छोर नहीं। क्या है यह? यह वस्तु का स्वभाव ही कोई ऐसा है। क्षेत्र का ऐसा, काल का ऐसा, भव का ऐसा, भाव का ऐसा... आहा...हा...! वाणी का भी ऐसा कोई (स्वभाव) है। आहा...हा...! अब इतना कहकर (आगे कहते हैं)।

बाह्य में सबकुछ हो उसमें — भक्ति-उल्लास के कार्य हों उनमें भी आत्मा का आनन्द नहीं है। जो तल में से आये वही आनन्द सच्चा है॥ ६६॥

बाह्य में सबकुछ हो उसमें — भक्ति-उल्लास के कार्य हों... वाणी की महिमा हो, भगवान की मूर्ति की महिमा हो, भगवान साक्षात् है, उनकी वाणी की और उनकी महिमा हो। आहा...हा...! **उनमें भी आत्मा का आनन्द नहीं है।** उल्लसित शुभभाव आवे

www.vitragvani.com

और उल्लसित मानो कि आहा...हा... ! मानों पर में उल्लास आया हो — ऐसा दिखे, तथापि वह जो उल्लसित विकल्प है... आहा...हा... ! उसमें कहीं आत्मा का आनन्द नहीं है। अरे...रे ! ऐसी बातें इसने कहाँ (सुनी हैं) ? इसके निज घर की गहरी (बात है)। परमात्मा तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव (यह कहते हैं)। बाड़ा में जन्में, णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं... जाओ हो गया, अरे... बापू ! इसका एक पद और एक गाथा भी... वाणी है न ? उसका भाव समझना... वास्तविक वह सत्, सत्‌रूप किस प्रकार है ? आहा...हा... !

यह उल्लास के कार्य होते हैं, अर्थात् ऐसा शुभभाव आता है। **उनमें भी आत्मा का आनन्द नहीं है।** आहा...हा... ! पंच परमेष्ठी और पंच परमेष्ठी द्वारा कथित वाणी। उसमें सिद्ध को भले वाणी नहीं। उस वाणी की... आहा...हा... ! महिमा आवे, बहुमान आवे, तथापि वह भाव आनन्द नहीं है। आहा...हा... ! प्रभु ! तू कौन है ? इस विकल्प में तेरा आनन्द नहीं। तुझे पता नहीं प्रभु ! आहा...हा... ! मन्दिर... आहा...हा... ! देखो ! बैंगलोर में पन्द्रह लाख का मन्दिर... वह तुम्हारा वैद्य, गांगोली ! डॉक्टर ! ऐसा देखकर (कहा) आहा...हा... ! एक हजार रुपये मन्दिर के लिये दिये। ऐसी महिमा आवे परन्तु वह भाव विकल्प है, यह आनन्द नहीं।

अभी आज तो पत्र आया नहीं, परन्तु दो-चार दिन से इन्तजार करते हैं। ए विपिनभाई ! क्या यह तुम्हारा तो अभी आया नहीं। खात-मुहूर्त होने के बाद। क्या हुआ खात-मुहूर्त के समय ? सात दिन हो जाते हैं, किसी समय आठ दिन जाते हैं, यह रामजीभाई बैठै नहीं, उसके भानेज का पत्र आना चाहिए न ? खात-मुहूर्त में दो लाख और दो हजार उसने दिये हैं। रामजीभाई के भानेज ने ! रामजीभाई के (भानेज ने) कहाँ गया ? दो लाख दो हजार ! सत्रह तारीख को वहाँ मुहूर्त हुआ न ? नैरोबी ! मुमुक्षु पन्द्रह लाख का मन्दिर बनानेवाले हैं। कैसा उल्लास लगे ! परन्तु उस उल्लास में, विकल्प है, आनन्द नहीं। आहा...हा... !

भरत चक्रवर्ती ने तीन काल की चौबीसी के (बिम्ब) बनाये। यहाँ है न ? भूत के -भविष्य के और वर्तमान के बिम्ब बनाये। भरत चक्रवर्ती स्वयं समकिती... आहा...हा... ! त्रय चौबीसी के बिम्ब बनाये। विकल्प लगे, लोगों को उल्लास लगे। आहा...हा.. ! परन्तु

www.vitragvani.com

उस उल्लास का वीर्य, वह आनन्द नहीं; दुःख है। आहा...हा...! भले वह शुभभाव है, आहा..हा...! प्रभु! तेरा मार्ग कोई अलग, भाई! तू कोई अलौकिक वस्तु है। विकल्प से ज्ञात नहीं होता, वाणी से ज्ञात नहीं होता, तथापि वाणी उसे निमित्त होती है। आहा...हा...! वाणी निमित्त होती है — इसका अर्थ? कि निमित्त उसे कहते हैं कि जो पर का कुछ नहीं करता।

प्रश्न : तो फिर निमित्त की महिमा क्या?

समाधान : यह व्यवहार कहा न, व्यवहार। आनन्द नहीं; दुःख है — ऐसा है, बापू! अरे...रे! अभी तो बदलाव कर डाला है। प्रभु का विरह पड़ा, भरत में भगवान रहे नहीं, भरत में केवलज्ञान रहा नहीं, वह प्रगट हो ऐसी शक्ति (रही नहीं) आहा...हा...! अरे! सत्य का स्वरूप (जिसका) प्रभु ने जो उद्घाटन किया... आहा...हा...! ऐसा उद्घाटन करने पर भी जगत को ऐसा लगता है (कि) यह तो एकान्त है। बापू! तेरा स्वरूप ही ऐसा है। ऐसा भगवान ने तो जाना है परन्तु वाणी ने ऐसा कहा है। आहा...हा...! कि जिसे ऐसा उल्लास (आता है) प्रभु ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति तुझे उल्लास आता है,... ऐसा सर्वज्ञ सर्वदर्शी, इन्द्र ऐसे समवसरण में चँवर ढोलते हों, आहा...हा...! छह-छह घड़ी तक ओमध्वनि फिरती है और मुख के सामने ऐसा धर्मचक्र चलता है।

कहीं ऐसा आया अवश्य था, अभी कहीं (आया था कि) रथयात्रा का कहीं ऐसा आया था। वैसे तो अपने रथयात्रा में विद्यारूढ़ नहीं आता? निर्जरा (अधिकार) में। विद्यारूढ़। फिर दूसरा व्यवहार उसमें आ गया। जो अन्दर में ज्ञानरूप रथ चलाता है, वह निश्चय है और प्रभु का विहार हो, तब सामने धर्मचक्र आगे चलता है और इन्द्रों का-देवों का जयघोष बजता है, लाखों करोड़ों मनुष्य और देव-जय हो, जय हो! (करते हों) वह भी विहार में, हाँ! यहाँ परमात्मा को रथ में बैठाकर और विहार का प्रदर्शन करना... उसे जगन्मोहनलालजी ने ऐसा लिखा है। आहा...हा...! प्रभु विहार करते हैं, तब बाह्य महिमा भी कितनी (होती है) इन्द्र, देव, जयघोष करते हैं, धर्मचक्र सामने चलता है, आठ मांगलिक सामने चलते हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : भगवान तो अद्धर आकाश में चलते हैं।

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्धर चलते हैं, वहीं का वहीं सामने होता है। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर हो, वे जमीन से पाँच हजार धनुष ऊँचे चलते हैं। आहा...हा... !

प्रश्न : यह सब नीचे चलते हैं ?

समाधान : यह सब साथ-साथ चलते हैं। लगता सब ऐसा है कि उनके साथ हैं, हैं तो नीचे और ऊपर भी साथ-साथ लगते हैं। आहा...हा... !

जो तल में से आये वही आनन्द सच्चा है। है ? आहा...हा... ! वर्तमान ज्ञान की पर्याय को अपार स्वभाव के सन्मुख झुकाये, उसके तल में ले जाये अर्थात् ध्रुव की ओर ले जाये... आहा...हा... ! तब उसका तल हाथ आता है। आहा...हा... !

प्रश्न : कितना गहरा जाना चाहिए ?

समाधान : आहा...हा... ! पर्याय के समीप ही प्रभु पड़ा है न ! आहा...हा... ! लगा हुआ ऐसे साथ ही प्रभु पड़ा है। आहा...हा... ! महाप्रभु एक समय की पर्याय के समीप ही पड़ा है, वह दूर नहीं है। वहाँ मुम्बई में चर्चा होती थी न ? पर्याय और द्रव्य दो भिन्न हैं, कैसे ? कि विंध्याचल पर्वत और अमुक की तरह। (इस प्रकार) बिना समझ की चर्चा होती थी। अपने सब लड़के हैं न, घाटकोपर ! प्रभु तो पर्याय के पास ही पूरा पड़ा है।....

जो यह जानने की पर्याय काम करती है, यह जानना, यह जाना, यह जानता है तो अपनी पर्याय अपने को; उस पर्याय के समीप प्रभु अन्दर पड़ा है।

मुमुक्षु : यह प्रदेश भिन्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश भिन्न भले ही वह अपेक्षा से कहे जायें, परन्तु फिर भी वह समीप पड़ा है। है तो उसमें के ही असंख्य प्रदेश, उसका अन्तिम अंश है, उसमें पर्याय है और उसकी समीप के जो सब ध्रुव अंश हैं, वे ध्रुव के अंश हैं परन्तु वे समीप हैं, उनके बीच कुछ अन्तर नहीं है। अरे...रे ! राग और स्वभाव को अन्तर है, सन्धि है, सांध है — ऐसे पर्याय और द्रव्य के बीच सांध ऐसी नहीं, भिन्न है। आहा...हा... ! ऐसी वाणी वीतराग के सिवाय कहाँ है ? बापू ! जिनवर के सिवाय कहीं नहीं है। तीन लोक का नाथ... !

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! अरे...रे ! ऐसी वाणी सुनने को मिले नहीं, वह कब विचार करे ? और कब अन्दर जाये ? आहा...हा... ! दुर्लभ.. दुर्लभ वस्तु हो गयी है। आहा...हा... ! सन्तों ने तो सरल करके रखी है। आता है न अनुभवप्रकाश !

जो तल में से आये वही आनन्द सच्चा है। आहा...हा... ! अन्तर में आनन्द जहाँ है, वहाँ से पर्याय में आनन्द आवे। पर्याय में-राग में आनन्द माना, वह आनन्द नहीं। आहा...हा...! पर्याय में तल में से — ध्रुव में से आनन्द आवे। पर्याय वहाँ ढलकर (आनन्द आवे) उसे सच्चा आनन्द कहते हैं, वह अतीन्द्रिय आनन्द तो अन्तर में से आता है। आहा...हा... ! इस शुभराग में भी आनन्द नहीं है। भगवान की महिमा करो, गाओ, भक्ति लाख करो, करोड़ करो परन्तु वह सब शुभराग है, दुःख है, आनन्द नहीं; आनन्द तो अन्तर में है, वहाँ से आवे तब आनन्द कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रत्येक प्रसंग में शान्ति, शान्ति और शान्ति ही लाभदायक है॥ ६७॥

जेठ कृष्ण ६, सोमवार, दिनाङ्क २६-०६-१९७८
प्रवचन-२१ वचनामृत- ६७-७०

(वचनामृत) ६६ बोल हुए हैं। ६७, **प्रत्येक प्रसंग में शान्ति, शान्ति और शान्ति ही लाभदायक है।** अर्थात् क्या? कैसा भी प्रसंग हो परन्तु आत्मा (का) ज्ञातादृष्टारूप रहना वह शान्ति है। आहा...हा...! चाहे तो प्रतिकूल संयोग हो, अनुकूल हो; उस प्रत्येक प्रसंग में मैं चैतन्य शुद्ध आनन्द हूँ, यह दृष्टि उसकी हटना नहीं चाहिए। आहा...हा...! मैं तो एक ज्ञायक हूँ मेरा अस्तित्व है उसमें पर का प्रवेश नहीं है – उसी प्रकार मेरा जो स्वभाव है, वह पर में नहीं जाता, आहा...हा...! फिर पर के प्रसंग में उसे शान्ति ही रहती है, खलबलाहट नहीं होती। आहा...हा...! ऐसी बात है। तीन बार लिया है न?

प्रत्येक प्रसंग में... मैं एक चैतन्य हूँ, उसका अस्तित्व किस क्षेत्र में, किस काल में और किस प्रसंग में नहीं है? आहा...हा...! अपना जो आनन्द और ज्ञान, उसकी जो अस्तित्व की स्थिति – भगवान आत्मा का अस्तित्व वह किस प्रसंग में नहीं है? जो-जो प्रसंग आवे तब अपने अस्तित्व को याद करे, उसका स्मरण करे और उसमें रहे तो उसे शान्ति मिले। आहा...हा...! शुभभाव का प्रसंग हो, अशुभभाव का भी प्रसंग आवे तो भी वहाँ से भिन्न पड़कर मैं तो ज्ञान हूँ यह बात अन्दर से हटना नहीं चाहिए। आहा...हा...! तो उसे शान्ति रहे। कुछ कर दूँ तो मुझे शान्ति रहे, पर से कुछ अनुकूलता मिले तो मुझे कुछ ठीक मिले (ऐसा रहे) वहाँ तक तो उसे अशान्ति रहती है। आहा...हा...! यह ६७ (बोल पूरा हुआ)।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

पूज्य गुरुदेव की वाणी मिले वह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतलानेवाले गुरु मिले और उनकी वाणी सुनने को मिली वह मुमुक्षुओं का परम सौभाग्य है। प्रतिदिन प्रातः-मध्याह्न दो बार ऐसा उत्तम सम्यक्तत्त्व सुनने को मिलता है इस जैसा दूसरा कौन-सा सद्भाग्य होगा ? श्रोता को अपूर्वता लगे और पुरुषार्थ करे तो वह आत्मा के समीप आ जाए और जन्म-मरण टल जाए - ऐसी अद्भुत वाणी है। ऐसा जो श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह मुमुक्षु जीवों को सफल कर लेने योग्य है। पञ्चम काल में निरन्तर अमृत झरती गुरुदेव की वाणी भगवान का विरह भुलाती है! ॥ ६८ ॥

६८ में तो बहिन ने स्वयं का (भक्ति का) वर्णन किया है, वह पढ़ लेना।

प्रयोजन तो एक आत्मा का ही रखना। आत्मा का रस आये वहाँ विभाव का रस झर जाता है ॥ ६९ ॥

६९ **प्रयोजन तो एक आत्मा का ही रखना।** क्योंकि स्वयं जो आत्मा है, उसे दृष्टि करके उसमें रहना, वह प्रयोजन है बाकी सब व्यर्थ है। आहा...हा... ! **प्रयोजन तो एक आत्मा का ही रखना।** पर का नहीं और पुण्य-पाप के भाव का भी प्रयोजन में नहीं, आहा...हा... ! ऐसी बात है। चैतन्यवस्तु भगवान आत्मा अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द और अनन्त ज्ञान से भरपूर भगवान परिपूर्ण वस्तु है परन्तु समीप में वह प्रभु होने पर भी पर्याय में - वर्तमान में व्यक्त प्रगट दशा पर लक्ष्य होने से प्रभु समीप में, प्रभु स्वयं विराजमान है, उसे वह नजर नहीं पड़ता, उसकी अस्ति तो सम्हालकर रखना कि अस्ति यही है, इतना ही आत्मा है। इस आत्मा में राग-द्वेष भी नहीं है ऐसा प्रयोजन इसे एक ही है। आहा...हा... ! शुभराग आवे वह प्रयोजन नहीं है ऐसा कहते हैं। अशुभ से बचने को शुभ आवे परन्तु वह कोई प्रयोजन नहीं है। आहा...हा... ! एक चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द प्रभु स्वयं है, वह इसका प्र-विशेष, योजन-जुड़ान होना चाहिए। राग में नहीं परन्तु

www.vitragvani.com

यह जुड़ान होना चाहिए। सूक्ष्म बात है भाई! यह तो सादे शब्दों में है परन्तु बात में ऊँचे भाव हैं। आहा...हा...!

प्रयोजन तो एक आत्मा का ही रखना। ऐसा। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह भी प्रयोजन नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! उसमें — अध्यवसाय में कहा न, भगवान ने जब ऐसा कहा - पर को जिला-मार नहीं सकता उसका स्पष्टीकरण भाई राजमलजी ने ठीक किया है। दूसरे को जिला नहीं सकता अर्थात् उसके प्राण को मैं रख नहीं सकता, ऐसा। उसी प्रकार उसके प्राण को मैं हर नहीं सकता। मारने की व्याख्या यह की है और मैं पर को सुख-दुःख नहीं दे सकता अर्थात् उसके पुण्य के कारण जो संयोग मिले, वह मैं नहीं दे सकता। सुख के संयोग हैं वे मैं नहीं दे सकता। आहा...हा...! उसी प्रकार दुःख के संयोग हैं, वे भी मैं नहीं दे सकता। आहा...हा...! ऐसे एकत्वबुद्धि का अध्यवसाय का जहाँ निषेध किया है तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं तो ऐसा कहता हूँ और ऐसा इसमें से जानता हूँ कि पराश्रित व्यवहार अप्रयोजनभूत है, उसका निषेध किया है। आहा...हा...! पर के आश्रित जितना व्यवहार होता है... आहा...हा...! उसे भी निषेध किया है, प्रभु ने निषेध किया है। आहा...हा...! (समयसार, कलश 173)। आहा...हा...! प्रयोजन तो अन्दर निश्चय आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता (करना) वह एक ही प्रयोजन है। आहा...हा...! बाकी सब बातें हैं।

आत्मा का रस आये वहाँ विभाव का रस झर जाता है। आहा...हा...! आत्मा आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय प्रभुता का पिण्ड प्रभु है, उसका जिसे रस लगता है, उसे पर का रस झर-छूट जाता है। आहा...हा...! बहुत संक्षिप्त वाक्य! जिसे प्रभु आत्मा का रस लगा... आहा...हा...! शुद्ध चैतन्यघन सहजात्म चैतन्यस्वरूप, अनादि अनन्त नित्य ही हूँ, उसमें किसी का प्रवेश नहीं और उसका किसी क्षेत्र में विरह नहीं, किसी काल में उसका अभाव नहीं - ऐसे भाववाली जो चीज है, उसका जिसे रस लगे, उसे दूसरे सब रस छूट जाते हैं। आहा...हा...!

एक म्यान में दो (तलवार) नहीं रह सकती। जिसे आत्मा की एकाग्रता (होती है) यह आत्मा शुद्धचैतन्य है, इसकी रुचि और दृष्टि लगे, रस लगे, वह। रस का अर्थ एकाग्र

www.vitragvani.com

होना। जिसे आत्मा में एकाग्रता का रस लगे... आहा...हा... ! उसे राग में एकाग्रता का रस छूट जाता है, झर जाता है। है ? **वहाँ विभाव का रस झर जाता है।** झर जाता है अर्थात् छूट जाता है, छोड़ना नहीं पड़ता। जितने प्रमाण में चैतन्यस्वरूप आनन्द का रस लगा, अर्थात् उस ओर का झुकाव जितना हुआ उतना पराश्रय छूट जाता है। आहा...हा... ! बहुत संक्षिप्त बात है। बात तो, माल तो यह है कि स्व आश्रय करना, वही प्रयोजन है। लाख बात की बात और बारह अंग का सार... आहा...हा... ! भाई ने कहा न, पर से खस स्व में बस, टूटू टच, एकटलू बस। भाषा तो बहुत संक्षिप्त है। वास्तव में पर के आश्रय से छूट, स्व के आश्रय में आ, यह सम्पूर्ण कथन का प्रयोजन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न! प्रयोजन तो यह एक ही है, परन्तु कथन और उपदेश में तो ऐसा आता है न कि स्व का आश्रय ले तो पर का आश्रय छूट जाता है। आ...हा... ! 'पर संग एव' आया है न ? बन्ध अधिकार! 'पर संग एव' स्व संग को छोड़कर और कर्म का, निमित्त आदि परचीज है, उसका जो संग किया, सम्बन्ध किया, तो विभाव होगा, उससे नहीं होगा परन्तु तूने किया इसलिए होगा। आहा...हा... ! बाहर के संग की बात नहीं है कि भाई! इस स्त्री का, कुटुम्ब का, मकान और पैसे का संग... वह नोकर्म तो बाहर है। आहा...हा... !

अन्तर में असंग प्रभु! यह बात जँचे किस तरह ? अन्दर असंग चीज पड़ी है, चैतन्य प्रभु! जिसे राग का भी सम्बन्ध नहीं, आहा...हा... ! उसे पर के संग की तो क्या बात करना ? भाषा, ऐसा कहते हैं 'पर संग एव' आस्रव हो पर संग के सम्बन्ध से तुझे विभाव हो, प्रभु! विभाव हो तेरे कारण, उसके कारण नहीं परन्तु पर का संग तूने किया, उतना तूने पर का आश्रय किया। आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म बातें!

(समयसार की) १२ वीं गाथा का विरोध आया है, १२ वीं गाथा। कोई साधु होंगे उन्होंने कुछ अर्थ ठीक किया होगा, यहाँ सोनगढ़ की लाइन अनुसार। इनका विरोध किया है। अभी तो शुद्ध उपयोग नहीं और तुम शुभ उपयोग छोड़कर शुद्ध उपयोग हो तो धर्म (होता है) यह बात अभी तुम्हें सोनगढ़ की श्रद्धा लगती है। कोई निकले, बात तो सच्ची

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। आहा...हा... ! और '**अपरमे द्विठा भावे**' का अर्थ यही किया है। दिल्ली में भी सेठ ने पूछा था न ? कि यह लोग कहते हैं कि निचली भूमिकावालों को तो व्यवहार का उपदेश देना। चौथे, पाँचवें, छट्ठे का (उपदेश नहीं देना) ऐसा नहीं कहा, उसका अर्थ ही यह नहीं है '**ववहारदेसिदा**' (कहा) वह तो पद की रचना के लिये आया है परन्तु वहाँ तो ऐसा आया है... आहा...हा... ! परन्तु किसे (पड़ी है) ? यह तो बड़ी चर्चा (हुई है) दो जैनदर्शन (तात्कालीन समाचार-पत्रिका) आये हैं, बहुत उनका विरोध किया है। सोनगढ़ का सिद्धान्त तो एकान्त है, पाखण्ड है, उसका तुमने पक्ष किया! उसे जँचे वैसा कहे न, वह प्रभु है, उसे जो बात जँची हो ऐसा ही आत्मा उसे लगे, उसमें दूसरा क्या लगे ? आहा...हा... ! और इसका फल क्या आयेगा इसका तो पता नहीं। आहा...हा... ! सत्य से विरुद्ध असत्य की श्रद्धा और असत्य की स्थापना करेगा (तो) प्रभु ! तू दुःखी होगा, भाई ! आहा...हा... ! उसका फल (आयेगा तब) तुझे कठिन पड़ेगा, बापू ! तुझे अभी ऐसा सरल लगेगा कि हम तो व्यवहार करते-करते निश्चय करते हैं, शुभ उपयोग से शुद्ध होता है। बापू इस मिथ्यात्वभाव का फल कठोर पड़ेगा, भाई ! आहा...हा... ! तू ही प्रभु है न! आहा...हा... ! तूने पर का संग किया इसलिए तुझे ऐसी श्रद्धा खड़ी हुई है। आहा..हा... ! और पर के संग के फल में भी भविष्य में प्रतिकूल संयोग आयेंगे और तुझे दुःख होने का भाव भी तुझमें (रहेगा)। आहा...हा... ! पर से होगा ऐसा तू मानता है तो फिर पर से तुझे दुःख होगा, वहाँ वह भी तुझे होगा। आहा...हा... ! आहा...हा... ! बात बहुत (कठिन है)।

उपदेश का अर्थ टीकाकार ने किया, उसे तो देखते नहीं हैं। जिसने आत्मा का ज्ञान किया है, प्रयोजन (भूत) चीज जो वस्तु है, उसका जिसने सम्यग्दर्शन स्व के आश्रय से प्रगट किया है ऐसे जीव को निर्विकल्प ध्यान में हो तब तो उसे व्यवहार जाननेयोग्य नहीं रहता - इतनी बात है परन्तु निर्विकल्प ध्यान में न हो तब उसकी अशुद्धता का अंश हो और शुद्धता की अपूर्णता हो उसे जानना यह प्रयोजन व्यवहारनय का है। व्यवहार का उपदेश करना यह बात वहाँ है नहीं। सेठ ने भी वहाँ दिल्ली में पूछा था, क्योंकि वे सामनेवाले ऐसा कहते हैं कि शास्त्र में ऐसा है और सोनगढ़वाले कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय नहीं होता और यहाँ तो निचलेवालों को व्यवहार का उपदेश करना - ऐसा कहते हैं, परन्तु यह उपदेश

www.vitragvani.com

करने की बात ही नहीं है, प्रभु! यह तो पद की रचना में यह शब्द आ गया है। जो ऐसा आया था न, बन्ध कथा... बन्ध की कथा दु:खदायक है। यह तो भाषा में क्या बन्ध की कथा दु:खदायक है ?

जो स्वरूप है, उसे राग का बन्धभाव, वह बन्धभाव दु:खदायक और विसंवाद है। आहा...हा...! ऐसी भाषा आवे कि निचली भूमिकावालों को व्यवहार का उपदेश करना। उपदेश करना अर्थात् क्या ? आहा...हा...! उस काल में उस अशुद्धता और शुद्धता के अंश का ज्ञान करे, उस पर्याय का ज्ञान करे, इसलिए व्यवहार कहा जाता है। त्रिकाल की दृष्टि है वह निश्चय है और उस काल में उसे पूर्ण दशा नहीं हुई इसलिए उसे अपूर्ण दशा में शुद्धता के अंश भी हैं और अशुद्ध भी है, उसे उस काल में उस-उस समय में, उस-उस काल में वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहा...हा...! वस्तुस्थिति तो ऐसी है, अर्थ दूसरे किये। बहुत पृष्ठ भरे हैं, आहा...हा...! व्यवहार को हेय (कहा तो कहते हैं) नहीं, व्यवहार हेय नहीं है; अभी तो व्यवहार ही है, अभी शुद्ध उपयोग है कहाँ ? आहा...हा...! अरे.. प्रभु! तुझे पता नहीं है।

मुमुक्षु : तब तो अभी धर्म ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं। उसे तो धर्म ही वह है। आहा...हा...! शुभ उपयोग वही अभी तो धर्म है, शुद्ध उपयोग अभी है नहीं। अरे... प्रभु! क्या करता है ? आहा...हा..! तू अपनी महत्ता को कलंक लगा देता है। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन हो, वह भी शुद्ध उपयोग की भूमिका में होता है। दर्शन, ज्ञान, और चारित्र - यह आया न ? द्रव्यसंग्रह ४७ गाथा - **दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।** ध्यान में जो शुद्ध उपयोग होगा, वह क्या चीज होगी ? आहा...हा...! ४७ गाथा आती है न! आहा...हा...! बहिन आयी हैं। (एक विद्वान् के) घर से आयी हैं, उनके लड़के को पूछा था, लड़का साथ में है, उसे पूछा था माँ आयी है ? तो कहता है, हाँ! उन्हें प्रेम है। वस्तु ऐसी है, बापू! भाई! क्या करें ? आहा...हा...! यह वाद-विवाद का विषय नहीं है प्रभु! तेरे घर की ऐसी वस्तु है। आहा...हा...! पर का आश्रय करने जायेगा वहाँ तुझे विकार होगा। आहा...हा...! और वह विकार शुभयोग भी तुझे सहायकरूप से शुद्धता बनावे, यह नहीं हो सकता। भाई!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

तुझे लाभ की बात तो यह है। आहा...हा...! और नुकसान की बात में तू हर्ष मानता है। आहा...हा...! उससे वर्तमान में दुःख है, उसके फलरूप से दुःख है। ७४ गाथा में ऐसा कहा न, ७४ गाथा (समयसार की है न) शुभभाव वर्तमान दुःख है और भविष्य में दुःख का कारण है। यह क्या कहा ? आहा...हा...! अरे..! प्रभु का उपदेश तो देखो! आहा...हा...! जिनेन्द्र की वाणी तो देखो! यह शुभयोग तुझे वर्तमान में राग है इसलिए दुःखरूप है और इसका फल पुण्य का बन्धन होगा और पुण्य के कारण संयोग मिलेंगे, उन संयोगों में तेरा लक्ष्य जायेगा इसलिए तुझे राग ही होगा। आहा...हा...! और यहाँ कहते हैं कि शुभयोग से शुद्धता होगी... प्रभु! क्या करता है तू यह ? आहा...हा...!

यहाँ ऐसा कहते हैं कि शुभयोग का फल भविष्य में दुःख है अर्थात् ? कदाचित् ऐसा पुण्य बँधे कि जिसके (कारण) वीतराग मिलेंगे, उनकी वाणी मिलेगी परन्तु वह परद्रव्य है न प्रभु! आहा...हा...! कठिन बातें, बापू! यह सुनने को मिले, वहाँ तुझे राग होगा। आहा...हा...! यह बात तो जिनेन्द्रदेव ऐसा कहें, दूसरे का भार नहीं है। आहा...हा...! दुनिया की, समाज की संख्या इसमें मानेगी या नहीं, इसकी उन्हें कुछ परवाह नहीं है, प्रभु! मार्ग तो तेरा यह है न! वह शुभभाव भी दुःखरूप है और तुझे शुद्ध उपयोग, आनन्द का कारण होगा ? आहा...हा...! इसलिए वहाँ तो ऐसा कहा है कि **दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।** इसका अर्थ क्या हुआ ? यह शुद्ध उपयोग होगा या क्या होगा ? अरे... प्रभु! तुझे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ध्यान में प्राप्त होंगे। द्रव्यसंग्रह ४७ गाथा। ४७ समझे ? ४ और ७।

दुविहं पि मोक्खहेउं प्रभु! दो प्रकार का मोक्षमार्ग, उसमें यहाँ तो निश्चय की बात कहनी है। निश्चयमोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होगा। अब, ध्यान में प्राप्त होगा तब शुभयोग से वहाँ ध्यान होगा ? आहा...हा...! भाई! तुझे सत्य बात स्वीकार करना भी नहीं आती, भाई! तू सत्य को सत्य में किस प्रकार जायेगा ? प्रभु! आहा...हा...! यह किसी व्यक्ति की निन्दा के लिये नहीं, प्रभु! उस व्यक्ति का अनादर नहीं। वस्तु का यह सत्य है, वस्तु का ऐसा स्वरूप है, यह तो सत्य को प्रसिद्धि में रखना कि सत्य यह है - इतनी बात है। आहा...हा...! वरना भगवान हैं सब। वस्तुस्वरूप से तो भगवानस्वरूप ही वे हैं। आहा...हा...! उसे पर का आश्रय लेने जायेगा तो दुःख होगा। अतः यह शुभभाव भी पर का आश्रय है।

www.vitragvani.com

अमृतचन्द्राचार्यदेव ने तो ऐसा कहा है कि जब प्रभु एकत्वबुद्धि का नाश कराते हैं, पर का कर सकता है, मैं सुखी–दु:खी (कर सकता हूँ)। इसका नाश कराते हैं प्रभु! तो मैं तो उसमें से निकालता हूँ कि पर के आश्रित जितना व्यवहार है, वह भी छुड़ाते हैं। यह तो पहले से कहा था गाथा बाद में आती है न, २७२ (गाथा)। आहा...हा...! 'व्यवहारनय इस रीति जानकर निषिद्ध...' आहा...हा...! 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरों प्राप्ति करे निर्वाण की' यह सम्यग्दर्शन भी इतना मुक्त स्वभाव है, यह अन्त: स्वभाव में भरी हुई चीज पूर्ण आनन्द का दल है, उस पर दृष्टि जाने से उसका विश्वास, रुचि, और पोषण मिलने से... आहा...हा...! तुझे आनन्द होगा। प्रभु ने तो इसका उपदेश किया है, व्यवहार का तो प्रभु ने निषेध किया है न? प्रभु को मानता है या नहीं? आहा...हा...!

यह तो जिसे अन्दर आत्मा की खटक पड़ी हो, उसकी बातें हैं। अरे...रे! यह भरे हुए मकान और भरपूर परिवार को छोड़कर चला जायेगा। बाहर की सब चमक... करोड़ों रुपये, अरबों रुपये हों... आहा...हा...! क्या करेगा? भाई को अरबों रुपये, लो न! क्या हुआ? आहा...हा...! उस बम्बई के अस्पताल में... आ..हा...! कहते थे, मुझे दु:खता है, पैंतीस वर्ष पहले कोई साधन नहीं था, पैंतीस वर्ष में दो अरब चालीस करोड़, वे फिर समाप्त हो गये। आहा...हा...! अरे... प्रभु! भाई! तेरी अस्ति है या नहीं? तो यह देह छूटेगी तो तेरी अस्ति कहीं रहेगी या नहीं? उस अस्तिवाले तत्त्व का आश्रय कर और जिसमें तेरी अस्ति नहीं उसका आश्रय छोड़। आहा...हा...!

आत्मा का रस आये वहाँ विभाव का रस झर जाता है। जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसका जिसे प्रेम लगा उसे दूसरे रागादि भाव का भाव हो परन्तु प्रेम छूट जाता है। आहा...हा...! मोह छूट जाता है कि यह ठीक है ऐसा मोह छूट जाता है। आहा...हा...! यह ६९ (बोल पूरा) हुआ।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सब कुछ आत्मा में है, बाहर कुछ नहीं है। तुझे कुछ भी जानने की इच्छा होती हो तो तू अपने आत्मा की साधना कर। पूर्णता प्रगट होने पर लोकालोक उसमें ज्ञेयरूप से ज्ञात होगा। जगत जगत में रहे तथापि केवलज्ञान में सब ज्ञात होता है। जाननहार तत्त्व पूर्णतारूप परिणमने पर उसकी जानकारी से बाहर कुछ नहीं रहता और साथ ही साथ आनन्दादि अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं॥ ७०॥

७०, **सब कुछ आत्मा में है,...** आहा...हा... ! बहुत सादी भाषा ! सब कुछ आत्मा में है अर्थात् ? जो कुछ ज्ञान आनन्द शान्ति शुचिता, प्रभुता, जो कुछ भी गुण की या दशा की तुझे महत्ता लगती है वह सब आत्मा में है। आ...हा... ! आहा...हा... ! **सब कुछ आत्मा में है,...** क्या ? आत्मा का। सब आत्मा में है अर्थात् आत्मा का सब आत्मा में है, सब आत्मा में है अर्थात् यह दूसरा सब भी आत्मा में है (ऐसा नहीं है) आहा...हा... ! पहले इसकी श्रद्धा में तो ले, आहा...हा... ! इसके वीर्य में वहाँ अटक जाये ऐसी श्रद्धा कर। आहा...हा... ! पर के आश्रय में लाभ नहीं है जो कुछ है वह सब मुझमें है। आहा...हा... ! और करना है वह मेरे आश्रय से मुझे करना है, उसमें तीन लोक के नाथ का भी आश्रय मुझे नहीं है – ऐसा भगवान स्वयं यह कहते हैं।

सब कुछ आत्मा में है,... अर्थात् आत्मा की चीज जो आनन्द, ज्ञान... आहा...हा... ! अनन्त शक्ति किसे कहें ? भाई ! वस्तु भले एक, क्षेत्र भले असंख्यात प्रमाण छोटा (होवे) परन्तु उसमें अनन्त-अनन्त अमर्यादित ज्ञान है। ज्ञान है उसकी मर्यादा क्या ? स्वभाव में मर्यादा क्या ? ऐसा ज्ञान, ऐसा आनन्द यदि तुझे सुखी होने की भावना है तो वह सब सुख अपरिमित तुझमें पड़ा है। आहा...हा... ! तुझे महत्ता प्राप्त करने की भावना है वह सब महत्ता तुझमें भरी है। आहा...हा... ! तुझे सुखी होने की जिज्ञासा है तो उस सुख से भरपूर भगवान अन्दर है। आहा...हा... ! ऐसी बात है। आहा...हा... !

एक बार एक वकील का पुत्र मर गया था। लाठी में भावसार वकील थे, है कोई लाठी के ? नहीं ? परन्तु यह तो बहुत वर्ष पहले उनका पुत्र मर गया, पक्का मकान था।

www.vitragvani.com

वकील, भावसार वकील थे और साधनवाले (थे), फिर महिलायें रोती थी। अरे... कमरे श्मशान जैसे दिखते हैं... अरे...रे! अब सब रूखा लगता है ऐसे रोती थी। कुछ दूसरी भाषा ऐसी थी। आहा...हा...! कमरे और महल तेरे बिना, पुत्र तेरे बिना सब मुझे श्मशान दिखता है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि तेरे बिना दूसरी सभी चीजें श्मशान दिखती है, तू तुझमें प्रभु तू कौन है? प्रभु तुझे पता नहीं है। तेरी प्रभुता और माहत्म्य के स्वभाव का तुझे पता नहीं है, क्योंकि तूने सुना नहीं और उसकी वर्तमान प्रगट अवस्था के अतिरिक्त अन्दर में साथ में तत्त्व-महाप्रभु क्या है, उसकी नजर कभी नहीं की। इसके ज्ञान में उसका विश्वास तुझे नहीं आया, ज्ञान नहीं किया, इसलिए विश्वास कहाँ से आयेगा? आहा...हा...! यह सब आत्मा में (भरा है) तुझे ज्ञान चाहिए हो और तीन काल को जाननेवाला (ज्ञान चाहिए हो), सब जानने का भाव (हो) परन्तु वह सब ज्ञान तुझमें पड़ा है। आहा...हा...! बहुत सों को देखने का भाव तुझे होता हो तो वह सब ज्ञान तुझमें पड़ा हुआ है। आहा...हा...! जाननेवाला पर को जाने परन्तु जाननेवाला जाननेवाले को नहीं जानता। आहा...हा...! प्रभु! तुझमें है न, तू शरीर को मत देख, इस बाहर के वेश को मत देख... आहा...हा...! अन्दर पुण्य और पाप के विकल्पों को मत देख। वह क्षणिक विकृत अवस्था पर्यायदृष्टि से जाननेयोग्य है, वस्तुदृष्टि में वह है नहीं, आहा...हा...! वहाँ तो यह सब कुछ आत्मा में है। तुझे जो आनन्द चाहिए हो, ज्ञान चाहिए हो, श्रद्धा चाहिए हो कि मुझे तो यह विश्वास है तो यह विश्वास अन्दर भरा है। आहा...हा...! वीर्य-पुरुषार्थ मुझे चाहिए है तो उस पुरुषार्थ से भरपूर भगवान अन्दर है, सब कुछ वहाँ है। अरे...! ऐसी बातें! अब ऐसा उपदेश! दया पालने को कहे, व्रत पालने को कहे, उपवास करने को कहे तो समझ में आवे, एक उपवास करो, दो करो, पाँच करो... आहा...हा...! परन्तु उपवास किसे कहते हैं, इसका पता नहीं। उप अर्थात् वस्तुस्वरूप है उसके समीप में वास - जानना, उसमें सब कुछ है, प्रभु! वहाँ सब कुछ है। आहा...हा...! यह राग और स्वभाव की एकता का तूने ताला लगाया है, इस कारण वह खुला नहीं है, खुलता नहीं है। आहा...हा...!

उसमें (स्वभाव में) सब कुछ है परन्तु क्या? उसके गुण और पवित्रता यह सब

www.vitragvani.com

है। उसमें रागादि नहीं है, आहा...हा... ! रागादि नहीं उन्हें अपने अस्तित्व के साथ एकत्व है ऐसा मानना (वह) ताला लगाया है प्रभु ! तूने खोलने का ताला लगाया है, चैतन्य की पूँजी अन्दर भरी है, उसे खोलने और आनन्द करने में तूने ताला लगाया है। आहा...हा... ! ऐसा कैसा उपदेश ?

सब कुछ आत्मा में है,... यह शान्ति चाहिए हो तो वहाँ सब शान्ति पड़ी है, स्वस्थ होना हो, स्व-स्थ। शरीर का स्वस्थ नहीं। स्व, वह तू है उसमें स्थ हो, वहाँ सब भरा है। स्वस्थ है। लोग नहीं कहते ? स्वस्थ, स्वस्थ भी कौन सा स्वस्थ ? स्व जो स्वयं आनन्द का नाथ प्रभु स्व, उसमें स्वयं रहा हुआ है। आहा...हा... ! कैसे जँचे ? सुनने नहीं मिलता। अरे ! जाति की कीमत नहीं होती।

वह दृष्टान्त नहीं दिया ? अनुभवप्रकाश का। एक मनुष्य जा रहा था, कहीं से हीरा आया, वहाँ बहुत हीरा होंगे, उसमें से एक हीरा आया, प्रकाश करके रखा, घासलेट जलाना रुक गया। उसके प्रकाश ने रोटियाँ, रोटियाँ बनायीं। आहा...हा... ! उसमें एक व्यापारी आया - ऐसा वह कहता है ऐ भाई ! परन्तु यह क्या चीज है ? एक (जगह) था, वहाँ ऐसे लाखों टुकड़े पड़े थे, उसमें से इसे प्रकाश के लिये (ले आया तो) घासलेट जलाना रुक गया। अरे ! यह क्या चीज है वह तुझे पता नहीं है। यह तो हीरा है, इसके लाखों रुपये के स्वर्ण मोहर हमारे सैंकड़ों भण्डार हों, तुझे दें तो भी पूरा नहीं पड़े - ऐसी यह चीज है। हैं... ! अरे ! मैं जहाँ था वहाँ तो ऐसे सब बहुत थे, मैंने तो फिर एक लिया... आहा..हा... ! इसी प्रकार आत्मा में समस्त रत्न अन्दर पड़े हैं। आहा...हा... ! तुझे सुख चाहिए हो तो वहाँ है, सन्तोष चाहिए हो तो वहाँ है, उसका विश्वास चाहिए हो तो वहाँ है, उसकी रमणता चाहिए हो तो वहाँ है। आहा...हा... ! उसके अस्तित्व को पूर्ण को स्वीकार करना हो तो वह भी उसमें भरा है। श्रद्धा पूर्ण भरी है और प्रगट पर्याय की श्रद्धा दूसरी (चीज है यह तो) अन्दर भरी है। आहा...हा... !

बाहर कुछ नहीं है।... तेरी चीज जो है उसमें का बाहर में कुछ नहीं है। आहा...हा... ! शरीर में नहीं, चमक मकान में, इज्जत में, इन पुण्य-पाप के परिणाम में भी बाहर में कुछ नहीं है। इस बाहर में तेरा कुछ नहीं है। आहा...हा... ! बाहर की बात तो अपनी मानना तो

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

बहिरात्मा है। आहा... ! अन्तर की वस्तु है उसे अपनी मानना वह अन्तरात्मा है। आहा...हा... !

यह चीज है उसके ज्ञान में आवे नहीं तब तक उसकी महत्ता और उसकी महिमा इसे नहीं होती, पहले ऊपर से महिमा करे परन्तु यह वस्तुस्थिति ऐसी है... आहा...हा... ! जिसके एक स्पर्श मात्र से अनन्त जितनी शक्तियाँ हैं, उनका अंश व्यक्त हो जाये – ऐसा वह प्रभु है न, आहा...हा... ! तेरे लिये बाहर कुछ नहीं है, प्रभु ! आहा...हा... ! देव, गुरु, शास्त्र में भी तेरा कुछ नहीं है, बाहर में कुछ नहीं है। इसका अर्थ सब आ गया न। आहा...हा... ! देव तू, गुरु भी तू, धर्म भी तू... आहा...हा... ! आता है न ? पंच परमेष्ठी तू स्वयं है। पंच परमेष्ठीपना कहाँ से प्रगट हुआ ? इसमें था उसमें से बाहर आया है। आहा...हा... ! तू अन्दर पंच परमेष्ठीस्वरूप ही है क्योंकि वह प्रगट पर्याय जो होती है, उससे तो अनन्त गुनी शक्तिवाला तेरा तत्त्व है। आहा...हा... !

बाहर कुछ नहीं है। तुझे कुछ भी जानने की इच्छा होती हो... आहा...हा... ! परदेश में जायेंगे और परदेश में घूमेंगे, इंग्लैंड और अमेरिका और... आहा...हा... ! यह बनिये का लड़का अमेरिका से (उतरा हो) तो मानो क्या होगा ? यह अमेरिका से आया है। परन्तु क्या है अमेरिका अर्थात् ? अनार्य देश में से आया है। इसे मानो, अमेरिका से आया तो मानो... आहा...हा... ! हम कैसे होशियार और कैसे कपड़े-वपड़े पहनते हैं ! आहा...हा... ! दूसरे कहे, अमेरिका में से आया है। इसका दूसरा अर्थ यह है कि म्लेच्छ देश में से आया है – ऐसा कह न।

यहाँ प्रभु (कहते) हैं, रागादि सब म्लेच्छ है; वे सब तुझमें नहीं है, प्रभु ! वह तेरा देश नहीं, वह तेरा क्षेत्र नहीं, वह तेरा भाव नहीं, वह तेरा धर्म नहीं, आहा...हा... ! अरे... अरे ! ऐसा सब करना, इसकी अपेक्षा तो यह सामायिक, प्रौषध करते हुए जिन्दगी पूरी हो जाये (यह सरल था), सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो... धूल में राग है वहाँ। वहाँ कहाँ आत्मा उसमें था ? वह तो विकल्प है, आहा...हा... !

तुझे कुछ भी जानने की इच्छा होती हो तो तू अपने आत्मा की साधना कर।... तुझे सब जानने को मिलेगा। अरे... लोकालोक को जानेगा। आहा...हा... ! यह लोकालोक जानने का स्वभाव ही तेरा भरा पड़ा है। आहा...हा... ! है न ? नियमसार में वहाँ

www.vitragvani.com

कहा, इसका ज्ञान-दर्शन-स्वभाव भी त्रिकाल लोकालोक को जाने ऐसा तो तेरा ज्ञानस्वभाव है। लोकालोक को एक समय में जाने देखे ऐसा तो दर्शनस्वभाव है। स्वभाव, हाँ! आहा...हा... ! और पर को जानने का वह कुछ तू नहीं। पर को जानने की जो पर्याय है, वह तो तेरी है, उस पर्याय में पूरा आत्मा ज्ञात होता है, जानने की इच्छा हो तो वहाँ जा न! आहा...हा... ! तुझे अन्दर भगवान ज्ञात होगा। आहा...हा... ! ऐसी क्रिया।

मुमुक्षु : लोग ऐसा कहते हैं कि हमें पैसा चाहिए है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कहाँ धूल में.. आहा...हा... ! पैसेवाले मरकर ऐसे मुँह फट गये और चले गये। कहीं पशु में उत्पन्न होते हैं... आहा...हा... ! बापू! धर्म तो न किया हो, समकित हो नहीं और पूरे दिन स्त्री के लिये, पुत्र के लिये, धन्धे के लिये पाप किये हों, आहा...हा... ! पुण्य का भी ठिकाना न हो, कि दो चार घण्टे सतसमागम (करता हो)। फिर सतसमागम और उसके कहे हुए शास्त्र चार-चार, पाँच घण्टे पढ़ना तो उसे पुण्य तो बँधे। आहा...हा... ! यह समय निकाले नहीं, आहा...हा... ! बस! यह तो एक घण्टे सबेरे सुनने जाना और या एक घण्टे सामायिक कर लेना हो गया, हो गया धर्म! यात्रा कर आयें, (एक भाई) यात्रा करके आये थे न? उस दिन यह बात हुई थी। यात्रा-वात्रा वह धर्म नहीं है, वह राग है, नहीं रुचा कितने उत्साह से जाकर आये (हों) ऐसे ऊपर चढ़े हों... भगवान.. भगवान... (बोलते-बोलते चढ़े हों), कितने ही तो माला गिनते-गिनते चढ़ते हों। गढ़नी जी आदि होती है न, कोई जीव नीचे मरता है या नहीं यह देखना नहीं, माला जपते हों, रास्ते में बहुत देखते हैं न, गढीजी माला गिनते हों, आहा...हा... ! क्या है? मानो भगवान को याद करते हैं... परन्तु तुम साधु नाम धराकर यत्न की ईर्यासमिति का ठिकाना नहीं होता। आहा...हा... ! वह राग है प्रभु! भले तू माला गिन, अकेला बैठकर सबेरे रात्रि में एकान्त में माला जप, तो भी वह राग है।

तुझे कुछ भी जानने की इच्छा होती हो तो... सब वहाँ है। **अपने आत्मा की साधना कर।...** आहा...हा... ! वहाँ साधना कर। सब जाननेवाला (वहाँ है)। जाननेवाला ज्ञात हो तो जाननेवाला जानने की पर्याय प्रगट करेगा। आहा...हा... !

पूर्णता प्रगट होने पर... और जब प्रभु पूर्ण प्रगट होगा, पूर्ण ज्ञान-दर्शन और

www.vitragvani.com

आनन्द से तो प्रभु भरपूर है ही ऐसा जहाँ भान, प्रतीति, ज्ञान और रमणता होती है तब तो **पूर्णता प्रगट होने पर लोकालोक उसमें ज्ञेयरूप से...** आहा...हा...! लोक और अलोक को जाननेरूप-ज्ञेयरूप-प्रमेयरूप ज्ञात होगा। आहा...हा...! अपने आत्मा की साधना करने से लोकालोक ज्ञात हो जायेगा। बाहर जाना नहीं पड़ेगा, बहुत शास्त्र पढ़े तो ज्ञान हो जाये (ऐसा नहीं है)। आहा...हा..! परन्तु जाननेवाला है, उसे जाने तो उसको सब जानने की शक्ति प्रगट होगी। आहा...हा...! शास्त्रों को जानने में भी विकल्प है, वह तो परज्ञेय है। स्वज्ञेय में आकर ऐसी दशा प्रगट कर जिसमें लोकालोक ज्ञात हो जायेगा। आहा...हा...! ऐसा है।

निवृत्ति कहाँ है? बारह-पन्द्रह-बीस वर्ष तक तो पढ़ने में जाते हैं। माँ-बाप भी सम्हालते हैं, लड़का पढ़ता उसमें सात-आठ लड़के हों, एक के बाद एक, एक हो दस वर्ष का और एक हो बारह का और चौदह का, सोलह का और अठारह का,... सोलह वर्ष में तो आठ व्यक्ति इकट्ठे हो गये हों, सबको सम्हालना और... आहा...हा...! उनके कपड़े और उन्हें पाठशाला बैठाना। आहा...हा...! पाठशाला में नारियल लेकर जाये। मेरा लड़का आज पढ़ने बैठ रहा है। आहा...हा...! अब ऐसी बात में रूकते हुए इसे आत्मा (कब प्रगटे)? ऐसा तेरा समय व्यर्थ जाता है। व्यर्थ नहीं, स्वरूप के लिये व्यर्थ है, भटकने के लिये (काम का है)। आहा...हा...!

(एक व्यक्ति) कहता था, क्या कहलाता है? जरिया... जरिया! यह तो बाबा होवे तो जँचे... परन्तु बाबा ही है, कहाँ तुझमें दूसरी चीज है? ऐसा कि बाबा होवे तो यह सब जँचे। मजाक (करते थे) बापू! कहा न, सब तुझमें है पर से तो तू बाबा ही है। आहा...हा...! राग, पुण्य-पाप, शरीर, कर्म से तो तू रहित है, बाबा ही है। आहा...हा...! जहाँ हो वहाँ तू बाबा ही है - पर से रहित ही है। आहा...हा...! किसी भी पल पर से सहित तू कहीं किसी काल में क्षेत्र में कहीं नहीं है। आहा...हा...! भाई! जहाँ देखे, वहाँ तू क्षेत्र और काल में तेरा भाव तो रागरहित ही है न। आहा...हा...! यह निवृत्तस्वरूप है, प्रभु! आहा...हा...! किसे जानने की भावना करने से सब ज्ञात होगा? आहा...हा...!

जगत जगत में रहे तथापि केवलज्ञान में सब ज्ञात होता है।... यह क्या कहा?

www.vitragvani.com

लोकालोक कहीं केवलज्ञान में नहीं आता, वह तो वहाँ रहता है। **जगत जगत में रहे...** लोक-अलोक, लोक-अलोक में रहे **तथापि केवलज्ञान में सब ज्ञात होता है।...** वह यहाँ नहीं आता तथापि सब ज्ञात होता है। आहा...हा...! लोकालोक है वह लोकालोक में रहेगा; तेरे ज्ञान में वही नहीं आयेगा, तथापि तेरे ज्ञान में सब ज्ञात हो जायेगा। आहा...हा...! वह चीज आये बिना तू उसमें सबको जानेगा – ऐसा तेरा स्वरूप है। आहा...हा...! (लोग ऐसा कहते हैं) यह निश्चय... निश्चय की अकेली बातें करते हैं, व्यवहार से लाभ होता है, यह नहीं कहते। एकान्त... एकान्त... एकान्त... (करते हैं)। प्रभु! यह तेरा निश्चय अर्थात् पर्याय भी निर्मल निश्चय है न। मोक्षमार्ग निश्चय नहीं? परन्तु वह किसके आश्रय से प्रगट होता है, यह पूरा विवाद! जिसमें वह शक्तियाँ पड़ी हैं, उसके आश्रय से है, उसमें से आयेगा या नहीं है उसमें से आयेगा? आहा...हा...! है तो प्रभु, पूर्ण है न अन्दर। आहा...हा...! एक बार विचार कर श्रद्धा में तो ले। मैं पूर्ण स्वरूप हूँ और उसे साधते हुए लोकालोक भले ही यहाँ न आवे तथापि मैं साधते हुए लोकालोक को जानूँ ऐसी पर्याय मुझमें होगी ही। आहा...हा...! लोकालोक की ज्ञानपर्याय न पड़े और पर्याय में लोकालोक न आवे तथापि लोकालोक सम्बन्धी का तेरा ज्ञान तुझे तुझमें प्रगट होगा। आहा...हा...!

तथापि केवलज्ञान में सब ज्ञात होता है। जाननहार तत्त्व पूर्णतारूप परिणमने पर उसकी जानकारी से बाहर कुछ नहीं रहता... आहा...हा...! यह दोपहर का वाँचन शुरु किया तो कितनी ही बहिनें तो बेचारी प्रसन्न होती हैं। बहुत हर्ष (होता है) परन्तु यहाँ शुरु तो करना था। सबके हाथ में पहुँच जाये, और अभी यह निवृत्ति काल है, उसमें अधिक में बैठे तो (ऐसा होता है) कि कौन क्या कहता है यह? पाँच-पाँच, छह हजार लोग, दस-दस हजार, पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग उसमें यह क्या कहते हैं? आहा...हा...!

जाननहार तत्त्व... जाननहार तत्त्व प्रभु है। जाननहार कोई राग, शरीर, वाणी, वे कोई जाननहार तत्त्व नहीं हैं। है? पुण्य-पाप का भाव, शरीर, वाणी, कर्म, ये सब ज्ञायकतत्त्व है? आहा...हा...! यह तो अज्ञानतत्त्व है, जड़तत्त्व है, आहा...हा...! ज्ञायकतत्त्व, **जाननहार तत्त्व पूर्णतारूप परिणमने पर...** जाननहार तत्त्व वह स्वयं परिपूर्णरूप से परिणमित होने पर... आहा...हा...! जिसमें जानपना भरा है वह **पूर्णतारूप परिणमने पर उसकी**

www.vitragvani.com

जानकारी से बाहर कुछ नहीं रहता... आहा...हा... ! जाननहार, जाननहार, जाननरूप परिपूर्ण हुआ, उसकी जानकारी से बाहर कुछ नहीं रहता। आदि अन्त नहीं उसका भी उसे ज्ञान हो जाता है। आहा...हा... ! जीव की पर्याय पहली कौन सी ? पहले सिद्ध कौन से ? पहली गति कौन सी ? चार गतियों में से पहली गति कौन सी होगी ? आहा...हा... ! भले निगोद में रहा परन्तु फिर भी पहली गति निगोद की है – ऐसा है ? आ...हा... ! आहा...हा... !

यह **जाननहार तत्त्व पूर्णतारूप परिणमने पर...** क्योंकि जाननेवाला है, वह जाननेरूप परिपूर्णपने हो, जाननेवाला है, जानने का जिसका स्वभाव है, वह जानपनेरूप परिपूर्ण हो। जाननेवाला–ज्ञान है, जाननेवाला आत्मा, वह जाननेरूप परिपूर्ण हो, आहा...हा... ! **उसकी जानकारी से बाहर कुछ नहीं रहता...** उसके ख्याल के बाहर कोई बात नहीं रहती। सर्वज्ञ परमात्मा... आहा...हा... ! क्षेत्र का अन्त नहीं, अनन्त गुण का अन्त नहीं, काल की आदि–अन्त नहीं। आहा...हा... ! एक समय की एक द्रव्य की पर्याय का पार नहीं, इतनी पर्याय में यह अन्तिम पर्याय गिनती में आवे – ऐसा है नहीं, यह जाननेवाला जाननेरूप परिपूर्ण परिणमित हो तो इसकी जानकारी से बाहर कुछ नहीं रहता। आहा...हा... !

और साथ ही साथ आनन्दादि अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं। जाननेवाला जाननेवाला जाननेरूप परिपूर्ण परिणमित हो, उसे सब ज्ञात हो जाता है। उसकी जानकारी के बाहर कुछ नहीं रहता, एक बात। और साथ–साथ आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता इत्यादि पर्यायें। **अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं।** जो अनन्त काल में नहीं हुई ऐसी नवीनताएँ प्रगट होती हैं। वे प्रगट होती हैं परन्तु वस्तुरूप से तो अन्दर है ऐसे आत्मा को जानने से, जाननेवाला परिपूर्णरूप से परिणमित होने पर उसकी पर्याय में आनन्द आदि की अनेक नवीनताएँ भी प्रगट होती हैं। वहाँ आगे पूर्णता हो और उसे सिद्धपद कहते हैं।

विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी। मुनि को अन्तर में चैतन्य के अनन्त गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्य में श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूतपने से देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबन्धरहित सहज दशा होती है; शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होता। स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है॥ ७१ ॥

जेठ कृष्ण ३, मंगलवार, दिनाङ्क २७-०६-१९७८
प्रवचन-२२ वचनामृत- ७१-७४

(वचनामृत) ७० हुए, ७१ — **धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा!...** देखो! अस्तिरूप से सिद्ध करते हैं। मुनिदशा कैसी होती है? **धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी।...** तलहटी होती है न, वहाँ से फिर ऊपर चढ़ने का (होता है)? आहा..हा...! मुनिदशा क्या है! जो छठवें-सातवें गुणस्थान में झूले, आहा...! प्रचुर स्वसंवेदन, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन, वह उनका वेश है।

मुनि को अन्तर में चैतन्य के अनन्त गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है;... बाहर में एक शरीरमात्र होता है, अन्दर में अनन्त गुण, **चैतन्य के अनन्त गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है;...** आहा...हा...! अनन्त गुण और अनन्त निर्मल पर्यायें, हाँ! मुनि उसे कहते हैं। आहा...हा..! जिसे अनन्त गुण और उनकी अनन्त निर्मल वीतरागी पर्यायें, यह उनके अनुभव में है, यह उनका परिग्रह है। परि अर्थात् समस्त प्रकार से उसे पकड़ा है। आहा...हा...! मुनिदशा अर्थात् क्या है! आहा...हा...! केवलज्ञान की तलहटी और अनन्त

www.vitragvani.com

गुण तथा अनन्त पर्यायों का जिन्हें परिग्रह-पकड़ (हो)। अनन्त गुण और अनन्त निर्मल पर्यायों की जिन्हें पकड़ है। जिनकी अनन्त गुण और अनन्त शुद्धपर्याय की परिणति है, वह उनका परिग्रह है। आहा...हा...!

विभाव बहुत छूट गया होता है।... संज्वलन का जरा एक अंश है, (बाकी) बहुत विभाव तो छूट गया है। जो तीन कषाय का विभाव है, वह तो छूट गया है। एक जरा संज्वलन का मन्द राग छठवें गुणस्थान में होता है, महाव्रतादि विभावभाव (होते हैं) आहा...हा...! **बाह्य में श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारण...** साधु की निर्मल वीतरागी पर्याय का सहकारी / निमित्तरूप-साथ में रहनेवाला **कारणभूतपने से देहमात्र परिग्रह होता है।...** आहा...हा...! देहमात्र, आता है न श्रीमद् में? नहीं 'सर्वभाव से उदासीनवृत्ति करी, देहमात्र वह संयम हेतु होय जब' अपूर्व अवसर में आता है। एक मोरपिच्छी और कमण्डल निमित्तरूप होता है परन्तु वह तो किसी समय उनका लक्ष्य जाये, इसलिए उन्होंने नहीं लिया। आहा...हा...!

देहमात्र - शरीर से कर्म के उदय से प्राप्त चीज है, वह तो बाहर से छोड़ी नहीं जा सकती; इसलिए उन्हें देहमात्र (परिग्रह होता है)। वह भी साधु के (योग्य).... आहा...हा...! सबेरे आया नहीं था? निर्मल विज्ञानघन में अन्दर निमग्न हैं। आहा...हा...! कितनी भाषा प्रयोग की है! साधुपना, बापू! आहा...हा...! अकेला विज्ञान का घन भगवान! निर्मल विज्ञानघन! उसमें अन्तर्निमग्न है। आहा...हा...! निमग्न, वह पर्याय है, परन्तु वह विज्ञानघन में एकाकार है। आहा...हा...! जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आ गया है। आहा...हा...! उफान समझते हैं? दूध में उफान आता है, (वैसे ही मुनिराज को पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आता है)। आहा...हा...!

देहमात्र परिग्रह होता है। यह तो कहा गया है न वहाँ? सर्वविशुद्ध अधिकार में लिया है। वहाँ तो बहुत लिया है, वाणी, गुरु की वाणी, अमुक यह सब बाह्य उपकरण, उपकरण! आहा...हा...! और इस दशा के बिना मुक्ति नहीं। अकेले समकितदर्शन और सम्यग्ज्ञान या स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान में हो, उससे कहीं मुक्ति नहीं है। मुक्ति तो चारित्रदशा साथ आवे, तब मुक्ति होती है। आहा...हा...! ऐसी चारित्रदशा! बाहर में वेश

www.vitragvani.com

धारण किया और नग्नपना हुआ और पंच महाव्रत और... वह कोई मुनिदशा नहीं है। आहा...हा...! है ?

प्रतिबन्धरहित सहजदशा होती है;... जहाँ किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं, आहा...हा...! स्वाभाविक सहजात्मस्वरूप की सहज अरागी-निरागी-वीतरागी पर्याय, सहजरूप से राग से भिन्न सहजपने वर्तती है। भले थोड़ा राग है परन्तु (सहजदशा है)। आहा...हा...! जिसे राग से भिन्न सहजदशा है, स्वाभाविक आनन्द और स्वाभाविक शान्ति -वीतरागी चारित्र है, वह सहजदशा जिसकी हो गयी है। आहा...हा...! जो सर्वज्ञ के मार्गानुसारी, अल्पकाल में सर्वज्ञता लेनेवाले, वह केवलज्ञान की तलहटी! आहा...हा...! नीचे जरा खड़े हैं परन्तु वहाँ चढ़ने के लिये... इस तलहटी में जाते हैं न? वह चढ़ने के लिये (जाते हैं)। आहा...हा...! ऐसा मुनिपना!!

प्रतिबन्धरहित सहजदशा होती है; शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होता।... आहा...हा...! क्या कहते हैं कि हमें सबेरे एक घण्टे पढ़ना ही पढ़ेगा — ऐसा प्रतिबन्ध नहीं होता। आहा...हा...! इतना काम तो तुम्हें करना पड़ेगा... पाठशाला के लिये ध्यान रखना पड़ेगा... तुम्हारे कारण पाठशाला चलती है, लोग पैसे का दान देते हैं — ऐसा कोई प्रतिबन्ध मुनि को नहीं होता। आहा...हा...!

प्रश्न : भगवान के दर्शन करने जाते हैं या नहीं ?

समाधान : जाते हैं, परन्तु उन्हें प्रतिबन्धरूप नहीं है। अकेले जंगल में बसते हों तो नहीं भी जाते। कहीं जंगल में अतीन्द्रिय आनन्द की लीनता में स्थित होते हैं। श्रावक को छह कर्तव्य होते हैं, क्योंकि वह गृहस्थाश्रम में है। आहा...हा...! वे तो कहीं जंगल में होते हैं, हमेशा भगवान के दर्शन हों ही ऐसा कुछ है ? यह प्रतिबन्ध नहीं है। आहा...हा...! हमेशा अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के दर्शन में ही स्थित हैं, वे तो भगवान के दर्शन में ही स्थित हैं। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु! सहजात्मस्वरूप! ऐसी जहाँ दशा — सहजदशा, वीतरागदशा, अनगारदशा,... आगाररहित दशा... विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न है। आहा...हा...! यह तो निमित्तरूप परिग्रह कहा, शरीर एक निमित्त होता है, विभाव बहुत छूट गया अर्थात् किंचित् विभाव होता है, इतना कहा।

www.vitragvani.com

वहाँ (समयसार में) तो अकेले निर्मल विज्ञानघन में निमग्न है... आहा...हा...! उन्हें अरिहन्त कहते हैं। वाणीवाले लिये हैं न; इसलिए वहाँ सिद्ध नहीं लेना, क्योंकि उन्होंने हमें उपदेश दिया — ऐसा लेना है न? उपदेश दिया उसमें वहाँ सिद्ध (नहीं)। अरिहन्त से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त। आहा...हा...! जिन्हें वाणी है। परन्तु वे हैं कैसे? विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न और सिद्ध भी विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न हैं। यहाँ तो हम पर उपदेश का अनुग्रह करके, प्रसादी से हमको उपदेश दिया। आहा...हा...! वे जीव लेना है न? जिन्हें वाणी होती है। आहा...हा...! वह भी सहजरूप से वाणी निकलती है। आहा...हा...!

ऐसे यहाँ मुनि (लिये हैं)। **शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध...** कि तुम्हें इतने पैसे एकत्रित करना, तुम्हें यह करना, यह काम सिर पर लो... उसमें — सर्वविशुद्ध में नहीं आता? अकाम, अन्तिम कलश! सिर पर कोई काम लेते ही नहीं। सर्वविशुद्ध में अकाम शब्द है न? कर्म-प्रकम, प्रकम-कार्य का कोई भी प्रकम सिर पर नहीं लेते। तुम्हें इतना चौबीस घण्टे में एक बार यहाँ पाठशाला में तो आना पड़ेगा, पाठशाला में ध्यान रखना पड़ेगा — ऐसा कोई प्रतिबन्ध मुनि को नहीं होता। आहा...हा...! जंगल में स्थित हों, उन्हें भगवान के दर्शन का भी प्रतिबन्ध नहीं होता। आहा...हा...! जहाँ वीतरागपना प्रगट हुआ है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द की लहर में, मजे में पड़े हैं, न! उस मजे में से बाहर कैसे निकलना? अरे... ऐसा मुनिपना है। आहा...हा...!

दो बात है, **शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध...** दूसरा भी... कि इतने शास्त्र तो आपको बनाना ही है, इतने शास्त्र आपको उठाना है, वह आपको पूरा वाचन करना पड़ेगा, यह प्रतिबन्ध नहीं होता। आहा...हा...! समयसार का एक विकल्प उठा, उस जंगल में ताड़पत्र पड़े थे, उन्हें लेकर काँटे से छेद करके रखकर चले गये। आहा...हा...! गृहस्थ आकर ले जाते हैं। आहा...हा...! इसलिए ऐसा कहा है न कि मैं कहने का उद्यम करता हूँ, व्यवसाय करता हूँ, दिखाता हूँ। यह व्यवसाय आया परन्तु दिखाऊँ तो... अभी बाकी रहा है न! आहा...हा...! पंच परमेष्ठी में साधु की दशा ऐसी होती है, उसका उसे ज्ञान नहीं और जिसे-तिसे मान बैठा है, वह भ्रम है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

शिष्यों को बोध देने का... आहा...हा... ! **ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होता...** आहा...हा... ! यह शास्त्र का शोध कार्य आपको ध्यान रखकर करना पड़ेगा, कहीं भण्डार में पुस्तक रखें हों तो ध्यान रखकर वहाँ इतना काम करना पड़ेगा (ऐसा) कोई प्रतिबन्ध नहीं। आहा...हा... ! जहाँ अकेले होकर सादि-अनन्त होकर रहना है, सिद्ध ! आहाहा ! उसका साधन तो यह है। जो अकेला, दूसरे को मैं प्रतिबद्ध करूँ, यह प्रतिबन्ध उसे नहीं है। आहा...हा... ! मैंने शिष्य बनाये, उसका प्रतिबन्ध नहीं है और इन्हें बनाया, इसलिए हमेशा मुझे इन्हें थोड़ा देना, दो घण्टे पढ़ाना, घण्टे भर पढ़ाना (ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है।) आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है। पंच परमेष्ठी को पहचाना नहीं, उसे व्यवहार की श्रद्धा का ठिकाना नहीं है। आहा...हा... !

स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है। आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द की लीनता विशेष वृद्धिंगत ही होती है, बढ़ती ही जाती है। आहा...हा... ! श्रीमद् में आता है, समय-समय अनन्तगुना संयम परिणाम...। एक पत्र में आता है। आहा...हा... ! अनन्तगुणे संयम के परिणाम बढ़ते ही जाते हैं। आहा...हा... ! जिसका भगवान आत्मा (का) पूर्ण आश्रय अभी नहीं हुआ परन्तु आश्रय लेकर मध्यमदशा में वर्तता है। पूर्ण आश्रय हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये और आश्रय पहले से न लिया हो तो समकितदृष्टि न हो। आहा...हा... ! इसलिए मध्यम आश्रय में वर्तता है, मध्यम वीतरागदशा में वर्तता है। आहा...हा... ! उसे स्वरूप में लीनता बढ़ ही जाती है। आहाहा ! प्रतिसमय वीतरागता की शुद्धि, शुद्ध अनेक भाव बढ़ते जाते हैं। अपने आता है न ? समयसार में (आता है) कि शुद्धभाव अनेक हों, तथापि शुद्ध होते हैं, वृद्धिगत होते हैं। समयसार ! शुद्ध के अनेक प्रकार, परन्तु वे सब शुद्ध के... शुद्ध की वृद्धि होती हैं। आहा...हा... ! उसमें भी ऐसा नहीं आया ? पाँच ज्ञान में... कि ज्ञान जो बढ़ता है, वह भेद नहीं, अभिनन्दन करते हैं। आहा...हा... ! दूसरी जगह आता है — शुद्धता के अनेक प्रकार बढ़ते हैं। आहा...हा... ! **स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है।** ऐसा मुनिपना होता है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

अखण्ड द्रव्य को ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थिति में झूले, वह मुनिदशा। मुनिराज स्वरूप में निरन्तर जागृत हैं। मुनिराज जहाँ जागते हैं वहाँ जगत सोता है, जगत जहाँ जागता है वहाँ मुनिराज सोते हैं। 'मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्ष की प्राप्ति करें'॥ ७२॥

७२ — **अखण्ड द्रव्य को ग्रहण करके...** जो पूर्ण अन्तर्मुखस्वरूप है — ऐसे अखण्ड द्रव्य को ग्रहण करके.... एकरूप स्वरूप जो त्रिकाल है, टंकोत्कीर्ण! जैसे पत्थर में आलेखित चित्र होते हैं, पत्थर में! ऐसा भगवान आत्मा शाश्वत् एकरूप चीज है, उसका जिसे आशय है, उसका जिसने ग्रहण किया है। आहा...हा...! तदुपरान्त **प्रमत्त-अप्रमत्त स्थिति में झूले...** आहा...हा...! 'धवल' में तो ऐसा आया है कि केवलज्ञान प्राप्त करने के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त रहे, केवल (ज्ञान) प्राप्त करने को, तो भी अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठा-सातवाँ आता है — ऐसा पाठ है। अर्थात् छठे की स्थिति पौन सेकेण्ड के अन्दर और सातवें की उससे आधी (है)। अन्तर्मुहूर्त में ४८ मिनिट में मुहूर्त हो गया न? एक मिनिट के ६० सैकेण्ड (ऐसे) ४८ मिनिट हो गये। आहा...हा...!

कहते हैं, **अखण्ड द्रव्य को ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थिति...** अर्थात् पर्याय में झूलते हैं। आहा...हा...! क्षण में अप्रमत्त, क्षण में प्रमत्त; क्षण में अप्रमत्त, क्षण में प्रमत्त... क्षण में सातवाँ, क्षण में छठवाँ; क्षण में सातवाँ (क्षण में) छठवाँ — ऐसे क्षण-क्षण में अन्तर्मुहूर्त में भी हजारों बार (आवे)। इतना उसका — गुणस्थान का थोड़ा काल है। आहाहा! देखो! यह मुनिदशा! आहा...हा...! झूले, (ऐसी) स्थिति में झूले। छठवें-सातवें, छठवें-सातवें, आहा...हा...! यह बड़े झूले बाँधने के नहीं होते? मोरबी में एक झूला है, बिना आधार का ऐसा झूला, सहारा कुछ नहीं, लोग उस पर चलते हैं। मोरबी में है न, नदी में है, मोरबीवाले नहीं कोई? है, बीच में कोई सहारा नहीं अधर झूलें, वैसे यह अधर से छठवें-सातवें में झूलते हैं। आहा...हा...!

(प्रमत्त-अप्रमत्त स्थिति में) **झूले वह मुनिदशा। मुनिराज, स्वरूप में निरन्तर जागृत हैं।...** ज्ञान और आनन्द में जागृत में जगकर स्थित हैं। आहा...हा...! जो अनादि

www.vitragvani.com

से राग की एकता में सो कर पड़े थे, वे राग की भिन्नता करके, जागृत होकर आनन्द में स्थित हैं। आहाहा! जागकर जागते जीते हैं। आहा...हा...! पर्याय में, हाँ! वस्तु तो है, जागता जीव ज्ञायक है परन्तु यह पर्याय में जागता जीव खड़ा है। आहा...हा...!

यहाँ तो सबेरे तो यहाँ तक लिया था, कि अरिहन्त हैं, वे भी निर्मल विज्ञानघन में अन्तर्मग्न-निमग्न हैं। हमारे मुनि छद्मस्थ हैं, वे भी, हमारे गुरु भी निर्मल विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न हैं। दोनों की समानता की है। आहा...हा...! ऐसी मुनिदशा है। आहा...हा...! वहाँ कायर का काम नहीं है। आहा...हा...! उन्हें आत्मा के आनन्द का वीररस जगा है, इसलिए वह जागृत में है। आहा...! निरन्तर जागृत है। आहा...हा...! निरन्तर जागृत है। भले छठवें में आवे परन्तु अन्दर में तो निरन्तर जागृत ही है। ज्ञाता-दृष्टा की शुद्धपरिणति, वह छठवें में भी वर्तती है। आहा...हा...! आज दोनों (बोल में) मुनिदशा की व्याख्या आयी।

मुनिराज जहाँ जागते हैं, वहाँ जगत सोता है,... अतीन्द्रिय आनन्द में जागते हैं, वहाँ जगत सोता है। उस अतीन्द्रिय आनन्द की जागृति का पता नहीं है। आता है न? श्लोक में आता है — मुनि जहाँ जागते हैं, वहाँ गृहस्थ सोता है। गृहस्थ जहाँ जागता है, वहाँ मुनि सोते हैं। वह गृहस्थ, राग में जागता है, वहाँ मुनि सो गये हैं। योगीन्द्रदेव के दोहे में आता है। आहा...हा...!

जहाँ मुनिराज जागते हैं, स्वरूप में जागृति... भले ही छठवें में आते हैं, तो भी उनकी ज्ञाता-दृष्टा की जागृति पर्याय में व्यक्त-प्रगट हो गयी है। आहा...हा...! ज्ञाता-दृष्टापने का जो उनका त्रिकाली स्वभाव, वह तो है परन्तु यहाँ तो पर्याय में जागृत हो गये हैं। त्रिकाली ज्ञान और दर्शन का अवलम्बन करके पर्याय में भी जागृतदशा उग्र प्रगट हो गयी है। आहा...हा...! जागृत ज्योति चैतन्य में वे बैठे हैं। पंच महाव्रत के विकल्प में अथवा राग दशा में वे नहीं रहते। नग्नदशा तो अजीव की है, पंच महाव्रत आस्रव है; अजीव और आस्रव में नहीं रहे हैं। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है।

यहाँ तो (अभी) वस्त्र के पोटले के पोटले (रखकर) मुनिपना मानते हैं। आहा...हा...! गजब बात, बापू! उसकी दीक्षा के दिनों का महोत्सव करते हैं, मिथ्यात्व का (महोत्सव है)। आहा...हा...! ......गप्प ही गप्प है। कठिन पड़ता है, भाई! दिगम्बर में, अभी

www.vitragvani.com

दिगम्बर में जन्मे उन्हें भी पता नहीं है, मुनिदशा कैसी है ? श्वेताम्बर में तो यह वस्तु है ही नहीं। यहाँ तो स्त्री को साधुपना नहीं होता और वहाँ स्त्री को केवलज्ञान सिद्ध करते हैं, स्त्री को तीर्थंकर बतलाते हैं, मल्लिनाथ तीर्थंकर थे। अरे... ! प्रभु यह नहीं होता, बापू ! उसका दास कोई स्त्री नहीं होती, बलदेव-वासुदेव इन्द्र-नरेन्द्र, स्त्री नहीं होते। आहा...हा... ! ऐसे बड़े अधिपति स्त्री नहीं होते (और) तीर्थंकर स्त्री ! अरे... प्रभु ! बहुत बदलाव कर डाला।

यहाँ तो कहते हैं, **मुनिराज जहाँ जागते हैं, वहाँ जगत सोता है,...** आहा...हा... ! इसका तो इसे पता ही नहीं कि यह जागृतदशा क्या ? अन्दर चैतन्य की जागृतदशा, जानन-देखन और आनन्द — ऐसी जागृतदशा की अज्ञानी को तो खबर ही नहीं है। वहाँ तो सोता (विपरीतता) है। आहा...हा... ! सो गया है, नींद ली है। मुनिराज जागते हैं, वहाँ गृहस्थ सोता है। **जगत जहाँ जागता है...** जगत के प्राणी को पुण्य और पाप के राग में जागृत पड़े हैं। वही मेरी चीज है (ऐसा मानकर पड़े हैं)। आहा...हा... ! और पुण्य-पाप के फलरूप से पुत्र-पुत्रियाँ, स्त्री-पुत्र, यह सब परवस्तु है, वह मेरे हैं — ऐसा मानकर पड़े हैं। कहते हैं, जहाँ जगत जागता है (अर्थात्) वहाँ जागता है। आहा...हा... ! जो मेरे नहीं, उन्हें मेरे मानकर जागता है। जगत अन्धकार में पड़ा है।

वहाँ मुनिराज सोते हैं। राग में, विकल्प में, विकार में जगत जागता है (वहाँ मुनिराज) निर्विकार से सो गये हैं। मुनिराज जब, यह लोग राग में जागते हैं, वहाँ से सो गये हैं, हट गये हैं। आहा...हा... ! मुनिराज सोते हैं, उस ओर लक्ष्य ही नहीं है। आनन्द और ज्ञान की जागृति में स्थित हैं। आहा...हा... ! यहाँ तो मुनि लेना है न ! इसलिए सबेरे ऐसा लिया न, प्रचुर स्वसंवेदनरूप संवेदन, प्रचुर स्वसंवेदनरूप संवेदन ! ऐसी भाषा प्रयोग करने में हेतु है कि सम्यग्दर्शन में वेदन — स्वसंवेदन स्वरूप का आवे परन्तु प्रचुर नहीं होता। आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं कि प्रचुर स्वसंवेदन में वे तो जागते हैं, राग में सो गये हैं। जगत, राग में जागता है, वहाँ मुनि सो गये हैं। जहाँ मुनि जागते हैं, वहाँ जगत सो गया है। आहा...हा... ! (जो) आत्मा के अतिरिक्त विकल्प आदि में सावधानी करके पड़े हैं, वे स्वरूप से सो गये हैं। आहा...हा... ! अन्धकार में जाग गये हैं। जागृतदशा में सो गये हैं और

www.vitragvani.com

अन्धकार में जागृतदशा होकर पड़े हैं — मानो यह अन्धकार मेरी दशा है। आहा...हा... ! जहाँ जगत जागता है — पुण्य और पुण्य के फल में यह स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार ऐसी परिपाटी ठीक चलती हो, उसमें मानो मैं, ये सब मेरे हैं, मेरी व्यवस्था से यह सब हुआ है। आहा...हा... ! जगत वहाँ जागता है, रागादि की सम्हाल में और उसके फलरूप से कुटुम्ब कबिला, धन्धा में सावधान होकर जागता है.... आहा...हा... ! वहाँ मुनिराज सो गये हैं, वहाँ सावधानी छूट गयी है। आहा...हा... !

आधार दिया है — **निश्चयनयाश्रित मुनिवरों मोक्ष की प्राप्ति करें।'** व्यवहार के आश्रित नहीं, व्यवहार में सो गये हैं। आहा...हा... ! निश्चय में जागृत हैं। आहा...हा... ! निश्चयनयाश्रित (अर्थात्) स्वरूप के आश्रित जो दशा हुई, उसे प्राप्ति करे, वह निर्वाण (को प्राप्त करता है)। उसके आश्रय से मुनिवर मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। व्यवहार के आश्रय से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। आहा...हा... ! यह तो गीता में भी ऐसा श्लोक है। है, उसमें भी है। जहाँ जगत सोता है, वहाँ धर्मी जागता है; धर्मी जागता है, वहाँ जगत सोता है। आहा...हा... ! आता है, गीता में आता है। आहा...हा... !

मुनिराज निज घर में जागते हैं, पर घर से सो गये हैं। जगत, पर घर में जागता है, निज घर में सो गया है। आहा...हा... ! बाहर में प्रसिद्ध कैसे होना, बाहर में अधिकरूप से पैसा प्राप्त करके, इज्जत प्राप्त करना, और दूसरे की अपेक्षा उत्कृष्ट (दिखना ऐसा) अज्ञानी अज्ञान में जागता है, वहाँ सावधानी है, कहते हैं। ज्ञानी की सावधानी अन्तर में है। पर की सावधानी से तो सो गया है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है।

'मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित,...' निश्चयनयाश्रित का अर्थ ही यह है कि निश्चय तो त्रिकाल है परन्तु उसके आश्रय से जो परिणति प्रगट होती है, उससे निर्वाण की प्राप्ति होती है, ऐसा। निश्चय है, वह तो त्रिकाली द्रव्य है परन्तु द्रव्य के आश्रय से परिणति वीतरागी हुई, वह भी निश्चय है। वह यहाँ पर्याय का निश्चय है। निश्चयनय जो पर्याय का आश्रय है; पर्याय ने आश्रय किया है द्रव्य का, परन्तु ऐसी जो पर्याय में जो वीतरागता है, उस निश्चयनय के आश्रय से मुनिवर प्राप्ति करे निर्वाण की। उसके सामने व्यवहारनय राग है। वरना तो ऐसे निश्चय द्रव्य है और मोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार है, वह यहाँ नहीं लेना

www.vitragvani.com

है। परमार्थवचनिका में तो ऐसा लिया है कि निश्चय, वह द्रव्य है; मोक्षमार्ग, वह पर्याय है, इसलिए व्यवहार है। निर्मल मोक्षमार्ग, हाँ! वह व्यवहार। वह पर्याय है न? वह यहाँ नहीं लेना है। यहाँ तो निश्चयनय आश्रित जो परिणति प्रगट हुई है, वह शुद्धपरिणति निश्चयनयाश्रित की है। आहा...हा...! उसके द्वारा 'मुनिवर मोक्ष की प्राप्ति करें।' आहा...हा...! व्यवहार और राग के आश्रय से नहीं, यह बतलाकर — ऐसा बतलाना है। वरना तो मोक्ष तो द्रव्य के आश्रय से होता है। शुद्धपरिणति को मोक्ष का मार्ग कहना, वह तो अपेक्षित है। वरना तो मोक्ष का मार्ग है, उसका व्यय होता है और मोक्ष प्रगट होता है, वह तो द्रव्य के आश्रय से होता है। मोक्षमार्ग की पर्याय के आश्रय से मोक्ष नहीं होता परन्तु उसे वह प्रकार होता है। व्यवहार नहीं, इतना निषेध करने के लिये यह बात सिद्ध की है। समझ में आया? आहा...हा...! ७२ (बोल) पूरा हुआ।

द्रव्य तो निवृत्त ही है। उसका दृढ़ता से अवलम्बन लेकर भविष्य के विभाव से भी निवृत्त होओ। मुक्ति तो जिनके हाथ में आ गई है ऐसे मुनियों को भेदज्ञान की तीक्ष्णता से प्रत्याख्यान होता है॥ ७३ ॥

द्रव्य तो निवृत्त ही है।... जो वस्तु है, वह तो विकल्परहित निवृत्त ही है। आहा...हा...! वस्तु है, वह तो संसार के प्रत्येक भाव से रहित निवृत्त ही है। आहा...हा...! पर के ग्रहण-त्याग का जिसमें अभाव है — ऐसा तो उसका गुण है। पर के अभावस्वरूप ही है, पर के त्यागस्वरूप ही है, ऐसा। ग्रहणस्वरूप तो है नहीं परन्तु पर के त्यागस्वरूप ही है। शरीर, वाणी आदि... आहा...हा...! त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति। पर के त्याग से रहित निवृत्तस्वरूप ही है; उसे पर का त्याग करना — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! और ऐसा कि पंच महाव्रत का शुभराग बीच में आता है न....

द्रव्य तो निवृत्त ही है। उसका दृढ़ता से अवलम्बन लेकर भविष्य के विभाव से भी निवृत्त होओ।... प्रत्याख्यान लेना है न! ऐसे तो यह कहा जाता है कि शुभराग बीच में आता है और फिर उससे अभाव करके निश्चयचारित्र होता है; इसलिए उसे कारण भी कहा जाता है (किन्तु) वास्तव में ऐसा भी नहीं है। निश्चयचारित्र का जो समय है, उस

www.vitragvani.com

समय ही षट्कारक की परिणति परिणमित होकर निश्चयचारित्र प्रगट होता है, पूर्व में शुभराग था; इसलिए उससे (हुआ) — उसका निमित्त कारण आया, इसलिए चारित्र होता है — ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

एक इतना निर्णय करे कि प्रत्येक द्रव्य की उस समय की पर्याय निज क्षण में उत्पन्न होती है, उसे किसी पूर्व के क्षण की या संयोग की अथवा द्रव्य-गुण की आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! यह लक्ष्य रखकर फिर शास्त्रों का अर्थ करे तो बात जँचे। जहाँ ऐसा आता है कि व्यवहार भी भजना.... शुभराग आता है, अशुभ छोड़कर पंच महाव्रत मिले तो उसे इतना त्याग करे तब फिर चारित्र होता है, स्वरूप की चारित्रदशा (तब होती है)। यह सब व्यवहार के कथन हैं। आहा...हा...! जिसकी चारित्रदशा तो उस समय उस प्रकार से वह पर्याय उत्पन्न होनी है, उसे पूर्व में शुद्धता है, और उससे महाव्रत लिया है, उससे आगे बढ़ा, अशुभ मिटाकर उससे आगे बढ़ा — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! उसी समय... ऐसी बात जगत को कठिन पड़ती है।

केवलज्ञान भी निश्चय से मोक्षमार्ग से नहीं होता। केवलज्ञान की पर्याय भी उस समय में षटकारक की परिणति से खड़ी होकर केवलज्ञान होता है। आहा...हा...! उसे केवलज्ञानावरणी के अभाव की अपेक्षा नहीं है। उसके द्रव्य में इतनी बड़ी शक्ति है, इसलिए उसकी भी अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! उस समय के वे परिणाम षट्कारक — कर्ता, कर्म, करण, (से हुए हैं)। कर्ता स्वयं, कर्म स्वयं, करण स्वयं, सम्प्रदान स्वयं, अपादान स्वयं, और अधिकरण स्वयं है। आहा...हा...! इसलिए कुछ पंच महाव्रत लिये (और उनसे) आगे जाने के लिये उनकी कुछ सहायता प्राप्त हो — ऐसा नहीं है।

द्रव्य तो निवृत्त ही है। उसका दृढ़ता से अवलम्बन लेकर... निवृत्त है, उसे दृढ़रूप से पर्याय में अवलम्बन लेकर। निवृत्तस्वरूप ही है, ज्ञायक चैतन्य ज्योति विज्ञानघन निर्मल, वह द्रव्य से तो निवृत्त ही है; राग टले तो निवृत्त हो — ऐसा भी नहीं है, वह तो पर्याय में (होता है); वस्तु तो निवृत्त ही है, आहा...हा...! **उसका दृढ़ता से अवलम्बन लेकर...** उसका दृढ़ता से आश्रय लेकर। आहा...हा...! **विभाव से भी निवृत्त होओ।...** भविष्य के... भविष्य के विभाव से भी निवृत्त होओ परन्तु उसका अवलम्बन लेकर...

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! **उसका दृढ़ता से अवलम्बन लेकर भविष्य के विभाव से भी निवृत्त होओ।...** भविष्य का विकल्प, विभाव उत्पन्न न हो इस प्रकार (निवृत्त होओ)।

मुक्ति तो जिनके हाथ में आ गई है... आहा...हा... ! यह भी कहा है न, ज्ञान प्रत्याख्यान है। राग छोड़ूँ तो प्रत्याख्यान हो... परन्तु वह राग स्वयं हुआ कब था कि छोड़ूँ ? आहा...हा... ! राग से तो वह (स्वभाव) निवृत्तस्वरूप ही है। आहा...हा... ! ऐसा जो स्वरूप, उसका अवलम्बन करके... भविष्य का विकल्प भी न उठे। आहा...हा... ! उसका आश्रय लेकर... आहा...हा... ! **भविष्य के विभाव से भी निवृत्त होओ।...** आहा...हा... ! निवृत्त होओ। **मुक्ति तो जिनके हाथ में आ गई है — ऐसे मुनियों को...** आहा...हा... ! मुक्तस्वरूप है, वह अनुभव में आ गया है और मुक्ति की पर्याय जो है, वह भी यहाँ मोक्षमार्ग हुआ, उसमें वह आ गयी है। मोक्षमार्ग की पर्याय को मुक्ति कहा है न ! पंचरत्न ! आहा...हा... ! प्रवचनसार (की पंचरत्न गाथा २७२ में) मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, वही सिद्धपद है, वही मोक्षतत्त्व है — ऐसा कहा है। वह मोक्षतत्त्व है। समझ में आया ? आहा...हा... ! प्रवचनसार, अन्तिम पाँच गाथायें हैं न ? मुनि होने पर भी राग को एकरूप मानता है और लाभ मानता है तो वह संसारतत्त्व है, भले ही अकेला हो, नग्न हो, वस्त्र का टुकड़ा न रखता हो। साधु जैनदर्शन के आश्रय में व्यवहार से नग्नपना (रखकर) रहता हो परन्तु अन्तर में राग के कण को भी (अपना मानता हो), यह व्रत करो, तप करो, इससे कल्याण होगा (ऐसा मानता हो)। उसका अर्थ यह कि राग का भाग है, उससे कल्याण होता है... आहा...हा... ! तो वह पर्याय में मुक्त नहीं है।

वस्तु मुक्त है — ऐसा अनुभव होने पर भी, जब तक राग-भाव थोड़ा रह गया है, तब तक पर्याय में मुक्ति नहीं है, उस राग से भिन्न पड़कर मुनिदशा के योग्य दशा कही है, उसे तो पर्याय में मुक्ति है, कहते हैं। समझ में आया ? द्रव्य तो मुक्त है ही, वह निवृत्त है ही। आहा...हा... ! यह तो पहला शब्द लिया। है न ? द्रव्य तो निवृत्त ही है। निवृत्त अर्थात् निवृत्तस्वरूप ही है, मोक्षस्वरूप ही है। आहा...हा... ! परन्तु पर्याय दृढ़रूप से उस त्रिकाली का अवलम्बन लेकर भविष्य के विभाव से निवृत्त होओ।

मुक्ति तो जिनके हाथ में आ गई है... आहा...हा... ! मुक्ति के लिये कैसे

www.vitragvani.com

परिणमित होना ? वह दशा हो गयी है, अर्थात् मुक्ति उनके हाथ में आ गयी है। उनके भाव में आ गयी है, ऐसा। हाथ अर्थात् (उनके भाव में आ गयी है)। आहा...हा...! मुक्ति को उनके भाव में आ गयी है। हाथ अर्थात् भाव। आहा...हा...! समझ में आया ? उनके भावरूप हाथ में मुक्ति आ गयी है, पर्याय में (हाथ आ गयी है)।

ऐसे मुनियों को भेदज्ञान की तीक्ष्णता से प्रत्याख्यान होता है। निवृत्तस्वरूप है, उसके अवलम्बन से भविष्य में राग नहीं होता, इस प्रकार जिन की दशा है, आहा...हा...! निवृत्त हुए हैं (उनके) हाथ में मुक्ति आ गयी है। वे मुनि भेदज्ञान की तीक्ष्णता से (अर्थात्) भेदज्ञान की तीक्ष्णदशा करके... समकित में तो भेदज्ञान था परन्तु फिर आता है न ? भेद अभ्यास से चारित्र...। पीछे (सर्वविशुद्ध में) आता है। समकित होने पर भी भेदज्ञान के अभ्यास से चारित्र को प्राप्त करता है, अर्थात् अन्दर में स्थिरता करते-करते राग से पृथक्-पृथक् होते-होते, अन्दर में स्थिरता करते हुए चारित्र होता है। सर्वविशुद्ध में यह गाथा है। आहा...हा...!

मुनियों को भेदज्ञान की तीक्ष्णता से... ऐसे हाथ जोड़कर प्रत्याख्यान किया ऐसा नहीं। राग से भिन्न पड़े हुए भेदज्ञान से, भेदज्ञान की ही तीक्ष्ण दशा से... आहा...हा...! प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र अथवा त्याग तब होता है। आहा...हा...! यहाँ तो दो प्रतिमा लो, चार प्रतिमा लो (ऐसा कहते हैं)। कुछ भान नहीं होता। द्रव्य का पता नहीं होता, उसका अवलम्बन क्या है — उसका पता नहीं होता। हो गयी सात प्रतिमा और हो गयी दो प्रतिमा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह प्रतिमा से अधिक हो तो अधिक ले ले... कहाँ भान है ? वस्तु कहाँ है, वस्तु का तो कुछ पता नहीं। अंक, नाम चाहे जो धारे, नहीं सात प्रतिमा और ग्यारह प्रतिमा... एक आठ प्रतिमावाला ब्रह्मचारी यहाँ आया था। (एक व्यक्ति के) यहाँ (आहार करने गया था) यहाँ आया था। आठ प्रतिमावाला एक आया था, नहीं ? आठ प्रतिमा ली थी, तो कहता था ग्यारह प्रतिमा लेंगे तो अपनी गिनती होगी, आठ प्रतिमावालों को कोई आहार-पानी के लिये नहीं बुलाता। पधारो... पधारो... पधारो... (नहीं कहते) और ग्यारह प्रतिमा ले तो आहार-पानी तो हो, रोटियाँ तो ठीक मिलें। आठ प्रतिमावालों को

www.vitragvani.com

लंगोटी नहीं होती, अर्थात् बहुत त्यागी नाम नहीं गिना जाता, इसलिए उन्हें (कोई नहीं बुलाता) और लंगोटी पहनकर ठीक अकेला बैठा हो तो (लोग कहते हैं) पधारो... पधारो... पधारो... आहा...हा...! और वह जाये तो भी उसका आदर करते हैं। क्षुल्लक आये हैं, क्षुल्लक आये हैं। आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं **भेदज्ञान की तीक्ष्णता से प्रत्याख्यान होता है।** आहा...हा...! यह बाहर के त्याग से प्रतिमा ली, इसलिए प्रत्याख्यान होता है — ऐसा नहीं है। आ...हा...!

यदि तेरी गति विभाव में जाती है तो उसे शीघ्रता से चैतन्य में लगा। स्वभाव में आने से सुख और गुणों की वृद्धि होगी; विभाव में जाने से दु:ख और गुणों की हानि होगी। इसलिए शीघ्रता से स्वरूप में गति कर॥ ७४॥

७४, **यदि तेरी गति विभाव में जाती है...** शुद्धस्वभाव पूर्णानन्द प्रभु में से तेरी परिणति यदि विभाव में जाती है, **तो उसे शीघ्रता से...** अर्थात् उग्र पुरुषार्थ करके **चैतन्य में लगा।** आहा...हा...! चैतन्य के स्वभाव को छोड़कर जहाँ विभाव होता है, कहते हैं, उसे छोड़कर अब चैतन्य में लगा। आहा...हा...! क्योंकि तेरा पुरुषार्थ जो विभाव में जाता था, वही (पुरुषार्थ) स्वभाव में ला। आहा...हा...! **उसे शीघ्रता से चैतन्य में लगा।** अर्थात् करूँगा, बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... ऐसा नहीं। बाद में करूँगा... बाद में करूँगा तो (वह) बाद में रह जायेगा।

आज ही, आया है न प्रवचनसार में (आया है)। आज ही कर। आज आया था, नहीं? प्रमाण करना। अभी आयेगा... अनुभव से प्रमाण करना। गाथा के अर्थ में आ गया है। आहा..हा...! दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! हम कहते हैं, हमें भी हमारे गुरु ने प्रसादी से मेहरबानी करके-कृपा करके शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया है। उसका अर्थ हम भी शुद्धात्म तत्त्व का उपदेश देने का व्यवसाय किया है। आहा...हा...! यदि ठीक दूँ, यदि अर्थात् भलीभाँति यदि आवे... आहा...हा...! तो प्रमाण करना। हाँ करना और व्यवहार से श्रद्धा करना - ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! हम कहते हैं, उसका लक्ष्य छोड़कर...

www.vitragvani.com

आहा...हा... ! अपनी आत्मा में लक्ष्य देकर अनुभव से प्रमाण करना। आहा...हा... ! यह वाणी तो देखो ! अरे... ! कहाँ मिले ? बापू ! दिगम्बर सन्त, परमेश्वर का साक्षात्कार किये हुए ! आहा...हा... ! और परमेश्वर को प्राप्त करने की ही सीधी बात ! यहाँ से स्वर्ग में जाओगे और फिर ऐसा होगा और फिर अमुक होगा, फिर भगवान के पास जाओगे और वहाँ समकित पाओगे, और फिर चारित्र आयेगा — ऐसा है नहीं। आहा...हा... ! यह वाणी सन्तों की नहीं है। आहा...हा... ! है ?

चैतन्य में लगा। स्वभाव में आने से... भगवान आत्मा स्वभाव में आने से **सुख और गुणों की वृद्धि होगी;...** आनन्द की वृद्धि होगी। आहा...हा.. ! और अनन्त गुण हैं, उनकी सब पर्याय में वृद्धि होगी। आहा... ! दो बातें की हैं — चैतन्य के स्वभाव में आ, विभाव में जाने से रुक, विभाव में जाना रोक, स्वभाव में आ ! तुझे सुख और गुण की वृद्धि होगी। मूल चीज तो आनन्द की वृद्धि होगी और उसके साथ अनन्त गुण हैं, उनकी परिणति भी वृद्धिगत होगी। आहा...हा... ! है न ?

सुख और गुणों की वृद्धि होगी;... अर्थात् अनन्त गुण हैं, उन प्रत्येक की परिणति की शुद्धि की वृद्धि होगी। आहा...हा... ! चैतन्य में-स्वभाव में पुरुषार्थ लगा... आहा...हा... ! तो जितने गुण हैं, वे सब परिणति में शुद्ध होंगे और साथ में सुख होगा, आनन्द आयेगा। आहा...हा... ! **विभाव में जाने से दुःख और गुणों की हानि होगी।** क्या कहा ? विभाव में जाने से दुःख और गुणों की... विभाव में जाने से दुःख होगा और गुणों की हानि होगी, ऐसा। विभाव में जाने से दुःख होगा और गुणों की हानि होगी। उसमें सुख होगा और गुणों की वृद्धि होगी, इसमें दुःख होगा और गुणों की हानि होगी। **इसलिए शीघ्रता से स्वरूप में गति कर।** विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता। जैसे अपने महल में सुख से रहनेवाले चक्रवर्ती राजा को बाहर निकलना सुहाता ही नहीं; वैसे ही जो चैतन्यमहल में विराज गये हैं, उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है; आँख से रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है। जो स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गई है॥ ७५ ॥

जेठ कृष्ण ८, बुधवार, दिनाङ्क २८-०६-१९७८
प्रवचन-२३ वचनामृत- ७५-७६

(वचनामृत) ७५ वाँ बोल है न? ७४ चला न। ७५... ७५ **जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।...** आहा...हा...! क्या कहते हैं? चैतन्यधाम ध्रुव जागृत और आनन्द का नाथ प्रभु जो वस्तु है द्रव्यस्वभाव, ऐसा चैतन्यधाम अर्थात् स्थान, उसको जिसने अन्दर में पहचान लिया... सम्यग्दृष्टि ने उसे पहचान लिया। आहा...हा...! प्रभु है वह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। 'शुद्धबुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम' — ऐसा जिसने अन्तर में (पहचान लिया)। यह तो मूल की बात है।

चैतन्यस्वभाव जो ध्रुव नित्य, वस्तु स्वरूपरूप से ध्रुव नित्य है — ऐसा जो स्थान, धाम - स्वरूप है, उसका जिसे ज्ञान हुआ, उसका जिसे स्वरूप का ज्ञान हुआ, है? **वे स्वरूप में ऐसे सो गये...** उस आनन्द में ऐसी दृष्टि जम गयी कि बाहर आना उसे अच्छा नहीं लगता। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन में सत्य दर्शन हुआ न? पूर्ण स्वरूप नित्यानन्द प्रभु शुद्ध ध्रुव चैतन्य का जिसे ज्ञान हुआ... यह ऐसा स्वरूप है, ऐसा जाना; जाना, उसे उसमें

www.vitragvani.com

रहने की दृष्टि हो गयी। आहा...हा...! उसे पुण्य के भाव में आना भी बोझ लगता है। आहा...हा...! कठिन बात है। भाई! है? ठीक से सुनायी देता है? केशवलालजी! सुनायी देता है, ठीक! **जिन्होंने...** आहा...हा...!

टंकोत्कीर्ण का दृष्टान्त (जगन्मोहनलालजी ने) दिया है। टंकोत्कीर्ण! ऐसा कि यह पत्थर है, उसमें मूर्ति है ऐसा इसने पहले जाना है। मूर्ति है अर्थात् मूर्ति का आकार हो सके ऐसी स्थिति है, ऐसी अन्दर मूर्ति है; उसके बाद ऊपर की मूर्तिरहित जो चीज है, उसे छैनी द्वारा निकालकर अकेला स्वरूप जो अन्दर अमूर्तिस्वरूप है, वह रहता है। पालीताणा है न?... अन्दर पत्थर में से ऐसे का ऐसा उत्कीर्ण कर रखा है। इसलिए वास्तव में तो वह स्वरूप अन्दर था, वह था, उसके अतिरिक्त अमूर्ति-मूर्ति नहीं परन्तु अमूर्ति अर्थात् वह चीज पत्थर के छोटे-बड़े भाग वे सब मूर्तस्वरूप नहीं थे, उन्हें दूर करके था, वह निकला। आहा...हा...!

इसी तरह यह भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप मूर्तस्वरूप... मूर्त अर्थात् रूपी — ऐसा नहीं... उसका स्वरूप जो चैतन्य है, वह तो अन्दर है वह है। धर्मी जीव ने जब उसे जान लिया कि यह स्वरूप चैतन्यमूर्ति है, फिर स्वयं स्वरूप में स्थिर होकर जो चैतन्यस्वरूप के बाहर की चीजें थीं, उनका अभाव करके, था वैसा रखा। आहा...हा...! कठिन बातें हैं। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! लोगों ने तो बाहर से सब क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति में मना लिया है। आहा...हा...!

यह चैतन्यवस्तु अन्दर ध्रुव है, राग के विकल्परहित... अरे! एक समय की पर्याय से भी भिन्न, ऐसा चैतन्यस्वरूप द्रव्यस्वभाव — ऐसा जिसने जान लिया; ऐसे स्वरूप को जिसने सम्यग्दर्शन में जानकर प्रतीति की और उसमें रहने की ही अब दृष्टि हुई... आहा...! है? **वे स्वरूप में ऐसे सो गये...** आहा...हा...! उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप की दृष्टि करके और यही मैं हूँ, उसमें — आनन्द में इस प्रकार सो गये... आहा...हा...! **कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।...** आहा...हा...!

सिद्धान्त में तो यहाँ तक कहा था न? मोक्ष अधिकार में... मुनि हैं, जो अन्दर आनन्दधाम में, विज्ञानघन ऐसा निर्मल स्वरूप प्रभु, उसमें मुनि अन्तरनिमग्न हुए हैं, उन्हें

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मुनि कहते हैं। उन मुनि को... आहा...हा... ! पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह प्रमाद है, छठवें गुणस्थान में वह प्रमाद है। पंच महाव्रत का विकल्प, वह प्रमाद है और वह जगपंथ है। इतना राग जगपंथ है — संसारपंथ है। आहा...हा... ! अन्तर आनन्दस्वरूप में अन्तर में जम जाना, राग बिना निर्विकल्प में रहना, वह शिवधाम — वह शिव का मार्ग है। आहा...हा... !

बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।.... आनन्द में से... जिसके स्वाद में आनन्द आया, सम्यग्दर्शन में... सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान उसमें पूर्णस्वरूप का ज्ञान आया; पूर्णस्वरूप उसकी पर्याय में नहीं आया, परन्तु पूर्णस्वरूप का ज्ञान आया। है न ? **चैतन्यधाम को पहचान लिया है....** पर्याय में। पर्याय में उसे जान लिया कि यह वस्तु तो अखण्ड आनन्द है। यह अखण्ड आनन्द है, वह पर्याय ने जाना, तथापि पर्याय में वह वस्तु नहीं आती... आहा...हा... ! और फिर भी पर्याय ने उसे जाना कि यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का नित्य धाम, ध्रुवधाम है। उसमें से उसे बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। आहा...हा... ! है ? (बाहर) **आना अच्छा ही नहीं लगता।...**

जैसे अपने महल में सुख से रहनेवाले चक्रवर्ती... चक्रवर्ती होता है न, पाँच बड़े बँगले देवों ने बनाये होते हैं, अलौकिक होते हैं। उस चक्रवर्ती को — राजा को बाहर आना अच्छा नहीं लगता। अपने मकान की अनुकूलता के सुख में से बाहर आना उसे अच्छा नहीं लगता। आहा...हा... ! **वैसे ही जो चैतन्यमहल में विराज गये हैं...** जिनकी अस्ति चैतन्य और आनन्द के स्वरूप में जिनकी अस्ति है, मौजूदगी, अस्तित्व है। आहा...हा... ! ऐसे अस्तित्व में जिनकी दृष्टि गयी, वे अन्दर के महल में प्रविष्ट हुए। उस चक्रवर्ती को जैसे महल में से निकलना रुचता नहीं। आहा...हा... ! वैसे स्वरूप के भान और स्वरूप के अनुभव में बाहर निकलना रुचता नहीं। आहा...हा... ! अशुभराग तो रुचता नहीं; अशुभ तो पाप है, दुःख है परन्तु शुभराग भी पुण्य और पाप के साथ बन्धन का कारण है। पण्डितजी ! आहा... ! ऐसी बात है प्रभु !

जिसे अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु है, अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु है — ऐसी जिसे अन्दर पहचान हुई, पहचान हुई। आहा...हा... ! उसे उस खान में से बाहर आना

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

रुचता नहीं है। आहा...हा... ! है ? **चैतन्यमहल में विराज गये हैं, उन्हें बाहर आना कठिन लगता है,....** क्या कहते हैं ? भगवान आनन्द प्रभु, अतीन्द्रिय चैतन्यधाम स्वरूप प्रभु, ध्रुवस्वरूप — ऐसा जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में भान हुआ, उसे बाहर आना कठिन लगता है। आहा...हा... ! अशुभभाव में तो दुःख लगता है, धर्मी को अशुभभाव में तो दुःख लगता है परन्तु शुभभाव में भी दुःख लगता है। आहा...हा... ! गुजराती समझते हैं ? हमारे पण्डितजी तो यहाँ गुजराती.... आहा... ! यहाँ तो रहते हैं। आहा...हा... !

जिसे अन्दर... आहा...हा... ! बादाम और पिस्ते का मावा मिला, बादाम का मैसूर होता है, बादाम को मैसूर होता है, पिस्ता बादाम का मैसूर... मैसूर। चार सेर घी और एक सेर बादाम उसे मिलाकर शक्कर डालकर, बादाम का मैसूर बनाते हैं। आहा...हा... ! यह बादाम का मैसूर जिसने चखा, उसे वहाँ से निकलना अच्छा नहीं लगता। आहा...हा... ! भाव आवे, अशुभ भी आवे परन्तु दुःख लगता है। आहा...हा... ! उस आनन्द में से बाहर आना, वह दुःख लगता है। ऐसी बातें बापू ! वीतरागमार्ग परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ, आहा...हा... ! ऐसा फरमाते हैं और यह वस्तु ऐसी है। आहा... !

जिसने चैतन्यधाम का-स्थान का स्वरूप जिसने देख लिया... आहा...हा... ! उसे (उस) धाम में से बाहर निकलना कठिन पड़ता है। इस प्रकार बाहर आ जाये, विकल्प आवे, भक्ति का आवे, पूजा का आवे, श्रवण का आवे, परन्तु अन्तर में से निकलना कठिन पड़ता है। आहाहा ! देखो ! यह मार्ग ! आहा... ! जिसे आनन्द का स्वाद आया, उसमें से बाहर निकलना उसे कठिन पड़ता है। आहा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द में रमने के लिये, जिसे चक्रवर्ती का राज हो, वह क्षण में कफ की तरह छोड़ देता है। मेरा आनन्द इसमें (आत्मा में) है। छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, चक्रवर्ती की सोलह हजार देव सेवा करते हों, बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटन, छियानवें करोड़ गाँव — एक क्षण में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की उग्रता लेने के लिये वन में जाने को छोड़ देता है। आहा...हा... ! मेरा प्रभु जहाँ आनन्दस्वरूप है, वहाँ मुझे बसना है, मेरा धाम वहाँ है। आहा...हा... ! समझ में आया ? यह तो सादी गुजराती भाषा है। आहा... !

चैतन्यमहल में विराज गये हैं, उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप

www.vitragvani.com

लगता है;.... आहा...हा...! देखो तो सही! वृत्ति आवे; मुनि है, उसकी वृत्ति तो पंच महाव्रतादि की हो परन्तु बोझा लगता है। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु! अनाकुल शान्ति का सागर, जिसमें डुबकी लगाकर अतीन्द्रिय शान्ति और आनन्द आता है। आहा...हा...! उसमें से बाहर निकलते दुःख लगता है, उसे बाहर का उत्साह उड़ जाता है, उसकी भूमिका प्रमाण जो व्यवहार करना, उसका उत्साह उड़ जाता है। आवे, आहा...हा...! **बाहर आना उसे भाररूप लगता है...** आहा...हा...! यह तो मार्ग! आहा...हा...!

यह सर्वोत्कृष्ट चैतन्यधातु प्रभु, जिसने चैतन्यपना ही धार रखा है, जिसने अतीन्द्रिय आनन्द ही ध्रुवरूप से धार रखा है; उसका जहाँ ज्ञान हुआ, उसकी कीमत हुई... आहा...हा...! इससे उसमें से बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है। आहा...हा...! आवे; धर्मी को भी व्यवहार आवे; जबतक वीतराग नहीं हुआ, तबतक उसे व्यवहार (आवे) परन्तु भाररूप लगता है। आहा...हा...! यह दिगम्बर धर्म जैनदर्शन! इसके अतिरिक्त यह चीज कहीं है नहीं! आहा...हा...! जैनदर्शन दिगम्बर तत्त्व, दिगम्बर सन्तों ने... आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते-झूलते विकल्प आया और यह शास्त्र बन गये। यह शास्त्र बनाने का विकल्प आया, वह भाररूप लगा। केशुलालजी! आहा...हा...! भाररूप लगता है, आहा...हा...! जैसे हल्की चीज पर लोहे का बड़ा वजन अन्दर रखे; वैसे प्रभु आनन्द का नाथ ज्ञायकस्वरूप प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन का जहाँ भान हुआ, उसमें राग उसे बोझ लगता है। आहा...हा...! अब यहाँ लोग कहते हैं कि यह व्यवहार करते-करते निश्चय होता है। हैं? कहीं मेल खाये ऐसा नहीं है, प्रभु! आहा...हा...! आहा...हा...!

समकिती को गृहस्थाश्रम में अशुभभाव आता है परन्तु दुःख लगता है, बोझा लगता है। आहा...हा...! और शुभभाव तो मुनि को भी आता है — हैं? अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, अचेलकपना-नग्नपना, वस्त्ररहितपने का विकल्प तो आता है। आहा...हा...! परन्तु कहते हैं कि प्रभु में से बाहर निकलना.... प्रभु की जो सम्पदा पड़ी है, प्रभुत्वशक्ति का भण्डार प्रभु है, ईश्वर शक्ति का सागर यह आत्मा है; कोई दूसरा ईश्वर नहीं, तू स्वयं ईश्वर है। आहा...हा...! आहा...हा...! इस ईश्वर में से ईश्वर का स्वरूप जिसने अन्दर में — सम्यग्दर्शन में देखा, उसे राग की पामरता में आना कठिन लगता है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है।

www.vitragvani.com

भाररूप लगता है; आँख से रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है।.... दिट्ठी जहेव णाणं आता है न ? ३२० गाथा। ३२० (गाथा) वहाँ चलती है, नैरोबी... नैरौबी... ! पण्डितजी ! नैरोबी में इस १७ तारीख को मंगल है, अफ्रीका ! पन्द्रह लाख का मन्दिर का मुहूर्त किया, पन्द्रह लाख का मन्दिर ! वहाँ गृहस्थ हैं। श्वेताम्बर, सब दिगम्बर हो गये हैं, चालीस घर — सब गृहस्थ लोग हैं, चार तो करोड़पति हैं, दूसरे सब घर पन्द्रह लाख, बीस लाख वाले हैं। इस १७ तारीख को (मुहूर्त) है। लालभाई गये हैं, वहाँ लालचन्दभाई और अपने बाबूभाई, फतेपुर दोनों गये हैं। वहाँ मुहूर्त है नैरोबी, हाँ ! नैरोबी में। वहाँ डेढ़-दो-ढाई लाख का मकान है, और वहाँ प्लेन में अपनी दिगम्बर प्रतिमा ले जायेंगे। वह तो मन्दिर छोटा था, पन्द्रह लाख का करके मुहूर्त किया। आहा...हा... ! १७ तारीख को। आज कितनी हुई ? २८। आहा...हा... !

यहाँ तो दूसरा कहना है कि यह सब काम कर सकता हूँ, यह तो आत्मा में है ही नहीं। आहा... ! सत्रह लाख का हो या पन्द्रह लाख का हो, आहा...हा... ! एक मन्दिर तो अपने यहाँ पन्द्रह लाख का है, बैंगलोर ! (एक) मुमुक्षु की ओर से... दो श्वेताम्बर हैं (एक) दो करोड़वाला है, भभूतमल श्वेताम्बर, उसने आठ लाख दिये। अपना दिगम्बर मन्दिर और एक (भाई) स्थानकवासी जुगराजजी करोड़पति है, उसने चार लाख दिये। बारह लाख का मन्दिर हुआ, परन्तु अभी देखा तो... ओ...हो...हो... ! फिर तीन लाख बढ़ाकर पन्द्रह लाख (किये)। ऐसे मन्दिर और प्रतिमा... आहा...हा... ! कहा न, वैद्य आया था, डॉक्टर ! गांगोली, कलकत्ता से। बड़ा डॉक्टर है न ? आनेवाला है। वह आया था, बाल ब्रह्मचारी है, राजकुमार जैसा है परन्तु आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करने का भाव है, पैसा बहुत पैदा होता है,... उसने मन्दिर को देखा... आहा...हा... ! एक हजार रुपये मैं देता हूँ, कहे। डॉक्टर ! मन्दिर को देखकर (कहा)। मूल वेदान्ती, वेद को मानता है परन्तु यहाँ सुनकर (लगा), बापू! यह मार्ग अलग प्रकार है। वेदान्त में यह बात है नहीं। आहा... ! वेदान्त में तो पर्याय उन्होंने नहीं मानी, कार्य होता है तो पर्याय में... ध्रुव का निर्णय करती है पर्याय, नित्य का निर्णय करती है अनित्य... नित्य का निर्णय नित्य किस प्रकार करे ? आहा...हा... ! यह वस्तु ही अन्यत्र नहीं है। अनित्य जो पर्याय है, वह नित्य का निर्णय करती है। यहाँ देखा न ?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है.... यह पहचान लिया, वह पर्याय है और वस्तु चैतन्यधाम, वह ध्रुव त्रिकाल है। आहा... ! वह वस्तु कहाँ है ? यह वेदान्तवालों ने भले आत्मा की बात की। यहाँ तो अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणुओं की बात है। वे तो एक ही आत्मा कहते हैं। आहा...हा... ! एक-एक आत्मा परमात्मस्वरूप पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान से भरपूर भगवान है। अनन्त गुण से, अनन्त गुण की राशि का पिण्ड भगवान ! आहा...हा... ! उसे जिसने पहचाना और उसका जिसे ज्ञान और रुचि हुई; जानकर-पहचानकर रुचि हुई अर्थात् दृष्टि हुई, उसे उसमें से बाहर आना (अच्छा नहीं लगता)। **आँख से रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है।...** आ...हा... !

३२० गाथा है। वह वहाँ भी चलती है, यह याद आ गया। नैरोबी ! (लालचन्दभाई) गये हैं, ३२० गाथा चलती है। ३२० गाथा है, वहाँ भी सुननेवाले यह सब श्वेताम्बर निकले, दिगम्बर तो कहाँ, था ही कहाँ ? श्वेताम्बर के चालीस घर हैं दिगम्बर (हो गये हैं)। जब पन्द्रह लाख का (मन्दिर का) मुहूर्त किया तब साढ़े सत्रह सौ, दो हजार लोग आये थे, कहते हैं। सब श्वेताम्बर रहते हैं, वहाँ दिगम्बर कहाँ थे ? अफ्रीका, नैरोबी... आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं कि यह बाहर का विकल्प उठे कि यह करूँ,... करना तो कर सकता नहीं, आत्मा पर की क्रिया (कर सकता नहीं)। मन्दिर को बनाना, प्रतिमा पथराना, यह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता; वह तो पर की क्रिया है परन्तु उसका भाव आवे, शुभभाव (आवे)... आहा...हा... ! परन्तु कहते हैं कि है भाररूप। आँख से रेत उठाने जैसा है। ३२० गाथा में (आता) है। **'दिट्ठी जहेव णाणं'** आहा...हा... ! दृष्टि है वह ज्ञान है, अन्दर का ज्ञान वह पर का क्या करे ? वह तो जाने। आहा...हा... ! उदय को जाने, निर्जरा को जाने, बन्ध को जाने, मोक्ष को जाने। आहा...हा... ! ऐसा चैतन्यधाम, पूर्ण परमात्मस्वरूप का जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद सम्यग्दर्शन में आया... आहा...हा... ! अब उसमें से निकलना और बाहर के राग के काम में आना, वह आँख से रेत उठाने जैसा है, कहते हैं। आहा...हा... ! ऐसा कठिन लगता है।

जो स्वरूप में ही आसक्त हुआ... आहा... ! अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु,

www.vitragvani.com

नित्यानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप... आहा...हा... ! उसमें जहाँ आसक्त हुआ... आहा...हा... ! राग और पुण्य के परिणाम की भी आसक्ति का रस टूट गया। आहा...हा... ! आसक्ति यहाँ लग गयी। आहा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सागर भरा है, महासमुद्र ! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर-समुद्र ! जैसे स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजन में है, उसके तल में अकेले रत्न भरे हैं। शास्त्र में पाठ है। स्वयंभूरमण है न ? अन्तिम समुद्र। स्वयंभू असंख्य योजन में (फैला हुआ है उसमें) नीचे रेत नहीं, नीचे अकेले रत्न भरे हैं; उसी प्रकार यह चैतन्यरत्न भगवान, इसमें कोई विकार नहीं, अकेले आनन्द के रत्न भरे हैं। ज्ञान और आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, और ईश्वरता — ऐसे अनन्त रत्न भरे हैं इसके तल में... समुद्र के तल में रत्न हैं, वैसे स्वयंभू — स्वयं अपने से हुआ, इसका कोई कर्ता नहीं। आहा...हा... ! आहा...हा... ! ऐसे भगवान के अन्तर में,... स्वयं भी भगवान स्वरूप है, उसमें अन्दर तल में-ध्रुव में चैतन्य के अनन्त रत्न पड़े हैं। आहा...हा... ! अरे ! इसने कभी सुना नहीं, इसे क्या चीज है, यह अन्दर ?

सर्वोत्कृष्ट प्रभु, जिसमें अनन्त गुण और एक-एक गुण में अनन्त शक्ति ! एक-एक गुण में अनन्त गुणों का रूप ! आहा...हा... ! जैसे आत्मा में ज्ञान है, ऐसे अस्तित्व गुण है परन्तु यह अस्तित्व गुण है, उस अस्तित्व गुण के कारण ज्ञान है — ऐसा नहीं है। ज्ञान में अस्तित्व का रूप है। ज्ञान स्वयं स्वयं से है; अस्तित्व उसका रूप है। अस्तित्व गुण के कारण नहीं। आहा...हा... ! ऐसा अनन्त गुण का भण्डार भगवान ! अरे... ! इसने देखा नहीं, कभी सुना नहीं, भाई ! आहा... ! उससे राग का काम कराना, आँख से रेत उठाने जैसा है। आँख से रेत ! है ?

स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गई है। आहा...हा... ! आवे; विकल्प आवे, हो — परन्तु उसका आदर नहीं। आदर तो प्रभु चैतन्य शुद्ध है, उसका आदर है। उपादेय (वह है)। राग आता है, वह हेय है। आता है, पूर्ण वीतराग न हो, तब तक (राग आता है) परन्तु भाररूप लगता है, हेय है। आहा...हा... ! जो राग भाररूप लगे, हेय (लगे) उससे निश्चय प्राप्त हो ? लोगों को यह पता नहीं है। व्यवहार करते-करते, व्यवहार करो तो निश्चय होगा। अरे... ! प्रभु ! यह क्या कहता है ? वीतराग का मार्ग

www.vitragvani.com

यह नहीं है। आहा...हा...! व्यवहार की रीति छोड़कर और त्रिकाली भगवान की दृष्टि कर तो वह सम्यग्दर्शन होगा। आहा...हा...! व्यवहार की सहायता से होगा — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा मनुष्यभव मिला, बापू! आहा...हा...! उसमें तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की वाणी मिली, आहा...! जो अन्यत्र कहीं है नहीं। जिनेश्वर के अतिरिक्त (कहीं है नहीं), उसने जिनेश्वर के नाम से भी गड़बड़ कर डालते हैं न अभी! आहा...हा...! निमित्त से होता है और व्यवहार से होता है — सब गड़बड़ कर डाली है। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं, चैतन्य के आनन्द के स्वाद के समक्ष, उसका स्वाद (आया) वहाँ से छूटना, अच्छा नहीं लगता। बालक हो, (उसे) रोटी में शक्कर के दाने दें, वह बालक खाये तो थूक उसे स्पर्श करे तो शक्कर का दाना भींग जाता है, वह मक्खी आवे, मक्खी, वह पकड़ने जाये, शक्कर लेने जाये तो मक्खी की पंख चिपक जाये तो भी हटती नहीं, क्योंकि उसे शक्कर के स्वाद के समक्ष वहाँ से छूटना अच्छा नहीं लगता। आहा...हा...! वैसे ही भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष उसे व्यवहार का विकल्प करना अच्छा नहीं लगता — ऐसा है। मार्ग तो प्रभु ऐसा है, वस्तुस्थिति ही ऐसी है। यह कहाँ भगवान ने कुछ किया है? भगवान ने तो जाना है। जैसा स्वरूप है, वैसा जाना है। जाना है, वैसा कहा है। उन्होंने कहीं किसी का किया नहीं है। आहा...हा...! भगवान की ही यह वाणी है। दिगम्बर सन्तों ने वाणी, वह भगवान की ही वाणी है। आहा...! वे ऐसा कहते हैं। **स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गई है।** आहा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

तस्वीर खींची जाती है वहाँ जैसे चेहरे के भाव होते हैं तदनुसार स्वयमेव कागज पर चित्रित हो जाते हैं, कोई चित्रण करने नहीं जाता। उसी प्रकार कर्म के उदयरूप चित्रकारी सामने आये तब समझना कि मैंने जैसे भाव किये थे वैसा ही यह चित्रण हुआ है। यद्यपि आत्मा कर्म में प्रवेश करके कुछ करता नहीं है, तथापि भाव के अनुरूप ही चित्रण स्वयं हो जाता है। अब दर्शनरूप, ज्ञानरूप, चारित्ररूप परिणमन कर तो संवर-निर्जरा होगी। आत्मा का मूल स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, उसका अवलम्बन करने पर द्रव्य में जो (शक्तिरूप से) विद्यमान है वह (व्यक्तिरूप से) प्रगट होगा॥ ७६ ॥

अब ७६। **तस्वीर खींची जाती है....** तस्वीर (अर्थात्) फोटो। **वहाँ जैसे चेहरे के भाव होते हैं....** मुख के भाव हों, मुख के ऊपर के (भाव)। दाँत निकालता हो या ऐसा हो, वैसा फोटो खींच जाता है। **तदनुसार स्वयमेव कागज पर चित्रित हो जाते हैं,...** आहा...हा...! यद्यपि फोटो में जो चित्रित हैं, वह सामने चित्राम है, वस्तु (है), उसके परमाणु यहाँ आकर चित्रित नहीं होते। यहाँ के परमाणु उस प्रकार चित्रित हुए हैं। उस अफ्रीका में बहुत सिंह होते हैं, सैकड़ों सिंह हैं। फिर यह फिल्म बनाने के लिये जाते हैं, सैंकड़ों सिंह! फिल्म खींचते हैं। पाँच-पाँच लाख की गाड़ियाँ होती हैं, सिंह आकर थाप मारे तो भी उसकी गाड़ी में स्पर्श नहीं कर सकते। इतनी बार पाड़े तो वहाँ से यदि परमाणु आते हों तो सूख जाये। आहा...हा...! यहाँ परमाणु हैं, उसमें वह चीज तो निमित्त है। उसके कारण यहाँ परमाणु उस प्रकार परिणमे हैं — ऐसा नहीं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। उस काल में वहाँ के परमाणु उस प्रकार से परिणमने के योग्यतावाले परिणमित हुए हैं। सामने जिसका फोटो लेते हैं, वह तो निमित्त है। आहा...हा...!

जैसे स्वभाव से निर्मल ऐसे स्फटिक में... यह आया? यहाँ आया यहाँ? **तस्वीर खींची जाती है वहाँ जैसे चेहरे के भाव होते हैं तदनुसार स्वयमेव कागज पर....** सहज ही, ऐसा। अर्थात् उसकी परमाणु की योग्यता से **चित्रित हो जाते हैं,...** सामनेवाला

खींचता है, वहाँ से परमाणु आते हैं, और फोटो यहाँ खींचता है — ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वहाँ तो साथ में सिंह का बच्चा साथ हो और वे फिल्म बनाते हों, उसमें हजारों-हजारों हों, वहाँ के रजकण तो वहाँ सूख जाते हैं। आहा...हा...! **चेहरे के भाव होते हैं, तदनुसार स्वयमेव कागज पर चित्रित हो जाते हैं, कोई चित्रण करने नहीं जाता।...** वहाँ चित्रित करने जाता है ?

उसी प्रकार कर्म के उदयरूप चित्रकारी सामने आये... जैसे कर्म बाँधे हों, उनका फल आवे, बाहर का चित्राम (हो), **तब समझना कि मैंने जैसे भाव किये थे, वैसा ही यह चित्रण हुआ है।....** पूर्व में भाव था, उसका यह चित्रण है; मेरा स्वरूप तो आनन्द का नाथ, ज्ञानस्वरूप है। आहा...! इस चित्रण में मैं निमित्त भी नहीं और चित्रण मुझसे हुआ नहीं। आहा...हा...! शुभभाव हुआ हो और पुण्य बँध गया हो, पुण्य के कारण चक्रवर्ती पद मिले, इन्द्र लो न! सौधर्म इन्द्र, करोड़ों अप्सरायें (हों)। एकावतारी है, एक भव में मोक्ष जानेवाला है। शकेन्द्र, सौधर्म देवलोक, बत्तीस लाख विमान है, एक-एक विमान में असंख्य देव हैं, उनका अभी इन्द्र है। भगवान के आगम में हुकम है कि वह इन्द्र वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। आहा...हा...! उसकी पत्नी भी एक है, करोड़ों अप्सराओं में एक पत्नी मुख्य है, वह भी एक भवतारी है। उत्पन्न हुई तब मिथ्यात्व था, स्त्री हुई थी, वह मिथ्यात्व था परन्तु फिर भगवान के जन्म महोत्सव में साथ आने से उसमें से उसे आत्मज्ञान हो गया और वीतराग के मार्ग में परमागम में कहा है कि वह भी एक भवतारी है। दोनों मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहा...हा...! ऐसी स्थिति का चित्रण देखे, वह जानता है कि यह तो कर्म का फल है; मैं इसमें नहीं, ये मेरे नहीं, मुझ में नहीं, इनमें ये हैं; इनमें मैं नहीं। आहा...हा...!

करोड़ों रुपये होते हैं, नहीं ? पच्चीस-पच्चीस, पचास लाख का वह होता है — क्या कहलाता है तुम्हारे वह ? घर बखरो! घर बखरो को क्या कहते हैं ? फर्नीचर! बड़े अरबपति के यहाँ करोड़ का तो फर्नीचर होता है परन्तु यह सब फर्नीचर हुआ, वह क्या है ? कहते हैं। वह तो पूर्व के पुण्य का भाव था, उसका बँधा कर्म, उसका यह चित्रण दिखता है। यह मेरा नहीं, मेरे कारण नहीं। आहा...हा...! ऐसा जँचना कठिन है। अनन्त काल में सम्यग्दर्शन

प्राप्त नहीं किया। बाकी तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रिवक उपजायो' आहा...हा...! मुनिव्रत धार, दिगम्बर मुनि, हाँ! वस्त्रवाला मुनिपना तो द्रव्यलिंग भी नहीं है। आहा...हा...! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो पे निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो'। आत्मा के ज्ञान बिना यह पंच महाव्रत पालन किये, हजारों रानियाँ छोड़ी, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु यह राग है, दुःख है। आहा...हा...! आत्मज्ञान बिना लेश सुख न पायो, आहा...हा...! तब पंच महाव्रत, वह सुख है ? दुःख है। राग है न! आहा...हा...! लाखों वर्षों तक, करोड़ों वर्षों तक, अरबों वर्षों तक महाव्रत पालन करे परन्तु वह शुभविकल्प, राग और दुःख है; उससे रहित प्रभु आत्मा है, रागरहित है; उसमें सुख है — ऐसा आत्मज्ञान इसने नहीं किया। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं!

उसी प्रकार कर्म के उदयरूप चित्रकारी सामने आये... यह सब चमक दिखे **तब समझना कि मैंने जैसे भाव किये थे...** पूर्व में। **वैसा ही यह चित्रण हुआ है।...** आहा...हा...! यह चीज मेरी नहीं है, इस चीज में मैं नहीं हूँ, यह चीज मुझे स्पर्शती नहीं है, छूती नहीं है। आहा..हा...! शरीर को भी प्रभु कभी स्पर्शाता नहीं है, छूता नहीं है। शरीर जड़ है, आत्मा अरूपी है, स्पर्शे कैसे ? छुये कैसे ? आहा...हा...!

यद्यपि आत्मा कर्म में प्रवेश करके कुछ करता नहीं है,... कहा था न, जैसे वह फोटो खिंचा, वह कहीं इसके कारण वहाँ (होता) नहीं है। वैसे (आत्मा कर्म में) **प्रवेश करके कुछ करता नहीं है, तथापि भाव के अनुरूप ही चित्रण स्वयं हो जाता है।...** इसने जैसा भाव किया हो, उसके अनुरूप भाव निमित्त है, अनुकूल है। शुभ-अशुभभाव वह निमित्त है, अनुकूल है, उसे अनुरूप चित्रण स्वयं हो जाता है। उसे अनुरूप ऐसा परमाणु का (परिणमन) हो जाता है और उसके कारण बाहर ऐसे फल भी आ जाते हैं, उसमें आत्मा के स्वभाव की कोई गन्ध नहीं है। आहा...हा...! बड़ा चक्रवर्ती का राज दिखे, इन्द्र के (वैभव) दिखे, वह सब कर्म की चित्रकारी है। वह शुभाशुभभाव था, कर्म के रजकण उसके कारण बँधे। जिन परमाणुओं में कर्म होने की योग्यता थी, इस कारण उसके कारण बँधे; शुभ और अशुभ के कारण नहीं। आहा...हा...! शुभ-अशुभ तो निमित्त है, नये परमाणु जो बँधे, उन परमाणुओं में कर्म होने की योग्यतावाले परमाणु कर्मरूप हुए

www.vitragvani.com

हैं। आहा...हा...! ऐसी बातें! है? **वैसा ही यह चित्रण हुआ है। यद्यपि आत्मा कर्म में प्रवेश करके कुछ करता नहीं है, तथापि भाव के अनुरूप ही चित्रण स्वयं हो जाता है।....** स्वयं हो जाता है। आहा...हा...!

अब दर्शनरूप, ज्ञानरूप, चारित्ररूप परिणमन कर तो संवर-निर्जरा होगी।... यह क्या कहा? कि शुभ-अशुभभाव पूर्व में था, उनकी अनुकूलता अर्थात् निमित्त और अनुरूप, वे परमाणु बँधे वे अनुरूप। उनके फलरूप से निमित्त... वह कर्म भी वास्तव में तो निमित्त है और बाहर की चीज वह उपादान उसके स्वयं के कारण आयी है। कर्म जड़ है, उसके कारण जड़ का संयोग हुआ है, यह तो निमित्त से कथन है। आहा...हा...! जो नया संयोग आता है, वह भी स्वयं के उपादान के कारण आता है; कर्म तो निमित्तमात्र है परन्तु उसमें से यह ज्ञात होता है कि पूर्व में कोई विकारीभाव किया था, उसका यह चित्रण बाहर दिखता है; मेरा स्वभाव नहीं। आहा...हा...! यह सब दिखता है, खम्मा, खम्मा दिखती है... आहा...हा...! चक्रवर्ती, लो न! जिसे बत्तीस ग्रास का आहार होता है, बत्तीस ग्रास का आहार! उस बत्तीस ग्रास को छियानवें लाख सैनिक पचा नहीं सकते,... एक ग्रास नहीं पचास सकते — ऐसा तो उसका आहार है। यह सब पूर्व के कर्म का चित्रण दिखता है, उसका ऐसा होता है — चक्रवर्ती को, हीरे की भस्म होती है। हीरा... हीरा होता है न, उसकी भस्म रोटी में होती है। रोटी में, पूड़ी में हीरे की भस्म (होती है)। एक-एक ग्रास की अरबों रुपये की कीमत! ऐसा बत्तीस ग्रास का आहार! जिसका एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकते परन्तु यह सब कर्म का चित्रण है। आहा...हा...! पूर्व में कोई शुभभाव था, उसमें स्वयं कर्म के परमाणु स्वयं से बँध गये, उसके फलरूप ये-निमित्तरूप से फिर यह सब चीजें दिखायी देती हैं। है?

आहा...हा...! **अब दर्शनरूप, ज्ञानरूप, चारित्ररूप परिणमन कर...** यह क्या कहा? कि पूर्व में शुभ-अशुभभाव किये थे, उस निमित्त से स्वयं परमाणु स्वयं से बँधे और उनका निमित्त रजकण, बाहर के संयोग का चित्रण दिखायी देता है। अब यदि तुझे पुण्य-पाप का नाश करना हो, बाहर के चित्रण को न पाना हो, अन्दर को पाना हो... आहा...हा...! तो दर्शनरूप (परिणमन कर)। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अनुभव,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसका दर्शन-प्रतीति समकित, उसका ज्ञान, उसका चारित्र (अर्थात्) स्वरूप की रमणता — ऐसा परिणमन कर। आहा...हा...! यह क्या कहा? कि पूर्व में शुभ-अशुभभाव किया था तो उसका - कर्म का चित्रण स्वयं हुआ, उसके फलरूप से बाहर का चित्राम दिखायी दिया, बाहर के ये सब चमक-दमक (दिखायी दी)। अब यदि तुझे इस शुभाशुभ को रोकना हो तो संवर, निर्जरा कर। यह बाहर का चित्रण फिर नहीं मिलेगा, अन्दर से मिलेगा। आहा...हा...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे कोई सम्बन्ध नहीं। आहा...हा...!

दर्शनरूप, ज्ञानरूप, चारित्ररूप परिणमन कर.... मोक्षमार्ग लिया। **तो संवर-निर्जरा होगी।** आहा...हा...! कोई पुण्य-पाप का भाव नहीं होगा और बन्धन नहीं होगा और बाहर का चित्रण भी नहीं मिलेगा। आहा...हा...! समझ में आया? शुभ-अशुभभाव है, वह ऐसा बतलाते हैं कि इनसे बन्धन हुआ और इनसे यह सब बाहर की चमक दिखती है — चक्रवर्ती पद और इन्द्रपद, बलदेव पद, और वासुदेव पद। अब यदि तुझे इन्हें रोकना हो.... यह तो बाह्य संयोग देनेवाले हैं। अब तुझे धर्म की प्राप्ति करनी हो तो... आहा...हा...! पूरा भगवान जो पूर्ण है, उसका दर्शन कर — समकित कर, उसका ज्ञान कर, और उसमें रमणता-परिणमन कर। जैसे शुभाशुभ का परिणमन था तो बाहर के सब चित्रण-संयोग दिखायी दिये, वैसे ही जब तुझे संवर-निर्जरा का कारण दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणम तो संवर-निर्जरा होगी। आहा...हा...! समझ में आया?

अरबों रुपये आवें, अरबों की कीमत! ओ...हो...! चालीस-चालीस लाख के बँगले बड़े! बड़ी चमक दिखे परन्तु वह है क्या? बापू! वह तो पूर्व के तेरे भाव शुभ आदि थे, उसका पुण्य बँधा और फल का चित्रण यह दिखता है। यह सब तो आस्रव का फल है आहा...हा...! आस्रव हुआ, उसमें कर्म आया; कर्म आया उसमें संयोग आये, उसमें तो संयोग आया, क्योंकि पुण्य और पाप संयोगीभाव हैं, स्वभावभाव नहीं। आहा...हा...! उससे बँधा पुण्य, रजकण हुए, उससे स्वयं बाह्य चीज-संयोग आये, उसे कर्म निमित्त कहलाया अर्थात् उससे हुआ कि यह सब पुण्य-पाप के भाव हैं, उनका यह सब संयोग

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दिखता है। अब यदि तुझे संवर-निर्जरा करनी हो तो पुण्य-पाप से रहित... (दशा करनी हो तो) आ...हा...! आहा...हा...! दर्शन, ज्ञान, और चारित्ररूप परिणमन कर। भगवान पूर्णानन्द प्रभु का ज्ञान करके श्रद्धा कर और उस स्वरूप में रमणता का परिणमन कर। आहा...हा...! तो यह बाहर के दिखाव का कारण कर्म और कर्म का कारण शुभाशुभभाव, वह रूक जायेगा। समझ में आया? **संवर निर्जरा होगी।...**

आत्मा का मूल स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है,... आहा...हा...! त्रिकाल उसका दर्शन, ज्ञान, और चारित्र है, तो उसका परिणमन हो, वह वर्तमान मोक्षमार्ग दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहा...हा...! आत्मा का मूल त्रिकाल स्वभाव दृष्टा, ज्ञाता, और स्थिरता — वीतरागता, वह उसका स्वरूप है। आहा...! प्रभु का स्वरूप मूल स्वभाव तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रिकाल, हाँ! मूल स्वभाव वह है। आहा...हा...!

उसका अवलम्बन करने पर द्रव्य में जो (शक्तिरूप से) विद्यमान है.... अब क्या कहा? आत्मा में दर्शन-सम्यग्दर्शन अर्थात् श्रद्धा — ऐसा जो गुण त्रिकाल विद्यमान है। सम्यग्ज्ञान — अतीन्द्रिय ज्ञान त्रिकाल है और शान्ति, अकषाय चारित्रस्वरूप, अकषायभाव त्रिकाल पड़ा है, उसका यदि अवलम्बन ले — जो शक्तिरूप है। आहा...हा...! यदि उसका अवलम्बन ले, है? आहा...हा...! **द्रव्य में जो (शक्तिरूप से) विद्यमान है, वह (व्यक्तिरूप से) प्रगट होगा।** शैली देखो तो सही! यदि शुभाशुभभाव करेगा तो वहाँ कर्म का चित्रण होगा और यह बाहर का चित्रण तुझे दिखायी देगा। अब जब तुझे संवर-निर्जरा करनी हो तो त्रिकाल प्रभु आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भरपूर है, स्व स्वभाव में अनन्त चतुष्टय त्रिकाल विद्यमान हैं। आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, यह अनन्त चतुष्टय त्रिकाल विद्यमान है। आहा...हा...! ध्रुव! उसका अवलम्बन ले। आहा...हा...!

उसका अवलम्बन करने पर द्रव्य में जो (शक्तिरूप से) विद्यमान है... वस्तु में जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, उसके स्वभावरूप-शक्तिरूप है; यदि उसकी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्ररूप परिणमे तो व्यक्तरूप होगा। शक्ति है, वह व्यक्त होगी। है, वह व्यक्त अर्थात् पर्याय में प्रगट होगा, आहा...हा...! समझ में आया? अरे ***अवलदोम*** की बात ऐसी की

है। शुभाशुभभाव हो तो स्वयं कर्म बँधते हैं और उसके कारण स्वयं बाहर चित्रण होता है। अब उसे रोकना हो तो दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमन कर। इस आश्रवरूप नहीं परन्तु इन दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमन किस प्रकार (हो) ? कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र से भरपूर भगवान है। आहा...हा... ! शुभ-अशुभभाव तो कृत्रिम खड़े किये थे, वे कहीं अन्दर भरे नहीं हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? शुभ और अशुभभाव कहीं अन्दर पड़े नहीं हैं, वे तो नये किये थे; इसलिए संयोगीभाव हुआ। उससे संयोगीकर्म और संयोगी चीज दिखायी देगी। अब तुझे संयोगरहित होना हो, संयोगीभाव से रहित (होना हो) तो संवर, निर्जरा कर। संवर, निर्जरा कैसे होगी ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमन कर तो संवर, निर्जरा होगी। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणमन कैसे होगा ? शक्ति में दर्शन, ज्ञान, चारित्र (है उसका अवलम्बन करने से प्रगट होंगे।) आहा... ! समझ में आया ?

एक पैराग्राफ में बहुत सरस बात की है। आहा...हा... ! शुभाशुभभाव का चित्राम करता हूँ और यह कर्म के फलरूप बाहर में संयोग दिखेंगे। अब तुझे स्वभाव प्रगट करना हो, अर्थात् आस्रव-बन्ध रोककर संवर और निर्जरा करना हो तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमन कर। कैसे ? कि परिणमन तो व्यक्त हुआ, वह स्वरूप में शक्तिरूप है। उन शुभाशुभभाव की तो कोई शक्ति थी ही नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? क्या कहा, समझ में आया ?

शुभाशुभभाव, वह आस्रव है; इसलिए परमाणु आस्रव के भले वे स्वयं स्वतः (आवें), यह तो निमित्त है और यह निमित्त है, तथा स्वयं वे संयोग आयेंगे। बाहर के चित्राम का फल तुझे दिखायी देगा, संयोगीभाव का फल, संयोग दिखेगा। अब तुझे स्वभावभाव करना हो तो... आहा...हा... ! बहुत सरस बात ! जैसे उन पुण्य-पापरूप होता था और (बाहर का) चित्रण होता था, अब ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप हो। आहा...हा... ! कि जिससे तुझे संवर-निर्जरा हो। परन्तु वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम संवर, निर्जरारूप हुए कहाँ से ? यह अन्दर में है। अन्दर में दर्शन, ज्ञान, चारित्र से भरपूर भगवान है। आहा...हा... ! अन्दर दर्शन-श्रद्धा — त्रिकाली श्रद्धा का उसका स्वभाव है।

www.vitragvani.com

ज्ञान त्रिकाली अनीन्द्रिय अन्दर है। चारित्र अर्थात् शान्ति, अविकारी वीतरागता — ऐसा इसका त्रिकाली स्वभाव है, उस शक्ति में से, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता कर तो शक्ति में से व्यक्तता होगी, प्रगट बाहर (आयेगा)। उस शुभाशुभ आस्रव से प्रगट होगी बाहर की धूल और इस संवर-निर्जरा से प्रगट होगा — शक्ति में है वह व्यक्तरूप से बाहर भाव (सद्भाव) होगा। आहा...हा...! बहुत सरस भाषा है। बस! अभी दूसरा ही चला न? आज तो दो ही चले परन्तु यह तो बहुत है। इसमें तो यही भरा है। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जेठ कृष्ण ९, गुरुवार, दिनाङ्क २९-०६-१९७८
प्रवचन-२४ वचनामृत- ७६-७८

(वचनामृत) ७६ चलता है, ७६। पैराग्राफ, क्या कहलाता है? ७६ पूरा हुआ। ७६ में क्या आया? कि जो कोई शुभाशुभभाव होगा, उसे कर्म स्वयं बँधेंगे और उसका संयोग भी स्वयं आयेगा परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि इस संयोग को देखेगा और देखते हुए उसे राग-द्वेष होंगे। जिस मूल में-से शुभाशुभभाव से बन्धन किया और उस बन्धन में संयोग मिले, उसे देखेगा, देखेगा तो उसे राग-द्वेष होंगे, उसे पुण्य-पाप के भाव में राग-द्वेष भविष्य में दिखेंगे। वर्तमान में राग-द्वेष करता है, इससे उसके बन्धनरूप से हुए संयोग में भी उसे राग-द्वेष दिखेंगे, वह वस्तु दिखेगी वह तो दिखेगी, परन्तु देखने में उसे राग-द्वेष होंगे। आहा...हा...!

आत्मा जो दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है, उसका अवलम्बन लेकर जिसने वीतरागता-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र — ऐसे परिणाम जिसने प्रगट किये, उसे वीतरागता दिखेगी। समझ में आया? आहा...हा...! वीतरागी स्वरूप प्रभु आत्मा का अवलम्बन लेकर... क्योंकि उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र भरे हैं। उसके अवलम्बन से होनेवाले परिणाम, उसे देखने से वीतरागी परिणाम को देखेगा; और राग के परिणाम से जो होता है, उस संयोग में उसे राग होगा, यह तो अपने ७४ गाथा में आ गया है न? भाई! ७४ में ऐसा कहा —शुभभाव वर्तमान दुःख है और भविष्य में भी दुःख का कारण है। आहा...हा...! शैली तो देखो।

शुभभाव वर्तमान दुःख है और भविष्य में उसे शुभराग से पुण्य बँधेगा, उससे संयोग मिलेंगे, संयोग मिलेंगे तो उसका लक्ष्य वहाँ जायेगा; इसलिए राग होगा, अतः दुःख होगा। आहा...हा...! समझ में आया? और जो अरागी मोक्षमार्ग... भाई ने अभी नहीं गाया? कि

www.vitragvani.com

'मोह, माया टालने जीव को जान लेना।' जीव, भगवान आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न है, उसमें यहाँ अपने को तीन प्रगट करना है, और इससे अनन्त गुण में दर्शन, ज्ञान, चारित्र सम्पन्न है, उसका आश्रय लेकर जो दशा होगी, वह वीतरागी होगी और तू वीतरागी को देखेगा तो तुझे वीतरागता बढ़ेगी। वीतरागता तो तेरे जैसी है, रागीवाले को राग के संयोग को देखना है। आहा...हा... ! उसे दुःख दिखेगा, इसे आनन्द दिखेगा। पण्डितजी सुना ? क्या कहा ?

(समयसार की) ७४ वीं गाथा में यह आया है, ७६ का पैराग्राफ। जो कोई शुभ अशुभभाव करेगा, उसके फलरूप से कर्म बँधेगे और उसके फलरूप से संयोग मिलेंगे तो संयोग को देखेगा तो राग-द्वेष होंगे। अर्थात् ? आहा...हा... ! जो शुभाशुभ करेगा वह दुःख को करता है और इस कारण उसका पुण्य बँधकर संयोग मिलेगा तो उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो दुःख होगा; दुःख अर्थात् राग-द्वेष होंगे। आहा...हा... ! और जो आत्मा वस्तु है, भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो उसमें है, शक्ति और स्वभाव ही उसका है। आहा...हा... ! वे पुण्य-पापभाव तो कृत्रिम खड़े किये थे; इसलिए कृत्रिम संयोग कृत्रिम प्राप्त हुए और उन्हें देखकर कृत्रिम राग-द्वेष होगा। आहा...हा... ! समझ में आया ? और यहाँ प्रभु, वह अकृत्रिम दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित है ही; वस्तु अन्दर दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित शक्तिरूप है। आहा...हा... ! उसे जिसने अवलम्बन लेकर दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किया है, वह सुख को अनुभव करेगा और सुख को देखेगा। सुगनलालजी ! कल तुम नहीं थे, कल यह ७६ (वाँ बोल) चला था। आहा...हा... ! बाहर आयेगा, बाहर आयेगा, भले भाषा है परन्तु उसका अर्थ यह, उसको-पुण्य-पाप को करनेवाले को — शुभ-अशुभभाववाले बाहर संयोगी (चीज) देखेगा और उसे देखकर उसे राग-द्वेष होंगे; चाहे तो तीर्थंकर को देखे और उनकी वाणी सुने तो भी राग होगा, क्योंकि वह परद्रव्य है। आहा...हा... ! बहुत कठिन काम ! आहा...हा... !

यह बात करते हैं न कि समयसार चलने पर लोग चर्चा करते हैं परन्तु आगे बढ़े नहीं... परन्तु भाई ! समयसार सुनकर श्रद्धा का सुधार करते हैं, वह आगे चले नहीं हैं ? वस्तु तो यह है। बाहर का त्याग देखे तो वह अधिक आगे बढ़ा कहलाये परन्तु अन्दर में

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मिथ्याश्रद्धा का त्याग और सच्ची श्रद्धा का आदर करता है, वह आगे नहीं बढ़ा ? ब्रह्मचारीजी ! आहा...हा... ! उसकी महिमा इसे नहीं लगती। प्रभु ! मूल चीज यह है। ऐसा कि समयसार की चर्चा बहुत चली परन्तु कोई आगे बढ़ा हुआ नहीं दिखता। आहा...हा... ! परन्तु भाई ! आगे बढ़ा हुआ किस दशा में ? किसे ? श्रद्धा का सुधार जो मूल चीज है, जो अनन्त काल में सम्यग्दर्शन का (श्रद्धा का) सुधार नहीं किया, उसका सुधार करने का सुनकर (उसका सुधार करे, वह सुधार है) । आहा...हा... ! यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। लोगों को पता नहीं पड़ता, इसलिए बाहर से समयसार सुनकर बाह्य त्याग करे, प्रतिमा धारण करे और यह करे.... परन्तु यह सब तो राग हो और वह तो दशा अन्दर स्थिरता हो, अन्दर की रमणता में स्थिरता आवे, तब वह विकल्प उठे परन्तु अभी मूल श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे व्रत कहाँ से आये ? आहा...हा... ! भाई ! आहा...हा... ! आहा...हा... !

अन्दर जो अनादि से श्रद्धा के जो संस्कार सुधारना चाहिए, मिथ्यात्व के संस्कार का नाश करना चाहिए, उसके स्वरूप का तो इसे पता पड़ता नहीं और राग का जरा त्याग करके प्रतिमा धारण करके और व्रत धारण करे तो वह आगे बढ़ा कहलाये.... धूल में भी बढ़ा नहीं। आहा...हा... !

यहाँ भी यह कहा कि जब दर्शनशुद्धि होती है... यह तीनों साथ लिये... परन्तु दर्शनशुद्धि होती है, वह तो आत्मा के अवलम्बन से होती है, क्योंकि आत्मा में श्रद्धा नामक का गुण त्रिकाल पड़ा है। आत्मा में समकित है, वह पर्याय है परन्तु श्रद्धागुण है, वह त्रिकाल है। जैसे ज्ञानगुण त्रिकाल है, फिर मति-श्रुत आदि पाँच उसकी पर्यायें हैं। मति, श्रुत, अवधि, आदि (पर्यायें हैं) । वैसे ही श्रद्धागुण जो आत्मा में है, वह त्रिकाल है, फिर समकित दर्शन क्षयोपशम, क्षायिक — यह सब उसकी पर्यायें हैं। आहा...हा... ! ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण श्रद्धा तथा पूर्ण शान्ति, पूर्ण चारित्र के स्वभाव से भरपूर प्रभु का अवलम्बन लेकर जो श्रद्धा का सुधार हो तो ज्ञान का भी सुधार होता है और उसमें स्थिरता - अस्थिरता का भी सुधार होता है। आहा...हा... ! इस श्रद्धा के साथ ज्ञान और चारित्र का — स्वरूपाचरण आदि के संस्कार पड़ते हैं और सुधार होता है। उस सुधार की लोगों को महिमा नहीं लगती। आहा...हा... ! मूल वस्तु तो यह है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

इसलिए यहाँ ७६वें (बोल में) कहा कि जितने पुण्य और पाप के भाव करे, उसे संयोग मिलेंगे, क्योंकि वे संयोगीभाव हैं, स्वभावभाव नहीं। शुभ-अशुभभाव, वह स्वभावभाव नहीं है; इसलिए संयोगीभाव है, उससे संयोग मिलेंगे; संयोगों को देखेगा तो उसे राग-द्वेष होंगे। आहा...हा...! और भगवान आत्मा है, उसमें श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र और आनन्द से भरपूर यह भगवान है, वह पूर्णानन्द प्रभु है। उसका अवलम्बन लेगा, उसे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का अंश प्रगट होगा, उसे वीतरागता प्रगट होगी और वह वीतरागता को देखेगा। आहा...हा...! उसे रागादि हों, फिर भी उस राग को जाननेवाला ज्ञान, वह ज्ञान को देखेगा। आहा...हा...! बात समझ में आती है कुछ? आहाहा!

मिथ्यात्व को छोड़ना हो तो शुद्ध चैतन्य है, उसे जानने का प्रयत्न कर। आहा...हा...! जिसे सम्यक्श्रद्धा का सुधार करना है, और मिथ्याश्रद्धा का नाश करना है, उसे पहले भगवान आत्मा कैसा है... आहा...हा...! जिसमें जो धर्म की पर्याय प्रगट करना चाहता है — ऐसे तो अनन्त गुण उसमें अन्दर पड़े हैं, वह एक-एक पर्याय नहीं — ऐसी अनन्त पर्यायों का ज्ञानगुण है, अनन्त पर्यायों का पिण्ड श्रद्धागुण है, अनन्त पर्यायों का पिण्ड चारित्रगुण है, अनन्त पर्यायों का पिण्ड अन्दर आनन्दगुण है। आहा...हा...! ऐसे आत्मा का अवलम्बन लेने से उसे वीतरागता दिखेगी, कहते हैं। बहिन की भाषा है, परन्तु अन्दर बहुत गम्भीर है। ऐ...ई...! यह ७६ (चलता है) आहाहा! ७६ कहा न, उस शुभ का दु:ख। ७६ गाथा में कहा न, शुभभाव है, वह दु:ख है और भविष्य में दु:ख का कारण है। शुभभाव से पुण्य मिलेगा, संयोग मिलेंगे, चाहे तो तीर्थंकर की वाणी और तीर्थंकर मिलें परन्तु वह परद्रव्य है; इसलिए परद्रव्य पर तेरा लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा। राग होगा तो दु:ख होगा। आहा...हा...! यह गजब बातें हैं! समझ में आया? यह ७६ (बोल पूरा) हुआ।

अभी वे जोर देते हैं, ऐसा कि व्रती होता है, वह स्वर्ग में जायेगा और अव्रती होगा, वह नरक में जायेगा। समाधिशतक में आता है न? परन्तु वह किस अपेक्षा? बापू! सम्यग्दृष्टि अव्रती है, वह नरक में नहीं जाता है, सम्यग्दृष्टि अव्रती है वह तो... आहा...हा...! वहाँ तो क्या अपेक्षा कही है? वहाँ दूसरी अपेक्षा है। आहा...हा...! इसलिए ऐसा कि व्रत ले लेना और त्याग (करना — ऐसा लोग मानते हैं)।

www.vitragvani.com

अनन्त काल से जीव को स्व से एकत्व और पर से विभक्तपने की बात रुची ही नहीं। जीव बाहर से भूसी कूटता रहता है परन्तु अन्दर का जो कस आत्मा है उसे नहीं खोजता। राग-द्वेष की भूसी कूटने से क्या लाभ है ? उसमें से दाना नहीं निकलेगा। पर से एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्न तत्त्व को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष एवं असंयुक्त आत्मा को जाने, तो कार्य हो॥ ७७॥

अब यहाँ ७७ (बोल)। **अनन्त काल से जीव को स्व से एकत्व और पर से विभक्तपने की बात रुची ही नहीं।** देखा ? शुरुआत यहाँ से आयी। आहा...हा... ! **अनन्त काल से जीव को स्व से एकत्व...** शुद्धस्वभाव से प्रभु एकत्व है, त्रिकाली शुद्धस्वभाव से प्रभु एक-अभेद है और दया, दानादि, रागादि विकल्प है, उनसे तो विभक्त है - भिन्न है। आहा...हा... ! यह एकत्व-विभक्त, तीसरी गाथा है और आचार्य ने भी (समयसार की) पाँचवीं (गाथा में) ऐसा कहा न, मैं एकत्व-विभक्त (आत्मा) दर्शाऊँगा। वस्तु तो यह बतलानी है न ? (बात) शुरु यह की है न ! 'तं एयत्तविहत्तं दाएहं जदि दाएज्ज पमाणं' यदि एकत्व-विभक्त को दिखाऊँ तो एकत्व-विभक्तरूप परिणमना। आहा...हा... !

मुमुक्षु - अनुभव करना।

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ, यह परिणमना, यही अनुभव हुआ। समझ में आया ? अनुभव करके अर्थात् यही परिणमन हुआ। आहा...हा... ! एकत्व-विभक्त तुझे कहते हैं। प्रभु तो त्रिकाली राग से भिन्न है न नाथ ! (राग) होता है परन्तु उससे प्रभु भिन्न है — ऐसा तुझे बतलाने पर... आहा...हा... ! जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, उससे प्रभु तो भिन्न है। यहाँ तो अभी इस व्यवहाररत्नत्रय को करो और इससे लाभ होगा (— ऐसा मानते हैं)। आहा...हा... ! अरे ! अभी व्यवहार ही कहाँ है तुझे, बापू ! अभी श्रद्धा ही मिथ्या है। आहा...हा... ! अभी तो निमित्त से पर में होगा, परद्रव्य की पर्याय से परद्रव्य की पर्याय होगी, (यह) तो अभी मिथ्यात्व-तीव्र मिथ्यात्व में तो खड़ा है और व्यवहार-राग की मन्दता की क्रिया करते-करते आगे निश्चय में जाया जा सकेगा... आहा...हा... ! भाई !

www.vitragvani.com

तुझे पता नहीं है। यह व्यवहाररत्नत्रय – राग, दु:ख है। दु:ख करते-करते सम्यग्दर्शन, जो आनन्द है, वह दु:ख करते-करते आननद होगा? आहा...हा...! क्या हो? परन्तु मूल बात पूरी बदल गयी है। पूरा चक्र अभी बदल गया है। आ..हा...! शास्त्रज्ञ कहलायें वे भी उल्टे रास्ते चढ़ जाते हैं। जो आत्मज्ञ होना चाहिए, उसके बदले शास्त्रज्ञान की बातें करके मानों आगे बढ़ गये (– ऐसा मानते हैं)। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **अनन्त काल से जीव को स्व से एकत्व...** (अर्थात्) शुद्धस्वरूप पवित्र प्रभु, उससे भगवान आत्मा एकरूप अभेद है। **और पर से विभक्त...** चाहे तो पंच महाव्रत का विकल्प हो या पंच परमेष्ठी को स्मरण करने का विकल्प हो परन्तु है तो राग। आहा...हा...! कठिन काम! उससे पृथक् की बात, **पर से विभक्तपने की बात...** अनन्त काल में **रुची ही नहीं।...** आहा...हा...! क्योंकि इसने देखा है राग, परन्तु राग को जाननेवाला अन्दर भगवान तत्त्वस्वरूप पूरा, उस राग को जाननेवाली पर्याय, उस पर्याय के समीप पूरा तत्त्व पड़ा है, पूरा तत्त्व (पड़ा है)। पर्याय तो एक अंश है। आहा...हा...! राग और राग को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय, उस पर्याय के समीप प्रभु विराजमान है। आहा...हा...! आयेगा कहीं, परम पुरुष समीप है – ऐसा आता है। ध्रुव, ध्रुव, वह पर्याय के समीप ध्रु पड़ा है। पर्याय जो उत्पाद-व्ययवाली है, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है न? तत्त्वार्थ सूत्र! तो उत्पाद-व्यय की पर्याय के समीप ध्रुव है। आहा...हा...! परन्तु उत्पाद-व्यय ने ध्रुव को देखा नहीं, उत्पाद-व्यय में राग, पुण्य, और पर को देखने में रुक गया, पर को जानने में रूक गया, परन्तु उस पर्याय में, जानने की पर्याय में जाननेवाले को नहीं देखा। आहा...हा...!

उसे (पर से विभक्तपने की बात) **रुची ही नहीं।** आहा...हा...! अनादि काल से शुद्धस्वरूप अनाकुल आनन्द अतीन्द्रियज्ञान, अतीन्द्रिय त्रिकाली श्रद्धा, अतीन्द्रिय अन्दर ईश्वरता — ऐसे भाव की रुचि ही नहीं। आहा...हा...! **जीव बाहर से भूसी कूटता रहता है....** भूसी समझते हैं? छिलका! छिलका... छिलका। आ...हा...! भूसी कूटता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में दृष्टान्त दिया है न? एक लखपति की गृहस्थ महिला थी, वह चावल का क्या कहलाता है? कमोद! पूरा कमोद कूटती थी। उसमें चावल है, वे नीचे चले जाते

www.vitragvani.com

और ऊपर छिलके रहते थे। ओखली में, ऐसे कूटती थी, उसमें चावल नीचे जाते और छिलके ऊपर (रहते थे)। उसमें एक गरीब महिला आयी, उसने देखा कि आहा... ! यह गृहस्थ बहिन भी छिलके कूटती है, इसमें कुछ माल होगा; इसलिए मैं भी पति से छिलके मँगाऊँ, परन्तु छिलकों में माल नहीं है। छिलके ! अन्दर चावल है, वे तो कूटने से नीचे जाते हैं, वह तो देखा नहीं। इसी प्रकार ज्ञानी को अन्दर में उतरी हुई दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह अच्छी चीज है, उसे तो लोगों ने देखा नहीं परन्तु ज्ञानी उन व्रतादि विकल्पों में वर्तते हैं न, वह देखा कि देखो ! यह भी-ज्ञानी भी व्रत तो पालन करते हैं (उसमें यह देखकर) भूसी कूटी। आहा...हा... ! महाव्रत को यह भी पालते हैं, तब (उसमें भी) कहीं लाभ होगा न ? परन्तु महाव्रत के पीछे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अच्छी चीज चावल है, उसे यह तो देखता है। लखपति की बहिन कूटते हुए उन चावलों को देखती है अन्दर चावल (है उन्हें देखती है) और तू उन छिलकों को देखता है। इसी प्रकार अज्ञानी अनादि से पुण्य-पाप के छिलके, जो ऊपर के छिलके हैं न ? **भूसी कूटता रहता है....** यह भूसी कूटता है। आहा...हा... ! अनादि का वहाँ इसका जोर वर्तता है। उस चीज का तो इसे पता नहीं, अन्दर वस्तु है पूर्ण अखण्ड, उसकी तो रुचि नहीं, एकत्व की (और) पर के विभक्त की (तो रुचि नहीं) इसलिए वह ऊपर का जो राग है, उस छिलके को कूटता है, उस राग की क्रिया में मस्त हो जाता है। आहाहा !

रागरहित भगवान अन्दर शुद्ध चैतन्य है। ज्ञानी भगवान की भक्ति में, पूजा में आवे, पंच महाव्रत का परिणाम भी हो परन्तु उस वस्तु में यह तो छिलका है; अन्दर वस्तु है, उसके ऊपर उसका अनुभव और दृष्टि है। यह न देखकर, धर्मी भी ऐसा करता है; इसलिए हम भी करते हैं। आहा...हा... ! भूसी-छिलका कूटता रहता है। **परन्तु अन्दर का जो कस....** वे चावल, जो कस अन्दर वस्तु है, (उसे नहीं देखता)। आहा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान — ऐसी जो चीज है, अन्दर का कस... कस, ऐसा जो **आत्मा है उसे नहीं खोजता।...** उस शुभभाव को खोजता है। निरतिचार करूँ, उसमें दोष लगे तो प्रायश्चित्त लेना, इन छिलकों में रुक गया है। आहा...हा... !

अन्दर की जो कसवाली चीज है, जिसमें कस... कस, कस अर्थात् माल भरा है।

www.vitragvani.com

भगवान आत्मा में तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण और अनन्त गुण की अनन्त शक्ति — ऐसा अनन्त माल भरा है। अन्दर कस है। कस को क्या कहते हैं हिन्दी में? माल! अन्दर का कस-माल। तरबूज के ऊपर हरी छाल होती है और अन्दर का माल (लाल) मीठा (होता है)। तरबूज... तरबूज! तरबूज कहते हैं न? ऊपर की हरी छाल होती है, अन्दर जो माल-कस है, वह मीठा है, उसे नहीं देखता, उसे (छिलके को) देखता है। इसी प्रकार आत्मा में पुण्य और पाप से विभक्त और स्व से एकत्व की दृष्टि का पता नहीं है। आहा...हा...! मात्र ऊपर के जो छिलके पुण्य के — दया, दान, व्रत के हैं, उनमें अटक कर पड़ा है। आहा...हा...! वह आत्मा को नहीं खोजता। वह राग के विकल्प से भिन्न प्रभु — एकत्व और पर से भिन्न, उसे नहीं खोजता। अन्दर जो खोजना चाहिए उसे (नहीं खोजता)। आहा...हा...!

राग-द्वेष की भूसी कूटने से क्या लाभ है?.... जैसे छिलके कूटने से क्या लाभ है? वैसे ही पुण्य के परिणाम के छिलके करने से क्या लाभ है? आहा...हा...! व्यवहार से होता है (ऐसा माननेवालों को) यह कठिन लगता है। व्यवहार होता है, परन्तु उससे होता नहीं है। निमित्त होता है, परन्तु निमित्त से होता नहीं है। अब तो भाई ने — पण्डित कैलाशचन्दजी (वाराणसी) ने स्वीकार किया है, जब वर्णीजी के साथ चर्चा हुई थी, तब तो उन लोगों को-किसी को-सबको स्वीकार नहीं था। क्रमबद्ध भी नहीं; और निमित्त से होता है, किसी समय होता है, सर्वथा निमित्त से होता ही नहीं, यह एकान्त है - ऐसा कहते थे। अब बदले हैं। क्रमबद्ध, यह ठीक है। एक के बाद एक ही पर्याय, जो होनेवाली है, वह होती है, वह क्रमबद्ध वस्तु की स्थिति है और सोनगढ़वाले निमित्त को नहीं मानते — ऐसा नहीं है, निमित्त को मानते हैं परन्तु निमित्त से होता है - ऐसा नहीं मानते। इन लोगों को कहते हैं — निमित्त से होता है, कर्म का उदय आये, वह निमित्त होकर ही आता है; इसलिए विकार उसे करना ही पड़ता है। आहा...हा...! यह तो दो द्रव्यों की एकताबुद्धि है, महा मिथ्यात्व है। आहा...हा...! समझ में आया? अच्छे निमित्त मिलें तो अन्दर सुधरे, खोटे निमित्त मिलें तो बिगड़े - ऐसा है नहीं।

अपनी निज पर्याय.... प्रवचनसार की १०२ गाथा में आया है न? १०२, निज क्षण

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। प्रत्येक द्रव्य की उस समय की उत्पत्ति की पर्याय का काल है, वह उस काल में वह पर्याय स्वयं से उत्पन्न होती है; पूर्व की पर्याय से नहीं, निमित्त से नहीं; द्रव्य-गुण से नहीं। आहा...हा... ! ऐसी तो वस्तु की स्थिति है। अब निज क्षण में जो पर्याय उत्पन्न हो, वह पर के कारण होती है — ऐसा तो वहाँ रहा नहीं। प्रवचनसार और वह ज्ञेय अधिकार! प्रवचन अर्थात् सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि का सार। प्र (अर्थात्) विशेष, वचन (अर्थात्) दिव्य वचन, उनका सार और उसमें भी ज्ञेय का अधिकार। ज्ञेय कैसे हैं ? छह द्रव्य अनन्त ज्ञेय हैं। वे कैसे हैं ? यह प्रवचनसार में १०२ गाथा में आ गया।

भगवान की वाणी ऐसा कहती है कि जिस द्रव्य की जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होने का हो, वह उसका निज क्षण है। आहा...हा... ! आहा...हा... ! परन्तु इस क्रमबद्ध को — जिस काल में होना है, वह होता है — ऐसा निर्णय करनेवाली की दृष्टि द्रव्य पर जाती है। ज्ञायक आत्मा पर (दृष्टि) जाये, तब वह निर्णय सच्चा होता है। बहुत कठिन काम बापू! आहा... ! मिथ्यात्व के पोषक वचन, उसमें त्याग दिखे, उसे लोग अधिक मानते हैं। आहा... ! परन्तु अन्दर श्रद्धा के पोषण के — स्वतन्त्रता की श्रद्धा और ज्ञान स्वयं स्वयं से होते हैं; सम्यग्दर्शन की पर्याय भी उस क्षण में वह उसका निजक्षण है; इसलिए उत्पन्न हुई है, पूर्व की पर्याय उपादान कहकर, निमित्त कहकर नैमित्तिक वह हुआ, यह तो व्यवहार है। आहा...हा... !

प्रत्येक समय में छहों द्रव्य-ज्ञेय, उनका ऐसा स्वभाव है, भगवान की वाणी में आया है। ज्ञेय की जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनी है, वह उसकी उत्पत्ति का उसका काल है — ऐसा भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि ज्ञेय का ऐसा स्वरूप है। अब, इस प्रकार ज्ञेय का स्वरूप है, ऐसा न माने और दूसरे प्रकार से माने तो दृष्टि-मिथ्यात्व का पोषण है। आहा...हा... ! क्या हो ? जगत् स्वयं स्वतः लुटता है।

मुमुक्षु - परमात्मप्रकाश में आचार्यदेव कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री - घाता जाता है परन्तु स्वयं स्वतः उत्साह से लुटता है। नष्ट होता है, इसका पता नहीं और उत्साह से हम कैसा करते हैं, कैसा मानते हैं (ऐसा मानता है)। अरे...रे... ! उसे अन्तरस्वरूप का पता नहीं है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

वह यहाँ कहते हैं — **राग-द्वेष की भूसी कूटने से क्या लाभ है ?** यह पुण्य की क्रिया जो दया, दान और व्रतादि, वह तो भूसी है, उससे आत्मा को क्या लाभ ? आहा...हा... ! नुकसान करनेवाला है। **उसमें से दाना नहीं निकलेगा।** भूसी कूटने से दाना नहीं निकलेगा। उसमें कहाँ दाना है ? आहा...हा... ! **पर से एकत्वबुद्धि तोड़कर....** आहा...हा... ! परन्तु वह राग का कण भी, भले शुभ हो और उस शुभ में ऐसा भी हो कि यह आत्मा अत्यन्त अबद्ध है, निर्बन्ध है, शुद्ध है — ऐसा भले विकल्प हो, तथापि उससे भिन्न करना, वह वस्तु का स्वरूप है। आहा...हा... ! इसलिए समयसार १४२ गाथा में आया न ? कि व्यवहार का तो हम निषेध करते आये हैं परन्तु निश्चय में आत्मा अबद्ध है, शुद्ध है, एक है, अभेद है, पवित्र है — ऐसा जो विकल्प उठे, वहाँ तक आया तो उससे क्या ? आहा...हा... ! उससे तुझे लाभ क्या ? यह तो सम्यग्दर्शनरहित व्रत, तप की बातें तो कहीं गयीं-छिलके ! आहा...हा... ! परन्तु अन्दर में यहाँ तक आया... अन्दर शुद्ध चैतन्यघन पूर्ण आनन्द वीतरागमूर्ति (विराजमान है)। 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौ मतवाला समझै न' समयसार नाटक ! आहा...हा... ! 'घट घट अन्तर जिन बसै,' राग से भिन्न कसवाला तत्त्व पूरा जिनस्वरूप है। आहा...हा... !

इस **पर से एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्न तत्त्व को....** आ...हा... ! भिन्न जो तत्त्व है। कैसा है ? **अबद्धस्पृष्ट...** चौदहवीं-पन्द्रहवीं गाथा। राग से भी उसे सम्बन्ध नहीं... व्यवहाररत्नत्रय के राग से भी सम्बन्ध नहीं, अबद्ध है। वस्तु स्वयं अबद्ध है। राग के सम्बन्धवाला उसे व्यवहार से देखना, वह मिथ्यात्व है। आहा...हा... ! **अबद्धस्पृष्ट,...** विस्ता परमाणु है उन्हें स्पर्श भी नहीं करता। भगवान तो अन्दर मुक्तस्वरूप है। अन्दर अबद्ध-राग के सम्बन्धरहित है — ऐसा कहकर अबद्ध कहा परन्तु अस्ति से लो तो वह मुक्तस्वरूप ही प्रभु अन्दर है। आहा...हा... ! निश्चय से उसका स्वरूप ही द्रव्य का (स्वरूप ही) मुक्तस्वरूप है। यह तो पर्याय में राग का सम्बन्ध और पर्याय में राग का अभाव (होता है)। वस्तु है, वह तो अबद्ध है, मुक्तस्वरूप ही है। आहा...हा... ! अबद्ध और अस्पृष्ट। राग से सम्बन्ध नहीं तथा कर्म के रजकणों से भी सम्बन्ध नहीं। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

अनन्य... है। भगवान तो अन्य-अन्य नारकी गति की पर्याय हो, वह इसकी नहीं; उन सब पर्याय से अन्य-भिन्न है। आहा...हा... ! मनुष्य की गति और नारकी की गति और देव की गति अन्य-अन्य है, उससे अन्य है। अन्य-अन्य गतिरूप वह नहीं है। आहा...हा... ! उनसे भिन्न अनन्य है।

नियत.... है। इसकी पर्याय में हीनाधिक पर्याय जो बढ़ती-घटती है, वह इसके स्वरूप में नहीं है। वह तो नियत एकरूप है। त्रिकाल निश्चय एकरूप है। आहा...हा... ! यह वस्तु है, वह आत्मा है। उसकी दृष्टि करना सम्यग्दर्शन है। आहा...हा... ! काम बहुत (कठिन)। मूल चीज की बात पड़ी रही और ऊपर से सब डालियाँ, पत्ते तोड़ने लगे परन्तु डालियाँ, पत्ते तोड़े परन्तु वह मूल सुरक्षित (रखा); इसलिए वापस पल्लवित हो जायेगा। जिसका मूल सुरक्षित है, तो वह डालियाँ पत्ते वापस हो जानेवाले हैं। पन्द्रह दिन में, महीने में, दो महीने में वृक्ष (वापस) फल जानेवाले हैं। आहा...हा... ! इसी प्रकार राग की मन्दता के शुभभाव के आचरण करने के डालियाँ, पत्ते तोड़े परन्तु राग से भिन्न मेरी चीज अबद्धस्पृष्ट है, नियत है, उसकी दृष्टि नहीं की, आहा...हा... ! ऐसा है। और अनन्त काल में सम्यक्त्वसन्मुख होने का जो पुरुषार्थ है, वही पुरुषार्थ है। समझ में आया ? और उस सन्मुख होने का पुरुषार्थ है, उसकी महिमा नहीं; किंचित् राग घटाकर बाहर के व्रत पालन करे और ब्रह्मचर्य पाले तथा त्यागी हो, (इसलिए) लोगों को ऐसा लगता है। आहा...हा... ! नियत (अर्थात्) उसका स्वरूप तो निश्चय एकरूप त्रिकाल है। आहा...हा... ! उसमें यह पर्याय में हीनाधिक दिखे, वह वस्तु में नहीं है।

अविशेष... है। प्रभु तो कहते हैं कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र — ऐसा भेदवाला भी आत्मा नहीं है। रागवाला तो नहीं, व्यवहार के रागवाला तो नहीं परन्तु जो वस्तु है, उसमें तीन भेद डाले कि यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह विशेष हुआ। प्रभु है, वह अविशेष है। आहा...हा... ! **अविशेष एवं असंयुक्त...** उसे शुभाशुभभाव की आकुलता, उससे सहित वह है ही नहीं। वह तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही प्रभु है। आहा...हा... ! उसे शुभ-अशुभभाव की आकुलता, संयुक्तपना है नहीं। आहा...हा... ! जिसमें विशेष — द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद अथवा दर्शन-ज्ञान-चारित्र — ऐसे भेद जहाँ नहीं हैं, आहा...हा... !

www.vitragvani.com

ऐसे आत्मा की प्रतीति — ज्ञान करके श्रद्धान-अनुभव करना, वह पर से भिन्न और स्व से एकत्व-इसका नाम यहाँ सम्यग्दर्शन है। चौदहवीं गाथा तो सम्यग्दर्शन की है न? और पन्द्रहवीं सम्यग्ज्ञान की है। फिर सोलहवीं दर्शन-ज्ञान-चारित्र की है, सोलहवीं (गाथा) '**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**' चौदहवीं दर्शन की, पन्द्रहवीं ज्ञान की, सोलहवीं दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों की (गाथा है)। आहा...हा...! समयसार!

ऐसे आत्मा को जाने... आहा...हा...! **तो कार्य हो।** वह आ नहीं गया, नहीं? 'द्रव्य उसे कहते हैं' इसमें है न? द्रव्य उसे कहते हैं कि उसके कार्य के लिये अन्य द्रव्य के साधन की राह देखनी नहीं पड़ती। आ गया? कितने में? आहाहा! आया? यहाँ आया, ८४ पृष्ठ, इसमें गुजराती, हाँ! २५१ श्लोक (बोल) २५१ पैराग्राफ, २५१ बोल — **द्रव्य उसे कहते हैं...** है पण्डितजी? पृष्ठ ८६, ८० और ६। **द्रव्य उसे कहते हैं, जिसके कार्य के लिये...** जिसकी निर्मल वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र — ऐसा जो कार्य, उसके लिये **दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।** आहा...हा...!

बहिन (बहिनश्री चम्पाबेन) अभी तक गुप्त थीं, अब बाहर आ गया, अब ढँका नहीं रहा। आहा...हा...! यह शब्द देखो न! यह वस्तुस्थिति है। सादी भाषा, गुजराती भाषा, आहा...हा...! द्रव्य उसे कहते हैं... यहाँ तो समुच्चय द्रव्य लिया है, छहों द्रव्य, उनकी पर्याय के लिये अन्य साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनकी पर्याय उस काल में हो, वह तो होना ही है। आहा...हा...! आत्मा के लिये लें तो द्रव्य / आत्मा उसे कहते हैं कि जिसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान परिणाम के लिये अन्य द्रव्य के साधन की राह नहीं देखना पड़ती। आहा...हा...! कहाँ है? आहा...हा...! दुनिया अभिमान में और अभिमान में हम जानते हैं, हम त्यागियों का आदर करते हैं, तुम मुनियों को मानते नहीं (ऐसा कहते हैं)। आ...हा...! अरे... प्रभु! मुनि तो... मुनि के तो (हम) दासानुदास हैं परन्तु मुनि होना चाहिए न! आहा...हा...! मुनि के तो हम दासानुदास (हैं)।

मुनि किसे कहते हैं, बापू! आहा...हा...! यह अपने आ गया है, पहले अभी आया न? आ गया, और कल आ गया, वह आ गया, कल आ गया। धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! यह आ गया है, आ गया है। आहा...हा...! आहा...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ऐसा जो आत्मा, पर से एकत्वबुद्धि तोड़कर, पर से एकत्वबुद्धि तोड़कर, राग के साथ की एकत्वबुद्धि तोड़कर... आ...हा...! पृथक् तत्त्व को जो अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त है — ऐसे आत्मा को जाने तो कार्य हो; और वह कार्य होने के लिये दूसरे द्रव्य के साधन की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! कि इसे राग की मन्दता हो तो ऐसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान (का) कार्य हो (—ऐसा) बिल्कुल नहीं। आहा...हा...! कठिन पड़े, पाचन करना कठिन! आहा...हा...! ७७ (बोल पूरा) हुआ।

स्वरूप की लीला जात्यन्तर है। मुनिराज चैतन्य के बाग में क्रीड़ा करते-करते कर्म के फल का नाश करते हैं। बाह्य में आसक्ति थी उसे तोड़कर स्वरूप में मन्थर स्वरूप में लीन हो गये हैं। स्वरूप ही उनका आसन, स्वरूप ही निद्रा, स्वरूप ही आहार है; वे स्वरूप में ही लीला, स्वरूप में ही विचरण करते हैं। सम्पूर्ण श्रामण्य प्रगट करके वे लीलामात्र में श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्रगट करते हैं॥ ७८॥

७८ — आया मुनि का, लो, आया। **स्वरूप की लीला जात्यन्तर है।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा के स्वरूप की जात्यन्तर लीला है। यह वीतराग की दृष्टि, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र, वीतरागी आनन्द। आहा...हा...! उसकी यह लीला जात्यन्तर है। राग की जाति से दूसरी जाति की उसकी लीला है। आहा...हा...! क्या कहा? भगवान आत्मा की - स्वरूप की लीला! वह ईश्वर की लीला कहते हैं न? ईश्वर की लीला? वह यह लीला कहाँ थी? आहा...हा...!

स्वरूप की लीला — अनन्त आनन्द और ज्ञान, दर्शन अनन्त गुण से भरपूर प्रभु के स्वरूप की लीला, अर्थात् वर्तमान दशा जात्यन्तर है। राग की जाति और अजीव की जाति से यह जाति अलग है। आहा...हा...! 'कोई कहे लीला रे लीला, ईश्वर तणी...' आनन्दघनजी में आता है। आहा...हा...! **स्वरूप की लीला जात्यन्तर है।** आहा...हा...! स्वरूप जो चैतन्य का त्रिकाली ज्ञान, आनन्द, प्रभुता, ईश्वरता, स्वच्छता, उसकी पर्याय में लीला होती है, दशा (होती है)। वह राग की जाति से जात्यन्तर - अन्य जाति है। उसकी

www.vitragvani.com

लीला ही अन्य जाति है। उसमें से उत्पन्न होनेवाली दशा, वह वीतरागी दशा है; वह राग नहीं। आहा...हा...!

प्रभु बिलसे, रमे तो कहते हैं कि उसकी लीला ही अलग जाति की है। आहा...हा...! राग की लीला, वह उसकी लीला ही नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह उसकी लीला ही नहीं है। वह तो जात्यन्तर लीला है। आहा...हा...! यह तो अभी हिन्दुस्तान में सबको यह पहुँचा नहीं है, किसी-किसी को पहुँचा और किसी किसी को नहीं पहुँचा, पहुँचेगा और पढ़ेगा तो (ऐसा होगा कि) हम तो ऐसा मानते (हैं और) यह क्या? लोग ऐसे, आहा...हा...! ऐसी बात कहते हैं! समझ में आया? क्या कहा?

यह आत्मा की लीला, जात्यान्तर है। यह दुनिया एकदम राग करे, तीव्र राग और मन्द राग और देह के परमाणु एकदम परिवर्तित हों तथा हरे का पीला हो जाये और पीले का काला हो जाये, यह जगत की-जड़ की लीला है। आहा...हा...! प्रभु की लीला कोई अलग प्रकार की है। यह आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रियज्ञान का सागर, उसे जिसने दृष्टि में लिया, उसकी पर्याय में लीला-वीतरागी दशा भिन्न-भिन्न प्रकार की विचित्र उत्पन्न होती है, यह उसकी लीला है। आहा...हा...!

यह आनन्दघनजी में आता है — 'कोई कहे लीला रे लीला अलख तणी, लख पूरे मन आश, दोषरहित ने लीला नवि घटे...' ईश्वर कर्ता है और (उसकी) लीला है, यह नहीं, वह लीला सच्ची नहीं। ईश्वर ने इस जगत को बनाया, आत्मायें बनायीं... आहा...हा...! उसकी लीला ऐसी है, ऐसा कहे। यहाँ कहते हैं कि दोषरहित को ऐसी लीला घटित नहीं होती। भगवान आत्मा! आहा...हा...! बाहर की कोई क्रिया विशेष करके ऐसे इन्द्रजाल की तरह जादूगीरी बतावे, वह लीला नहीं। आहाहा! अभी आया है न भाई! के. लाल मैं — वे सन्त आये हैं न? बाबा! साईं बाबा! ऐसा अमुक बताते हैं... धूल में भी नहीं कुछ। वह कहे उससे मैं अधिक बता दूँ, लो! मैं जादूगर हूँ, कहीं का पन्ना लिया परन्तु वह जाने कि इसमें लाल रंग है, इसलिए ऐसे लगाकर ऐसा कहता है, देखो! यह रंग, देखा! कंकू, यह तो पत्तों का लाल रंग हो, चोलीने लाल हो, वह लीला क्या है? यह तो वहाँ तक उसमें लिखा है, मैं मूर्ति बता दूँ, यह सब हाथ की सफाई है। हमारे पास आया था बेचारा, दो तीन

www.vitragvani.com

बार आया था। (आकर कहता था) महाराज! ढोंग है, पैसा पाँच-पाँच लाख पैदा करे। राजकोट में एक-एक रात के पाँच-पाँच (लाख)। आया था। महाराज! हमारा यह सब ढोंग है, कहा मर जायेगा। पूर्व का पुण्य है तो यह सब दिखता है। नरम व्यक्ति, सुनता था, बापू! आत्मा का कुछ करो। पुस्तक दी थी, एक-दो पुस्तकें दी थीं। अभी बड़ी आमदनी है, विदेश जाता है। साईं बाबा की पोल खोलने के लिये उसने किया था। रजनीश है, वह रजनीश है न? उसके पास बड़ौदा गाड़ी भेजी थी मिलने के लिये। बड़ा जादूगर है। हाथ की सफाई है बापू! यह मार्ग नहीं।

यहाँ तो यह लीला है। आहा...हा...! एक क्षण में अनन्त केवलज्ञान प्रगट हो, आहा...हा...! पहले क्षण में मति-श्रुत और दूसरे क्षण में केवल! इसकी लीला तो देखो! यह लीला है। आहा...हा...! सर्वज्ञ प्रभु स्वयं सर्वज्ञ शक्तिवान् — ऐसा प्रभु आत्मा है, उसमें एकाग्र होने पर मतिज्ञान हुआ श्रुत (ज्ञान) हुआ, क्षण में दूसरे क्षण में केवलज्ञान होता है। एकदम! जलहल ज्योति तीन काल-तीन लोक को जाने — ऐसी आत्मलीला! आहा...हा...! इस जगत् की जाति से जात्यन्तर है। जगत की जाति से अलग प्रकार की है। आहा...हा...! एक क्षण पहले चक्रवर्ती राज्य में बैठा हो और दूसरे क्षण में देखो तो नग्न (दिगम्बर दशा) और अन्दर में केवलज्ञान! जलहल ज्योति प्रगट हो। प्रभु पूर्ण स्वरूप से भरपूर है, उसकी पर्याय में उसकी लीलायें होती हैं, कहते हैं। आहा...हा...! विचित्रता, अद्भुत से अद्भुत दशायें होती हैं, वह उसकी लीला है। आहा...हा...!

यह पैसा आवे, हम निर्धन थे और उसमें से करोड़ हुए... उसमें धूल में क्या हुआ? धूल में मरकर जाओगे नीचे। अभिमान करके (माने कि) पैसा हमारा, जड़-धूल हमारी (— ऐसा कहे) वह तो अजीव है। जीव ऐसा मानता है कि अजीव मेरा है। यह तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! एकदम बढ़ गये — ऐसा कहता है। हमने उद्यम किया, पिताजी कुछ छोड़कर नहीं गये थे और एकदम चमक! पचास-पचास लाख के रहने के मकान... अरबोंपति और बाहुबल से हमने यह कमाया, हम गरीब थे, उसमें से एकदम धनवान हुए... यह तो पूर्व के पुण्य के परमाणु हों तो (दिखता है)। यह जड़ की लीला है, यह तो मरकर यहाँ से जायेगा नीचे नरक में! आहा...हा...! वस्तुतः तो इसे रौद्रध्यान ही होता है। यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... प्रभु को भूल गया है।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु – रौद्रध्यानवाला नरक में जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – रौद्रध्यान ही, बहुत सों की बात है यह! किसी को आर्तध्यान हो तो मरकर पशु होता है। यह सब अरबोंपति मरकर पशु होनेवाले हैं। पशुओं की संख्या बहुत है, शास्त्र में-गोम्मटसार में पाठ है कि यह पशु-तिर्यंच क्यों होता है? गाय, भैंस, घोड़ा ऐसे आड़े होते हैं न आड़े? मनुष्य ऐसे खड़े (सीधे) होते हैं। पूर्व में वक्रता / माया, कपट, और क्रोध, मान बहुत किये। वक्रता अर्थात् टेढ़ापन; वक्रता के फल में इसका शरीर भी आड़ा हो गया। मनुष्य खड़ा है। आहा...हा...! (ऐसा पाठ है)। गोम्मटसार में है। यह सब अज्ञान की लीला है। क्षण में करोड़पति और क्षण में सातवें (नरक का) नारकी। गाय के (गर्भ में) बछड़ा होता है। आहा...हा...! बकरी के पेट में बच्चा होता है, यहाँ बड़ा बंगला (हो) आहा...हा...! इस लीला से आत्मा की लीला कोई जात्यन्तर है। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

जेठ कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनाङ्क ३०-०६-१९७८
प्रवचन-२५ वचनामृत- ७८-७९

वचनामृत का ७८ बोल। है ? उसमें अंक है ? पुराने में पहले नहीं थे। **स्वरूप की लीला जात्यन्तर है।** क्या कहते हैं ? बाहर की जो यह शरीर और वाणी तथा कर्म के संयोग की जो विचित्रता दिखती है, वह सब बाहर का इन्द्रजाल है। आहा...हा... ! भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, उसका स्वीकार हुआ, उसका सम्यग्दर्शन हुआ, वह जैसी चीज महा-माहात्म्य (वाली) है, वैसा उसे अन्तर में भान होकर प्रतीति हुई — ऐसे जीव को... यहाँ मुनि को मुख्य कहेंगे... ऐसे को लीला-स्वरूप की लीला जात्यन्तर है। आहा...हा... ! जगत के पुण्य-पाप की लीला और सामग्री से इस चैतन्य की लीला कोई अजब-गजब है ! आहा...हा... ! जिसे यह भगवान आत्मा चैतन्य भगवत्स्वरूप है वह, ऐसा जिसे अन्तर में भान हुआ और यही करने योग्य है। आहा...हा... ! यह जिसे हुआ, उसकी लीला कोई अलौकिक है, कहते हैं। आहा...हा... ! एक तो साधारण दृष्टान्त तो यह दिया था, रात्रि को दिया था परन्तु वह साधारण बात है, यह बात मुख्य मुनि की है। आहा...हा... !

आत्मा, राग के विकल्प से भिन्न है और अपने पूर्ण स्वभाव से वह एकत्व / अभिन्न है — ऐसा जहाँ भान हुआ, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान (हुआ) और स्वरूप का आचरण भी उसमें थोड़ा आया, उसकी लीला कोई अलौकिक है। आहा...हा... ! सम्यग्दृष्टि (की जिसे) आत्मा का भान है, वह कदाचित् युद्ध में गया... आहा...हा... ! तो उसे उस प्रकार का अशुभराग आया, परन्तु वहाँ से छूटकर जहाँ अन्दर घर में आता है, वहाँ निर्विकल्प ध्यान आ जाता है। आहा...हा... ! देखो, इसकी लीला ! रात्रि में दूसरा दृष्टान्त दिया था परन्तु अभी यह युद्ध का दिया। क्या कहा, समझ में आया ? आहा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जहाँ आनन्द का सागर, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु स्वयं है, उसका जहाँ भान हुआ और राग से भिन्न जिसकी शक्ति की व्यक्ति प्रगट हुई... आहा..हा... ! उसकी लीला कोई जात्यन्तर है। जगत् की विचित्रता में क्षण में पुण्यशाली और दूसरे क्षण गरीब दिखता है; क्षण में गरीब हो, वह दूसरे क्षण बड़ा राजा दिखता है। यह जगत की-कर्म की लीला अलग प्रकार की है। आहा...हा... ! यह आत्मा की सम्पत्ति जिसे अन्दर बैठी, प्रभु चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है, उसका जिसे अन्तर में भान हुआ, और करने योग्य किया है, वह करने का यह है। आहा...हा... ! यह जहाँ भान हुआ, कहते हैं कि वह कदाचित् युद्ध में गया हो, राजकुमार हो... आहा...हा... ! परन्तु वहाँ से घर में जहाँ आता है, वहाँ ध्यान में बैठ जाये तो निर्विकल्पदशा हो जाती है। बाहर से घर में आया और बाहर से अन्दर में आया। आहा...हा... ! अब किसी समय वह युद्ध में खड़ा हो और अन्दर में जरा हुआ हो, उसमें थोड़ी देर लगती हो, उसमें अन्दर में ध्यान में चढ़ जाये, निर्विकल्प हो जाये — ऐसी जिसे अन्तर स्थिति की सम्पत्ति है... आहा...हा... ! जिसके अन्तर में अनन्त आनन्द का समुद्र भरा है, ऐसा स्वयंभूस्वरूप भगवान आत्मा (है), उसकी लीला कोई अलौकिक है। आहा...हा... !

वह कदाचित् भोग में पड़ा हो — भरतेशवैभव में यह आता है न ? भरतेशवैभव में। आहा...हा... ! यह तो एक वस्तु की स्थिति है। आहा...हा... ! भोग के विकल्प में आया और विकल्प हुआ और (भोग) हुआ, आहा...हा... ! परन्तु अन्तर में से जहाँ निवृत्ति लेता है, दूसरे क्षण में जहाँ नीचे उतरकर ध्यान में बैठता है तो निर्विकल्पता हो जाती है। आहा...हा... ! वह उसके कारण नहीं, वह वस्तु के माहात्म्य के कारण है। आहा...हा... ! चैतन्य भगवान अन्दर सहजानन्द प्रभु, ऐसी जिसे अन्तर में चीज खिल निकली; राग और आत्मा की एकता में तो ताला लगाया था, उस सम्पदा को ताला लगाया था। आहा...हा... ! सूक्ष्म बहुत, भाई ! यह राग और आत्मा को जहाँ भिन्न किया... आहा...हा... ! स्वरूप की एकत्वता और राग की विभक्तता हुई, वहाँ खजाना खुल गया। खजाने में ताला था, वह खुल गया। आहा...हा... ! वह जीव कदाचित्... आहा...हा... ! विषय की वासना में भी आ गया हो, तथापि दूसरे क्षण... आहा...हा... ! उसके अन्तर की वस्तु ही ऐसी है... आहा...हा... !

www.vitragvani.com

कि आनन्द का सागर जहाँ उछला, (वहाँ) वह दूसरे क्षण निर्विकल्प हो जाता है। भरतेश वैभव में आता है। भरतेश वैभव! पुस्तक नहीं? भरतेश वैभव की पुस्तक है, उसमें ऐसा आता है। आहा...हा...! यह वस्तु-भोग को स्थापित नहीं करते, उसकी आत्मा की अचिन्त्य शक्ति जहाँ प्रगटी... आहा...हा...! आहा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ जहाँ अन्दर में जागा और जगाया, आहा...हा...! वह 'जाग कर देखूँ तो जगत दिखे नहीं' आहा...हा...! ऐसा जो चैतन्यभगवान में दृष्टि गयी, इस सम्यग्दर्शन में भी उसकी लीला तो देखो, कहते हैं। आहा...हा...! और सम्यग्दृष्टि रहित प्राणी व्रत, तप, और भक्ति करे, वह सब मिथ्यात्व के बन्धन में जाता है, क्योंकि उसे धर्म मानता है और ठीक मानता है। आहा...हा...!

तब समकिती को आत्मा के ज्ञान की अन्तर की शक्ति की लीला अन्दर में जगी... आहा...हा...! वह जगत के किसी चौरासी के अवतार में या देव में भी जिसकी जाति नहीं — ऐसी जिसे जाति की अन्तर्दृष्टि हुई, आनन्द के सागर को पर्याय में उछालकर अतीन्द्रिय आनन्द आया। आहा...हा...! युद्ध आदि की बात की कि ऐसे भाव में आ जाये तो भी उसके समक्ष पूरा आत्मा अधीन हो गया है। आहा...हा...! पूर्णानन्द के नाथ को जिसने अन्दर में स्वीकार किया — ऐसी जो दृष्टि अनुभव की हुई, आहा...हा...! हीराभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! दिगम्बर सन्त प्रसिद्ध करते हैं, बापू! तेरी सम्पत्ति की तुझे खबर पड़े तो वह सम्पदा ऐसी है। आहा...हा...! कि तेरी लीला में... आहा...हा...! अशुभध्यान आ जाये, कोई आर्तध्यान, रौद्रध्यान (आ जाये) परन्तु दूसरे क्षण ध्यान में बैठ जाये तो निर्विकल्प हो जाये। आहा...हा...!

मुमुक्षु – मन्दिर जाने की आवश्यकता न पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री – भगवान बैठा है अन्दर। अब अन्दर भगवान में देखने बैठा न, आहा...हा...! परम ब्रह्मस्वरूप-परम ब्रह्म आनन्दस्वरूप प्रभु को जहाँ निहारने गया... आहा...हा...! वहाँ विकल्प टूट कर निर्विकल्पदशा हो जाती है, बापू! यह चीज क्या है? गजब है! यहाँ तो बहिन ने मुनि का लिखा है परन्तु पहले भाव में ऐसा आया था। आहा...हा...! बापू! यह वस्तु, प्रभु! यह चैतन्य जो भगवान अन्दर, जिसने सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा है — ऐसा कहा और जिसने जानकर देखा... आहा...हा...! वह सर्वज्ञ प्रभु

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आत्मा... उसका जहाँ अन्तर अनुभव हुआ.... कोई जीव तो निगोद में से सीधा निकलकर, एक-दो भव भले बीच में किये हों, और मनुष्य हुआ हो तथा मनुष्य होकर आठ वर्ष की उम्र हो, उसमें समकित पाये। आहा...हा...! मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं कहा? 'सब अवसर आ गया है।' आहा...हा...! उसमें आठ वर्ष की उम्र में (यह) बात सुनी, प्रभु! तू महाप्रभु है अन्दर। आहा...हा...! तेरा माहात्म्य अलौकिक! वाणी में पूरा नहीं पड़ता, प्रभु! ऐसा तू है। आहा...हा...! ऐसा इसने सुना और अन्तर में गया और समकित पाता है। समकित पाये और तुरन्त ही नव कोटि से (परिग्रह का) त्याग करके इसे मुनिपना हो... आहा...हा...! और उसमें स्थिर हो वहाँ अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) हो और केवल (ज्ञान) हो तथा अन्तर्मुहूर्त हो वहाँ देह छूटकर सिद्ध हो जाये! आहा...हा...! प्रभु! तेरी लीला का पार नहीं, भाई! तुझे पता नहीं। जगत की ईश्वर की लीलायें और यह सब बातें गप्प ही गप्प हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

स्वरूप की लीला जात्यन्तर है। जगत की जाति से कोई अलग प्रकार है। आहा...हा...! इसने सुना नहीं, कभी किया नहीं। आहा...हा...! **मुनिराज, चैतन्य के बाग में क्रीड़ा करते-करते...** आहा...हा...! जैसे बाग में फूल की सुगन्ध लेने जाये और वहाँ लवलीन-लीन हो जाये; ऐसे आत्मबाग अनन्त गुण जहाँ खिले हैं... आहा...हा...! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और यहाँ तो मुनि को चारित्र हुआ है। अन्तर्निमग्न हैं, अन्तर्निमग्न बहुत आनन्द की दशा प्रगट हुई है। आहा...हा...! बापू! मुनिपना बहुत कठिन चीज है भाई! जैन परमेश्वर कहते हैं, वह मुनिपना, हाँ! आहा...हा...! जिन्हें वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता, पात्र नहीं होता। आहा...हा...! बाह्य में नग्नपना हो, अभ्यन्तर में अकेले आनन्द के नाथ का अनुभव हो, आहा...हा...! प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द!

ऐसे मुनिराज **चैतन्य के बाग में...** यह चैतन्य का बाग जहाँ विकसित है। आहा...हा...! जहाँ सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र हुआ है, उसे तो अनन्त गुण खिल निकले हैं, भले केवलज्ञान जितने खिले न हों परन्तु खिल निकले हैं। श्रद्धा, ज्ञान, आनन्द, चारित्र, शान्ति, स्वच्छता, ईश्वरता — जिसकी पर्याय में अनन्त गुण खिल गये हैं। आहा...हा...! उस खिले हुए बाग में क्रीड़ा करते हुए, राग की क्रीड़ा छोड़कर चैतन्य के स्वभाव की क्रीड़ा में आते हुए... आहा...हा...! ऐसी बातें!

कर्म के फल का नाश करते हैं। यह क्या कहा ? अतीन्द्रिय आनन्द के फल को वेदते हैं, अनुभव करते हैं; इस कारण उनके कर्म के फल का नाश हो जाता है। आहा... ! कर्म उदय आकर फिर जाता है। आहा...हा... !

भगवान आत्मा के स्वरूप में जिनकी लीनता जगी है... आहा...हा... ! जिनके अनन्त गुण खिले हैं। बाग कहा था न ? बाग में फूल, वृक्ष होते हैं न, फूल, वृक्ष ! हजारों फूल, वृक्ष ! फूल... फूल... फूल... ऐसे (दिखते हैं) । आहा...हा... ! वैसे ही इस भगवान के बाग में अनन्त शक्ति के जो गुण थे, वे पर्याय में खिल गये-निकल (विकसित) गये। आहा...हा... ! यहाँ तो चारित्र है न ! आहा...हा... ! वे मुनिराज आत्मबाग में रमते-रमते, लीला करते-करते अर्थात् कुछ दुःख नहीं - ऐसा कहते हैं। आहा... ! अनन्त आनन्द की धारा में रमते-रमते **कर्म के फल का नाश करते हैं।** आहा...हा... ! यह व्यवहार से कहते हैं, वरना कर्मफल उस समय उत्पन्न नहीं होता, उसे नाश करते हैं - ऐसा कहा जाता है। आहा...हा... !

बाह्य में आसक्ति थी.... पहले आसक्ति थी, तब जो रस बाहर में था, **उसे तोड़कर स्वरूप में मन्थर-स्वरूप में लीन हो गये हैं।** आहा...हा... ! जहाँ आनन्दादि गुण खिले हैं, उसमें मुनिराज लीन हुए। आहा...हा... ! जिन्हें महाव्रतादि विकल्प से भी भिन्न पड़कर और अतीन्द्रिय आनन्द में जहाँ लीन हैं... मन्थर कहा, मन्थर अर्थात् लीन। बाहर की आसक्ति-रस तोड़कर और स्वरूप के रस में मन्थर-लीन हुए हैं। आहा...हा... ! अर्थात् लीन हो गये हैं। आहा...हा... ! वह **स्वरूप ही उनका आसन,...** है। आहा...हा... ! उदासीन हैं अर्थात् ? राग में जिनका आसन नहीं, राग में वे बैठे नहीं। आहा...हा... ! पूर्णानन्द के नाथ में जिनका आसन है। पूर्णानन्द प्रभु अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसमें जिनका आसन है, वहाँ जो बैठा है, वहाँ उसने विश्राम लिया है। आहा...हा... ! मन्थर ! **स्वरूप ही उनका आसन,...** है। शुद्ध आनन्दघन नाथ में जिनकी बैठक है, उसमें ही जिनकी बैठक है, आहा...हा... ! उसमें जिनकी बैठक है। कोई लोग नहीं कहते ? कि भाई ! वे लोग बहुत एकत्रित होते हैं और वहाँ दो घड़ी बैठने जाते हैं। यहाँ कहते हैं कि वे निवृत्ति लेकर अन्दर में बैठने जाते हैं। आहा...हा... ! जहाँ प्रभु की अन्तर अनन्त सम्पदा पड़ी है। प्रभु ! तू पूर्ण सम्पदा का स्वामी है, नाथ ! तू छोटा नहीं, आहा... ! तू पामर नहीं,

www.vitragvani.com

तू स्त्री नहीं, तू पुरुष नहीं, तू मनुष्य नहीं, तू देव नहीं, तू पर्याप्त नहीं, तू अपर्याप्त नहीं, तू राग नहीं, तू द्वेष नहीं। आहा...हा... ! प्रभु ! तुझमें प्रभुता का पार नहीं न, नाथ ! आहा...हा... ! ऐसी प्रभुता में जिसकी लीनता हुई है, उसका आसन वहाँ है। आहा...हा... ! वहाँ निश्चिन्त बैठे हैं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! भाषा जरा सादी है, भाव जरा बहुत ऊँचे हैं। समझ में आया ? आहा...हा... !

अन्तर के आनन्द की क्रीड़ा में चढ़े हैं... आहा...हा... ! उन्हें आसन, स्वरूप है। अरे... ! जिनकी बैठक स्वरूप में है, राग में नहीं; व्यवहाररत्नत्रय-राग के विकल्प में उनकी बैठक नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आये इतना समझना, बापू ! यह तो संक्षिप्त भाषा है, अन्दर भाव बहुत है। आहा...हा... ! उनका आसन... श्रीमद् में एक पत्र आता है, भाई ! श्रीमद् में एक पत्र आता है। हमारा बैठना, हमारा खाना-पीना सब आनन्द है। एक पत्र आता है, वरना वे तो गृहस्थाश्रम में हैं। पूरा बड़ा पत्र है, आहा...हा... ! उसमें बहुत बोल हैं। आसन है, यह है, यह है, यह है। उसमें सब आत्मा में हमारा स्थान है। आहा...हा... ! भले रागादि आवे, तथापि उनका आदर नहीं और आदर तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का है, वहाँ हमारा आसन लगाया है। आहा...हा... ! वह आसन हमारा, यह खाना वह हमारा, अनुभव उसका, भोग उसका, कर्ता उसका, भोक्ता उसका। आहा...हा... !

यहाँ तो मुनि की दशा (की बात करते हैं) परन्तु सम्यग्दृष्टि है, उसका आसन तो स्वरूप में पूर्णानन्द में आदर है। आहा...हा... ! वह स्वरूप ही जिसकी निद्रा है। सोता है, इस स्वरूप में — ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! मुनिराज या समकिती... आहा...हा... ! मुनिराज की तो विशेष चारित्रदशा है, अन्तर दशा क्षण और पल में छटवाँ-सातवाँ (गुणस्थान) आता है। वन में विचरते हैं। बाघ और सिंह के बीच बैठे होते हैं। आहा...हा... ! दिगम्बर मुनि-सन्त बाहर स्थित हों 'एकाकी विचरते फिर श्मशान में, एकाकी विचरते फिर श्मशान में, पर्वत में सिंह बाघ संयोग जो, अडोल आसन और'... शरीर तो अडोल हो (परन्तु) 'मन में नहीं क्षोभ हो' अन्तर आनन्द की लहर में स्थित हैं। आहा...हा... ! उन्हें कोई सिंह शरीर लेने आये, उसे चाहिए हो और मेरा है नहीं, मुझे चाहिए नहीं, आहा...हा... ! 'परम मित्र का मानो पाया योग जब, अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा !' आहा...हा... !

www.vitragvani.com

जंगल में पड़कर अकेले वन में रहते हुए, बाघ और सिंह की गर्जना में बैठे शान्ति में। शरीर तो चले, डिगे नहीं परन्तु मन डिगता नहीं — ऐसी जिनकी स्वरूप के अन्दर में... आहा...हा...! निद्रा है, वे स्वरूप में सोते हैं। आहा...हा...! स्वरूप में खर्राटे लेते हैं। जैसे अन्य (मनुष्य) निद्रा में खर्राटे भरते हैं न? क्या कहलाता है? घोरते हैं (यह) हमारी गुजराती भाषा है। यह नाक (में) खर्राटे भरते हैं न! हं... हं... श्वाँस होता है न? यह सोते हैं, वहाँ श्वाँस हं... (होता है) वह निद्रा में घोरता (खर्राटे लेता) है। वैसे मुनिराज, निद्रा में आत्मा के स्वरूप में घोरते (खर्राटे लेते) हैं। आहा...हा...!

स्वरूप ही आहार है;.... यह खुराक-आहार लेते हैं, वह उनका आहार नहीं; वह तो उनका ज्ञेय-परज्ञेय है। आहा...हा...! उनका तो अतीन्द्रिय आनन्द का आहार है। आहाहा! ऋषभदेव भगवान ने दीक्षित होकर प्रतिज्ञा (लेकर) पहले छह महीने के उपवास किये, वहाँ तक तो आहार का विकल्प आया नहीं, फिर आहार का विकल्प आया, भिक्षा के लिये जाते परन्तु मिलता नहीं, उन लोगों को कुछ विधि नहीं आती, वह विकल्प तोड़कर आनन्द के भोजन में जाते, ये छह महीने दूसरे व्यतीत हो गये। लोगों को ऐसा लगा कि आहार मिला, इसलिए (दु:ख मिटा) (परन्तु) उन्हें तो आनन्द का आहार था। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव! आहा...हा...! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का ग्रास! आहा...हा...! उस अतीन्द्रिय आनन्द के ग्रास खाते थे। यह ग्रास आहार का (ग्रास) जड़ का, वह तो परवस्तु है, वह कहीं आत्मा ले नहीं सकता, खा नहीं सकता। आहा...हा...!

आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। आहा...हा...! उन्हें मुनिराज को अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन है। आहा...हा...! समझ में आया? यह बात जगत को कठिन पड़ती है। कभी सुनी न हो... बाहर की धमाल में पड़े हैं। स्वरूप उनका जो अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द — ऐसे जो भगवान आत्मा के स्वरूप का स्वभाव, उसका जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ और तदुपरान्त जिनकी चारित्र-रमणता हुई, उसे तो आनन्द का आहार है, कहते हैं। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द के भोजन के ग्रास-कवल लेते हैं। आहा...हा...! है?

वे स्वरूप में ही लीला,.... आहा...हा...! **वे स्वरूप में ही लीला,....** करते हैं।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आहा...हा...! सम्यग्दृष्टि (होवे), उसे भी स्वरूप में लीला है, तथापि उसे अभी राग का भाव विशेष आता है, तो भी समकिती को उसका आदर नहीं है। भक्ति का, पूजा का, दान का शुभराग आवे परन्तु उस राग के भाव का आदर नहीं है। आहा...हा...! जिन्होंने आत्मज्ञान में जिसे हेय जाना है, वह है अवश्य, व्यवहारनय का विषय आता है, होता है परन्तु उसे हेयरूप से जानते हैं। आहा...हा...! सम्यग्दृष्टि — धर्म की पहली सीढ़ी... आहा...हा...! अपने आनन्दस्वरूप में लीन है; वह राग आता है, उसमें यह लीनता-एकत्वबुद्धि नहीं है। आहा...हा...! उसका नाम सम्यग्दर्शन और मुनिपना है, बापू! ये लोग मान बैठें कि हम धर्मी हैं, पूजा करते हैं और भक्ति करते हैं तथा यात्रा करते हैं, (इसलिए) हो गया धर्म... धूल में भी धर्म नहीं है; धर्म तो नहीं परन्तु पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं है। आहा..हा...! पण्डितजी! आहा...हा...!

जहाँ अन्दर राग के-दया, दान के विकल्प भी दु:खरूप लगते हैं और अन्तर के आनन्द का स्वाद जिसे अन्तर में आता है, उसे यहाँ समकिती कहते हैं और उसे मुनिपना (कहते हैं)। विशेष आनन्द की दशा आवे, उसे मुनिपना कहते हैं। आहा...हा...! वे मुनिपना **स्वरूप में ही लीला,...** करते हैं। आहा...हा...! उनकी लीनता आत्मा के स्वरूप में है; वे राग की रमणता से छूट गये हैं। आहा...! 'निजपद रमै सो राम कहिये' आहा...हा...! वह आया था, आनन्दघनजी में आता है। 'निजपद रमै सो राम' राम उसे कहते हैं; बाकी राग के पुण्यपरिणाम में रमे, वह तो हराम है। आहा...हा...! कठिन बातें हैं, बापू! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग बहुत अपूर्व और अपूर्व लाभदायक है। अपूर्व और अपूर्व लाभदायक है, कभी अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ मिला नहीं — ऐसा लाभदायक है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं — **वे स्वरूप में ही लीला, स्वरूप में ही विचरण करते हैं।** समकिती ज्ञानी और मुनि, उनका आदर त्रिकाली आनन्दकन्द के नाथ में है। वहीं लीला करते हैं और विचरते हैं। राग में नहीं विचरते। आहा...हा...! यह आता है, नहीं? ४१३ गाथा (समयसार) — पर में मत विचर, आता है। आहा...हा...! समयसार की ४१३ गाथा। प्रभु! तेरा स्वरूप अन्दर आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय ईश्वरता, अतीन्द्रिय शान्ति, और अतीन्द्रिय स्वच्छता, निरोगता से भरपूर तत्त्व है।

www.vitragvani.com

स्व-स्थ — अपने में स्वयं है वहाँ। उसमें उसे कहते हैं कि विचरनेवाला धर्मी उसमें विचरता है। आहा...हा...! उसे राग आवे तो भी उसमें उसका आदर नहीं है, अर्थात् उसका विचरना वहाँ राग में नहीं है। आहा...हा...! व्यवहाररत्नत्रय का राग आवे, आत्मज्ञान और अनुभव हुआ होने पर भी, तथापि उसमें उसका आदर नहीं है। अन्दर आनन्द का आदर है। आहा...हा...! यह बात कब जँचे! बेचारे को सुनने को नहीं मिलती। आहा...हा...! रंक कहा है, रंक, वरांका! आहा...हा...!

चैतन्य के आनन्द आदि की लक्ष्मी, पुण्य-पाप के विकल्प से — राग से भिन्न पड़ी है, उसका जिसे भान नहीं, वे सब भिखारी, रंक... रंक... रंक हैं। भले ही वह अरबोंपति हो, बड़ा देव हो, आहा...हा...! चलता शव है। चैतन्य अन्दर कौन है? अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु निर्विकल्प चीज है, जिसमें पुण्य और पाप के राग का अवकाश नहीं — ऐसे चीज का जहाँ भान होता है, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान (होता है); तदुपरान्त स्वरूप में रमणता (होती है)। आहा...हा...! वह तो स्वरूप में विचरण करते हैं।

सम्पूर्ण श्रामण्य प्रगट करके.... सन्त उन्हें कहते हैं कि जो आनन्द में विचरण करते हैं और उस आनन्द को सम्पूर्णरूप से श्रामण्य प्रगट करके, आहा...हा...! अन्दर सम्पूर्णरूप से वीतरागता प्रगट करके **वे लीलामात्र में श्रेणी माँडकर....** आहा...हा...! **केवलज्ञान प्रगट करते हैं।** आहा...हा...! भरत चक्रवर्ती-आत्मज्ञानी समकिती अनुभव था। वे राग का कण भी आदरणीय नहीं मानते थे। वे छह खण्ड के राज्य की आसक्ति छूटी और जहाँ ध्यान में बैठते हैं... आहा...हा...! वहाँ वस्त्र आदि परिग्रह का नवकोटि से त्याग हो जाता है। अन्तरदशा में रमते हैं, केवलज्ञान हो जाता है। आहा...! उन्हें काँच भवन में... काँच भवन समझे? चारों ओर दर्पण हों, चारों ओर अभी होते हैं न? चारों ओर मकान में दर्पण होते हैं और वे तो चक्रवर्ती (थे); देवों के द्वारा बनाया हुआ दर्पण का मकान और उसमें बैठे, उसमें अन्दर से निवृत्ति हो गयी। समकिती तो थे ही, आहा...! वहीं के वहीं अन्तर्मुहूर्त में नवकोटि से वस्त्र आदि छूट गये, नग्न दिगम्बर दशा हो गयी और अन्दर में रमणता करते हुए अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हुआ। आहा...हा...!

प्रश्न : दीक्षा....

समाधान : वह दीक्षा ली न, कहा न! पहले अन्तर्मुहूर्त में विकल्प उत्पन्न हुआ, आत्म-अनुभव तो है, आनन्द का भान तो है, विकल्प उठा कि यह छोड़ूँ वह छूट गया, ध्यान में बैठे। तब एकदम पहले सातवाँ गुणस्थान आया, आहा...हा...! और स्थिर हुए, श्रेणी माँडकर केवलज्ञान हुआ। आहा...हा...! ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी ही उनकी ताकत है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! बापू! तुझे उनकी सामर्थ्य की, उनकी शूरवीरता की (खबर नहीं है)। जिसमें अकेला वीररस भरा है, वीर्य भी वीररस से भरपूर वीर्य है। आहा...हा...! ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, राग से और निमित्त से भिन्न पड़कर और स्वरूप के स्वीकार में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसे यहाँ समकिती कहते हैं। उस स्वाद में रमते हुए चारित्र हो जाता है, और उस स्वाद में विशेष एकाकार होने पर, स्थिर होने पर केवलज्ञान हो जाता है। आहा...हा...! कठिन बात है, बापू! दुनिया से अलग है और दुनिया कहती है, वह सब पता है न! वह है, सब पता है। जगत कहाँ है, (कहाँ) खड़ा है? (पता है)। आहा...हा...! व्यवहार के बाहर में दया, दान, व्रत, भक्ति और तप, यह सब तो शुभराग है, वहाँ खड़े रहकर धर्म मानते हैं तो मिथ्यादृष्टि है, वह राग में खड़े हैं। धर्मी है, वह स्वभाव में खड़ा है। आहा...हा...! कठिन काम!

लीलामात्र में श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्रगट करते हैं। ७८ (बोल पूरा) हुआ।

शुद्धस्वरूप आत्मा में मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये हों ऐसा दिखायी देता है परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं। ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर। यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके ऊपर आजा। चैतन्य द्रव्य निर्मल है। अनेक प्रकार के कर्म के उदय, सत्ता, अनुभाग तथा कर्मनिमित्तक विकल्प आदि तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं॥ ७९॥

७९, क्या कहते हैं अब? **शुद्धस्वरूप आत्मा में मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो**

www.vitragvani.com

गये हों... ऐसा अज्ञानी को भासता है। मिथ्यादृष्टि — जिसे धर्म का पता नहीं, भले जैन वाड़ा में जन्मा हो, देव-गुरु-शास्त्र को मानता हो परन्तु वह तो सब विकल्प और राग है। आहा...हा... ! **शुद्धस्वरूप आत्मा में मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये हों - ऐसा दिखायी देता है...** क्या कहना चाहते हैं? कि जो राग होता है, वह मानो आत्मा में, अन्दर में हो — ऐसा अज्ञानी को भासित होता है परन्तु वास्तव में तो... आहा...हा... !

परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर... वह राग भले दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रभु का स्मरण (करे), वह सब राग है-विकल्प है। आहा...हा... ! वह विकल्प मानो आत्मा में प्रविष्ट हो गया हो, एकाकार हो — ऐसा मानकर बैठा है, वह अज्ञानी है, वह मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो साधु-दिगम्बर मुनि हुआ हो परन्तु राग से मुझे लाभ होगा — ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! (विकार) अन्दर प्रविष्ट हो गया हो - ऐसा मानता है — वह राग मेरा है और राग से मुझे लाभ होगा। आहा...हा... !

परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर.... क्या कहते हैं? इस राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन और ज्ञान करने पर **वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं।** जैसे दर्पण में सामने अग्नि आदि दिखायी दे, वह प्रतिबिम्ब है; अग्नि वहाँ नहीं है; उसी प्रकार ज्ञान में आत्मा का भान, सम्यग्दर्शन होने पर उसे राग का ज्ञान होता है, उस राग में मेरा स्वरूप है — ऐसा नहीं है परन्तु जैसे दर्पण में वह चीज दिखती है, वैसे ज्ञान में राग ज्ञात होता है। सबेरे आया था। समझ में आया?

धर्मी जीव को चैतन्य के आनन्द के स्वरूप का अनुभव होने से और अतीन्द्रिय ज्ञान का ज्ञान होने से उसकी पर्याय में ज्ञान की निर्मलता ऐसी होती है कि उसे राग ज्ञात होता है, प्रतिबिम्बरूप से ज्ञात होता है; राग मेरा है — ऐसा नहीं। जैसे दर्पण में अग्नि ज्ञात हो, वह अग्नि वहाँ दर्पण में नहीं है; उसी प्रकार आत्मा में वह राग ज्ञात हो, वह राग ज्ञात नहीं होता; राग सम्बन्धी का अपना ज्ञान है, वह ज्ञात होता है। सबेरे आया था। बहुत सूक्ष्म भाई! यह तो कठिन काम। आहा...हा... ! दुनिया को तो बेचारों को मिला नहीं, सुनने को मिला नहीं। वस्तु तो कहाँ है? आहा...हा... ! ऐसा जगत अन्धकार में पड़ा है। आहा...हा... !

चैतन्य चन्द्र अन्दर जो भगवान शीतल जिनस्वरूप विराजमान है। जिनस्वरूप ही

www.vitragvani.com

उसका त्रिकाली स्वरूप है। 'घट घट अन्तर जिन बसै' नहीं कहा था? 'घट घट अन्तर जिन बसै' — समयसार नाटक का शब्द है। 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन, परन्तु मत मदिरा के पान सौ मतवाला समझै न।' अपने मत की शराब पी हुई है। आहा...हा...! वह जिनस्वरूपी वीतराग मैं हूँ, राग मुझमें नहीं है, यह बात अज्ञानी को जँचती नहीं है। आहा...हा...! परन्तु राग आया,.... जैसे दर्पण में स्वच्छता में प्रतिबिम्ब ज्ञात होता है, वैसे ज्ञान में राग ज्ञात होता है — यह भी कहना व्यवहार है परन्तु यहाँ तो दृष्टान्त देना है न? आहा...हा...!

ज्ञान की पर्याय में राग आया, उसका ज्ञान, स्वयं ज्ञान की पर्याय से ज्ञान का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से, वह ज्ञान का झलक, राग की झलक यहाँ आयी — ऐसा कहा जाता है, वरना तो राग सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं से स्वयं को प्रगट हुआ है। आहा...हा...! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह भी राग है। परद्रव्य है न? आहा...हा...! कठिन काम, जगत को कठिन पड़ता है। यह राग है, वह आत्मा के स्वभाव में प्रविष्ट नहीं हुआ परन्तु ज्ञानी-धर्मी आत्मा के स्वभाव को जानता है, उसकी ज्ञान की पर्याय में उस राग की झलक अर्थात् उसका ज्ञान होता है — ऐसा अभी तो कहना है। वास्तव में तो उस समय की पर्याय स्वयं को जानती है और राग को जाने — ऐसा ही विकास और प्रगट पर्याय होती है। उसमें राग प्रविष्ट नहीं होता परन्तु राग सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं का स्वयं से होता है। आहा...हा...! प्रभु... प्रभु! क्या करें? भाई! आहा...हा...! जगत कहाँ खड़ा है और मार्ग कहाँ है? (इसका जगत को) पता नहीं। आहा...हा...! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव यह कहते हैं, वह सन्त कहते हैं, वह यह वाणी है। आहा...हा...!

जो राग का विकल्प है — देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का विकल्प — राग, वह कहीं आत्मा में प्रविष्ट नहीं है। तब होता है न? धर्मी को भी होता है न? अन्दर प्रविष्ट नहीं है तो भी होता है न? वह होता है, वह दर्पण में जैसे परचीज प्रतिबिम्बरूप से ज्ञात हो जाती है, वैसे ज्ञान में राग प्रतिबिम्बरूप से ज्ञात हो जाता है। आहा...हा...! ऐसा समकिती का स्वरूप है। आहा...हा...! ऐसा है। है? **भेदज्ञान प्रगट करने पर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पण....** चैतन्य-दर्पण भगवान स्व-पर प्रकाशक जाननेवाला प्रभु,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसमें वह **प्रतिबिम्बरूप है।...** राग तो राग में रहा है, परन्तु धर्मी को राग सम्बन्धी का ज्ञान प्रतिबिम्बरूप से होता है। आहा...हा... ! दर्पण में अग्नि दिखती है, वह अग्नि नहीं। इस प्रकार अग्नि हो और दर्पण में दिखायी दे, (वह) अग्नि नहीं; दर्पण की अवस्था है। वहाँ अग्नि होवे तो हाथ लगावे तो गर्म होना चाहिए। यहाँ अग्नि को हाथ (लगाओ तो) गर्म होगा। वहाँ दिखती है, वह अग्नि नहीं; दर्पण की अवस्था है। वैसे ही राग है, वह दुःख और आकुलता है, उसका यहाँ ज्ञान होने पर उसमें आकुलता नहीं। उस राग का ज्ञान हुआ, वह अनाकुल आनन्द का वहाँ ज्ञान है। आहा...हा... ! ऐसी बात है। काम बहुत (कठिन), बापू! अभी बहुत बदलाव हो गया है। बात-बात में अन्तर है, इसका उसे पता नहीं है। वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ के ये कथन हैं। समझ में आया? आहा...हा... !

ऐसे इस दर्पण में प्रतिबिम्बरूप है। आहा...हा... ! क्या कहा? कि चैतन्यस्वरूप जो भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, राग से भिन्न है। उसमें राग ज्ञात हुआ तो राग स्वरूप में नहीं है परन्तु तब राग ज्ञात हुआ न? (तो कहते हैं) वह तो प्रतिबिम्बरूप उसकी झलक का ज्ञान हुआ। अज्ञानी को भी कहीं आत्मा में राग नहीं है परन्तु उसे राग और आत्मा एक मानकर राग से लाभ माननेवाला, आत्मा को एक ही माननेवाला, राग और आत्मा को एक मानता है। आहा...हा... ! वह चाहे तो साधु हो तो भी मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! और गृहस्थाश्रम में... आता है न, रत्नकरण्डश्रावकाचार में? मोही अनगार भी मिथ्यादृष्टि है और गृहस्थाश्रम में समकिती भी ज्ञानी है। पण्डितजी को कण्ठस्थ है — रत्नकरण्डश्रावकाचार का श्लोक है। आहा...हा... !

आत्मा में राग से लाभ होता है - ऐसा माननेवाले राग, आत्मा में प्रवेश हो गया है — ऐसा मानते हैं। आहा...हा... ! परन्तु ऐसा है ही नहीं। उसके ज्ञान में वह ज्ञात होने योग्य होता है, परन्तु उसे (उसका) ज्ञान नहीं है। आहा...हा... ! जिसकी ज्ञान की पर्याय वर्तमान है... यह सबेरे चला था न? यह पर्याय त्रिकाली को जानती है, इस ओर देखो तो त्रिकाली को जानती है और इस ओर देखो तो रागादि हों, उन्हें जानती है, क्योंकि वह तो जाननेवाला, जाननेवाला जानने का कार्य करता है। यह ज्ञायक प्रभु है, आहा...हा... ! अन्दर देखने पर ज्ञायकस्वरूप को पर्याय जानती है, बाहर देखने पर राग का ज्ञान हो, उसे वह जानती है।

www.vitragvani.com

यहाँ तो दर्पण का प्रतिबिम्ब कहा है। ज्ञान का प्रतिबिम्ब। प्रतिबिम्ब अर्थात् वह चीज यहाँ नहीं आती। जैसा वहाँ राग है, वैसा ही यहाँ ज्ञान; राग की सत्ता की अपेक्षा रखे बिना, अपनी उस समय की पर्याय, स्व-पर प्रकाशक के सामर्थ्यवाली होने से स्वयं अपनी झलक में राग को जाने — ऐसा कहना वह व्यवहार है। आहा...हा...! बहुत कठिन काम भाई! जवाबदारी बहुत, शर्तें बहुत। आहा...हा...! क्या हो? भाई! अनन्त काल का भटका हुआ... आहा...हा...! **ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं।**

ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर। आहा...हा...! क्या कहा? स्वरूप, जो भगवान ज्ञायकस्वरूप है और रागरहित वैराग्यस्वरूप है। आहा...हा...! पर से उदासस्वरूप है और स्व से पूर्ण भरा हुआ है। आहा...हा...! ऐसे **ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से...** ज्ञान की भी अचिन्त्य शक्ति। अचिन्त्य है, कोई कल्पना से उसका माप आवे — ऐसा नहीं है, बापू! भाई! आहा...हा...! ज्ञान अर्थात् आत्मा के चैतन्यस्वरूप का भान और चैतन्यज्ञान है, उसका ज्ञान और इस तरफ राग का अभाव - इसका नाम वैराग्य; दोनों की अचिन्त्य शक्ति है। ज्ञान की अचिन्त्य शक्ति और वैराग्य की अचिन्त्य (शक्ति)। वैराग्य यह, हाँ! स्त्री-पुत्र छोड़े और वैरागी है, वह वैरागी नहीं। आहा...हा...! आहा...हा...!

यहाँ तो अन्तर के राग से भिन्न पड़कर वैराग्यरूप वर्तता है, उसे वैराग्य कहते हैं। आहा...! चाहे तो पुण्य का भाव हो — दया, दान, व्रत का (भाव हो), उससे भिन्नरूप से विरक्त वर्तता है। राग से विरक्त; राग से रक्त नहीं। आहा...! राग से विरक्त, स्वरूप में लीन — ऐसी ज्ञान और वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति अन्दर है। आहा...! यह तो बहुत अन्तर, बातों-बातों में अन्तर लगे। बेचारे अनजान व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि क्या है ऐसी बात? वीतराग का मार्ग ऐसा होगा? यहाँ तो सुनते हैं कि यात्रा करो, भक्ति करो, मन्दिर बनाओ, पूजा करो, व्रत पालो, उपवास करो — ऐसा सुनते हैं। आहा...हा...! यह करना-करना, वह राग है और राग का करना, वह आत्मा का मरना है। कठिन बात, बापू! यह ज्ञानस्वरूप प्रभु है, उस ज्ञानस्वरूपी का ज्ञान और ज्ञानस्वरूप तथा राग के अभाव का वैराग्य, दोनों में अचिन्त्य शक्ति है। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

(समयसार) निर्जरा अधिकार में कहा है न? ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति समकिती को होती है। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में... श्रावक पाँचवें का तो कहाँ रह गया? आहा...हा...! यह चौथे गुणस्थान में है जहाँ, इसे भी आत्मा का ज्ञान और राग का अभाव-वैराग्य, दो शक्तियाँ इसे प्रगट हुई होती हैं। है? निर्जरा अधिकार, समयसार! आहा...हा...! स्वरूप के ज्ञान की शक्ति भी अचिन्त्य है, और राग के अभाव-स्वभावरूप वैराग्य की शक्ति भी अचिन्त्य है। आहा...हा...! है?

ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर। आहा...हा...! ज्ञान का पुरुषार्थ और रागरहित वैराग्य का पुरुषार्थ-ऐसा पुरुषार्थ कर। आहा...हा...! और ऐसी पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर। स्वभाव की ओर ढलना और राग की ओर से विरक्त (होना) — ऐसी पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर। आहा...हा...! उसे धर्म-धारा कहा जाता है। ज्ञानधारा, कर्मधारा। राग साथ में हो, वह कर्मधारा परन्तु उसका यहाँ तो प्रतिबिम्ब पड़ता है। जानता है, वह इसमें आया। राग साथ हो, अभी वीतराग न हो; (इसलिए) उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है, मानो, आहा...हा...! पूर्वापर विरोधरहित वीतराग की वाणी है, कहीं विरोध नहीं आता। आहा...!

बारहवीं गाथा में ऐसा कहा, सम्यग्दर्शन आत्मा का हो, पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव (हो), आनन्द का स्वाद (आया), उसे अभी राग बाकी है और वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं। आहा...हा...! क्योंकि राग का ज्ञान होता है, राग ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होता। स्वरूप के ज्ञान में राग नहीं आता, परन्तु राग सम्बन्धी का जो ज्ञान है, वह होता है। वह स्वयं से होता है, आहा...! ऐसा है। एक घण्टे में कितनी बातें इसमें....!

मुमुक्षु : एक ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का आश्रय कर, राग का आश्रय छोड़। आहा...हा...! पर से खस, स्व से बस, इतना बस, यह टूकूटच, आहा...हा...! चाहे तो भगवान की भक्ति का, स्मरण का राग (हो) परन्तु राग से हट-खस, क्योंकि यह वीतरागमार्ग है। राग से हट, स्वभाव में बस, आहा...हा...! यह टूकूटच, इतना करे तो बस। अरे...रे...! कैसे जँचे?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

समझ में आया ? ऐसा है। इसका सब पूरा विस्तार, स्पष्टीकरण आवे न, उसका अलग प्रकार का आवे न ? समभाव की पूरी टीका है, ऐसा आता है न ? वीतरागभाव जो अन्दर प्रगट हो, वीतरागस्वरूप ही प्रभु त्रिकाल है, उसमें से वीतरागता प्रगट होती है, आहा...हा... ! वह अचिन्त्यदशा है। उसे ज्ञान की ताकत आती है, और राग के अभाव की वैराग्य की ताकत प्रगट होती है। राग की ताकत प्रगट होती है — ऐसा नहीं। आहा...हा... ! राग के अभाव की / वैराग्य की ताकत प्रगट होती है। सम्यग्दृष्टि जीव को चौथे गुणस्थान में (ऐसी शक्ति प्रगट होती है।) आहा...हा... ! जिनवर त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतराग कहते हैं, वह यह बात है। आहा... ! भगवान महाविदेह में यह बात कर रहे हैं। प्रभु सीमन्धर भगवान विराजमान हैं। यह बात कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ आठ दिन रहकर लेकर आाये और यह शास्त्र बनाये, उसका यह सार है। आहा...हा... !

यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके... द्रव्य त्रिकाली है, उस पर दृष्टि करके **ऊपर आजा।** अन्दर जो राग में गिर गया है तो अब ऊपर आजा। इस ध्रुव को अधिक कर डाल। आहा... ! विशेष है, लो !

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

www.vitragvani.com

जेठ कृष्ण ११, शनिवार, दिनाङ्क ०१-०७-१९७८
प्रवचन-२६ वचनामृत- ७९-८१

वचनामृत, ७९ (बोल)। इतना चला है, फिर से लेते हैं। **शुद्धस्वरूप आत्मा में मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये हों - ऐसा दिखायी देता है...** चैतन्यस्वरूप प्रकाश का पुंज, चैतन्य प्रकाश का पुंज, उसमें मानो यह दया, दान, व्रतादि का राग मानो प्रकाश में प्रविष्ट हो गये हों - ऐसा अज्ञानी को दिखता है। आहा...हा...! क्योंकि चैतन्य प्रकाश का पूर है, वह तो चैतन्यरस का कन्द है, उसमें चैतन्य के प्रकाश के अतिरिक्त राग जो व्यवहाररत्नत्रय का दया, दान आदि का विकल्प, (उसने) अन्दर प्रवेश नहीं किया है। यह तो (समयसार की) छठवीं गाथा में आ गया है — ज्ञायकभाव शुभ-अशुभभावरूप हुआ ही नहीं। आहा...हा...! इस **शुद्धस्वरूप आत्मा में...** यहाँ वस्तु यह लेना है। पवित्र प्रभु जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय — ऐसा जो शुद्धस्वरूप ध्रुव, ज्ञानरस चैतन्यस्वभाव के प्रकाश के पूर में मानो राग — विकल्प, दया, दान का, मानो अन्दर प्रवेश हो गया हो — ऐसा अज्ञानी को दिखता है।

परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर... आहाहा! राग और स्वभाव, दो चीजें ही भिन्न हैं। है इसकी पर्याय में, परन्तु वह राग जो है, चाहे तो दया, दान, व्रत का पूजा-भक्ति का हो परन्तु है तो वह उपाधि का भाव। उसका और आत्मा निरुपाधिस्वरूप है, उसका भेदज्ञान करने पर, दोनों की एकता तोड़ने पर, दो अनेक है, वैसे अनेक करने पर... आहा...हा...! ऐसी बात है। दो चीजें ही भिन्न है, क्योंकि नव तत्त्व में पुण्य-पाप तो आस्रव में आते हैं और प्रभु है वह तो नव तत्त्व में आस्रवतत्त्व से भिन्न ज्ञायकतत्त्व है। आहा...हा...! एक ज्ञायकतत्त्व चैतन्यरस ध्रुव, उसमें मानो राग का विकल्प प्रविष्ट हो गया हो — ऐसा अज्ञानी को दिखता है परन्तु उसका भेदविज्ञान करने पर...।

www.vitragvani.com

राग और त्रिकाली स्वभाव; राग क्षणिक, कृत्रिम, विकृत उपाधि है और त्रिकाली स्वभाव अविकृत त्रिकाली निरुपाधि (स्वरूप है)। उनका भेदविज्ञान करने पर, **भेदज्ञान प्रगट करने पर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं।...** आहा...हा...! दर्पण की स्वच्छता में जैसे, पर अग्नि या कोयला हो, वे दिखते हैं — ऐसा लगता है, वह नहीं, वह तो दर्पण की स्वच्छता है; वैसे ही चैतन्य और राग से भेदज्ञान करने पर, चैतन्य के प्रकाश में राग ज्ञात होता है, वह भिन्नरूप से ज्ञात होता है। है? **चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं।** भेदज्ञान करने पर, ज्ञानरूपी चैतन्यदर्पण... वह तो चैतन्य के प्रकाश में प्रतिबिम्ब, राग ज्ञात होता है, यह सबेरे आया था। राग ज्ञात होता है, वह भी उस ज्ञान के विकास की शक्ति ही ऐसी उस काल में है कि स्वयं से स्व-पर को जानने की पर्यायरूप परिणमित होता है। उसमें वह राग ज्ञात होता है — ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग!

जिसे इस चीज का ज्ञान ही नहीं, वह वस्तु-अन्दर में किस प्रकार जा सकेगा? आहा...हा...! जहाँ प्रभु विराजमान हैं, चैतन्य-सरोवर आनन्द का नाथ प्रभु! आहा...हा...! उसकी प्रभुता की पूर्ण प्रभुता से भरपूर है, उसमें राग को भेद करने से उस चैतन्यप्रकाश में राग ज्ञात होता है, इतनी बात है। वह भी ज्ञात होता है, वास्तव में तो राग का ज्ञान (करने का) स्वयं का विकास हुआ है, वह ज्ञात होता है। यह सबेरे आया था। आहा...! उस समय जो राग को भिन्न करके आत्मा का ज्ञान किया तो उस ज्ञानस्वरूप में वर्तमान पर्याय में राग ज्ञात होता है — ऐसा कहना, वह व्यवहार है। राग सम्बन्धी का अपना ज्ञान, अपनी सामर्थ्य से विकासरूप हुई दशा है। उस राग के कारण ज्ञान को स्व-पर जानने का विकास प्रगट नहीं हुआ है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

(भँवरे में) उतरने की गहरी सीढ़ियाँ होती हैं न, गहरा जाये तब उसे भगवान... हाथ आवे, आहाहा! वैसे ही राग को ऊपर तौर से देखता है परन्तु उससे भिन्न पड़कर चैतन्य को, ज्ञानप्रकाश को देखे तो उसमें उस राग का ज्ञान है, वह स्वयं की विकास की शक्ति की व्यक्तता है। आहा...हा...! ऐसा यह ज्ञान अब! ऐसी वस्तु है। उसे उस प्रकार सेवन किये बिना कभी जन्म-मरण नहीं मिटता। आहा...हा...! चौरासी के अवतार में यह दु:खी है, पराधीनता से आकुलता में घिर गया है। आनन्दस्वरूप होने पर भी, पुण्य-पाप

www.vitragvani.com

के विकल्प की आकुलता में घिर गया है। आहा...हा... ! उसके कारण वह दु:खी है। बाहर से भले पैसावाला और शरीर-निरोगी दिखे परन्तु अन्दर में दु:खी है। आहा...हा... ! उसे भिन्न करना हो तो... आहा...हा... ! और जो भिन्न है; है उसे भिन्न करने पर चैतन्य में राग का ज्ञान होता है, दर्पण में जैसे परचीज ज्ञात होती है, वह दर्पण की स्वच्छता है; इसी प्रकार राग को जानना वह चैतन्य की स्वच्छता का विकास है, वह राग के कारण नहीं है। आहा...हा... ! **चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं।**

ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर। आहा...हा... ! ज्ञान और वैराग्य। प्रभु स्वयं ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसका ज्ञान और राग का-व्यवहार का विकल्प उससे वैराग्य। उनसे भिन्न अचिन्त्य वैराग्य और ज्ञान की शक्ति प्रगट कर। आहा...हा... ! ज्ञान और वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर, धारा प्रगट कर। जो राग की धारा में यह दिखता है, वह तो मिथ्याभ्रम है। उस राग से भिन्न पड़कर ज्ञान, ज्ञान की धारावाही शक्ति और राग के विरक्तवाली शक्ति, एक धारा बहे — ऐसा पुरुषार्थ कर, कहते हैं। आहा...हा... ! अब ऐसी बातें हैं।

यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके ऊपर आ जा। यहाँ तक तो कल आया था। यथार्थ दृष्टि करके ऊपर आ जा, अर्थात् ? राग का एकत्व होकर वही दिखता है, उसे छोड़कर राग से भिन्न करके भिन्न हो जा। ऊपर आ जा, राग से भिन्न पड़ जा। आहा...हा... ! ऐसी बात। अभी प्रथम सम्यग्दर्शन होने की भूमिका की दशा की यह बात है। अब यह जहाँ नहीं, वहाँ चारित्र नहीं और वस्तु नहीं। आहा.. ! भगवान की भूमिका... है, प्रभु की और उस भूमिका में क्या पाक होता है ? प्रभु चैतन्य की भूमिका में पाक तो अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का पाक हो — ऐसी वह भूमि है। बहुत कठिन काम, आहा...हा... ! कल कुछ बात नहीं की थी ? वह भाई सुना था न ? कुएँ में गिर गये। एक व्यक्ति पड़ा, उसका लड़का देखने (गया) कि इसमें क्या हुआ ?... मर गया। उसका पिता पीछे पड़ा कि क्या है वहाँ ? वह भी मर गया। उसका काका था, वह भी मर गया, उसका पुत्र था, वह भी मर गया, दूसरे रास्ते कोई देखने निकला की यह क्या ? यह देखने गया तो वह भी मर गया — ऐसे आठ व्यक्ति एक साथ मर गये। आहा...हा... ! यह आया है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मुमुक्षु – आठ कर्म है न।

पूज्य गुरुदेवश्री – यह आया है, मस्तिष्क में यह आया है कि आत्मा में गहरा उतरे तो उसके आठ कर्म का नाश होता है। ख्याल में तो यही आया है। समझ में आया? यहाँ 'कोडिनार', (में) बना है, समाचार पत्र में आया है। लोग बातें करते हैं, अपने को कहाँ (पता होता है)। आहा...हा...! लोग बातें करते हैं कि ऐसा हुआ है। आहा...हा...! वैराग्य की बात है, वैराग्य की बात है। आहा...हा...! और वह कुआँ ढँका हुआ था और उसमें से यह क्या हुआ? ऐसा देखने जाये वहाँ मर जाये अन्दर। जहरीली गैस! आहा...हा...! फिर डाक्टर ने खोज की है कि यह तो गैस, जहरीली गैस है। साथ में पानीवाला कुआँ था और यह पानी जहरीला। दो कुएँ साथ में (थे)। आहा...हा...! इसी प्रकार भगवान, राग और पुण्य-पाप के तल देखने जाये, गैस है, जहरीली गैस है, उसमें वह मर जाता है परन्तु चैतन्य भगवान के पूर्ण पूर को अन्दर देखने जाता है, तब उसे क्रम-क्रम से आठों ही कर्मों का अभाव होकर केवलज्ञान होता है। वहाँ संसार मर जाता है। जीव जीवता होता है। आहा...हा...!

पहली जीवत्वशक्ति कही है न? सैंतालीस शक्ति **'जीवो चरित्तदंसण'** मुझे कहना है आत्मा, इसलिए आत्मा की (बात उठायी है) आहा...हा...! **'वोच्छामि समयपाहुडम्'** (अर्थात्) मैं समयप्राभृत को कहूँगा — ऐसा कहकर दूसरी गाथा में सीधे जीव-आत्मा ही उठाया, बस, आत्मा! आहा...हा...! यह भगवान आत्मा, चाहे तो दया, दान, भक्ति का राग हो, उससे वह भिन्न प्रभु है। ऐसा उसे ऊपर ला, आहा...हा...! राग के दबाव में दब गया है। आहा...हा...! पर्यायबुद्धि में जो राग होता है, उसमें तू दब गया है, दब गया है, उसे ऊपर ला। आहा...!

भगवान चैतन्यप्रकाश का पूर है न, नूर (है न)। चैतन्य के तेज का तेज जिसमें भरा हुआ है। आहा...हा...! (चैतन्य का तेज) उसे तू राग में दबा गया, प्रभु! उसमें से अब पृथक् पड़कर ऊपर ला। प्रकाश को-चैतन्य के प्रकाश को ऊपर ला। जो राग ऊपर लाकर राग ही हूँ — ऐसा मानकर बैठा है। आहा...हा...! और वहाँ प्रसन्न होकर खुशियाँ मनाता है, आहा...हा...! उस राग से भिन्न पड़कर चैतन्य को ऊपर ला। आहा...हा...! तेरी पर्याय

www.vitragvani.com

में चैतन्य का विकास हो, उस प्रकार कर। राग का विकास हो, वह छोड़ दे। आहा...हा...! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : राग को गौण करके आत्मा को मुख्य कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्य वस्तु ही यह है। गौण भी नहीं, (राग) इसमें है ही नहीं, यह तो पर्याय को अभूतार्थ कहा वहाँ... देख। यहाँ यह बात नहीं। पर्याय अभूतार्थ है और वस्तु भूतार्थ है, इस पर्याय को अभूतार्थ (कहा वह) गौण करके कहा है। पर्याय है तो सही। राग है, परन्तु राग को जाननेवाली पर्याय तो है न! पर्याय व्यवहार से सत् है न! पर्याय पर्याय से सत् है न, परन्तु उसे सत् है — ऐसा होने पर भी त्रिकाली भूतार्थ को-सत्य को प्रगट करने के लिये उस पर्याय की दृष्टि को गौण कर डाल, वह नहीं है — ऐसा कर। गौण करके नहीं, ऐसा हाँ! पर्याय नहीं (ऐसा ही कहे) तब तो एकान्त-वेदान्त हो जाता है।

उसमें से ऐसा कहते हैं न, मुम्बई में एक पण्डित था न? नाथूराम पण्डित। वह कहता था कि समयसार वेदान्त के ढाले में ढाला है। नहीं, नहीं वेदान्त को और भगवान की वाणी में अनन्त गुना अन्तर है। वह माने कि उस पर्याय को अलग कहा न, इसलिए कहा देखो! वेदान्त भी पर्याय नहीं मानता। अरे...! ऐसा नहीं, प्रभु! यहाँ तो पर्याय का लक्ष्य छुड़ाने को गौण करके 'नहीं' है — ऐसा कहकर और त्रिकाली चीज को मुख्य करके, निश्चय कहकर, उसकी दृष्टि कराना है। आहा...हा...! पर्याय नहीं, राग नहीं — ऐसा है? आहा...हा...! नहीं, तब तो अन्तर अनन्त आनन्द का लाभ-अनुभव होना चाहिए, क्योंकि वस्तु तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। यह राग में है, राग है, ऐसा अन्दर में अज्ञानी को दिखता है। आठ वर्ष की बालिका भी जब समकित का पुरुषार्थ करती है... आहा...हा...! वह राग से भिन्न पड़कर और चैतन्य के नूर के पूर को भिन्न पाड़कर ऊपर लाती है अर्थात्, उसे अधिक करती है, भिन्न (करती है)। '**णाणसहावाधियं**' आया है न? '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**' (समयसार ३१ गाथा)। अधिक का अर्थ भिन्न। आहा...हा...!

चैतन्यद्रव्य निर्मल है। वह रागस्वरूप प्रभु है ही नहीं। आहा...हा...! भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारा स्मरण करते हुए तुझे जो राग होता है, वह तेरा स्वरूप है ही नहीं। वह

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रभु तो निर्मल है, आहा...हा... ! प्रभु, प्रभु को ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! प्रभु ! तू तो हमारे ऊपर नजर करते हुए तुझे जो राग होता है, वह तू नहीं। आहा...हा... ! तू तो निर्मल है, चैतन्यद्रव्य तो निर्मल है, वस्तु तो निर्मल ज्ञानपिण्ड है। आहा...हा... ! चक्रवर्ती के आठ-आठ वर्ष के राजकुमार हों, और यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं; राग से भिन्न होकर चैतन्य को ही देखते हैं। वे... आहा...हा... ! चक्रवर्ती के राजकुमार, जिनके घर सोलह हजार देव सेवा करते हैं, वह यह अनुभव करने के लिए वन में चले जाते हैं। वे चक्रवर्ती के राज और सम्पत्ति का बड़ा महल, देवों द्वारा निर्मित पाँच (महल) होते हैं। आहा...हा... ! हम जहाँ जाते हैं, वह हमारी दशा में रमने के लिये जाते हैं, वन में नहीं। चैतन्य का बाग अन्दर आनन्द का कन्द प्रभु पड़ा है, उसे विकसित करने को, अधिक विकसित करने के लिये हम साधु होते हैं। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं, चैतन्य तो निर्मल है। प्रभु तो निर्मल है, प्रभु ! आहा...हा... ! वह तो त्रिकाली द्रव्य है, वह तो निर्मल ही है। उसे राग का अंश जिसे स्पर्शित नहीं है। राग का अंश जिसके स्वरूप में नहीं है — ऐसा जो त्रिकाली द्रव्य, (वह) निर्मल है। **अनेक प्रकार के कर्म के उदय,....** अनेक प्रकार के कर्म के (उदय)-ज्ञानावरणीय का उदय, दर्शनावरणीय आदि। आहा...हा... ! वह **तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। सत्ता....** उस कर्म की जो सत्ता है, प्रदेश पर रहे हुए परमाणु, कर्म की सत्ता, वह भी तेरी चीज से भिन्न है। उदय से भिन्न है और सत्ता है, उससे भी भिन्न है। उदय, अर्थात् प्रगट उदय हुआ, उससे भी चैतन्य तो भिन्न ही है। सत्ता में कर्म पड़ा है, उससे प्रभु तो भिन्न है।

अनुभाग... यह कर्म का जो अनुभाग है — प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग (ऐसे) चार बोल कर्म में है न ? उस कर्म के अनुभाग से भी प्रभु का अनुभाग भिन्न है। आहाहा ! तीनों काल ऐसा है, तेरी दृष्टि में आना चाहिए। अनुभाग से भिन्न है और **तथा कर्मनिमित्तक विकल्प आदि....** कर्म का निमित्त है और उसके लक्ष्य से हुए विकल्प। पहले तो कर्म का उदय, सत्ता, और अनुभाग कहा। यह तो अब निमित्त के आश्रय से जो शुभाशुभ विकल्प होते हैं, वे तो तुझसे हुए हैं। ऐसे **विकल्प आदि तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं।** आहा...हा... ! दया, दान का रागादि आवे परन्तु वह तो तेरे स्वरूप से अत्यन्त भिन्न है,

www.vitragvani.com

कहते हैं। ऐसी दृष्टि हुए बिना इसे सत्य, सत्यार्थ है, वह नहीं जँचे। आहा...हा...! पुण्य और पाप के भाव निश्चय से तो असत्यार्थ हैं, झूठे हैं। किसकी (अपेक्षा से) ? स्वभाव की अपेक्षा से। ऐसी बात है। आहा...!

चौरासी के अवतार हटा डालने की बात है, बापू! आनन्द का नाथ अकेला चैतन्य प्रकाश, उसे तू देख; उसमें विकल्प भी नहीं है। कर्म का उदय, सत्ता का भाव तो नहीं। वह कर्म तो परचीज है परन्तु उसके निमित्त के लक्ष्य से हुए पुण्य-पाप के विकल्प तुझमें — पर्याय में (होते हैं), वह भी तेरे स्वभाव में नहीं है। आहा...! यह भाषा सरल है, भाव अलौकिक है। आहा...हा...! वहाँ से वापस हट। पुण्य और पाप के राग में घिर गया है, प्रभु! वह तेरा स्वरूप नहीं है। उस दुश्मन में तू घिर गया है। अब वापिस हट। आहा...हा...! तेरा सज्जन परिवार अन्दर में पड़ा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि (परिवार पड़ा है)। आहा...हा...!

आठ वर्ष के बालक भी अभी तो पढ़े न हों, पढ़ाई भी बाहर में यह न हो। आहा...हा...! उसमें यह बात सुनते हुए उसे रोम में ऐसा फेरफार (हो जाता है)। आत्मा में फेरफार हो जाता है। ओ..हो...! जो पढ़ना था, वह अब पढ़ लिया गया। आहा...हा...! यह बाहर की पढ़ाई तो पाप है। भगवान आत्मा विकल्प से भी न्यारा — ऐसी जो अन्दर पढ़ाई हुई... आहा...हा...! वह ज्ञान तो केवलज्ञान को लायेगा और इस (लौकिक) पढ़ाई का भाव तो पाप का (भाव) है। आहा...हा...!

कर्मनिमित्तक विकल्प आदि.... अर्थात् शुभाशुभ आदि। **तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं।** अत्यन्त भिन्न है — ऐसा कहते हैं। भिन्न है इतना नहीं; अत्यन्त भिन्न है। तू (उन्हें) स्पर्शा ही नहीं है। तेरा द्रव्यस्वरूप है, वह राग को स्पर्शा नहीं है। आहा...हा...! क्योंकि जिसके स्वभावभेद है — वे अचेतन है और प्रभु तू तो चेतन है। आहा...! यह दया, दान, व्रत का विकल्प भी अचेतन (है और) प्रभु! तू तो चैतन्य है। चेतन, अचेतन को स्पर्श कैसे करेगा ? आहा...हा...! यह ७९ (बोल पूरा) हुआ।

विधि और निषेध के विकल्पजाल को छोड़। मैं बँधा हूँ, मैं बँधा नहीं हूँ — वह सब छोड़कर अन्दर जा, अन्दर जा; निर्विकल्प हो, निर्विकल्प हो॥ ८०॥

८० — **विधि और निषेध के विकल्पजाल को छोड़।** आहा...हा...! मैं अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, निर्मल हूँ — ऐसा जो विधि का विकल्प है, आहा...हा...! उसे छोड़। निषेध (अर्थात्) राग नहीं, विकार नहीं — ऐसा जो निषेध करके विकल्प उठता है, (वह निषेध) आहा...! अर्थात् क्या? विधि-निषेध के लक्ष्य में जाने से तुझे विकल्प होगा। प्रभु तो विधि-निषेध के विकल्प से पार है। आहा...हा...! ऐसा है। **विधि और निषेध के विकल्पजाल को...** आहा...हा...!

अपने (समयसार) १४२ (गाथा में) आया है न? उससे क्या? यहाँ तक आया है कि मैं अबद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, निर्मल हूँ — ऐसे नय के पक्ष का विकल्प आया। विकल्प आया परन्तु उससे क्या? उससे तुझे क्या लाभ है? प्रभु! आहा...हा...! मैं बन्धन में हूँ और बन्धन है, उस व्यवहार को तो हम छुड़ाते आये हैं। वहाँ ऐसा कहा है न? आहा...हा...! समयसार भूप है। आहा...हा...! बादशाह, राजा है। वह (समयसार अर्थात्) आत्मा, हाँ! आहा...! आता है न? समयसार भूप... स्तुति में आता है। राजा है, बादशाह है। आहा...हा...! जिसका *चलनीणाणू* निर्मलदशा है। आहा...हा...! उसका *चलनीणाणू* यह है। अज्ञानी का... यह आ गया है न? मिथ्यात्व में एकछत्र से जिसने राज्य किया है। आहा...हा...! जहाँ पूछो तो उसे मिथ्यात्व.... मिथ्यात्व ही होता है। साधु होकर बैठा हो तो भी राग का कर्ता और मुझे व्यवहार करना चाहिए (– ऐसा मानकर बैठा है)। आवे (वह) अलग बात है और करना चाहिए, यह तो मिथ्यात्व है। आहा...हा...! मिथ्यात्व का राज एक छत्र से चल रहा है। जहाँ पूछो तो कहे मिथ्यात्व का राज ही है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, यह विधि का भाव ऐसा है, यह ऐसा है, परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त गुण का सागर है — ऐसी विधि; उसके अस्तित्व का जो विकल्प और यह राग नहीं, विकार नहीं, उसमें यह नहीं, यह नहीं — ऐसा निषेध का विकल्प... आहा...हा...!

उसे छोड़। **मैं बँधा हूँ,....** मैं राग से बँधा हूँ, यह तो निषेध करते ही आये हैं; यह व्यवहार है परन्तु (मैं) **बँधा नहीं हूँ....** मैं एक अन्दर वस्तु हूँ, बँधा नहीं परन्तु यह विकल्प की वृत्ति उठी है, विकल्प उठा है, वह राग का अंश है, वह मेलड़ी है। आहा... !

मेलडी देवी नहीं ? 'सरा' में है, 'सरा' में। अभी कोई था न ? कोई कहे मेलड़ी उठाकर ले गये हैं, बज्जूभाई कहते थे, बज्जूभाई ! मुझे भी वहाँ गये थे, उपाश्रय में उतरे थे, मोरबी जाकर। ऐसे तो बेचारे बहुत आदर किया, उपाश्रय में उतारा था परन्तु लोग बहुत व्याख्यान में आते थे, (इसलिए) उपाश्रय में समाते नहीं, उस ओर उपाश्रय और दूसरी ओर आगे दूसरे किनारे विद्यालय था, वहाँ व्याख्यान (चलते थे)। लोग बहुत आये सुनने को, व्याख्यान पूरा हुआ तो उनका एक व्यक्ति विशेष प्रौषध, प्रतिक्रमण, सामायिक करे, मुख्य व्यक्ति था, वह मुझसे कहता है महाराज ! एक देवी है। मैंने कहा ऐ... (उसने कहा) एक देवी है, बारह महीने में दो हजार देती है। आप उसे मांगलिक सुनाओ। कौन जाने होगा ? राजा की लड़की होगी या कुछ होगा, अपने को कुछ (पता नहीं), वहाँ ले जाने को आये, मेलड़ी माता सत्य, ऊपर लिखा था, ओये... ! आये थे तो देखूँ तो सही ऐसा। यह मेलड़ी माता के पास ले गये। लकड़ी पड़ी थी (उन्होंने कहा) महाराज ! इसे मांगलिक सुनाओ। अरे... परन्तु क्या करते हो तुम यह ? और प्रौषध, प्रतिक्रमण करनेवाले। यह भी सुनाता फिर, हाँ ! उसके मुख पर द्वेष और ऐसा नहीं, बापू ! यह जैन को नहीं होता, भाई ! साक्षात् देव आवे तो भी जिसकी इच्छा सहायता की नहीं होती। तीन लोक का नाथ अन्दर पड़ा है। आहा...हा... ! उसे यह देव और उसमें यह मेलड़ी की लकड़ी ! अरे...रे... ! महाराज ! इसे मांगलिक सुनाओ। (ऐसा कि) मांगलिक सुनाओ तो बारह महीने अच्छे जायेंगे। अरर.. ! अरे..रे.. ! जैन में यह क्या करते हो ? बापू ! कहा, यह सुनती है, हाँ ! वापस, ऐसा नहीं कि विरोध करे कि ऐसा नहीं। रात्रि चर्चा में रखा, बहुत सब लोग आये। सुने तो सही क्योंकि बहुमान तो था न ? महाराज है, यह कहते हों, उसका विरोध नहीं होता। अरे... ! जैन किसे कहते हैं ? भाई ! ऊपर से देव आवे (और कहे कि) 'तेरा रोग मिटा दूँ, मुझे मान' – उसे नहीं माने। अरे ! समकिती देव को नहीं माने, उसके बदले ऐसी लकड़ी ! देवी रोग मिटायेगी और पैसा देगी... अरे... ! यह तुझे क्या भ्रम हुआ ? आहा...हा... !

www.vitragvani.com

सुने... सुने। तब कहे — आहार लेने आओ, उपाश्रय में उतरे थे.... मोरबी गाँव में। ऐसा भ्रम! आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन! तू बँधा नहीं — ऐसी एक विकल्प की जाल है, उसे छोड़, वह दुःखदायक है। आहा...हा...! और भगवान स्वयं अबन्ध है तथा भगवान परमात्मा है, उनका तू लक्ष्य करने जायेगा तो प्रभु! तुझे राग होगा क्योंकि परद्रव्य **परदव्वादो दुग्गई।** आहा...हा...! यह तो वीतराग कहते हैं, हाँ! वीतराग ऐसा कहते हैं, हमको याद करे, छद्मस्थ प्राणी हमको याद करे तो उसे राग होगा, क्योंकि हम तुझसे परद्रव्य हैं। आहा...हा...! **परदव्वादो दुग्गई।**

यहाँ तो यह भी छोड़ दिया। यह तो मैं एक शुद्ध बँधा नहीं हूँ... आहा...हा...! मैं परमात्मा हूँ — ऐसा विकल्प है, उसे छोड़। उस विकल्प से परमात्मा हाथ नहीं आयेगा। आहा...हा...! यहाँ तक आया हो तो कहते हैं कि मैं बँधा नहीं, यहाँ तक आया हो तो भी वह अन्दर प्रविष्ट नहीं है, वह आँगन में – राग के दुःख में खड़ा है। वह विकल्प है, दुःख है। प्रभु है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द है। आहा...हा...! इसीलिए वह अतीन्द्रिय आनन्द हूँ, इस विकल्प को भी छोड़। है?

वह सब छोड़कर अन्दर जा,.... जहाँ भगवान निर्विकल्परूप से पड़ा है, वहाँ जा। आहा...हा...! अभी इसे ज्ञान ही नहीं, श्रद्धा का ठिकाना नहीं। यह अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली ऐसा कहते आये हैं। आहा...हा...! महाविदेह में तो तीर्थंकर का कभी विरह नहीं है। एक के बाद एक बीस तीर्थंकर होते ही हैं, वहाँ भी अनन्त बार गया परन्तु स्वयं अपनी लकड़ी (उल्टी मान्यता) नहीं छोड़ी। भगवान ने तो कहा था कि हमें याद करे, उसे राग होता है। इसलिए राग छोड़, तुझमें तू जा। सुना अवश्य परन्तु (धारण नहीं किया)। आहा...हा...! भाई! तेरी महिमा का पार नहीं। मैं बँधा नहीं — ऐसे विकल्प से भी तू हाथ आवे ऐसा नहीं है। आहा...हा...! दूसरे क्रियाकाण्ड के राग की तो बात क्या करना? व्रत इतने करें, तपस्या इतनी करें, इसलिए आत्मा को कुछ लाभ होगा, यह तो कहीं रह गया। बापू! यह तो मिथ्यात्व का भ्रम है।

मैं परमात्मा हूँ, जो सत्य है, सर्वोत्कृष्ट चीज मैं हूँ। अबन्ध-बँधा नहीं, परन्तु वह मैं

www.vitragvani.com

नहीं — ऐसी वृत्ति का तूने उत्थान किया न? जो स्वरूप में नहीं – ऐसी वृत्ति तूने उठायी। आहा...हा...! ऐसी वृत्ति को छोड़ तो तुझे अबन्ध का अनुभव होगा। आहा...हा...!

अन्दर जा;.... अन्दर जा। दो बार आया। **निर्विकल्प हो,** इस विकल्प की वृत्ति को छोड़कर। छोड़ना है, यह विकल्प भी छोड़ दे और अन्दर में जाता हूँ, यह विकल्प भी छोड़ दे। आहा...हा...! **निर्विकल्प हो, निर्विकल्प हो।** दो बार आया था न? अन्दर जा, अन्दर जा, अर्थात् निर्विकल्प हो, निर्विकल्प हो। आहा...हा...! आहा...! मैं बँधा नहीं — ऐसे विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प हो, तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा। आहा...हा...! यह ८० (बोल पूरा) हुआ।

जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं, तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है, वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें, तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है। वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है। परमाणु पलटकर वण -गन्ध-रस-स्पर्श से रहित नहीं होता, वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता। यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो॥ ८१॥

८१, **जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं....** 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे... श्री जिनवर ने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे...' यह राग की मन्दता और तीव्रता, सब कषाय है, उसका अभाव, उसे वीर ने धर्म कहा है। वीर तीर्थंकर त्रिलोक के नाथ (— ऐसा कहते हैं कि) हमें भी याद करना छोड़कर, तू तेरे स्वरूप को याद कर, अर्थात् अनुभव कर, तब उसकी यादगिरि में तुझे रह जायेगा कि यह तो आत्मा पवित्र और शुद्ध अखण्ड अभेद है। यह याद रह जायेगा, वैसा धारणा में धार ले। आहा...हा...! अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा(आता) है न?

भगवान आत्मा! लोगों को कठिन लगता (है कि) कुछ साधन-फाधन (नहीं),

www.vitragvani.com

लोग यह शोर मचाते हैं भाई! साधन तो राग से भिन्न करना, वह प्रज्ञाछैनी साधन है। आहा...हा...! राग की मन्दता को निमित्तरूप से कहना, वह तो नहीं है, और कहना 'यह' है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है बापू! अनन्त जन्म-मरण के अन्त और अनन्त ज्ञानादि गुण का भण्डार, उसका पता लेना... आहा...हा...! अनन्त-अनन्त संसार के भव के भाव का अन्त और भवरहित भगवान आत्मा, वह भी अनन्त-अनन्त अमर्यादित स्वभाव का-गुण का भण्डार, उसमें जा! निर्विकल्प हो! आहाहा! है?

जैसा निर्मल स्फटिक लाल, काले, संयोग से (रंगा हुआ) दिखता है तो भी स्फटिक तो है, वह है, निर्मल है - ऐसा कहते हैं। **तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है,....** आहा...हा...! लाल, पीले फूल के संयोग से लाल-पीली झाँई उसकी दशा में, उसकी योग्यता से ज्ञात होती है, तथापि वह वस्तु है, वह उस रंग से रँगी हुई नहीं है। आहा...हा...! वस्तु है, स्फटिक जो है (वह) लाल-पीले फूल के संयोग से लाल, पीली झाँई दिखती है परन्तु स्वयं जो स्फटिक है, वस्तु है, वह राग से रँगी हुई नहीं है। राग, अर्थात् जो लाल झाँई, उससे रँगी हुई नहीं है। आहा...हा...!

वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में.... भगवान आत्मा! जिसका स्वभाव तो निर्मल है, शुद्ध है, पवित्र है, अभेद है, एकरूप है — ऐसे आत्मा में **क्रोध-मानादि दिखायी दें....** जैसे इस स्फटिक में लाल, पीली (झाँई) दिखायी दे, तथापि स्फटिक स्वयं रंग से रँगा हुआ नहीं है; वैसे भगवान आत्मा में जरा क्रोध, मान (हो), वह द्वेष का अंश है और माया तथा लोभ, वह राग का अंश है। राग के दो भाग - माया और लोभ; द्वेष के दो भाग - क्रोध और मान। क्रोध और मान, वह द्वेष है; माया और लोभ, वह राग है। वह राग और द्वेष — दो होकर मोह है। आहा...हा...!

आचार्य ने तो पहले (श्लोक में) यह कहा कि हमारा और पर का मोह नाश होओ। यह मोह उसका अस्थिरता का-राग की बात है, वहाँ। समझ में आया? यह टीका करते हुए, मुझे मुझमें जो अस्थिरता का जो थोड़ा मोह है, वह अनादि का है, नया नहीं है। अनादि की वस्तु निर्मल है, उसका भी भान है और राग भी अनादि का है, वह भी है, दिखता है। आहा...हा...! उसके नाश के लिये मैं तो यह टीका करता हूँ, आत्मा की बात इसके लिये

www.vitragvani.com

करता हूँ। दुनिया समझे या न समझे, दुनिया को लाभ हो या न हो — ऐसी कोई बात है नहीं। तथा मुझे आता है, इसलिए यह लोग मुझे मान दें — यह कुछ है नहीं। आहा...हा...! यहाँ तो हमारे में जो निर्मलस्वरूप है, उसमें राग दिखता है, अभी है परन्तु वस्तु स्वयं रागरूप रँगी हुई नहीं है। आहा...हा...! जिसे राग का रंग चढ़ा नहीं है। आहा...!

एक बाबा था (संवत्) १९८३ का वर्ष था। कुछ होगा, भूल गये। दामनगर में एक बाबा था, बाई थी, एक बाई उसकी रखी हुई थी, वह बाई ने छोड़ दिया, फिर... कषाय हो गयी और वह काला कुर्ता पहना उसमें बाई का नाम लिखा, अपमान करने को... आहा...हा...! मैंने कहलवाया, अरे! इस भेष में यह शोभा नहीं देता। (वह कहता है) 'रंग चढ़ा है वह चढ़ा है, अब वह रंग उतरता नहीं है', किसी स्त्री को उसने रखा होगा, उसमें उस स्त्री ने उसका तिरस्कार किया, आदर नहीं किया, छोड़ दिया और इसे चढ़ गया पागलपन। नाम भूल गये। लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी... (ऐसे) काले कोट में लिख डाला। दुनिया में अनादर करने को। क्या करता है तू यह ? उसे किसी ने कहा होगा, उपाश्रय के पास से निकला, बोला, कुछ भाषा थी।'रंग चढ़ा वह चढ़ा, वह रंग उतरता नहीं' — ऐसी कुछ भाषा थी, भूल गये। अरे...! धूल में रंग किसका चढ़ा ? बापू! यहाँ तो प्रभु तीन लोक का नाथ चैतन्य है, वह शुभराग में भी रँगा हुआ नहीं है। उसके पाप के राग की बातें तो क्या करना ? आहा...हा...! समझ में आया ? आहा...हा...!

(क्रोध-मान आदि) **दिखायी दें, तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है।** जैसे उस स्फटिकमणि में लाल झाँईं दिखने पर भी, निर्मल स्फटिक तो अलग चीज है, वह लाल रंग से रँगा हुआ नहीं है; इसी प्रकार भगवान आत्मा में क्रोध, मान आदि कुछ हो और दिखायी दे, तथापि वह भगवान आत्मा स्वयं उसके रंग में रँगा हुआ नहीं है। आहा...हा...! उसे राग का रंग चढ़ा ही नहीं है। वह आत्मा तो वीतरागता के रंग में अनादि से चढ़ गया है। आहा...हा...! वह जिनस्वरूप है। आहा...हा...! आहा...! (क्रोध-मान) **आदि दिखायी दें, तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है।**

वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है।.... त्रिकाल वस्तु का वस्तुस्वभाव जो है, चैतन्य भगवान जिनस्वरूपी-ऐसे वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है। जैसे स्फटिक में लाल

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

झाँई दिखायी देती है, तथापि स्फटिक स्वयं मलिनरूप परिणमित नहीं हुआ है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में रागादि दिखते हैं, तथापि आत्मा उनरूप नहीं हुआ है। आहा...हा...! उसमें आता है न ? सन्धि है। राग विकल्प और त्रिकाल स्वभाव के बीच सांध है, तड़ है। तड़... तड़ समझते हैं ? दरार। चैतन्यरत्न प्रभु और राग, इन दोनों के बीच सांध है, सन्धि है; निःसन्धि कभी हुए नहीं। आहा...! इसने माना, भले माने परन्तु वे निःसन्धि (एकरूप) हुए नहीं, वे अत्यन्त भिन्न ही पड़े हैं। आहा...हा...! ऐसी बातें (इसलिए) लोगों को रूखा लगे। इसमें क्या करना ? करना (यह कि) अन्दर जाना, यह करना। आहा...हा...! कुछ सूझ नहीं पड़ती, बाहर के आग्रह (पड़े हों), व्रत और तपस्याओं का आग्रह छूटे नहीं। आहा...हा...! इससे उसे छोड़कर अशुभ में आना — ऐसा कुछ नहीं। आहा...हा...! यहाँ तो विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प में जा, अन्दर में जा। वह जाया जा सकेगा, बापू! शुभभाव छोड़कर अशुभ करना – ऐसा नहीं होता।

वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है। परमाणु पलटकर वण-गन्ध-रस-स्पर्श से रहित नहीं होता.... आहा...हा...! दृष्टान्त तो देखो! यह परमाणु है न, परमाणु, यह रजकण, उसमें रंग, गंध, रस और स्पर्श है। वह रंग, गंध, रस बदलकर परमाणु कभी पलट जाये — ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहा...! क्या कहा ? समझ में आया ? परमाणु जो है, रजकण — एक पाइंट, उसका अन्तिम अंश वह पलटकर रंग, गंध, रस, स्पर्श रहित नहीं होता। कभी रंग, गंध, रस रहित नहीं होता। आहा...हा...! दृष्टान्त तो बहुत सादा है, रजकण उसके रंग, गंध रहित कभी नहीं होता। रजकण जो एक परमाणु है, उसका जो गुण, रंग, गंध, रस, स्पर्श है, उस रहित वह नहीं होता। आहा...हा...!

वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता। वैसे भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त चतुष्टय-वीर्य आदि, वह पलटकर रागरूप कभी तीन काल में नहीं होता। आहा...हा...! जैसे परमाणु वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरहित नहीं होता, वैसे भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द भरपूर है, उस रहित वह आत्मा होता ही नहीं, आहा...हा...! कठिन काम। 'अनन्त काल से भटकर रहा विना भान भगवान, सेव्या नहीं गुरु संत ने....' परन्तु गुरु किसे कहना ? सन्त किसे कहना ? इसका

www.vitragvani.com

इसे पता नहीं पड़ता। आहा...हा... ! जिसे सत्य का भान नहीं, सत्य का सम्यग्दर्शन नहीं, उसे गुरु और सन्त कहाँ से कहा जाये ? और उसका समागम करे, उसे लाभ होगा, वह कहाँ से हो ? आहा...हा... ! समझ में आया ?

परमाणु जैसे उसके गुण रहित नहीं होता, वैसे वस्तुस्वभाव उसके स्वभावरहित कभी नहीं होता। आहा...हा... ! एक रजकण रंग के गुणरहित हो, रंग गुणरहित हो (ऐसा) कभी होता है ? उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन का जो स्वभाव है, उसके रहित नहीं होता। आहा...हा... ! दृष्टान्त तो सादा है। आहा...हा... ! ऐसा भगवान अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन... अनन्त चतुष्टय। यह चार बोल लिये न ? — वर्ण, गंध, रस और स्पर्श — इनसे रहित परमाणु नहीं होता। वैसे ही भगवान आत्मा, उसके चार अनन्त चतुष्टय अनादि से पड़े हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य। आहा...हा... ! इन अनन्त चतुष्टयरहित आत्मा कभी नहीं होता। आहा...हा... ! पर्याय में भले रागादि हों परन्तु वस्तु का स्वभाव बदलकर गुण का स्वभाव हो जाये (— ऐसा नहीं होता)। आहा...हा... ! पर्याय में जरा रागादि हों, वह तो एक समय की दशा है परन्तु त्रिकाली चीज जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन (स्वरूप है, वह कभी नहीं बदलती)। जैसे परमाणु वर्ण, गंध, रस, स्पर्श (स्वरूप है), वह गुणरहित होता है ? (यदि गुणरहित हो) तब तो परमाणु ही नहीं रहता। वैसे भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन चतुष्टय जो अन्दर भरा है, उससे रहित कभी नहीं होता। आहा...हा... !

ऐसा उपदेश और ऐसा व्याख्यान अब ! यह किस प्रकार का उपदेश ? पहले तो कुछ व्रत पालो, और उपवास करो, दया पालो, मन्दिर बनाओ, पूजा करो, गजरथ करो, भगवान का रथ निकालो, बहुत बैण्डबाजा बजाओ (ऐसा कहे तो) समझ में तो आये। कुछ कर नहीं सकता, यह समझ में नहीं आता, वह अज्ञानी है। यह आत्मा कुछ कर ही नहीं सकता। आहा...हा... ! जहाँ राग का होना, वह भी कर्तृत्वरूप से स्वीकारे, वह भी अज्ञान है। उसके बदले परपदार्थ का मैं कर दूँ, गजरथ चलाऊँ, मन्दिर बनाऊँ और यह सब, यह (कर दूँ), यह तुमने नहीं बनाया ? रामजीभाई ने बनाया या नहीं ? सत्ताईस लाख का मन्दिर, लो ! कौन बनावे ? आहा...हा... ! भाई ! यह तो इसकी-अजीव की पर्याय है,

www.vitragvani.com

बापू! उस काल में, उस क्षण में, वह होनेवाली है, वह उसके कारण होती है; उसे दूसरा कहे कि मैंने मन्दिर बनाया, मैंने प्रतिमा को पधराया और पाँच लाख खर्च किये,... बापू! (यह तो सब) मिथ्यात्व का अभिमान है। आहा...हा...! यहाँ तो उसे छोड़कर प्रभु स्वयं अनन्त ज्ञान और दर्शन के आनन्द से कभी खाली नहीं हुआ। खाली हो तो वह चेतन ही नहीं रहता।

जैसे परमाणु वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरहित नहीं होता; यदि हो तो परमाणु नहीं रहता। आहा...हा...! वैसे ही भगवान आत्मा, उसका जो स्वरूप है — अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सत्ता — उसरूप त्रिकाल है, वह बदलकर - चैतन्य बदलकर, चैतन्यस्वभाव बदलकर अचेतन होगा? वह कभी जड़ होगा? आहा...हा...! ऐसा स्वभाव! है? **वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।**

यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है।.... आहा...हा...! राग की एकता तोड़ने की यह बात है। **अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर....** यहाँ भिन्न करके अन्दर में वास्तविक प्रवेश कर। वास्तविक! धारणा में लेना कि यह तो राग से भिन्न है — ऐसा नहीं। आहा...हा...! **वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो।** आहा...हा...!

विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

'मैं तो दर्पण की भाँति अत्यन्त स्वच्छ हूँ; विकल्प के जाल से आत्मा मलिन नहीं होता; मैं तो विकल्प से भिन्न, निर्विकल्प आनन्दघन हूँ; ज्यों को त्यों पवित्र हूँ।' इस प्रकार अपने स्वभाव की जाति को पहिचान। तू विकल्प से मलिन होकर – मलिनता मानकर भ्रमणा में ठगा गया है; दर्पण की भाँति जाति से तो स्वच्छ ही है। निर्मलता के भण्डार को पहिचान तो एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का समूह प्रगट होगा। अन्तर में ज्ञान और आनन्दादि की निर्मलता ही भरी है॥ ८२॥

ज्येष्ठ कृष्ण १२, रविवार, दिनाङ्क ०२-०७-१९७८
प्रवचन-२७ वचनामृत- ८२-८३

यह वचनामृत का ८२ वाँ बोल है, ८१ चल गये हैं। जरा सूक्ष्म है। यह तो अनन्त काल से अन्दर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका इसने कभी ज्ञान या सम्यग्दर्शन नहीं किया। अनन्त काल में सब किया – क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति – यह सब तो राग की क्रियाएँ हैं। आत्मा अन्दर राग से भिन्न है। राग है, वह तो पुण्य-पाप तत्त्व है; अन्दर भगवान आत्मा है, वह तो चैतन्य आनन्दकन्द ज्ञायकतत्त्व है। ऐसे ज्ञायकतत्त्व को अन्तर्मुख होकर दृष्टि करके अनुभव करना, वह धर्म की प्रथम सीढ़ी है। आहा...हा... !

'मैं तो दर्पण की भाँति... दर्पण होता है, न दर्पण – काँच। वैसे ही भगवान आत्मा **'मैं तो दर्पण की भाँति अत्यन्त स्वच्छ हूँ;....** आहा...हा... ! धर्मी जीव को ऐसे अन्तर में वस्तु का स्वच्छ है – ऐसा निर्णय करना चाहिए। आहा...हा... ! शरीर, वाणी, मन – यह तो मिट्टी-धूल-जड़ है। अन्दर में पाप के परिणाम हों – हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग,

www.vitragvani.com

वासना, काम, क्रोध, कमाना आदि, यह पापभाव है; यह कहीं आत्मा नहीं है तथा दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि भाव भी आत्मा नहीं है; वह तो पुण्यतत्त्व है। आहा...हा...! इन पुण्य और पाप के तत्त्व से मैं एक दर्पण की भाँति स्वच्छ हूँ। ऐसा अन्तर में निर्णय सम्यग्दर्शन में करना – ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है प्रभु! अनन्त काल से परिचय किया नहीं।

'मैं तो दर्पण की भाँति अत्यन्त स्वच्छ हूँ; विकल्प के जाल से आत्मा मलिन नहीं होता;.... आहा...हा...! विकल्प आवे — दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का राग (आवे), वह सब राग है। राग अर्थात् विकल्प है परन्तु उस जाल से आत्मा / वस्तु निर्मल है, वह मलिन नहीं होती। आहा...! विकल्प से भिन्न प्रभु अन्दर है। आहा...हा...! अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं सत् है; चिद आनन्द, वह ज्ञान और आनन्द की मूर्ति, वह आत्मा कभी मलिन नहीं होता। आहा...हा...! द्रव्य जो वस्तु, वस्तु जिसे तत्त्व कहते हैं, चैतन्य रसकन्द, गढ़, चैतन्य के रस का गढ़ वह है। आहा...हा...! उसके किले में राग प्रवेश नहीं कर सकता। सूक्ष्म बात है प्रभु! आत्मज्ञान की बात बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह कोई यात्रा कर आये और भक्ति की तथा मन्दिर बनाये, इसलिए धर्म हो जाये – ऐसा नहीं है। बापू! धर्म कोई दूसरी चीज है। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि **विकल्प के जाल से आत्मा मलिन नहीं होता...** क्योंकि द्रव्य जो है, वह राग से कभी मलिन होता ही नहीं। आहा...हा...! डॉक्टर आये? यह सब कहीं डॉक्टर-फॉक्टर में भी मिले ऐसा नहीं है। यह वकालात में बड़े पाँच-पाँच हजार की फीस लेते हों, उनके पास यह मिले ऐसा नहीं है। यह चीज कोई अलग है।

मुमुक्षु : जाति ही अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाति (प्रकार) ही अलग है, बापू!

मुमुक्षु : यह कुजाति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पहले जात्यान्तर आया था न?

अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण प्रभुता और पूर्ण आनन्द से भरपूर प्रभु है, भाई! तुझे उसका पता नहीं। प्रभु! तू कौन है? इसका तुझे पता नहीं। आहा...हा...! यह प्रभु स्वयं स्वच्छ निर्मल आनन्द का नाथ प्रभु है; वह विकल्प की जाल में आया ही नहीं। आहा...हा...!

www.vitragvani.com

स्वच्छ स्वरूप है। नेमचन्दभाई! यह गुजराती भाषा समझ में आती है न? तुम्हारे यहाँ तो गुजराती चलती है, हमारी बहिन आयी है? वह तो कहते हैं हम दोनों गुजराती समझते हैं। यह तो बहिन के शब्द गुजराती में हैं न? हिन्दी में आया परन्तु मूल गुजराती है। आहा...हा...! कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन, भाई! तुझे मनुष्यपना अनन्त काल में मिला, उसमें जो यह चीज, जो अन्दर वस्तु है, उसे यदि पहिचान कर उसका अनुमान और उसकी महिमा अनुमान से या अनुभव से नहीं की तो इसने कुछ नहीं किया। यह लाख व्रत पाले और अपवास करे, और भक्ति करे, लाखों-करोड़ों दान में दे, वह कोई धर्म नहीं है। आहा...हा...! क्योंकि उस विकल्प के जाल में वस्तु है नहीं। आहा...हा...! है?

विकल्प के जाल से आत्मा मलिन नहीं होता;.... मैं एक सच्चिदानन्द प्रभु नित्यानन्द – नित्य आनन्द का सागर आत्मा, वह मलिन राग के दु:खरूप नहीं होता। चाहे तो शुभ – दया, दान, व्रत का विकल्प हो परन्तु यह राग है, वह दु:ख है, प्रभु! आहा...हा...! यह आनन्द का नाथ दु:खरूप नहीं परिणमता। आहा...हा...! ऐसी बातें अब, बापू! मार्ग कोई अलग है। आहा...हा...! वह **मलिन नहीं होता;....**

मैं तो विकल्प से भिन्न,.... हूँ। आहा...हा...! यह (शरीर तो) मिट्टी, जड़, धूल है। धूल! यह तो आत्मा है नहीं। इसमें आत्मा नहीं और यह आत्मा में नहीं। आहा...हा...! परन्तु जो कोई पुण्य और पाप का विकल्प – राग उठता है, उस राग में आत्मा नहीं और उस आत्मा में राग नहीं – ऐसी बात है, प्रभु! आहा...हा...! भगवानरूप से तो बुलाते हैं, प्रभु! भगवान आत्मा! ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! भग अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, वह भगवान। ऐसी लक्ष्मी का वह वान् (अर्थात्) उसका रूप है। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, वह भग; भग की व्याख्यान यह है। वान (अर्थात्) वह अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द जिसका रूप है। आहा...हा...! ऐसा प्रभु, विकल्प से भिन्न है। आहा...! चाहे तो भगवान की भक्ति और पंच नमस्कार का स्मरण करे परन्तु वह तो राग है। प्रभु उस राग से भिन्न अन्दर है। आहा...हा...! ऐसा कब करे? फुरसत कहाँ है परन्तु फुरसत नहीं मिलती, इस धूल को कमाया और यह करूँ और वह करूँ, उसमें पाँच-पच्चीस लाख मिले और दो-पाँच करोड़ हों, हो गया! फँस गया उनमें।

www.vitragvani.com

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, वही वाणी बहिन की है। आहा... ! तू स्वयं... आहा...हा... ! विकल्प से तो भिन्न है... आहा...हा... ! पुण्य और पाप की वृत्ति, यह पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है, यह कहीं आत्मतत्त्व नहीं है। आत्मतत्त्व, इस आस्रवरूप नहीं हुआ। आहा...हा... ! ऐसा जो भगवान आत्मा, वह विकल्प से तो मैं तो भिन्न हूँ। आहा...हा... ! चैतन्य के प्रकाश के नूर का वज्र का पिण्ड हूँ। आहा...हा... ! ज्ञान और आनन्दरूपी वज्र, जिसमें दया, दान, या भगवान के स्मरण के विकल्प भी जिसमें प्रवेश (प्राप्त) नहीं होते – ऐसा मेरा वज्रस्वरूप है – ऐसा निर्णय कर, कहते हैं। तुझे जन्म-मरण का अन्त लाना हो... चौरासी के अवतार में भटक कर मर गया है, बापू! यह करोड़पति सेठ भी बेचारे भिखारी – रंक हैं। निज लक्ष्मी का पता नहीं और धूल की लक्ष्मी की याचना (करते हैं, वे) बड़े भिखारी-याचक है, दुःखी हैं। इसका इन्हें पता नहीं है। आत्मा के आनन्द के भान बिना यह सब विकल्प उठाते हैं, वे दुःखी हैं; वे सुखी नहीं। आहा...हा... ! सुख और अतीन्द्रिय आनन्द तो प्रभु में भरा है, आहा...हा... ! उसे विकल्परहित निर्णय-अनुभव कर तो तुझे आनन्द और सुख का पन्थ तुझे हाथ आयेगा। आहा...हा... ! नत्थूभाई है ? वकालात के धन्धेवाले को कभी मुश्किल से समय मिलता है... आहा...हा... ! यहाँ तो कहते हैं, यह अन्दर निवृत्त ही है। निवृत्त अर्थात् ? प्रभु ! तेरी चीज अन्दर जो है, वह शुभ-अशुभ का विकल्प जो राग, उससे तो अत्यन्त भिन्न पड़ी ही है। आहा...हा... ! वह कहीं से लानी नहीं पड़ती। उस विकल्प के समीप विकल्प का ज्ञान करनेवाली पर्याय... सूक्ष्म बात है, प्रभु ! उस पर्याय के समीप पूरा तत्त्व पड़ा है। आहा...हा... ! वह तत्त्व मैं विकल्परहित हूँ।

निर्विकल्प आनन्दघन हूँ;.... आहा...हा... ! अरे...रे... ! कैसे जँचे ? इस राग के विकल्प से प्रभु भिन्न, ऐसा निर्विकल्प मैं और आनन्दघन-अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड हूँ। अतीन्द्रिय आनन्द का दल हूँ; इस प्रकार धर्मी जीव को सम्यग्दर्शन में ऐसा निर्णय आना चाहिए। आहा...हा... ! तब तो वह धर्म की पहली सीढ़ी कहा जाता है। बाकी सब व्यर्थ-व्यर्थ है। इस गिरनार की यात्राएँ करे, सम्मेदशिखर की यात्राएँ लाख, करोड़ बार करे, वह कोई आत्मा नहीं, वह तो राग है। आहा...हा... ! प्रभु की यात्रा करे, अन्दर आनन्द का नाथ आनन्दघन हूँ, उस पर चढ़े, वह यात्रा यह यात्रा है। आहा...हा... ! ऐसा कहाँ जँचे ? आत्मा

www.vitragvani.com

बापू! है ऐसा, प्रभु! आहा...हा... ! तेरी महिमा की बातें कथन में कितना आये ? ऐसी तेरी चीज विकल्पातीत, वचनातीत है।

एक बार निर्णय कर कि मैं तो विकल्परहित हूँ। मैं जो आत्मा, जिसे कहते हैं, उसका अस्तित्व-उसकी सत्ता में राग का अभाव और आनन्दघन के स्वभाव का सद्भाव है। अरे... ! ऐसी बातें ! एक बार भेदज्ञान कर, कहते हैं। राग के विकल्प से (भिन्न), चाहे तो वह राग महाव्रत का हो या भक्ति का हो या पंच परमेष्ठी का स्मरण हो, (वह) है तो प्रभु राग, हाँ! वह तेरी जाति में नहीं है, प्रभु! तेरी जाति तो आनन्दघन है। आहा...हा... !

निर्विकल्प आनन्दघन हूँ;.... आहा...हा... ! जैसे अन्दर में से खोद कर मूर्ति निकालते हैं न ? वह यहाँ पालीताना है न ? पर्वत में से खोद कर (निकालते हैं) । इसी प्रकार यह भगवान आत्मा आनन्दघन की मूर्ति है। (इसमें से) पुण्य-पाप के विकल्प को निकालकर और जैसा है, वैसा उसे यदि मान, अनुभव... आहा...हा... ! ऐसी बातें अब ! समाज में ऐसी बात ! बापू ! समाज आत्मा है न प्रभु ! आहा...हा... ! अन्दर आत्मा, बापू ! तुझे पता नहीं। आत्मा सर्वोत्कृष्ट आनन्दघन तत्त्व है। आहा...हा... ! जिसका आदर करने से वह आनन्दघन हूँ - ऐसा निर्विकल्प प्रभु, उसका अनुभव होने से प्रभु ! तुझे आनन्द का स्वाद आयेगा। यह सब इन्द्रियों के विषयों का स्वाद तो तुझे, प्रभु ! दु:ख है। आहा...हा... ! यह तो दु:ख है परन्तु शुभभाव (हो)... आहा...हा... ! वह दु:ख है, वह दु:ख है, प्रभु उससे भिन्न निर्विकल्प आनन्दकन्द है। कैसे जँचे ? कहीं कभी सुनने को मिलता नहीं। सुनने को मिले तो अन्दर यह क्या बात कहते हैं ? पकड़ में नहीं आता प्रभु ! तू पकड़ में आये ऐसा है। आहा...हा... !

इसमें (आत्मा में) अकार्य-कारण नाम का एक गुण है, उस गुण को धरनेवाला गुणी भगवान का स्वीकार होने पर उसे राग की मन्दता के कारण से वह समझ में आये, ऐसा वह नहीं है और राग की मन्दता का कारण देकर राग की मन्दता करे - ऐसा आत्मा नहीं है। आहा...हा... ! इस राग के कारण राग की मन्दता - दया, दान, व्रत, तप बहुत किये, इसलिए राग की मन्दता से आत्मा ज्ञात हो - ऐसा वह आत्मा है ही नहीं और राग की मन्दता करे, बारह-बारह महीने के, छह-छह महीने के उपवास करे, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, वह तो सब शुभराग है। आहा...हा... ! यह शुभराग तेरे स्वरूप में नहीं है। यह राग है, दु:ख है। आहा...हा... !

www.vitragvani.com

वह **ज्यों का त्यों...** निर्विकल्प **पवित्र हूँ।'....** आहा...हा...! तेरी नजर में निधान को ले। भगवान निधान अन्दर है। आहा...हा...! जय प्रभु! अन्दर चिदानन्द प्रभु निधान पड़ा है। आहा...हा...! तूने उसकी कभी महिमा नहीं की, उस अमूल्य चीज का तूने मूल्यांकन किया कि वह तो राग से लाभ होता है और पुण्य से लाभ होता है। उस अमूल्य चीज का तूने मूल्य कर डाला। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं '**...ज्यों को त्यों पवित्र हूँ।' इस प्रकार अपने स्वभाव की जाति को पहिचान।** आहा...हा...! प्रभु! शरीर की जाति तो जड़ है, मिट्टी, जगत् की धूल है। आहा...हा! अमृत सागर प्रभु! इस मुर्दे में मूर्च्छित हो गया है। यह मुर्दा है। यह तो मिट्टी धूल है। इस चेतन नहीं यह चेतन, जड़ से तो अन्दर भिन्न है। आहा...हा...! शरीर की सुन्दरता और शरीर की कोमलता, यह सब मिट्टी-धूल है। आहा...हा...! उसमें अमृत का सागर आनन्दघन मूर्च्छित हो गया है। मुनि भी अमृतचन्द्राचार्यदेव हैं न! उन्होंने यह टीका की है (समयसार की) छियानवें गाथा, अरे... प्रभु! कठिन बात है नाथ! अभी तो सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी (की बात है)। चारित्र तो कहाँ किसे कहना? बापू! यह तो अभी कठिन बातें हैं। यह चारित्र ऐसे व्रत पाले, स्त्री, पुत्र छोड़े, इसलिए चारित्र हो गया... धूल में भी चारित्र नहीं है। उसके पुण्यानुबन्धी पुण्य का भी ठिकाना नहीं है। आहा...हा...!

ऐसा मैं पवित्र हूँ। **इस प्रकार अपने स्वभाव की जाति को पहिचान।....** इस स्वभाव की जाति को पहचान। उस एक अन्तिम कलश में आता है न? स्व-स्वभाव। राग को स्व-स्वभाव कहा है। एक कलश है न पीछे? ऐसा कि, स्वभाव कहा, इसलिए वहाँ स्व-स्वभाव नहीं लेना। ऐसा कुछ है अवश्य, २१० में है? कितने में है? है न? (समयसार २१९ श्लोक) **रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्टया, नान्यद्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि। सर्वद्रव्योत्प-त्तिरन्तश्चकास्ति, व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात्॥२१९॥** विभाव भी स्व-स्वभाव है। वह पर्याय का स्वभाव है, वस्तु का नहीं। २१९ (श्लोक) है, भाई! **व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात्** - फिर वह स्वस्वभाव आ गया सही न, इसलिए उन्होंने लिया कि स्वस्वभाव अर्थात् यहाँ परिणमन लेना। 'स्पष्ट भवनं स्वभाव:' यह पुण्य-पाप का विकार भी पर्याय में होता है, इस अपेक्षा से कहा है। वस्तु के स्वभाव में यह नहीं। वह २१९ (श्लोक) है। है, चिह्न किया है यहाँ। क्या कहा समझ में आया?

www.vitragvani.com

एक ओर पर्याय में – अवस्था में पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उन्हें स्वभाव भवनं – स्वभाव कहा है। स्वभाव का वह परिणमन है। स्वभाव अर्थात् त्रिकाली (स्वभाव) नहीं। पर्याय में वह राग और द्वेष होते हैं। वह वस्तु पर्याय में है – ऐसे स्वयं से होते हैं, कर्म से नहीं, पर से नहीं – ऐसा कहने के लिये उसे स्वभावभाव (कहा है)। आहा...हा...! भाई! २१९ है। आहा...हा...! यहाँ तो इसका स्वभाव त्रिकाली है, उसमें इन पुण्य और पाप के विकल्प की गन्ध नहीं है। यह तो पर्याय धर्म बताते हुए उनकी बात की है। आहा...हा...! परन्तु वस्तुस्वभाव (विकल्परहित है)।

यहाँ कहते हैं **अपने स्वभाव की जाति को पहिचान**। तेरी जाति प्रभु! आहा...हा...! यह व्रत और व्रत के विकल्पों से तेरी जाति अलग है। आहा...हा...! यह जाति तो सब चाण्डल की जाति है, कहते हैं। आहा...! पुण्य-पाप (अधिकार) में आया है। यह विभाव है, वह पर्याय की एक जाति का स्वभाव है, ऐसा वहाँ शब्द लिया है। **व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन** वहाँ स्वस्वभाव (शब्द) है, इसलिए उन्हें रुचा नहीं, इसलिए कहते हैं 'इस स्वभाव का अर्थ वहाँ परिणमन लेना, स्वभाव नहीं लेना।' कहा – 'परन्तु वह तो पर्याय का स्वभाव है।' वस्तु जो भगवान आत्मा... आहा...हा...! वह तो विकल्प के, पुण्य-पाप के जाल से अत्यन्त भिन्न जाति है। उसके अन्तर में अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन की – धर्म की पहली सीढ़ी है, बाकी सब थोथे-व्यर्थ हैं। आहा...हा...! इसके अनन्त जन्म-मरण के अन्त का यह उपाय है। समझ में आया?

इस प्रकार अपने स्वभाव की जाति को पहिचान। तू विकल्प से मलिन होकर – मलिनता मानकर.... आहा...हा...! शुभ-अशुभराग जो विकल्प है, उससे मलिन हूँ, मैं वस्तु मलिन हूँ – ऐसा मानकर... है? **भ्रमणा में ठगा गया है;....** प्रभु! आहा...हा...! तेरे अस्तित्व में तो ये पुण्य-पाप के भाव हैं नहीं परन्तु ये पुण्य-पाप के भाव मेरे हैं – ऐसा मानकर ठगा गया है, प्रभु! आहा...हा...! दया का भाव, पर की दया का भाव, वह तो राग है। आहा...हा...! राग है, वह मेरा है अथवा उस राग से मुझे लाभ होगा, (इसमें) ठगा गया है, प्रभु! आहा...हा...! तूने तुझे ठगा। आहा...हा...! यह ऐसा क्या होगा यह? ऐसा है, बापू! क्या कहा जाये! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव परमात्मा (विराजमान है,) उनकी यह वाणी है, वह वाणी यहाँ यह है। आहा...हा...! समझ में आया?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कहते हैं **मलिनता मानकर भ्रमणा में ठगा गया है;....** इस पुण्य-पाप के भाव को निज मानकर और मैं मलिन हूँ - ऐसा मानकर पवित्र प्रभु आत्मा, उससे तू वंचित हो गया है, ठगा गया है। अन्दर चीज जो है भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, उसके ऊपर पर्याय में पुण्य और पाप के विकल्प हों, (उनसे) मैं मलिन हूँ, मैं रागवाला हूँ - ऐसा मानकर स्व की जाति से ठगा गया है। आहा...! तेरी जाति तो सिद्ध की जाति है। आहा...हा...! जैसे सिद्ध में पर्याय में भी राग-द्वेष नहीं, (वैसे ही) उसके द्रव्य में नहीं। श्रीमद् में आता है 'सर्व जीव है सिद्ध सम' - सिद्धस्वरूपी वीतरागमूर्ति को मलिनता मानकर भ्रम में भगवानस्वरूप को तू भूल गया, प्रभु! आहा...हा...!

एक तो यह पुण्य के फलरूप में यह बाहर में भूल मिले, स्त्री अच्छी मिले, पाँच-पच्चीस लाख का मकान मिले, पैसा दो-चार करोड़ रुपये हों, लड़के सात-आठ हों, कमाऊ हों, वहाँ तो मानो हम बढ़ गये (ऐसा अज्ञानी को लगता है)। आहा...हा...! महा मिथ्यात्व को पोसता है, यह चीज तेरी नहीं, तेरे कारण आयी नहीं, तुझमें यह है नहीं। आहा...हा...! यहाँ तो राग तेरा नहीं तो फिर राग के फलरूप से (प्राप्त) स्त्री, पुत्र... आहा...हा...! बहुत दूर है। उन्हें अपना माना, (उसमें) ठगा गया। तेरा अपना रूप क्या है? - उसे नहीं जाना और ऐसी भ्रमणा (का सेवन किया), आहा...हा...! जैसे श्मशान की हड्डियों में फासफूस... क्या कहलाती है? श्मशान की हड्डियों में फोरफरस होता है! फोरफरस! लड़कों को ऐसा कहते हैं कि वहाँ भूत है, जाना नहीं। बाकी तो फोरफरस है, वैसे ही यह सब फोरफरस है, स्त्री, पुत्र, पैसा, धूल, धमाका... आहा...हा...! यह दो -पाँच करोड़ रुपये (हों) और उसके बड़े बंगले बनाये हों, वह हड्डियों की फोरफरस है। प्रभु! तू उनमें नहीं वे तुझमें नहीं। अरे..! तू वह तो नहीं परन्तु पुण्य और पापवाला मानना, (उसमें) ठगा गया है। तू यह पुण्य और पापवाला नहीं है। आहा...हा...! इतने घर में इतना गहरा जाना। पाप के कारण फुरसत कहाँ है? पूरे दिन यह कमाना और यह करना, और इन वकीलों को अशील आवे उसे सम्हालना तथा उससे पैसा लेना... घर आकर दे जाये। वह दे वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि मुझे मिले। वह वकील मूढ़ है। कहो, डॉक्टर! यह डॉक्टर है, लो न! पाँच-पच्चीस रुपये आये जहाँ एक दिन की आमदनी, वहाँ बस (ऐसा हो जाये) आज का दिन अच्छा! इस बार तो सौ रुपये का एक दिन पका, इस

www.vitragvani.com

हिसाब से महीने में तीन हजार रुपये हुए। अरे... धूल में क्या? मर गया, मार डाला आत्मा को, आहा...हा...! चिदानन्द निर्विकल्प प्रभु को तूने ऐसे विकल्प से प्रसन्न कर डाला! उसे प्रसन्नता तो वह पूर्णानन्द है, उसकी अनुभवदशा करे, तब उसे प्रसन्नता और आनन्द आवे। आहा...हा...! अरे...रे! ऐसा सुनने को मिले नहीं। यह तो दया पालो, व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, यात्रा करो... करो, करो और करो, मरो! यह राग का करना अर्थात् कर्ता होकर आत्मा के ज्ञानस्वरूपी प्रभु को मार डाला। आहा...हा...! अर...र! ऐसी बातें कठिन पड़ती है, पड़े या न पड़े, वस्तु ऐसी है, पूरी दुनिया को देखा नहीं? दुनिया पूरी (देखी है)। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **मलिनता मानकर भ्रमणा में ठगा गया है; दर्पण की भाँति जाति से तो स्वच्छ ही है।** जैसे दर्पण स्वच्छ ही है, भले उसमें अग्नि का प्रतिबिम्ब ज्ञात हो, वह अग्नि अन्दर नहीं; वह तो दर्पण की स्वच्छता है। दर्पण में दर्पण स्वच्छ ही है, उसमें अग्नि या कोयला या सर्प सामने दिखायी दे... उसी प्रकार अन्दर दिखायी दे, वह कहीं अग्नि या सर्प वहाँ नहीं है, वह तो दर्पण की स्वच्छता है। दर्पण की स्वच्छता का अस्तित्व है। वह सर्प और अग्नि का अस्तित्व वहाँ नहीं है। आहा...हा...! इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु में रागादि ज्ञात हों, वह तो उसका ज्ञान और उसकी स्वच्छता है, राग उसमें नहीं है; राग उसका नहीं है। आहा...हा...!

बापू! परिचय करना चाहिए, भाई! अनादि का भटकता है। यहाँ बड़े सेठिया करोड़पति हों, वे मरकर छिपकली के गर्भ में अवतरित होते हैं। यह छिपकली नहीं होती? क्योंकि धर्म का पता नहीं। क्या आत्मा और क्या वस्तु? पुण्य भी नहीं या सत्समागम (नहीं)। अच्छा सत्समागम कहना किसे? कि इसका समागम चार-पाँच घण्टे करे, सच्चा सत्शास्त्र (हो), उसे चार-पाँच घण्टे पढ़े, तो उसे पुण्य भी हो, धर्म तो एक ओर रहा। यह तो समय कहाँ मिलता है? किसी दिन आधे घण्टे समय निकाले उसमें सुनने जाये वहाँ उसका (समय) वह कुगुरु लूट लेता है। आहा...हा...! तुझे व्रत से और तप से तथा भक्ति से धर्म होगा (ऐसा कहता है)। आहा...हा...! मार डाला। इसका घण्टा भी लुट गया, तेईस घण्टे रुकता था पाप में (और) इस धर्म के नाम से प्रभु! ठगा गया, प्रभु! भाई! आहा...हा...! ऐसा बहुत कठिन काम, बापू!

www.vitragvani.com

प्रभु सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की यह पुकार है, अनन्त तीर्थंकरों की अनादि से यह पुकार है। आहा...हा...! तू **दर्पण की भाँति जाति से तो स्वच्छ ही है। निर्मलता के भण्डार को पहिचान....** प्रभु! यह निर्मलानन्दनाथ है, प्रभु! यह चैतन्य हीरा, यह अनन्त गुण से निर्मल प्रभु है। आहा...हा...! उसे पहिचान। **निर्मलता के भण्डार को पहिचान तो एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का समूह प्रगट होगा।....** आहा...हा...! जैसे पानी का पूर हो, वह पूर ही ऐसा दिखता है, वैसे ही जिसने आत्मा (को) राग से भिन्न देखा, जाना (कि) महा निर्मलता का भण्डार है, उसकी प्रतीति में और अनुभव में आया, उसे निर्मलता की पर्याय एक के बाद एक प्रगट होगी। आहा...हा...! तुझे आनन्द की धारा आयेगी, बापू! आहा...हा...! अरे! ऐसा कठिन काम, लो! व्यवहार को तो शून्य लगाया है। पूरी दुनिया तो ऐसा कहती है कि करो... करो... करो... करते-करते होगा। इस पराश्रयभाव से स्वाश्रयभाव होगा? बापू! तुझे पता नहीं, भाई! तेरी महिमा को राग से लाभ हो, यह कलंक लगाता है, भाई! आहा...हा...! उसकी महिमा का पार नहीं, वह तो उसके स्वभाव की जाति से स्वभाव ज्ञात हो, ऐसा है। आहा...हा...! इस व्यवहार की क्रिया दया, दान, या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सब राग है, उससे ज्ञात हो - ऐसा नहीं। भ्रमणा में भूल गया, प्रभु! आहा...हा...!

प्रभुरूप से तो बुलाते हैं, प्रभु! अरे! जाग रे जाग, नाथ! आहा...हा...! इसकी माँ इसे झूले में सुलावे, (तब) गाना गाती है गाना 'मारो दिकरो डायो छै नै पाटले वैसी नायो छै' ऐसा है। हिन्दी में दूसरी भाषा होगी। तब वह गाना गाये तब सो जाता है। अव्यक्तरूप से भी उसकी प्रशंसा प्रिय है। उसे गाली दोगे तो नहीं सोयेगा। देख लेना कभी। 'मारा राया सूइजा' (ऐसा कहोगे तो) नहीं सोयेगा। यह तो ऐसा कि उसकी प्रशंसा उसे बालकपने भी प्रिय है, इसलिए प्रशंसा गाते-गाते वह सो जाता है।

यहाँ तीन लोक के नाथ इसकी प्रशंसा करके जगाते हैं। इसकी माँ सुलाती है और (यहाँ) इसे जगाते हैं। जाग रे जाग, नाथ! चैतन्य हीरा, आनन्द का नाथ, सागर, तू राग में सो गया। आहा...हा...! और तुझे शुभराग प्रसन्न (पसंद) हुआ है और स्वयं आनन्द के सागररूप प्रसन्न चीज है, वह तुझे प्रसन्न (पसंद) नहीं पड़ती। आहा...हा...! ये सब हैरान होने के रास्ते हैं। बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहा...हा...! कहा?

www.vitragvani.com

निर्मलता के भण्डार को पहिचान.... तो निर्मलता की धारा तुझे बहेगी, प्रगट होगी, **अन्तर में ज्ञान और आनन्दादि की निर्मलता ही भरी है।** क्योंकि भगवान में तो निर्मल ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द, इससे तो भरा हुआ पदार्थ है। आहा...हा...! उसका ज्ञान और श्रद्धा कर तो तुझे निर्मलदशा प्रगट होगी। मलिनता का नाश होगा और निर्मलता प्रगट होगी, क्योंकि उसमें निर्मलता भरी हुई है। आहा...हा...! ऐसा करना! अन्तर्मुख देखो, अन्तर्मुख देखो! बहिर्मुख देखना छोड़ दे। आहा...हा...! पूरी दुनिया की बाहर की बातें तूने जानी। ज्ञान जिसका है, उसे तूने जाना नहीं। तुझमें नहीं, उसे तूने ज्ञान में जाना। आहा...हा...! तुझमें ये चीजें नहीं, उन्हें तूने ज्ञान में जाना; तुझमें जो पूर्ण है (उस) जाननेवाले को तूने नहीं जाना। आहा...हा...! आहा...हा...! ऐसा कठिन काम, बापू! निश्चयाभास है – ऐसा लोग कहते हैं। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! व्यवहार आवे परन्तु वह बन्ध का कारण है। ऐसा भान होने के बाद व्यवहार आता है; वीतराग न हो, तब तक राग आता है परन्तु है वह बन्ध का कारण, दुःख का कारण। आहा...हा...!

यहाँ तो (कहते हैं) **अन्तर में ज्ञान और आनन्दादि की निर्मलता ही भरी है।** निर्मलता ही भरी है। आहा...हा...! यह ८२ (बोल पूरा) हुआ। इसमें एक में पौन घण्टा हुआ। पूरा भरा हुआ भाव है न, एकदम!

अन्तर में आत्मा मङ्गलस्वरूप है। आत्मा का आश्रय करने से मङ्गलस्वरूप पर्यायें प्रगट होंगी। आत्मा ही मङ्गल, उत्तम और नमस्कार करने योग्य है – इस प्रकार यथार्थ प्रतीति कर और उसी का ध्यान कर तो मङ्गलता एवं उत्तमता प्रगट होगी॥ ८३॥

८३, **अन्तर में आत्मा मङ्गलस्वरूप है।...** अन्दर मङ्गलस्वरूप प्रभु है। मंग अर्थात् पवित्रता और ल अर्थात् लाती। यहाँ तो णमो अरिहन्ताणं सुनकर मांगलिक सुनाओ तो हमारी दुकान ठीक से चले.... यह कन्या का विवाह करते हैं तो मांगलिक सुनाओ... अरे...रे! यह तूने क्या किया? प्रभु! यहाँ तो **आत्मा मङ्गलस्वरूप है।...** जिसमें जिसका ध्यान करने से और जिसका आश्रय करने से मंग अर्थात् पवित्रता की, ल अर्थात् लाती –

www.vitragvani.com

प्राप्ति हो और मम् अर्थात् राग का अभिमान, उसे गल अर्थात् गला डाले – ऐसा भगवान आत्मा स्वयं मङ्गलस्वरूप है। आहा...हा...! है?

अन्तर में आत्मा मङ्गलस्वरूप है।.... आहा...हा...! यहाँ तो साठ वर्ष में घर में पुत्र हो तो कहता है, करो लापसी! इसका-पुत्र का विवाह करे और पाँच-पच्चीस लाख होवे तो दो-पाँच लाख खर्च करना हो, खर्च करे तो (कहता है) मांगलिक कार्य किया। बापू! धूल भी नहीं, सुन न! तूने जहर का प्याला पिया है, ऐसा है। यह तो अमृत का प्याला अन्दर भरा है, भगवान! आहा...हा...! गाया था न? कहा था 'गगन मण्डल में अध बीच कुआँ, वहाँ है अमी का वासा' भगवान अन्दर अद्धर विराजमान है। राग से, शरीर से भिन्न (विराजमान है) 'गगन मण्डल में अध बीच कुआँ, वहाँ है अमी का वासा' 'सगुरा होवे सो भर भर पीवे सन्तो, नगुरा जावे प्यासा, अबधू.... गुरु मेरा, ऐम पर का करे रे निवेड़ा, सो जोगी रे गुरु मेरा।' आहा...हा...! 'गगन मण्डल में अध बीच कुआँ,' राग से भिन्न शरीर से भिन्न, भगवान अन्दर अद्धर कुआँ पड़ा है। अमृत का सागर है, प्रभु! आहा...हा...! अरे! कैसे जँचे? एक-दो बीड़ी पीवे तब भाईसाहब को सबेरे दस्त ठीक से उतरे, वहाँ प्रसन्न हो जाये। पखाने (जाकर) दो-तीन सिगरेट पीवे, दस्त उतरते-उतरते पीवे,... ऐसा सुना है। हमने तो कभी जिन्दगी में बीड़ी पी नहीं है। ८९ वर्ष में हमने तो कभी एक बीड़ी पी नहीं है। यह तो दस वर्ष की उम्र में दूसरा लड़का था वह पीता था। जरा ऐसा लिया वहाँ आहा...हा...! यह तो दस वर्ष की (उम्र की) बात है, ७८ वर्ष पहले की बात है। स्कूल खुला नहीं था, हम बैठै थे और लड़का पीता था। यह क्या? आहा...हा...!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि एक बार सुन तो सही, प्रभु! आहा...हा...! इन दो बीड़ी में तुझे दस्त उतरे, तब प्रसन्न हो जाये, सबेरे एक-डेढ़ प्याला चाय का प्याला पीवे (वहाँ) आहा...हा...! तृप्त-तृप्त (हो जाये) प्रभु! परन्तु तुझे यह क्या हो गया? यह पागलपन आया कहाँ से? यह सब तो पागलपन है, भाई! यहाँ तो अन्दर में आत्मा मङ्गलस्वरूप है। वहाँ जा तुझे माङ्गलिक दशा प्रगट होगी।

आत्मा का आश्रय करने से मङ्गलस्वरूप पर्यायें प्रगट होंगी।.... भगवान आत्मा तो आनन्द और ज्ञान का महासागर है। यदि उसका आश्रय करेगा, उसका अवलम्बन

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

लेगा तो **मङ्गलस्वरूप पर्यायें प्रगट होंगी।....** तो पवित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आनन्द की दशायें तुझे प्रगट होंगी। अरे... ! ऐसी बातें अब ! कैसे पुण्य होगा और फिर पैसा कैसे मिलेगा (यह बात नहीं की है)। धूल में, सुन न अब, ऐसा अनन्त बार हुआ है। आहा...हा... ! भाई ! तुझमें आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है न, प्रभु ! उसका आश्रय ले। आहा...हा... ! उसके पक्ष में जा, उसके सन्मुख देख, तुझे मङ्गल की पर्यायें प्रगट होंगी। आहा...हा... ! मङ्गल अर्थात् आनन्द की दशायें, अतीन्द्रिय आनन्द की दशा, प्रभु ! तुझे प्रगट होगी क्योंकि तू अतीन्द्रिय आनन्द का तो कन्द प्रभु है। आहा...हा... !

आत्मा ही मङ्गल, उत्तम और नमस्कार करने योग्य है.... आहा...हा... ! शरीर, वाणी तो ठीक परन्तु पुण्य-पाप के भाव से भिन्न भगवान है, वह मङ्गल है। आत्मा ही मङ्गल है। आहा...हा... ! यह तो विवाह करने जाता है तो माङ्गलिक सुनाओ, हम पति-पत्नी अच्छी तरह से रहें, ऐसे के ऐसे... आहा...हा... ! मिथ्यात्व का बड़ा शल्य !

मुमुक्षु : लौकिक माङ्गलिक.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लौकिक माङ्गलिक कब था ? आहा...हा... ! इसमें नहीं आया था ? बिहार में एक पति-पत्नी का विवाह (था), मण्डप में बैठे हैं, लग्न और उसमें क्या कहलाता है ? उसके पाठ पढ़ते थे। इतने में लड़के का (वर का) हार्ट फेल हो गया। अभी समाचार-पत्र में आया था, बापू ! देह जड़ है, उसकी स्थिति कब पूरी होगी, यह निश्चित हो गया है। आहा...हा... ! यहाँ तो अभी फेरे ले रहे थे, उनका ब्राह्मण या कोई दूसरा होगा, उसका पाठ पढ़ते थे, वहाँ लड़के का (वर का) हार्टफेल हो गया, विवाह के समय, विवाह के मण्डप में ! आहा...हा... ! बापू ! यह तो नाशवान है, प्रभु ! अविनाशी प्रभु अन्दर चैतन्य है, वह मङ्गलस्वरूप है। आहा...हा... !

आत्मा मङ्गल और वही उत्तम है। प्रभु स्वयं आनन्द का नाथ, सागर प्रभु, वही जगत में उत्तम है, बाकी कोई चीज उत्तम है नहीं। आहा...हा... ! अरे ! कैसे जँचे ? अनन्त काल में यह बात इसे जँची नहीं, साधु हुआ, पंच महाव्रत पालन किये, नग्न (दिगम्बर हुआ) अरबों वर्षों तक ! परन्तु इस राग की क्रिया से मुझे लाभ होगा - ऐसा मानकर, आत्मा को राग से रहित है, उसे नहीं देखा। आहा...हा... ! आत्मा मङ्गल है, आत्मा उत्तम

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है और नमस्कार करने योग्य वह है। आहा...हा...! पंच परमेष्ठी या त्रिलोकनाथ को नमस्कार करना तो एक शुभराग है। अरे! स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर, परद्रव्य के आश्रय से नमस्कार करना, वह शुभराग है, दु:ख है, दु:ख है। आहा...हा...! वह अमङ्गलस्वरूप है। प्रभु को नमस्कार करना, चैतन्यमूर्ति पूर्णानन्द में अन्दर झुक जाना; राग को पृथक् करके स्वरूप में ढल जाना वही... आहा...हा...! नमस्कार करने योग्य तो वह चीज है। तब यह पंच परमेष्ठी और यह सब है वह क्या? यह सब मन्दिर हैं, भाई! यह शुभराग होता है, तब वहाँ लक्ष्य जाता है परन्तु फिर भी वह शुभराग, धर्म नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! धर्मी जीव को आत्मज्ञान होने पर भी, अन्दर रमणता पूरी न हो तो उसे शुभभाव आता है, परन्तु वह शुभभाव हेय है, दु:ख है। आहा...हा...! ऐसी हेयबुद्धि से आता है। अज्ञानी को राग उपादेयबुद्धि से आता है, वह मिथ्यादृष्टि है। अरे... ऐसा एक घण्टे में सुनना... घर से स्त्री न आयी हो (और) इससे पूछे कि (तुम क्या सुनकर आये? तो कहता है) कौन जाने, ऐसा कहते थे और ऐसा कहते थे, आत्मा आनन्दघन है और वह विकल्प से मलिन है ही नहीं, कौन (जाने) क्या होगा? भगवान! बापू! तेरी चीज है, भाई! आहा...हा...!

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' मुनिव्रत धार, नग्न दिगम्बर पंच महाव्रत (पालन किये) हजारों रानियाँ छोड़कर 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ'। परन्तु यह पंच महाव्रत के परिणाम यह सब राग (है)। यह राग और दु:ख है। आहा...हा...! छहढाला में आता है न? नेमचन्दभाई! छहढाला में! छहढाला में आता है। पंच महाव्रत पालन किये, हजारों रानियाँ छोड़ी, दया, दान, अन्दर राग की मन्दता (करके) परन्तु आत्मा रागरहित है, उसका ज्ञान और अनुभव नहीं किया। आहा...हा...! उसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आया, भाई! ऐसे द्रव्यलिंग अनन्त बार धारण किये और मरकर फिर अनन्त बार... (कोई) क्षेत्र खाली नहीं, वहाँ अनन्त बार जन्मा और मरा है। ऐसा द्रव्यलिंग धारण करके भी। आहा...हा...! आहा...हा...! भगवान अन्दर आनन्द का नाथ है, उसे पहचाना नहीं, उसका अनुभव नहीं किया। जहाँ आनन्द है, उसका अनुभव नहीं किया और जहाँ दु:ख है, वहाँ अनुभव किया - ऐसा करके अनादि से भटक रहा है।

www.vitragvani.com

यह (आत्मा) नमस्कार करने योग्य है। **इस प्रकार यथार्थ प्रतीति कर....** ऐसी यथार्थ प्रतीति कर, श्रद्धा तो यह कर। आहा...हा...! है ? **और उसी का ध्यान कर....** आहा...हा...! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु का ध्यान कर। पूर्ण स्वरूप को ध्येय कर – ध्येय बना, तेरे ध्यान में उसे ध्येय बना। आहा...हा...! जैसे बन्दूक तानकर ध्येय बनाते हैं न कि इसे यहाँ मारना है। यह ध्येय बनाते हैं न ? इसी प्रकार यहाँ ध्येय (बना) आहा...हा...! तेरी ज्ञान की पर्याय में प्रभु को ध्येय बना, तेरा नाथ आनन्दघन पड़ा है, उसे ध्येय बना। आहा...हा...! ऐसा है। लोकों में चलता है, उनमें से (कोई) बात इसमें नहीं मिलती। रात्रि भोजन मत करो, छह पर्व में ब्रह्मचर्य पालन करो... अरे! बापू! यह सब क्रियायें तो कदाचित् राग मन्द हो तो पुण्य है। आहा...हा...! भगवान में तो यह राग अन्दर है ही नहीं – ऐसी चीज को पहचान, उसका ध्यान कर **तो मङ्गलता एवं उत्तमता प्रगट होगी।** क्योंकि स्वयं मङ्गल और उत्तम वस्तु है। आहा...हा...!

अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, वह आनन्द का दल है। दल के लड्डू पहले होते थे। हमारे काठियावाड़ में होते थे। दल... दल के लड्डू! इसी प्रकार यह आत्मा आनन्द का दल है। अरे...! ऐसा क्या होगा ? कहाँ होगा ? है तो कहाँ गया ? हमारे वे (भगवानजीभाई) पूछते थे। रामजीभाई के मित्र थे। भगवानजीभाई, वकील व्याख्यान में आवे, भाई! भगवानजी वकील थे, वकील। राजकोट में व्याख्यान में आते (वे कहते थे) महाराज! आप इतनी महिमा करते हो परन्तु धूली हुई मूली जैसा गया कहाँ ? यह वकील! लाखों रुपये कमायी करे, उसमें भला क्या है ? बापू! यह मूली होती है न मूली ? मूली निकलती है, तब जरा मैलवाली होती है, फिर पानी से धो डालते हैं। यह मूली पानी से धोते हैं; इसी प्रकार यह धूली हुई मूली जैसा ऐसी आप महिमा करते हो, ऐसा है... ऐसा है... गया कहाँ ? परन्तु तुझे नजर में पड़ा नहीं, इसलिए जाये कहाँ ? यह ध्यान कर तो वह चीज है, उसका ध्यान कर, वहाँ ध्येय बना **तो मङ्गलता एवं उत्तमता प्रगट होगी।** मङ्गल दशा और उत्तम दशा प्रगट होगी। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनन्द की दशा प्रगट होगी। यह माङ्गलिक और उत्तम है।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

'मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ' - ऐसी निवृत्तदशा में ही शान्ति है। स्वयं अपने को जाने और पर का अकर्ता हो तो मोक्षमार्ग की धारा प्रगटे और साधकदशा का प्रारम्भ हो॥ ८४॥

ज्येष्ठ वद १३, सोमवार, दिनाङ्क ०३-०७-१९७८
प्रवचन-२८ वचनामृत-८४-८५

'वचनामृत' का ८४ (नम्बर का) बोल है। हिन्दी चलेगा। ८४ है न? ८३ हो गया। सूक्ष्म बात है। जिसको आत्मा का कल्याण करना हो और जिसको धर्म, धर्म करना हो या कल्याण करना हो, एक ही बात है, तो उसको ऐसे चलना चाहिए।

'मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ।' आ...हा...हा...! यहाँ से (बात शुरु की है)। मैं तो उदासीन (अर्थात्) राग और परपदार्थ से उदासीन (हूँ)। आ...हा...हा...! चाहे तो दया, दान का राग हो, उससे भी मैं तो पर हूँ-भिन्न, उदासीन हूँ। आ...हा...हा...! **मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ।** उदासीन (अर्थात्) राग का जो विकल्प (उठता है, उससे भी भिन्न)। परद्रव्य से तो मैं भिन्न / उदासीन हूँ परन्तु अन्तर में जो शुभ रागादि उत्पन्न हों, उससे भी मेरा आसन, मेरी अस्ति, मेरी ध्रुवता भिन्न है। आ...हा...हा...! ऐसा मैं ज्ञाता हूँ। यह अस्ति से बात ली। राग से विरक्त / वैरागी हूँ, उदास हूँ और स्वभाव से मैं ज्ञाता हूँ। आ...हा...! ऐसी बात है। नेमचन्दभाई! यह समझ में आता है? एकदम सार है। जैनदर्शन का मक्खन (-नवनीत) है। आ...हा...!

मैं अस्ति धारण करता हूँ। पर से, राग (से), व्यवहाररत्नत्रय का राग, उससे भी मैं उदासीन हूँ। मेरा आसन उसमें नहीं, मेरा टिकना उससे नहीं; मेरा टिकना राग से रहित ज्ञाता हूँ। आ...हा...हा...! राग से उदास और स्वभाव से - अस्ति से ज्ञाता। वहाँ धर्म और शान्ति है। आ...हा...हा...! कठिन बातें (हैं) पण्डितजी! धर्म बहुत कठिन! बाहर की

www.vitragvani.com

धमाल... व्रत, तप, भक्ति, पूजा हो परन्तु उससे मैं उदास हूँ। वह मेरा कार्य नहीं है। आ...हा...हा... ! मैं तो पर से उदास और स्व से तो ज्ञाता हूँ। बहुत संक्षेप।

चैतन्यचन्द्र शीतलता शान्तरसस्वरूप (– ऐसा) मैं ज्ञाता हूँ और रागादि भाव से तो मैं उदास हूँ, उससे तो मैं भिन्न हूँ। ऐसा अन्तर्मुख में अपना स्वरूप, ज्ञाता और पर से विरक्त, राग से भी विरक्त – उदास (है), वहाँ शान्ति है। **ऐसी निवृत्तदशा में ही शान्ति है।** आ...हा...हा... ! ऐसी निवृत्तदशा। राग का विकल्प जो है, उससे भी मैं भिन्न और मैं ज्ञान, दर्शन, आनन्द — ऐसा ज्ञाता-दृष्टा (स्वरूप से) अभिन्न (हूँ)। वहाँ ऐसी दृष्टि होने से वहाँ शान्ति है। समझ में आया ? बाकी रागादि है, वह तो अशान्ति है। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा (का विकल्प हो), शास्त्र का ज्ञान और पञ्च महाव्रतादि का परिणाम (हो), ये सब तो अशान्ति है। अशान्ति से मैं विरक्त / उदासीन हूँ। आ...हा...हा... ! ऐसी बात कहाँ है ?

लोगों को कठिन पड़ता है। 'सोनगढ़' का एकान्तवादी... एकान्तवादी (है – ऐसा कहते हैं)। कहो, प्रभु! कहो। एकान्तवादी है। क्योंकि व्यवहार करते-करते होगा, व्यवहार करते होगा, ऐसा कहते नहीं, ऐसा मानते नहीं; (इसलिए) एकान्तवादी है। आ...हा...हा... ! प्रभु! यह एकान्तवाद ही है। सम्यक् एकान्तवाद (है)। राग से भिन्न / उदास और स्वभाव से अभिन्न, उसका नाम सम्यक् एकान्त है।

(पत्रिका में) बहुत आता है। 'जैनदर्शन' में आज आया है, 'दिल्ली' का आया है। मन्दिर में से जैन साहित्य निकाल दो (–ऐसा लिखते हैं)। निकालो, बापू! प्रभु! आ...हा... ! क्या हो ? (लोगों को) कठिन लगता है। शान्ति और धर्म तो वहाँ है, जहाँ व्यवहार के राग से भी उदास है। हिन्दी है ? गुजराती है, हमारे नेमचन्दभाई आये हैं (इसलिए हिन्दी में चलता है)। आ...हा...हा... ! ऐसी बात है, प्रभु! क्या करें ? यहाँ (टेप) में भी उतरता है, कोई हिन्दी आये तो काम आये। २७ दिन से तो चलता है। आ...हा...हा... !

प्रभु! तेरा शान्ति का पन्थ तो यह है। शरीर की क्रिया से तो भिन्न; उससे तो मैं उदास (हूँ)। चाहे जो बनो, उसमें मेरा कोई अधिकार है नहीं। आ...हा...हा... ! और पुण्य-पाप का भाव भी चाहे जो हो, मेरा उसमें अधिकार नहीं; मैं तो उससे उदास हूँ, उससे मैं विरक्त हूँ। आ...हा...हा... ! और मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वभाव से भरा पड़ा ज्ञाता हूँ। ऐसी दशा

www.vitragvani.com

– **ऐसी निवृत्तदशा में शान्ति है।** आ...हा... ! वहाँ धर्म है। आ...हा...हा... ! जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, कोई वाड़ा नहीं; वस्तु की स्थिति है।

प्रभु ! जैनस्वरूपी आत्मा ! ज्ञाता कहो या जिनस्वरूपी कहो, वह राग से उदास है और स्वभाव से अभिन्न भरा पड़ा है। ऐसी निवृत्तदशा में शान्ति मिलती है। आ...हा...हा... ! पण्डितजी ! आप के सब लोग एकान्त-एकान्त करते हैं। मालूम है, भाई ! बापू ! तुझे मालूम नहीं, प्रभु ! आ...हा...हा... ! तेरी जात की तुझे खबर नहीं। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से भरा पड़ा प्रभु आत्मा है। वह राग से उदास आसन है। राग से विपरीत उसका आसन है। राग में टिकना (उसका आसन) नहीं; स्वरूप में टिकना, वह तेरा आसन है। आ...हा...हा... ! लोगों को ऐसी बात कठिन पड़ती है। क्या हो... ? बापू !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से भिन्न अपनी ज्ञाता क्रिया नहीं है अन्दर ? यह शान्ति की क्रिया है। आ...हा... ! सम्यग्दर्शन की क्रिया कहो या शान्ति की क्रिया कहो। आ...हा...हा... ! कहे, नहीं बैठे तो कहे, उसमें कोई (आश्चर्य नहीं); और इसीलिए इस चीज को सुननेवाले कम होते हैं और प्राप्त करनेवाले तो बहुत ही थोड़े (होते हैं)।

यहाँ तो (कहते हैं), मैं... मैं हूँ। मैं कैसा हूँ ? रागादि विकल्प से और पर से तो मैं उदास हूँ। आ...हा... ! मैं, राग में और शरीर की क्रिया में मेरा अधिकार बिल्कुल नहीं। मैं तो उससे उदास हूँ, ऐसा मेरा अधिकार है। आ...हा...हा... ! **ऐसी निवृत्तदशा में...** आ...हा...हा... ! संक्षिप्त भाषा में (बहुत भर दिया है) क्योंकि बारह अङ्ग में अनुभूति का कथन है। भाई ! 'कलशटीका' में आया न ? अथवा प्रभु ! चार अनुयोग वीतराग की वाणी है। चारों अनुयोग का सार और तात्पर्य वीतरागता है। आ...हा...हा... ! यह वीतरागता, शान्ति है, किन्तु वह वीतरागता कब प्रगट हो ? कि मैं पर से उदास और मैं ज्ञाता (हूँ) – ऐसी दृष्टि हो, तब शान्ति अर्थात् वीतरागता प्रगट होती है। आ...हा...हा... ! यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं – शुभभाव करो, करते-करते शुद्धता होगी। अरे... ! प्रभु ! आ...हा... ! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी ? – लहसुन ! वह बात झूठ है। आ...हा...हा... ! ऐसे राग-क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करो, उसके आधार से निश्चय प्रगटेगा... वह तो अशान्ति है। आ...हा...हा... !

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भगवान ज्ञाता-दृष्टा का अस्तित्व तत्त्व है, उसके आधार से शान्ति और धर्म प्रगट होगा। राग से उदास होकर अन्तर्मुख ज्ञाता में दृष्टि लगाने से 'निवृत्त' - ऐसी दशा हो, उसमें शान्ति है। आ...हा...हा... !

स्वयं अपने को जाने... उसका स्पष्टीकरण किया। मैं ज्ञाता हूँ — ऐसा स्वयं अपने को जाने। आ...हा... ! मैं तो जानन-देखन, आनन्दस्वरूप प्रभु — ऐसा अपने को, स्व का आश्रय लेकर, स्वसन्मुख होकर जाने। शब्द थोड़े परन्तु भाव बहुत गहरे (हैं)। आ...हा...हा... ! **स्वयं अपने को जाने...** पर से नहीं, स्वयं (अपने को जाने)। अपना स्वरूप आनन्द और सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप (है - ऐसे) अपने को स्वयं अपनी निर्मलपर्याय से जाने। आ...हा...हा... !

स्वयं अपने को... अपने से (जाने)। राग से जानने में नहीं आता; व्यवहार से जानने में नहीं आता। आ...हा...हा... ! स्वयं अपने से अपने को जाने। निर्विकल्पस्वरूप भगवान आत्मा! वह निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प ज्ञान से अपने को जाने। आ...हा... ! ऐसी बहुत जिम्मेदारी! बहुत शर्तें! आ...हा...हा... ! क्या हो ? (सुनने को) मिला नहीं, इसलिए बेचारे (लोगों को कठिन लगता है)। जहाँ स्वयं नहीं है, वहाँ स्वयं का अस्तित्व टिकाकर बैठे हैं। जहाँ स्वयं का अस्तित्व है, वहाँ अन्दर दृष्टि लगाकर, राग से उदास होकर, स्वभाव में अपनी दृष्टि को लगाना। आ...हा... ! स्वयं अपने को जाने। राग से जानने में नहीं आता, निमित्त से जानने में नहीं आता, व्यवहार की क्रियाकाण्ड से जानने में नहीं आता। आ...हा... ! ऐसी बात!

जन्म-मरण के दुःख, बापू! चौरासी के अवतार में (भटक रहा है)। चौरासी लाख योनि, चौरासी लाख योनि! एक-एक उत्पत्ति योनि के स्थान में अनन्त बार उत्पन्न हुआ। पर को अपना मानकर, अपने स्वरूप का अनादर करके... आ...हा...हा... ! ऐसी चौरासी लाख योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ। आ...हा...हा... ! माता के गर्भावास में भी अनन्त बार बारह-बारह वर्ष तक रहा, ऐसा सिद्धान्त (में लिखा) है। पेट में नौ महिने रहता है, वह तो साधारण (बात है) परन्तु कोई-कोई तो बारह-बारह वर्ष रहते हैं। बारह वर्ष की कायस्थिति है। बारह वर्ष रहे और (फिर) जन्मे। आ...हा...हा... ! वह स्थिति कैसी

www.vitragvani.com

होगी ? आ...हा... ! यहाँ नाक बन्द करे, मुँह बन्द करे तो श्वाँस बन्द (हो जाये तो) चिल्लाने लगता है। (कोई) दुश्मन होय (उसे) मार देना हो तो ऐसा करे। श्वाँस छूट जाये। बहुत छुरे नहीं मारे परन्तु (मुँह) बन्द करे तो श्वाँस उड़ जाये। आ...हा...हा... ! इतनी बार दुःख (सहे)। बारह-बारह वर्ष माता के पेट में (रहा)। एक बार नहीं, एक बार छूटकर दूसरी बार (आता है)। ऐसे अनन्त बार, ऐसे अनन्त बार (हो गया)। आ...हा... ! समझ में आया ? आ...हा...हा... !

प्रभु ! (तू) दुःख से उदास हो जा। तेरे में आनन्द पड़ा है, प्रभु ! तू अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है। आ...हा...हा... ! अरे... ! बालक, जवान और स्त्री तो देह की स्थिति है। प्रभु ! तेरी दशा अन्दर... आ...हा... ! अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि दशा, शक्ति से भरा पड़ा प्रभु तुम हो। आ...हा...हा... ! और राग, दया, दान, व्रत, देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहार श्रद्धा का विकल्प जो राग है, उससे भी तेरी चीज तो प्रभु भिन्न है अन्दर। स्वयं उसको अपने से जान। राग से जानने में आता नहीं। दया, दान, व्रत का परिणाम तो विकार है, उससे अविकारी (स्वरूप) जानने में आता नहीं। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? थोड़े शब्द, भाव भरपूर भरे हैं। आ...हा...हा... ! गुजराती समझते हैं ? यह हिन्दी तो सादी भाषा है। आ...हा...हा... ! अरे...रे... !

जहाँ पाताल कुआँ पड़ा है अन्दर। अन्दर गहराई में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ऐसा जो प्रभु आत्मा (है), वहाँ दृष्टि कर और राग की दृष्टि उठा दे। चाहे तो व्यवहार राग हो, उसकी दृष्टि उठा दे और स्वयं अपने को जान। राग की अपेक्षा छोड़कर अपने को जान। राग की अपेक्षा छोड़कर अपने को जान। आ...हा...हा... ! ऐसा उपदेश ! व्यवहार के क्रियाकाण्ड के रसिक को ऐसी बात कठिन लगती है, एकान्त लगती है। लगे, लगे बेचारों को, अन्दर वस्तु क्या है ? चैतन्यहीरा, अनन्त अनन्त शक्ति का सागर, अनन्त गुण का गोदाम, अनन्त-अनन्त दर्शन, ज्ञानादि अनन्त गुण का तो गोदाम प्रभु है। आ...हा...हा... ! ज्ञान, दर्शन अनन्त शक्ति का तो संग्रहालय है। संग्रह का आलय - स्थान है। स्वभाव का सागर, शक्ति का संग्रहालय, गुण का गोदाम ! आ...हा...हा... ! ऐसा कहाँ (है) ? वहाँ अन्तर में दृष्टि लगा। स्वयं अपने को जान। आ...हा...हा... !

www.vitragvani.com

अन्तर की ज्ञानक्रिया द्वारा, सम्यग्दर्शन की पर्याय द्वारा उसको जान और उसको मान। आ...हा...हा... ! और उसको मान (अर्थात्) अनुभव कर। जानना, मानना और अनुभवना। आ...हा...हा... ! आहा...हा... ! ऐसा मार्ग सुनने मिले नहीं, (इसलिए) कठिन पड़े। क्या करे ? फिर तो ऐसा ही कहे न ! 'सोनगढ़' के साहित्य का बहिष्कार ! अरे... ! भगवान ! प्रभु ! तू क्या करता है ? 'सोनगढ़' का साहित्य कहाँ है ? वह तो परमाणु की पर्याय है। उसका भी लक्ष्य छोड़ और उसकी प्रीति का राग है, उसका भी लक्ष्य छोड़। आ...हा...हा... !

स्वयं अपने को जाने और पर का अकर्ता हो... उदासीन कहा था न ? राग - दया, दान, भक्ति के राग का भी अकर्ता हो, क्योंकि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। वह चिदानन्द प्रभु, राग का कर्ता कैसे हो ? आ...हा...हा... ! बड़े कारखाने बनाते हैं न ! कौन बनाये ? प्रभु ! सुन तो सही। आ...हा...हा... ! निज क्षण में जो जड़ की पर्याय वहाँ उत्पन्न होनेवाली है तो होती है। आ...हा...हा... ! यहाँ तो (कहते हैं), पर का तो अकर्ता जान, परन्तु राग का भी अकर्ता जान। आ...हा...हा... ! तब तुझे सम्यग्दर्शन में शान्ति होगी। आ...हा...हा... ! आ...हा...हा... ! है ?

पर का अकर्ता हो.... उदासीन कहा था न, उसका अर्थ किया। **तो मोक्षमार्ग की धारा प्रगटे....** आ...हा...हा... ! बन्धन के भाव से मुक्त / अकर्ता हो और स्वभाव की दृष्टि में जा (तो) तुझे मोक्ष(मार्ग की) धारा प्रगट होगी। मोक्षमार्ग की धारा ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्षमार्ग का प्रवाह - धारा है, वह तुझे प्रगट होगी। आ...हा...हा... ! थोड़े शब्द में बहुत (भाव) भरे हैं।

मोक्षमार्ग की धारा.... धारा अर्थात् परिणति। राग का अकर्ता और स्वभाव की शक्ति का सम्यग्दर्शन, ज्ञान में भान। तुझे मोक्षमार्ग (अर्थात्) बन्धन से छूटने का मोक्ष का मार्ग, स्व आश्रय से प्रगट होगा। वह धारा हमेशा बहेगी। आ...हा...हा... ! भाषा थोड़ी (है)। ऐसा मार्ग है, भाई ! क्या हो ? दु:खी हुआ। देखो न, अभी नहीं आया ? कुएँ में आठ लोग मर गये। कुँए ! कौन-सा गांव कहा ? 'कोडिनार' ! कुँए में पानी ऐसा निकला, गैस निकली थी। जैसे यह पेट्रोल निकलता है। अपने यहाँ ठण्डा पानी निकलता है (वैसे उसमें से) गैस निकला। साथ में कुंआ था, वह अच्छे पानी से भरा (था) और इसमें कहीं

www.vitragvani.com

से (गैस) आ गया। वह अन्दर देखने गया तो मर गया, दूसरा देखने गया तो वह भी मर गया, तीसरा, चौथा वैसे आठ (लोग) मर गये। आ...हा...हा... ! प्रभु! ऐसे अनन्त भव तूने सम्यग्दर्शन बिना किये हैं।

राग का अकर्तापना और स्वभाव का भान, वह मोक्ष का मार्ग है। बन्धन से छूटने का तो वह मार्ग है। आ...हा...हा... ! कठिन लगे, परन्तु मार्ग तो यह है। दुनिया ने बाहर में चला लिया है कि ऐसा करो, ऐसा करो। व्रत पालो, तपस्या करो, उपवास करो, भक्ति करो। उससे नहीं होता, ऐसा माननेवाले को एकान्त कहते हैं। अरे... प्रभु! तुझे मालूम नहीं है, बापू! 'इसमें कितनी बुद्धि है, इतनो दिये बताय, वांको-बुरो न मानिये और कहाँ से लाय?' उसे जैसा भासित हुआ हो, ऐसा कहे। आ...हा... ! बापू! सब मालूम है। आ...हा...हा... ! तेरा नाथ अन्दर वीतरागमूर्ति विराजमान है। वीतरागमूर्ति है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे' वह 'समयसार नाटक' का वचन है, कलश में है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे' वह तो वीतरागमूर्ति प्रभु है। आ...हा...हा... ! शाश्वत् ध्रुव चेतन वीतरागमूर्ति प्रभु (है), उसे स्वयं को राग की अपेक्षा छोड़कर अपने को जान। आ...हा... ! पर का अकर्ता हो (तो) मोक्षमार्ग की धारा प्रगटे।

और साधकदशा का प्रारम्भ हो। ओ...हो...हो... ! तब स्वरूप के साधक की दशा की शुरुआत होती है। यह तो शुरुआत है। आ...हा...हा... ! भाषा है न? हिन्दी तो आप के यहाँ आ गया है न? हिन्दी! देखा है न सारा? आ गया, भेट में आ गया। हिन्दी में भेंट पुस्तक आ गया। सब को भेद दिया है। पौने सात हजार हिन्दी ग्राहक हैं और पौने चार हजार ग्राहक गुजराती हैं। सब को भेंट (दिये हैं)। सात-सात रुपये का एक (पुस्तक) पड़ी है। अरे... ! देखे तो सही क्या चीज है? तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव प्रभु! कौन-सी पद्धति से मोक्षमार्ग कहते हैं? आ...हा...हा... !

साधकदशा का प्रारम्भ हो। इससे तो साधकदशा की शुरुआत होती है। तुरन्त केवलज्ञान हो, वह तो पीछे (होता है)। साधक - धर्म की, साधकदशा की शुरुआत ऐसे होती है कि मैं पर से उदास हूँ, मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ — ऐसी निवृत्तदशा में शान्ति है, पर का अकर्ता हूँ, स्वयं अपने को मैं जाननेवाला हूँ। आ...हा...हा... ! मोक्षमार्ग की परिणति-धारा

बहेगी। आ...हा...! तब तो साधकदशा की शुरुआत होगी। धर्म की साधकदशा की शुरुआत होगी। आ...हा...हा...! ऐसी बात है। ८४ (बोल पूरा) हुआ। चौरासी के अवतार (खत्म हो ऐसा) उसमें आ गया। चौरासी लाख के अवतार! डंका बजा, देखो! चौरासी लाख योनि के अवतार का अन्त इस स्थिति में है। आ...हा...हा...!

शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं। वे न प्रगटें तब तक और बाद में भी देव-शास्त्र-गुरु की महमा, स्वाध्याय आदि साधन होते हैं। बाकी तो, जो जिसमें हो उसमें से वह आता है, जो जिसमें न हो वह उसमें से नहीं आता। अखण्ड द्रव्य के आश्रय से सब प्रगट होता है। देव-गुरु मार्ग बतलाते हैं परन्तु सम्यग्दर्शन कोई दे नहीं देता॥ ८५॥

८५। **शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं।** खुले शब्द रखे हैं। गम्भीर (है)! शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु, नित्यानन्द ध्रुव, अकेला शान्त और आनन्दरस से भरा पड़ा प्रभु, ऐसा आत्मा। **शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि देने से...** राग पर नहीं, निमित्त पर नहीं, पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर भी (दृष्टि) नहीं। आ...हा...! **शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि देने से...** त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द प्रभु पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होगा। धर्म की प्रथम साधकदशा प्रगट होगी। आ...हा...हा...! और सम्यग्ज्ञान होगा। शुद्ध दृष्टि द्रव्य पर देने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा। व्यवहाररत्नत्रय से सम्यग्दर्शन होगा और ज्ञान होगा (- ऐसा) तीन काल में (है) नहीं। आ...हा...हा...!

वे न प्रगटे, तब तक.... है न? **वे न प्रगटे, तब तक और...** और आया न? **और बाद में भी....** न प्रगट हो, तब और बाद में भी, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो थी। **देव-शास्त्र-गुरु की महिमा...** सर्वज्ञ परमात्मा देव-गुरु निर्ग्रन्थ मुनि। अन्तर में और बाह्य में जिसकी निर्ग्रन्थ दशा (है) और शास्त्र (अर्थात्) भगवान सर्वज्ञदेव ने कहे हुए शास्त्र, उसकी महिमा आती है। स्वरूप न प्रगटे, तब भी आती है और स्वरूप प्रगट होने के बाद भी आती है। आ...हा...हा...!

देव-शास्त्र और गुरु, उनकी महिमा, **स्वाध्याय आदि...** शास्त्र का श्रवण, गुरु का

www.vitragvani.com

सत्समागम आदि साधन – व्यवहार साधन कहने में आता है। यह साधन तब कहने में आता है कि जब स्वरूप का साधन, राग से भिन्न किया तो इसको साधन कहने में आता है। आ...हा...हा... !

मुमुक्षु : भिन्न साधन...

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न साधन ऐसा आता है। जब (तक) सम्यग्दर्शन न हो तब तक देव-गुरु-शास्त्र की महिमा का विकल्प आता है और सम्यक् अनुभव हुआ बाद में जब तक वीतरागता न हो, तब तक देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति की महिमा का राग आता है। वे निमित्त के रूप में हो परन्तु उससे आत्मा का कल्याण होगा, वह (बात) नहीं (है)। आ...हा...हा... ! उससे धर्म होगा, वह (बात) नहीं। आ...हा...हा... !

मुमुक्षु : उसके बिना भी नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना ही होता है परन्तु होता है इतना सिद्ध करने को साधन कहा, आरोप से (कहा)। सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की महिमा आती है। सम्यग्दर्शन होने से पहले और सम्यग्दर्शन होने के बाद भी महिमा आती है। निर्ग्रन्थ गुरु-आत्मा के आनन्द में रमनेवाले, प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करनेवाले (वैसे) गुरु। आ...हा... ! उसकी साधकदशा में उनकी महिमा (आती है)। साधकदशा प्रगट होने से पहले भी और बाद में भी (महिमा) आती है, परन्तु पहले आयी तो उससे सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं; और सम्यग्दर्शन होने के बाद आती है तो उससे सम्यग्दर्शन टिक रहा है, ऐसा भी नहीं। आ...हा...हा... ! ऐसी बात है। **आदि साधन होते हैं।**

बाकी तो, जो जिसमें हो... ऐसा कहकर कहा क्या ? कि व्यवहार साधन में कहीं आत्मा है नहीं। आ...हा...हा... ! पहले और बाद में आता है परन्तु **बाकी तो, जो जिसमें हो, उसमें से वह आता है,...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र (की) शक्ति आत्मा में है, उसमें से आता है। राग में से सम्यग्दर्शन, ज्ञान आता है; साधन कहा तो उसमें से आता है – ऐसा नहीं। आ...हा...हा... ! समझ में आता है न ? भाषा तो (सरल है)। भाई ने (हिन्दी में लेने को) कहा और वैसे भी विचार आया था कि सत्ताईस दिन से चल रहा है तो कोई हिन्दी

www.vitragvani.com

आये तो रिकार्डिंग सुन सके। उसमें उतरेगा न और उसे कोई बाहर ले जायेंगे। रिकार्डिंग (टेप) ले जाते हैं न? बहुत लोग उतारकर ले जाते हैं। आ...हा...हा...!

अरे...! प्रभु! तू कहाँ है? जहाँ है, वहाँ व्यवहार है ही नहीं – ऐसा कहते हैं। आया न? **जिसमें न हो, वह उसमें से नहीं आता।** जो राग आया, उसमें आत्मा नहीं है तो वहाँ से आत्मा प्रगट नहीं होता। आ...हा...हा...! **जिसमें न हो, वह उसमें से नहीं आता। अखण्ड द्रव्य के आश्रय से सब प्रगट होता है।** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र — मोक्ष का मार्ग, वह तो अखण्ड द्रव्य जो चैतन्य है... आ...हा...हा...! उसके आश्रय से सब प्रगट होता है। सब अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्दादि सब (शुद्ध पर्यायें) अखण्ड द्रव्य के आश्रय से प्रगट होती हैं। आ...हा...हा...! ऐसी बात कठिन लगती है। उसका कुछ साधन (है)? द्रव्य में साधन नाम का – करण नाम का गुण पड़ा है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ऐसे गुण आत्मा में हैं, अनादि से हैं। उसको पकड़ने से साधन उसमें से आता है। आ...हा...! रागादि साधन है ही नहीं। आता है, होता है, (किन्तु साधन नहीं होता)। आ...हा...हा...!

जो जिसमें न हो, वह उसमें से नहीं आता। राग में प्रभु आत्मा नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय उसमें से आती नहीं। भगवान आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र परिपूर्ण पड़ा है, उसमें से, उसके आश्रय से आता है। उसमें से और उसके आश्रय से। राग से और राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं होता। आ...हा...हा...! अरे...! प्रभु! एक बार वह सुने कि यह चीज क्या है अन्दर? आ...हा...हा...! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा, उनकी वाणी है, उस वाणी में से ये सब निकला है। समझ में आया? आ...हा...हा...!

उसमें से नहीं आता। अखण्ड द्रव्य के आश्रय से... अखण्ड का अर्थ? पर्याय का आश्रय भी नहीं। राग का आश्रय तो नहीं, निमित्त का तो नहीं, देव-गुरु के निमित्त से सम्यग्दर्शन होता है – ऐसा तो नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग है, उसमें से नहीं और राग को जाननेवाली वर्तमान पर्याय है तो पर्याय के आश्रय से भी नहीं। आ...हा...हा...! 'विरला जाने तत्त्व ने, विरला समझे कोई, विरला सुने कोई' आ...हा...! ऐसी चीज है। दस-दस हजार आदमी इकट्ठे हों और हो... हा... हो... (चले)। नग्न दशा, इतने परीषह

www.vitragvani.com

सहन करें, उपसर्ग सहन करें वस्त्र नहीं... आ...हा...हा... ! हो...हा... हो...हा... (चलती है)। वह सब तो बाह्य की महिमा है। आ...हा... !

वह आया है न, 'समयसार' (की) अन्तिम गाथा में। बाह्य लिंग। बाह्य लिंग अर्थात् व्यवहार की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति आदि जो (है), वह भी बाह्य लिंग, बाह्य भेष है, वह अपना भेष (स्वरूप) नहीं। वह द्रव्यलिंग है। नग्नपना द्रव्यलिंग है और अट्ठाईस मूलगुण (का) विकल्प उठता है, वह भी द्रव्यलिंग है। वह बाह्य भेष है, वह अन्तर स्वरूप का भेष नहीं। आ...हा...हा... ! अन्तर स्वरूप का भेष तो अतीन्द्रिय आनन्द प्रचुर स्वसंवेदन (हो), वह अन्तर का भेष है। आ...हा... ! प्रत्येक बात में अन्तर है। मार्ग ऐसा है, भाई! भले जगत को नहीं बैठे, इसलिए सत्य कहीं असत्य हो जाता है? आ...हा...हा... ! और उसे माननेवाले की संख्या थोड़ी हो, इससे सत्य को कोई आँच है? सत्य तो सत्य ही है, भले एक-दो माने। आ...हा...हा... ! सत्य को संख्या की जरूरत नहीं कि लाखों मनुष्य माने तो वह सत्य (है), ऐसा कुछ नहीं। आ...हा...हा... ! एक (जीव) भी सत्य जैसा पूर्णानन्द अखण्डानन्द है (वैसा) माने, उसका आश्रय करके एक ही (जीव) माने तो भी सत्य तो सत्य ही है। आ...हा...हा... ! यह जिनेश्वरदेव की वाणी (है)। समझ में आा? आ...हा... ! ***बहिन को तो बाहर नहीं आना था लेकिन यह बाहर आ गया।*** देखो न, वाणी तो देखो! आ...हा...हा... ! अनुभवी की इतनी वाणी, वह अमृतवाणी है। बहुत सादी भाषा में आ गया है। सादी कोमल गुजराती (भाषा में आ गया है)। आ...हा...हा... ! समझ में आया कुछ? आ...हा... ! क्या कहा?

जो जिसमें न हो, वह उसमें से नहीं आता। अर्थात् जो राग और व्यवहार है, उसमें आत्मा नहीं, उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान की शक्ति नहीं (है)। शक्ति तो आत्मा में है। सम्यक्श्रद्धा, चारित्र वह तो पर्याय प्रगट है, परन्तु त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली आनन्द तो आत्मा में शक्तिरूप है। आ...हा...हा... ! **अखण्ड द्रव्य के आश्रय से सब प्रगट होता है।** सब की व्याख्या (क्या)? अखण्ड चैतन्य प्रभु पूर्ण के आश्रय से सम्यग्दर्शन, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान, उसके आश्रय से चारित्र, उसके आश्रय से आनन्द, उसके आश्रय से स्वच्छता, उसके आश्रय से प्रभुता, उसके आश्रय से शुक्लध्यान, उसके आश्रय से केवलज्ञान (प्रगट होता है)। आ...हा...हा... !

www.vitragvani.com

बालकों को भी यह समझने जैसा है। देह चला जाता है, देखो न! आ...हा...हा...! देह की स्थिति में कब, कौन-सा रोग आये (क्या पता) ? आ...हा...हा...! अभी अखबार में आया नहीं ? शादी हो रही है। (अन्दर) कितना उल्लास होगा ? पति-पत्नी शादी में बैठे हैं और शादी के मन्त्रजाप करते हैं न, वह करते हैं, उतने में लड़के को हार्ट फेल हो गया। आ...हा...हा...! वहीं मर गया। मण्डप के नीचे पति-पत्नी दोनों (बैठे हैं)। बापू! देह की स्थिति (ऐसी है)। अभी अखबार में आया है, नेमचन्दभाई! 'बिहार' में मण्डप के नीचे शादी के प्रसंग में बिठाया था, मन्त्रजाप करते थे, उतने में वह मर गया, हार्ट फेल हो गया। आ...हा...हा...! देह की स्थिति पूरी हो, उसमें कोई दूसरा कारण बनता नहीं। आ...हा...! उसे कितना उल्लास होगा! शादी का प्रसंग और दोनों आकर बैठे। शादी के मन्त्रजाप हो रहे हैं, वहाँ वह मर जाता है। आ...हा...हा...! अखबार में आया है। 'बिहार' में कौन-सा गाँव कहा ? 'बिहार' सरीफ का स्टेशन है। उसमें शादी के मण्डप में नीचे दूल्हा उड़ गया। आ...हा...हा...! ऐसी स्थिति में क्या हो ? प्रभु! वह तो मरकर कहीं पशु होता है। अरे...रे...! आर्य हो तो माँसादि खाते नहीं हों और धर्म तो है नहीं और आर्तध्यान (होता है)। शादी करनी है, बाद में ऐसा करना है, ये करना है। अरे...रे...! ऐसे कषाय की तीव्रता (में देह छूटता है)। अरे...रे...! शरीर छूटता है तो पशु में जाता है। प्रभु! यह पर्दा बन्द हो गया। दूसरे पर्दे में अवतार (हो गया)। बहुत से लोग तो पशु में अवतार लेंगे। पञ्चेन्द्रिय पशु तिर्यञ्च बहुत है। आ...हा...हा...!

क्योंकि मनुष्य के भव अनन्त किये, उससे असंख्यगुने नरक के किये। नरक में कौन जाता है ? मनुष्य की संख्या से अनन्तगुने (जीव) वहाँ हैं। तिर्यञ्च में से नरक में जानेवाले बहुत (हैं)। और मनुष्य की संख्या से असंख्यगुने अनन्त भव नरक के किये, उससे असंख्यगुने देव के किये। मनुष्य से अनन्तगुने (तिर्यञ्च के भव) और उससे असंख्यगुने (देव के किये तो) वे सब पशु में से देव में जाते हैं। पशु में से नरक में और पशु में से (देव में जाते हैं)। आ...हा...हा...! और ऐसा एक नियम है... आ...हा...! कि नरक में भी कभी एक समय में असंख्य (जीव) उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु समान स्थिति में उत्पन्न नहीं होते। समझ में आया ? मनुष्य में भी समान स्थिति नहीं हो सकती। आ...हा...हा...! यहाँ मनुष्य में आये लो न! एक समय में तिर्यञ्च मरकर (मनुष्य में) आ

www.vitragvani.com

सकते हैं परन्तु असंख्य (जीव) नहीं आ सकते। यहाँ मनुष्य की संख्या ही थोड़ी है और असंख्य आ सकते नहीं। सम्मूर्च्छन असंख्य आये, गर्भज असंख्य नहीं आते, वह तो मर्यादा (में आते) हैं। पशु होकर स्वर्ग में आये तो भी कभी एक समय में तिर्यञ्च में असंख्य (जीव) जाये। परन्तु (सब) समान स्थिति में नहीं जाते। क्योंकि समान स्थिति में जाये तो असंख्य निकलकर जाये कहाँ? वहाँ से नरक में (तो जाते नहीं)। स्वर्ग में से नरक में (नहीं जाते), मनुष्य में आये तो संख्यात आये। आ...हा...हा...! यह अनादि भटकने की रीत। आ...हा...हा...! चौरासी के अवतार कर-करके दुःखी... दुःखी... दुःखी (हो रहा है), उसका कभी विचार किया नहीं। आ...हा...हा...!

नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्त बार (गया), दस हजार और एक समय की स्थिति में अनन्त बार (गया), दस हजार और दो समय की स्थिति में अनन्त बार (गया), वैसे तीन-चार-पाँच असंख्य (समय की स्थिति में गया)। असंख्य समय के बाद अन्तर्मुहूर्त में (गया)। प्रत्येक में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। आ...हा...हा...! और उसके अन्तर्मुहूर्त के दुःख, क्षण का दुःख, करोड़ों जीभ और करोड़ों भव से नहीं कह सकते। भगवान कहते हैं कि ऐसे दुःख उसे (हुए) हैं। उसमें अनन्त बार गया है परन्तु आत्मा का ज्ञान किये बिना ऐसा सब हुआ। आ...हा...हा...! ऐसे भव हुए। आ...हा...हा...!

...प्रगट होता है। अखण्ड द्रव्य के आश्रय से सब प्रगट होता है। सब अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, शुक्लध्यान, केवलज्ञान... आ...हा...हा...! सब स्व के आश्रय से प्रगट होते हैं। आ...हा...हा...! **देव-गुरु मार्ग बतलाते हैं,...** देव-गुरु मार्ग बताते हैं **परन्तु सम्यग्दर्शन कोई दे नहीं देता।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ से कहाँ आता है? यहाँ शक्ति में है, उनकी वाणी में कहाँ है? और इसकी सम्यग्दर्शन की शक्ति उनमें कहाँ है? इसमें शक्ति है, उसमें से सम्यग्दर्शन होता है। आत्मा में शक्ति है। श्रद्धा नाम की शक्ति अनादि-अनन्त अन्दर है। आ...हा...हा...! यह शक्ति, (अपनी शक्ति) देव-गुरु में नहीं है। आ...हा...हा...! तो उनसे तो सम्यग्दर्शन होता नहीं - ऐसा कहते हैं।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा देव, आत्मा गुरु और आत्मा धर्म; तीनों आत्मा है। बाहर के देव-गुरु-धर्म, व्यवहार है। आ...हा...हा... ! क्या कहा ?

देव-गुरु मार्ग बतलाते हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन कोई दे नहीं देता... क्योंकि उनके पास कोई सम्यग्दर्शन (की) पर्याय, इसके सम्यग्दर्शन की ताकत उनमें है नहीं। आत्मा में श्रद्धा नाम का गुण है, वह शक्ति त्रिकाल यहाँ पड़ी है, तो उसका आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन हो।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त के कथन हैं। चार मण का ढाई सेर चावल.... चावल तोलते हैं न ? गुणी ! गुणी अर्थात् बोरी.... बोरी ! चोर मण और ढाई सेर, उसमें ढाई सेर तो बोरी का है और चार मण चावल है। चावल की जगह बोरी की रसोई बना सकते हैं ? बोलने में तो साथ में आता है।

हमारी तो पालेज में दुकान थी न ! साथ में... बड़ी दुकान थी 'लोटिया वोरा' ! बड़ोदरा की ! पालेज में जहाँ हमारी दुकान थी। यह तो सत्तर वर्ष पहले की बात थी। वह बड़ी घोड़ी रखता, वह तो सब उड़ गया। अब तो एक बनिया आ गया, वह भी अभी मर गया। बड़ोदरा का, 'लोटिया बोरा' था। वह तोलता, हम दुकान पर बैठे हों, वहाँ सुनाई देता कि चार मण और अढ़ाई सेर परन्तु वह अढ़ाई सेर वारदान है और चार मण चावल है, लेकिन तोलने में साथ में बोला जाता है। यह चार मण में ढाई सेर का पैसा साथ में ले ले, दूसरा क्या होगा ? उस समय तो बोरी दो आने की थी, अब डेढ़ रुपये की होती है, चावल का जो वारदान होता है न, वारदान ? क्या कहते हैं ? बोरी ! उस समय दो आने, तीन आने की एक बोरी (आती थी) हमने तो व्यापार किया था। हमारे तो पचास, सौ, दौ सौ बोरी इकट्ठी हो, वारदान लेनेवाला आवे, तब हम दे देते थे। वह तीन आना देता, अभी खाली बोरी का तीन रुपया, लो ! ओहो ! परन्तु उस बोरी की कीमत क्या ? अन्दर माल की कीमत है; वैसे ही पुण्य के परिणाम, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग, वह तो बोरी है, वारदान है। आहाहा !

www.vitragvani.com

अन्तर भगवान अखण्ड द्रव्यानन्द प्रभु, उसके आश्रय से माल है, उसमें से माल निकलता है। आ...हा...! है ? आ...हा...! (कोई) सम्यग्दर्शन दे नहीं सकता। ऐसे, सम्यग्ज्ञान, ऐसे सम्यक्चारित्र। तो देव-गुरु-शास्त्र देते हैं ? 'प्रवचनसार' में 'चरणानुयोग' में तो ऐसा आता है (कि) देते हैं। लो, ये पञ्च महाव्रत और नग्नपना। वह तो निमित्त का कथन है। जब दीक्षा लेते हैं न, (तब) गुरु को कहते हैं, प्रभु! मुझे दीक्षा दो। पञ्च महाव्रतादि (दीजिए)। फिर गुरु देते हैं और उसने लिया, ऐसा पाठ है। चरणानुयोग की विधि में, कथन में निमित्त का ऐसा कथन आता है। समझ में आया ? द्रव्यलिंग गुरु देते हैं, ऐसा आता है। यहाँ ना कहते हैं। (देते हैं) वह तो निमित्त का कथन है। आ...हा...हा...!

'समाधिशतक' में तो कहा है, तू तेरा गुरु है क्योंकि समझनेवाला तो तू तुझे है। तो तू तेरा गुरु है। समझानेवाले गुरु हैं, लेकिन समझनेवाला तू है न ? तेरे को तूने समझाया, तो समझनेवाला तू है तो तू तेरा गुरु है। आ...हा...हा...! निश्चय से तो यह (बात) है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निमित्त का कथन (है)। बाहर में गुरु होते हैं, देशनालब्धि (होती है), लेकिन वह सब निमित्त (के कथन हैं)। वारदान की बात (है)। माल तो अन्दर यह है।

भगवान चैतन्यद्रव्य में माल पड़ा है। अनन्त गुण का माल है। अनन्त गुण (में) एक-एक गुण में अनन्ती पर्याय की शक्ति है। ऐसा अन्दर माल भरा है। उसके आश्रय से सब प्रगट होता है। सम्यग्दर्शनादि सब उसके आश्रय से होता है। व्यवहार के आश्रय से नहीं, निमित्त के आश्रय से नहीं, पर्याय के आश्रय से नहीं। आ...हा...हा...! त्रिकाली भगवान ब्रह्मानन्द प्रभु, उसके आश्रय से होता है। यहाँ तक रखो...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com

दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े, उसी काल उसकी निर्मलता होती है, वैसे ही विभावपरिणाम के समय ही तुझमें निर्मलता भरी है। तेरी दृष्टि चैतन्य की निर्मलता को न देखकर विभाव में तन्मय हो जाती है, वह तन्मयता छोड़ दे॥ ८६॥

आषाढ़ शुक्ल १, गुरुवार, दिनाङ्क ०६-०७-१९७८
प्रवचन-२९   वचनामृत - ८६-८९

'वचनामृत' का ८६वाँ बोल, ८५ हो गया है। हिन्दी (पुस्तक में) ३४ वां पन्ना है। गुजराती में कहाँ है ? सूक्ष्म विषय है, सूक्ष्म विषय है। **दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े....** अरीसा... अरीसा... शीशा! **दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े, उसी काल उसकी निर्मलता होती है,....** उसी काल में दर्पण में स्वच्छता की निर्मलता होती है। प्रतिबिम्ब पड़े, उसी काल में दर्पण में निर्मलता होती है। वह दृष्टान्त (दिया)।

वैसे ही विभावपरिणाम के समय ही तुझमें निर्मलता भरी है। आ...हा...! तेरी दृष्टि, निर्मल सम्यक् चैतन्यमूर्ति, उस पर यदि दृष्टि हो तो जहाँ रागादि प्रतिबिम्ब दिखे, उसी समय वह निर्मलता में दिखती है। निर्मलता उसमें भरी है। आ...हा...हा...! रागादि पर्याय (होने के) काल में उसी समय निर्मलता भरी है। निर्मलता से निर्मलता जानने में आती है और निर्मलता में राग है, वह प्रतिबिम्बरूप जानने में आता है। आ...हा...! ऐसा मार्ग है।

वैसे ही विभावपरिणाम के समय... पर्याय में पुण्य और पाप का भाव, विभाव भाव होता है, उसी समय आत्मा तो निर्मलानन्द है। निर्मल आनन्द और निर्मल ज्ञान से अपने को जानता है और उसको जानता है कि यह परचीज है। आ...हा...हा...! समझ में आया? जन्म-मरण से रहित होने की चीज कोई अलौकिक है। बाकी तो जन्म-मरण अनन्त काल से करता है।

www.vitragvani.com

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय में जब विकार होता है, तब उसी समय में द्रव्य तो निर्मलता से भरा ही है। वस्तु है, वह कोई विकारमय होती नहीं। आ...हा...हा...! निर्मलानन्द प्रभु, अपने को निर्मल जानता है और राग को भी, निर्मलता में 'यह है', ऐसा जानता है। यह वस्तु की मर्यादा और स्थिति है। आ...हा...!

बहिन के शब्द में तो वह आया है न! आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप है — ऐसा भान हुआ, उसमें से राग में आते हैं (तो ऐसा लगता है) अरे...! हम परदेश में कहाँ चले गये? आ...हा...हा...! डाह्याभाई! आ...हा...हा...! हमारा स्वदेश तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरा है। उसमें से ये दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं... आ...हा...हा...! वह तो परदेश में गया, वह हमारा समाज नहीं। इसमें (आता) है।

मुमुक्षुः आज तो परदेश में जाए वे बड़े गिने जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में, परदेश में जाये और करोड़पति हो, सब भिखारी हैं। आ...हा...हा...!

यहाँ तो अन्तर निर्मल आनन्द और निर्मल ज्ञान की लक्ष्मी पूर्ण भरी है, उस ओर देखनेवाले को, अपनी चीज निर्मल देखते हैं और रागादि होता है तो उसका तो निर्मलता में सहज ज्ञान (हो जाता है), उस समय की ज्ञान की विकास शक्ति से जानने में आता है। सूक्ष्म है, भाई! आ...हा...! अनन्त काल से चौरासी लाख योनि में अनन्त अवतार किये। यह पहला अवतार नहीं है। तिर्यञ्च के, मनुष्य के, स्वर्ग के, नरक के अनन्तानन्त भव (किये)। (उसका) कारण (क्या)? कि, निर्मलानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि का अभाव और मलिनता है, वह मैं हूँ — ऐसी मान्यता के कारण चौरासी के अवतार में उसने जन्म लिये। आ...हा...हा...!

यहाँ तो यह कहते हैं कि जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब के काल में वह स्वच्छता भरी ही है। वैसे विकार के काल में भी... आ...हा...हा...! पर्याय में शुभ-अशुभ राग होता है, उस समय भी चैतन्य निर्मल है। द्रव्यदृष्टि जिसको हुई, उसको तो आत्मा निर्मल है — ऐसा भासित होता है; विकार मैं हूँ - ऐसा भासित नहीं होता। आ...हा...हा...! ऐसी बात! है?

विभावपरिणाम के समय ही तुझमें निर्मलता भरी है। आहा! तेरी दृष्टि

www.vitragvani.com

विभाव पर है परन्तु त्रिकाली ज्ञायकभाव निर्मल भरा है, उसकी दृष्टि नहीं (है)। जो खास चीज है, उसका आदर नहीं, त्रिकाली निर्मलानन्द प्रभु का स्वीकार और सत्कार नहीं और क्षणिक विकृत अवस्था का स्वीकार और कर्ता और सत्कार (करता है), वह मिथ्यादृष्टि है। आ...हा...हा...! **तेरी दृष्टि...** यह लिखा है न?

तेरी दृष्टि चैतन्य की निर्मलता को न देखकर... वस्तु निर्मलानन्द है, उसको न देखकर अकेले विभाव को देखता है। पुण्य और पाप का विकार जो होता है, (उस) क्षणिक विकृत (भाव को) देखता है और **विभाव में तन्मय हो जाती है,...** विभाव, विकार यही (मैं) हूँ। आ...हा...हा...! वह दृष्टि मिथ्यात्व है, अज्ञान है और विपरीत परिणति में उसको – अज्ञानी को विकार ही भासित होता है, वही परिभ्रमण का कारण है। आ...हा...हा...! ऐसा गम पड़े नहीं और बाहर की चीज की दृष्टि छोड़ नहीं सकता। उसे लगता है कि वे कोई महंगी चीज है। ये तो बहुत निश्चयाभास की बात करते हैं। आ...हा...! यह सत्य ही ऐसा है।

तेरा परमसत्य निर्मलानन्द प्रभु, जिसमें राग पर्याय में दिखता है, उसको भी अपनी शक्ति से जाननेवाला है; राग है तो उसको जानता है, राग के अस्तित्व से राग का ज्ञान होता है – ऐसा नहीं। अपने निर्मल स्वभाव के कारण से अपने अस्तित्व में अपनी स्व-परप्रकाशक शक्ति की निर्मलता के कारण राग जानने में आता है। अरे...! चौरासी के अवतार से फुरसत नहीं। आ...हा...! और अरबोंपति सेठिया हो... आ...हा...हा...! वह मरकर पशु में अवतार लेता है। आत्मा का ज्ञान नहीं और सच्चा सत्समागम किसको कहना? उसका पता नहीं तो उसका संग और परिचय नहीं (करता)। आ...हा...हा...! जिसमें आत्मज्ञान तो नहीं परन्तु पुण्यभाव भी नहीं। आ...हा...हा...! वस्तु की व्यवस्था जैसी है, उसका पता नहीं तो रागादि, पुण्यादि, दया, दानादि को अपना मानकर मिथ्यात्व दृष्टि का सेवन करके चार गति में रुलता है। शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, धन्धा तो बाहर रह गये, उस चीज को तो वह कर सकता नहीं। नहीं (कर सकता)? लोहे का बड़ा कारखाना है न? (इनका) बड़ा स्टील का कारखाना है। वहाँ जाता है न? आ...हा...हा...! वह तो जड़ की, परद्रव्य की अस्ति और परद्रव्य की पर्याय का कार्य (है)। उसमें आत्मा का कोई कार्य है नहीं। नेमचन्दभाई! आप को भी कारखाना है न?

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

नया किया है न। नया कारखाना बड़ा किया है। कच्चा था, तब चरण किये थे (पधारे थे)।

मुमुक्षु : उद्योगपति......

पूज्य गुरुदेवश्री : उद्योगपति किसको कहना? पाप के उद्योगपति हैं। पर की क्रिया तो कर सकते नहीं। आ...हा...हा...! मैं ऐसा कारखाना बनाऊँ और ऐसे कारखाने में ऐसी कमाई होगी, उसमें ऐसा खर्च होता है, पाँच-दस हजार का खर्च होता है तो दो-चार लाख की कमाई होती है। ऐसी राग की, अज्ञान की दशा में तन्मय हो जाता है। आ...हा...हा...! अपने को भूल जाता है कि मैं कौन हूँ? भगवान अन्दर सत्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु है। आ...हा...हा...! शरीर की जवानी, शरीर की सुन्दरता, पैसे की सुन्दरता, मकान की (सुन्दरता), उस सुन्दरता में घुस गया। आ...हा...हा...! मेरा नाथ सुन्दर आनन्दकन्द है, मेरी सुन्दरता के समक्ष जगत की कोई सुन्दरता है नहीं। आ...हा...! ऐसा भगवान आत्मा सुन्दर-सुन्दर नाथ, निर्मल नाथ (है), उसकी तो दृष्टि नहीं और विभाव जो रागादि होते हैं, वहाँ तन्मय हो जाता है। आ...हा...हा...!

चैतन्य की निर्मलता को न देखकर विभाव में तन्मय हो जाती है,... देखा? धर्मी जीव को तो निर्मलता का भान है तो राग आता है, उसमें तन्मय नहीं होता। वह तो अपनी ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य से व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है, उसको-राग को छूये बिना जानते हैं। राग को छूये बिना जानते हैं और यह (अज्ञानी) राग में तन्मय हो जाता है। आ...हा...हा...! समझ में आया? आ...हा...हा...!

वह तन्मयता छोड़ दे। पर्यायबुद्धि में रागादि, पुण्यादि, पाप का भाव हुआ; स्वभाव की दृष्टि के अभाव में उसमें तन्मयता है, वह पूरी पर्यायबुद्धि में लीन है। (उसे) छोड़ दे, प्रभु! आ...हा...हा...! तेरा नाथ निर्मलानन्द पड़ा है न अन्दर! सच्चिदानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है न! स्वयं ज्योति सुखधाम! आनन्द का स्थान है न! विभाव तो दुःख दुःखदशा है। चाहे तो शुभ-अशुभ हो, परन्तु दोनों दुःखदशा हैं। भगवान आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। यह कहाँ से कहाँ ले जाना! बाहर की यह मिठास, प्रेम न छूटे, तब तक अन्दर में देख नहीं सकता। आ...हा...हा...! जिसके अस्तित्व में पर का अस्तित्व भासित हो, पर की अस्ति, रागादि और परपदार्थ की अस्तित्वता भासित हो, पर

www.vitragvani.com

की मौजूदगी भासित हो, उसे अपनी मौजूदगी अन्तर में नहीं भासित होगी। आ...हा...हा... ! अपनी मौजूदगी भासित हुई (कि) यह तो निर्मलानन्द सच्चिदानन्द प्रभु है, तो विभाव में तन्मय नहीं होकर, विभाव को छुये बिना उसका ज्ञान करता है, वह अपना ज्ञान है। अपने ज्ञान में-पर्याय में तन्मय है। आ...हा...हा... ! वह ८६ (बोल पूरा हुआ)।

'मुझे पर की चिन्ता का क्या प्रयोजन ? मेरा आत्मा सदैव अकेला है' ऐसा ज्ञानी जानते हैं। भूमिकानुसार शुभभाव आयें परन्तु अन्तर में एकाकीपने की प्रतीतिरूप परिणति निरन्तर बनी रहती है॥ ८७॥

मुझे पर की चिन्ता का क्या प्रयोजन ?... अपना आनन्द और ज्ञानस्वरूप के सिवा प्रभु ! रागादि और परद्रव्य की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन (है) ? आ...हा...हा... ! जहाँ-जहाँ जो चीज है, तहाँ वह चीज रहेगी। तेरे संकल्प-विकल्प से उसमें कुछ फर्क पड़े - ऐसा है नहीं। आ...हा...हा... ! जिस काल में, जिस क्षेत्र में, जिस द्रव्य की जो पर्याय जैसी होनेवाली है तो होगी। आ...हा... ! तेरे कारण से उसमें कोई फेरफार हो जाए - ऐसा है नहीं। आ...हा...हा... !

'मुझे पर की चिन्ता का क्या प्रयोजन ? मेरा आत्मा सदैव अकेला है'.... मैं तो अकेला (हूँ)। राग का द्वैतपना भी मेरे में नहीं। आ...हा...हा... ! दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय का जो राग (आता है), उसका भी... मैं अकेला (हूँ), उसमें द्वैतपना नहीं। आ...हा...हा... ! मैं तो अकेला हूँ। आ...हा...हा... ! मेरे अस्तित्व में, मौजूदगी में रागादि और परद्रव्य का अस्तित्व तो है नहीं, तो मैं द्वैत हूँ, रागसहित या परसहित (हूँ) - ऐसा तो है नहीं। अकेला अद्वैत है। आ...हा...हा... ! अद्वैत का अर्थ, वेदान्त कहते हैं, वह नहीं। वेदान्त कहते हैं कि अद्वैत है, वह नहीं। यह तो अद्वैत अर्थात् मेरी चीज में राग और परद्रव्य के अस्तित्व का मिलाप नहीं, ऐसा मैं अद्वैत हूँ। वेदान्तादि कहते हैं, अद्वैत है, वह नहीं; सर्व व्यापक है, वह नहीं। परन्तु सर्व व्यापक है, उसका निर्णय कौन करता है ? पर्याय (करती है), तो पर्याय द्वैत हो गई। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? द्वैत हो गया न ! मैं सर्व व्यापक हूँ। ऐसी दूसरी चीज नहीं। दूसरी नहीं, उसकी नास्ति तो उसमें आ गई। ख्याल में तो आ गया

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

(कि) दूसरी चीज है। मैं व्यापक हूँ, मैं व्यापक हूँ, मैं सर्व व्यापक हूँ – (ऐसा) किसने निर्णय किया? द्रव्य-गुण में निर्णय होता है? वह तो ध्रुव है और पर्याय को तो मानी नहीं। एक ही चीज मानी।

बहुत चर्चा हुई थी। वह 'राजकोटवाला' आया था न? मोतीलाल, वैष्णव था, पहले व्याख्यान में आता था, फिर परमहंस हो गया। परमहंस! यहाँ आया था, 'राजकोट' में आया था। खूब चर्चा हुई। कबूल तो किया कि दूसरी कोई चीज तो है। नहीं तो अद्वैत... क्योंकि अकेला अद्वैत ही मानो तो तुम उपदेश करते हो कि तुम आत्यन्तिक दुःख से मुक्त हो, तो वह दुःख है या नहीं? भले क्षणिक हो। आ...हा...हा...! दुःख से आत्यन्तिक मुक्त हो, ऐसा उपदेश है या नहीं? तो वह उपदेश किस कारण से है? अन्दर कोई दुःख की दशा है और आनन्दप्रभु है। उसका स्वरूप आनन्द है। उसकी पर्याय में दुःख है, तो दुःख से आत्यन्तिक मुक्त हो तो पर्याय हो गई। दुःख की दशा पलटकर आनन्द की पर्याय आ जायेगी। वह तो पर्याय है। द्रव्य त्रिकाली और उसकी पर्याय दो (चीज) हो गई। समझ में आया?

यह अद्वैत तो दूसरा है। अद्वैत अर्थात् मैं तो मेरी पर्याय और द्रव्य मैं हूँ, परन्तु मेरे में राग और परद्रव्य का कोई सम्बन्ध नहीं। राग और परद्रव्य का अस्तित्व मेरी चीज में है नहीं। मैं ऐसा अद्वैत / अकेला हूँ। अकेला हूँ – ऐसा निर्णय करनेवाली पर्याय भी है। त्रिकाल ज्ञायक हूँ और मैं अकेला हूँ – ऐसा निर्णय करने की पर्याय भी दूसरी है। पर्याय में निर्णय करता है कि मैं तो अकेला हूँ। आ...हा...हा...!

(समयसार की) ३२० गाथा में आता है न? सदा निरावरण अखण्ड एक परम अविनाशी अविनश्वर परमपारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। निज परमात्मद्रव्य मैं हूँ। वह निर्णय तो पर्याय में हुआ। पर्याय में निर्णय हुआ तो पर्याय ऐसा निर्णय ऐसा करती है कि मैं तो त्रिकाली परमात्मद्रव्य सो मैं हूँ। आ...हा...हा...! आ...हा...हा...! (३२० में आता है।) सकल निरावरण अखण्ड एक... आ...हा...हा...! अविनश्वर। आ...हा...हा...! अद्वैत (है), परन्तु द्वैत (भी) है। पर्याय ऐसा निर्णय करती है कि मैं तो सदा सकलनिरावरण-आवरण बिना का अखण्ड एक अविनाशी

www.vitragvani.com

परमपारिणामिकभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। आ...हा...हा...! ३२० गाथा में आता है। व्याख्यान हो गया है।

यहाँ कहते हैं, आ...हा...! **मेरा आत्मा सदैव अकेला है। सदैव** – सदा ऐव। त्रिकाल निर्मल है, अकेला है, त्रिकाल अकेला है। कभी बेकला (हुआ नहीं)। एकड़े एक और बिगड़े दो, बिगड़ते हैं न दोनों? बिगड़े दो, दो होते हैं तो बिगड़ता है। एक में बिगड़ता नहीं। नेमचन्दभाई! मैं तो अकेला हूँ। राग और परद्रव्य से मेरा सम्बन्ध है – ऐसा मानना वह बिगड़ा है दशा बिगड़ी, मिथ्यात्व की (दशा हुई)। आ...हा...हा...! ऐसा मार्ग (है)।

मेरा आत्मा सदैव अकेला है। सदा ऐव, सदा ऐव। **ऐसा ज्ञानी जानते हैं।** धर्मी जीव तो ऐसा जानते हैं। आ...हा...हा...! व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है तो भी मैं तो अकेला हूँ, राग से भिन्न अकेला हूँ। आ...हा...हा...! मैं जहाँ हूँ, वहाँ तो राग भी नहीं और जहाँ राग है, वहाँ मैं नहीं। आ...हा...हा...! **ऐसा ज्ञानी जानते हैं।** आ...हा...हा...!

भूमिकानुसार शुभभाव... आता है। चौथे गुणस्थान में, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) शुभराग भूमिकानुसार आता है। वह **आये परन्तु अन्तर में ऐकाकीपने की प्रतीतिरूप...** अन्तरंग में अकेला ज्ञायक हूँ — ऐसी **एकाकीपने की प्रतीतिरूप परिणति...** आ...हा...हा...! मैं अकेला शुद्ध ज्ञायक त्रिकाल हूँ — ऐसा धर्मी को अकेलेपने की प्रतीति में परिणति सदा रहती है। है? **निरन्तर...** लिया है। **प्रतीतिरूप परिणति निरनतर बनी रहती है।** आ...हा...हा...! धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जो अकेला आत्मा मैं हूँ, दूसरी चीज रागादि विभाव उत्पन्न होते हैं.... समझ में आया? परन्तु उससे मैं अन्तरंग में तो भिन्न हूँ। एकाकीपने की प्रतीति, परिणति, अवस्था, दशा निरन्तर बनी रहती है। अरे...! ऐसी बात। यहाँ तो (अज्ञानी) कहे कि, दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो... गुरु को माननेवाले कहे कि गुरु को मानो। यहाँ तो कहते हैं कि परद्रव्य पर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। आ...हा...हा...!

राग, वह मेरी चीज है, मेरे में है – (ऐसा मानना), वह मिथ्यात्व भाव है। आ...हा...हा...! मैं तो अकेला त्रिकाल (हूँ)। राग होने पर भी, उससे भिन्न अन्तर में एकाकीपने की प्रतीति (अर्थात्) सम्यग्दर्शन, विश्वास, भरोसा, प्रतीति, रुचि (बनी रहती है कि) मैं एकाकी हूँ। ऐसी प्रतीति की परिणति; परिणति अर्थात् उसकी दशा **निरन्तर**

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

बनी रहती है। आ...हा...हा... ! यह प्रतीति तो समकिती धर्मी की निरन्तर बनी रहती है। आ...हा...हा... ! ८७ (बोल पूरा) हुआ।

मैं तो लेपरहित चैतन्यदेव हूँ। चैतन्य को जन्म नहीं है, मरण नहीं है। चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। नवीन तत्त्व प्रगट हो तो जन्म कहलाये। चैतन्य तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से चाहे जैसे उदय में सदा निर्लेप-अलिप्त ही है। फिर चिन्ता काहे की ? मूल तत्त्व में तो कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता॥ ८८॥

मैं तो लेपरहित चैतन्यदेव हूँ। राग का भी लेप मेरे को नहीं। नव तत्त्व में राग तो पुण्यतत्त्व, पापतत्त्व में जाता है। मेरी चीज में नहीं। आ...हा...हा... ! **मैं तो लेपरहित..** (अर्थात्) राग का लेपरहित **चैतन्यदेव हूँ।** आ...हा...हा... ! कलश में आता है न ? चैतन्यदेव ! चैतन्यरत्नाकर ! अचिन्त्य देव ! आ...हा...हा... ! मैं तो ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त शक्ति / दिव्य शक्ति का देव हूँ। आ...हा...हा... ! दया, दान और रागादि कोई मेरी चीज में है नहीं, मेरी है नहीं। आ...हा...हा... ! वर्तमान में तो यह चलता है - व्यवहार करो, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। आ...हा...हा... ! आकुलता करते-करते अनाकुल होगा। व्यवहार तो आकुलता है, राग है; आता है, परन्तु है तो आकुलता। आ...हा...हा... ! निज स्वभाव के आश्रय में राग का आश्रय बिलकुल आता नहीं। राग मददगार, सहायक (नहीं है)। शास्त्र में लिखते हैं, निमित्त देखकर, सहायक देखकर... (समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में नहीं आया ? वीतराग की वाणी में भी निमित्त को, भेद को साथ में देखकर उसका प्ररूपण बहुत आया है, परन्तु उसका फल तो संसार है। आ...हा...हा... !

मैं तो चैतन्यदेव अकेला हूँ। आ...हा...हा... ! लेपरहित हूँ। लेप की अस्ति सिद्ध की, परन्तु मैं चीज हूँ, वह लेपरहित हूँ। आ...हा...हा... ! शुद्ध चैतन्यघन... अतीन्द्रिय आनन्द जो निजघर, वह तो लेपरहित है।

चैतन्य को जन्म नहीं... भगवान आत्मा को जन्म नहीं। आत्मा जन्मे ? नहीं था तो उत्पन्न हुआ, ऐसा है ? यह तो शरीर-जड़-मिट्टी का संयोग हो तो जन्मा - ऐसा कहने में

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आता है। शरीर, शरीर की मृत्यु। भगवान आत्मा का जन्म है, ऐसा तीन काल में है नहीं। आ...हा...हा...! **चैतन्य को जन्म नहीं है,...** चैतन्य को **मरण नहीं है।** अस्तित्व जो ज्ञायकभाव त्रिकाल, उसकी उत्पत्ति क्या? उत्पत्ति हो तो पर्याय की (उत्पत्ति होती) है। वस्तु की उत्पत्ति है नहीं, वस्तु तो अनादि है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्ष का मार्ग, (उसकी) उत्पत्ति है परन्तु वह तो पर्याय की उत्पत्ति है। सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, ऐसा कहने में आता है न? चारित्र हुआ, वह तो पर्याय है। वस्तु है, (वह) तो अनादि है, उसे जन्म और उत्पत्ति है नहीं। आ...हा...हा...!

निश्चयमोक्षमार्ग भी उत्पन्न होता है, पर्याय है। द्रव्य है, वह उत्पन्न होता नहीं; द्रव्य तो त्रिकाल है। आ...हा...हा...! अनादि-अनन्त चैतन्यघन प्रभु! अनन्त चैतन्यरत्नाकर की खान आत्मा, वह तो अनादि की है। उसका जन्म होता नहीं, उत्पत्ति होती नहीं, व्यय होता नहीं। मरण अर्थात् व्यय। भगवान आत्मा की उत्पत्ति नहीं होती, तथा व्यय नहीं होता। आ...हा...हा...! उत्पत्ति-व्ययरहित है। आ...हा...!

चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। चैतन्य ज्ञायकस्वरूप जो अस्ति, अस्तित्व / मौजदूगी चीज जो चैतन्य, वह तो है ही, सदा त्रिकाल है। उसमें उत्पत्ति और विनाश है नहीं। आ...हा...हा...! त्रिकाल चैतन्य जो वस्तु है, वह तो बन्ध-मोक्ष के कारण की पर्याय को भी करती नहीं। आ...हा...हा...! आता है न? (समयसार) ३२० (गाथा)। **जन्महि न उप्जहि न मरेहि** 'योगीन्दुदेव' का श्लोक है। जीव अर्थात् भगवान चैतन्य वस्तु, वह पर्याय में उत्पन्न होती नहीं, मोक्षमार्ग को उत्पन्न करती नहीं, आ...हा...हा...! और वह व्यय नहीं करती। आ...हा...हा...! बन्धमार्ग को भी उत्पन्न नहीं करती और मोक्षमार्ग को भी उत्पन्न नहीं करती। ऐसी चीज ध्रुव चैतन्यमय त्रिकाल हूँ। उसका जन्म-मरण है नहीं। आ...हा...! भाषा सादी है परन्तु भाव तो बापू! अन्दर बैठना (कठिन है)। आ...हा...हा...! भाषा तो वाचक है।

वह आता है न? 'निपुण....' उसका अर्थ (किसी ने) ऐसा किया है कि निरूप का अर्थ निरूपम (किया है)। इन्होंने अर्थ किया है कि निरूपण तो कथन है। निपुण का अनुभव करना, वह निरूप का अर्थ है। निरूप अर्थात् कथन। निरूपण करना, ऐसा अर्थ

www.vitragvani.com

किया है। जगन्मोहनलालजी (ने) निपुण का अनुभव (करना)। त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यस्वरूप जो निपुणस्वरूप, चैतन्यस्वरूप... आ...हा...! उसका निरूपण अर्थात् वाचक शब्द में आया परन्तु वाच्य अनुभव करना। यह अनुभव भी पर्याय है, परन्तु वह पर्याय ऐसा विचार करती है कि मैं तो अकेला हूँ। आ...हा...हा...!

चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। नवीन तत्त्व प्रगट हो तो जन्म कहलाये। नवीन (अर्थात्) न हो और उत्पन्न हो, तब तो जन्म – उत्पत्ति कहने में आये। यह (चीज) तो नवीन है नहीं। अनादि प्रभु है। है... है... है... भूतकाल में था, वर्तमान में है, भविष्य में है। आ...हा...! ज्ञान और आनन्द का वज्र तो अनादि-अनन्त है। उसमें कुछ उत्पत्ति और मरण होता नहीं। आ...हा...हा...! **नवीन तत्त्व प्रगट हो तो जन्म कहलाये।**

चैतन्य तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से चाहे जैसे उदय में... क्या कहते हैं? चाहे तो पर के द्रव्य का संयोग हो, क्षेत्र, काल और भाव... **चाहे जैसे उदय में सदा निर्लेप-अलिप्त ही है।** आ...हा...हा...! जगत के संयोगी द्रव्य में, द्रव्य में भी वह तो निर्लेप है। पर के साथ सम्बन्ध नहीं। जगत् का क्षेत्र है, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वह निर्लेप भिन्न है। जगत् की काल स्थिति-अवस्था उससे भी भिन्न निर्लेप है और जगत का भाव-द्रव्यस्वभाव का भाव आदि, पर का (भाव), उससे भी भिन्न है। आ...हा...हा...!

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से चाहे जैसे उदय में... किसी भी प्रकार का उदय हो। ओ...हो...हो...! निगोद में भी द्रव्य तो निर्लेप ही है। आ...हा...हा...! कैसे बैठे? अस्तित्व है न, वस्तु है न, वस्तु! वस्तु है, वह तो निर्लेप ही है। आ...हा...हा...! पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग (का ज्ञान) और केवलज्ञान, यह तो पर्याय की बात है। निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग में (ज्ञान का) विकास (है)। केवलज्ञान में पूर्ण विकास (है) परन्तु वह तो पर्याय है। केवलज्ञान भी पर्याय है आ...हा...हा...! क्योंकि उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति होती है, वह पर्याय है, गुण नहीं। केवलज्ञान, गुण नहीं। (ऐसा सुनकर कुछ लोग) चिल्लाते थे। 'मथुरा' में यह बात बाहर आयी, पण्डित लोग बैठे थे। (यह सुना तो ऐसा बोले), 'हें...! केवलज्ञान नाशवान? पर्याय?' अरे...! लाख बार पर्याय(है)। उत्पन्न होती है न! 'मथुरा' में पण्डित बैठे थे।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : आपने ऐसा कहा था, केवलज्ञान विनश्वर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विनश्वर है। पर्याय है न! पर्याय है। एक समय की पर्याय है। दूसरे समय दूसरी होगी, तीसरे समय तीसरी होगी। उस पर्याय का काल ही एक समय का है और द्रव्य-गुण का काल त्रिकाल है। आ...हा...हा... ! मूल बात का पता नहीं। पण्डितों में खलबली मच गयी। आ...हा...हा... ! मूल में तो पर्याय कहा था। पर्याय (कहा उसमें) भड़के थे। नाशवान तो बाद में (कहा था)। 'नियमसार' की ३८वीं गाथा। आ...हा...हा... ! वस्तु जो पदार्थ है, अस्तिरूप में ध्रुवतत्त्व जो है, उसमें उत्पत्ति-विनाश है नहीं।

चैतन्य तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से चाहे जैसे उदय में.... चाहे जितने उदय आओ, आ...हा...हा... ! सोने को जंग होती नहीं, काट नहीं लगता। सोने में जंग लगता है ? चाहे जितना लाख वर्ष पानी में पड़ा रहे, कीचड़ में पड़ा रहे, वह तो निर्लेप (रहता) है। आ...हा...हा... ! वैसे भगवान आत्मा... ! बहुत कठिन बात (है), लोगों को परिचय नहीं, अभ्यास नहीं और वर्तमान में धर्म के नाम पर प्रवृत्ति में धर्म मान लिया। आ...हा...हा... ! स्थानकवासी हो तो सामायिक करो, पोषा करो, पडिकम्मणा करो, चौविहार करो। देरावासी हो तो भगवान की खूब भक्ति करो। कर्मदहन की, सिद्धचक्र की (पूजा करो)। दिगम्बर में हो तो कपड़े छोड़कर प्रतिमा ले लो। आ...हा...हा... ! वस्तु की कुछ खबर नहीं। कपड़े छोड़ दो, हो गया ब्रह्मचारी ! लो ! आ...हा...हा... !

ब्रह्म नाम भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनादि-अनन्त है, उसमें उत्पत्ति-विनाश है नहीं। ऐसी दृष्टि का विषय न हो और अनुभव न हो, वहाँ व्रत, तप, भक्ति कैसी ? आ...हा...हा... ! इतने परीषह सहन करे, अभी 'कुरावड' में आये थे। एक क्षुल्लक था। यहाँ छात्र के रूप में आया था। कुरावड़ में था न, ज्ञानसागर नाम, (वह कहता था), 'इतने-इतने परीषह साधु सहन करते थे और आप कहते हो (वह धर्म) नहीं।' हमने कहा, क्या करे ? सम्यग्दृष्टि बापू ! चीज कोई ऐसी है। वर्तमान में तो ऐसा है ही कहाँ ? नौंवी ग्रैवेयक गया, तब चमड़ी उतारकर नमक डाले तो क्रोध न करे (- ऐसा कषाय मन्द किया) परन्तु दृष्टि तत्त्व पर नहीं (थी)। विकल्प पर दृष्टि (थी)। मुझे परीषह आया और मैंने सहन किया, परन्तु परीषह तो किसको कहे ? जब आत्मा आनन्दकन्द है, ऐसा

www.vitragvani.com

अनुभव में हो, उसको प्रतिकूलता के काल में ज्ञाता-दृष्टा रहना, उसका नाम परीषह है। आ...हा...हा...! यहाँ तो वस्तु का तो कुछ पता नहीं (और कहते हैं कि) परीषह सहन करते हैं। आ...हा...!

कल एक आया है न, 'अमदाबाद... अमदाबाद' न? एक आर्यिका है। १८ वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी। ३८ वर्ष की उमर है, सात वर्ष से अपंग है। पैर हिले नहीं। सो नहीं सकते, मुश्किल से बैठ सके, बहुत पीड़ा। कल एक जन पत्र लेकर आया था। (कहने लगा), चमत्कारिक वस्तु है। चमत्कार देखो! सात-सात वर्ष से (ऐसा सहन करती है) और रूप सुन्दर होगा। बालब्रह्मचारी, चार भाईयों में एक बहिन होगी। मैंने कहा, देखो! तुमको कठिन लगेगा। उसे ऐसा था कि महाराज इसकी कुछ प्रशंसा करे। मैंने कहा, 'स्थानकवासी धर्म वह जैनधर्म है नहीं।' बाद में भाग गया। गुजराती पेपर लेकर आया था। फिर हमारे एक... भाई लाये थे। अरे...! उसमें क्या धूल में? उसके गुरु को जैन की श्रद्धा नहीं थी, वेदान्त की श्रद्धा थी। आ...हा...हा...! बापू! तुझे मालूम नहीं। यह तो साधारण (बात है)।

नग्न मुनि अनन्त बार हुआ। इतना परीषह (सहन किया कि) बाघ खाये, काटे, खा जाये तो भी क्रोध नहीं करे। कषाय मन्द रखे। दृष्टि झूठी, आत्मज्ञान नहीं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पर आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' - ऐसा तो वर्तमान में है कहाँ? दिगम्बर में नग्न होकर शुभक्रिया करे। श्वेताम्बर, स्थानकवासी, देरावासी में तो (है ही कहाँ?) भगवान तो ऐसा कहते हैं कि कपड़े का टुकड़ा रखकर मुनि हैं - (ऐसा) माने, मनावे, मान्यता को अनुमोदन करे, वह निगोद में जायेगा। समझ में आया? यहाँ तो पोटले रखते हैं और (कहते हैं कि) हम मुनि हैं। बापू! स्थिति पूरी होने आयी। आ...हा...हा...! दुःख लगे, बापू! क्या करें? भाई! तेरे हित की बात है, बापू! तू दुःखी हो, वह किसको ठीक पड़े? आ...हा...! विपरीत दृष्टि से महादुःखी (है)।.... आ...हा...हा...! अरे...रे...!

ऐसा चैतन्य का नाथ, आनन्द का कन्द प्रभु! निगोद की दशा में ज्ञान के अनन्तवें भाग में उघाड़ रहे। नरक से भी दुःख अधिक है क्योंकि नरक में तो क्षयोपशम भी है,

www.vitragvani.com

इसका तो अनन्तवें भाग में क्षयोपशम (रहा है)। आ...हा...हा...! इतना उसे दुःख है, आकुलता है, वेदन है। एक शरीर में अनन्त जीव। लहसुन, प्याज (के) एक कण में असंख्य (शरीर)। भाई! कौन माने? एक कण में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। उन अनन्त जीव के प्रत्येक के राग और विकार भिन्न, कर्म भिन्न, सब भिन्न। आ...हा...हा...! और उस दुःख का प्रभु विचार करे। जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ पेट में निगोद है। सिद्ध हैं न? सात हाथ या पाँच सौ धनुष, आनन्द के अनुभव में पूर्ण केवलज्ञान (है)। अन्दर में निगोद के जीव हैं। अनन्त दुःख है। यहाँ प्रभु को अनन्त आनन्द है, उसे दुःख है। क्षेत्र एक है। आ...हा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, चैतन्य को चाहे जैसा उदय हो, (वह) सदा निर्लेप और अलिप्त ही है। वस्तु तो वस्तु है। वस्तु में (लेप नहीं)। आया नहीं? अभी आयेगा। कञ्चन को जंग नहीं, अब आयेगा। सोने को जंग नहीं होती, जंग नहीं होती। कञ्चन को काट नहीं होता, जंग नहीं होती। आ...हा...हा...! बाद में? अग्नि को दीमक नहीं होती। अग्नि... अग्नि में दीमक / जीव होते हैं? अग्नि में दीमक होती है? तुरन्त मर जाये। वैसे भगवान आत्मा निरावरण है, आवरण नहीं, अशुद्धता नहीं, अल्पता नहीं... न्यूनता नहीं। वह तो परिपूर्ण भगवान परिपूर्ण पड़ा है। आ...हा...हा...! वस्तु है, वह चाहे जैसे उदय प्रसंग में हो, वस्तु तो निर्लेप ही है। आ...हा...हा...! है? सदा निर्लेप ही है।

फिर चिन्ता काहे की? क्या कहते हैं? वस्तु निर्लेप, जिसकी दृष्टि हुई; अब चिन्ता किसकी? आ...हा...हा...! भगवान आत्मा, आवरण और राग के लेपरहित, चाहे जितने उदयकाल में हो, उदयभाव में (हो), चिन्ता काहे की? वह तो है सो है। ऐसी दृष्टि जब हुई, चिन्ता क्या? आ...हा...हा...! ऐसा ध्यान रखूँ तो कारखाना चले, इतने आदमी हमारे भरोसेवाले रखूं, विश्वासी आदमी रखे तो ठीक काम चले, दगाखोर नौकर हो तो खा जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे उपाधि का पार नहीं। आ...हा...हा...! हमारे (कुँवरजीभाई) थे न? मरते समय हा... हो...हा... दुकान चलायी थी और अभिमान किये थे। मरते समय

www.vitragvani.com

सन्निपात हो गया। आ...हा...हा... ! मैंने दुकान की थी, मेरी चली थी, सब की दुकान गयी परन्तु मेरी दुकान बराबर चली थी। एक साल की दो-दो लाख की कमाई। मैंने ऐसे चलाई, अरे... ! प्रभु ! क्या करता है ? मर गया बेचारा। आ...हा... ! हमारे फूफी के पुत्र भागीदार थे। रिश्तेदार था। दुकान में भागीदार थे। उसके बड़े भाई और मैं था। 'कुंवरजीभाई' और मेरे बड़े भाई (दोनों भागीदार थे)। दो दुकान थी। आ...हा...हा... !

अरे रे ! प्रभु ! तू अकेला है, तेरे उदय में कुछ भी आये, लेकिन वस्तु में लेप थोड़ा-सा भी नहीं है, हाँ ! अल्पता नहीं, कमी नहीं। आ...हा...हा... ! वस्तु, वस्तु जो है, वह तो त्रिकाल एकरूप चिद्घन आनन्दकन्द है, तो पर की चिन्ता क्या करना ? है ? आ...हा...हा... ! **फिर चिन्ता काहे की ?** किसकी चिन्ता ? **मूल तत्त्व में तो कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता।** आ...हा...हा... ! मूल चीज जो है - वस्तु, वही पदार्थ है, उसमें दूसरी चीज का तो प्रवेश नहीं। राग का प्रवेश नहीं तो कर्म और शरीर और दूसरी चीज का तो प्रवेश कहाँ से आया ? आ...हा...हा... ! ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है। इदं पूर्ण इदं ! पूर्ण इदं - पूर्ण प्रभु ! उसकी चिन्ता क्या ? अब पूर्ण को पूर्ण करना है ? पूर्ण है, वह अपूर्ण है क्या कि उसे पूर्ण करना है ? आ...हा...हा... ! **मूल तत्त्व में तो कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता।** मूल तत्त्व में अन्दर (किसी का) प्रवेश है नहीं। आ...हा... ! अब मुनिराज की बात आई, मुनिराज ! आ...हा...हा... ! मुनिराज किसको कहना ? भाई !

मुनिराज को एकदम स्वरूपरमणता जागृत है। स्वरूप कैसा है ? ज्ञान, आनन्दादि गुणों से निर्मित है। पर्याय में समताभाव प्रगट है। शत्रु-मित्र के विकल्प रहित है; निर्मानता है; 'देह जाय पर माया होय न रोम में'; सोना हो या तिनका - दोनों समान हैं। चाहे जैसे संयोग हों - अनुकूलता में आकर्षित नहीं होते, प्रतिकूलता में खेद नहीं करते। ज्यों-ज्यों आगे बढ़े त्यों-त्यों समरसभाव विशेष प्रगट होता जाता है॥ ८९ ॥

मुनिराज को एक दम स्वरूपरमणता जागृत है। उसको मुनि कहते हैं। जिसको अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप की जागृतदशा वर्तती है। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय

www.vitragvani.com

आनन्द का अनुभव है। आ...हा...हा... ! **मुनिराज को एकदम स्वरूप-रमणता...** एक दम अर्थात् एकदम स्वरूपरमणता। उग्र ! जागृत है। आ...हा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ को तो वेदन करते हैं। आ...हा...हा... ! धन्य अवतार ! जिसमें - मुनिपना में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आया, वह मुनिपना है। नग्नपना, पञ्च महाव्रत का परिणाम, वह कोई मुनिपना नहीं। आ...हा...हा... !

मुनिराज को एकदम स्वरूपरमणता जागृत है। एकदम अर्थात् ? जागृत रमणता है। आ...हा...हा... ! **स्वरूप कैसा है ?** जो एकदम स्वरूपरमणता कही न ? स्वरूप में रमणता... परन्तु वह स्वरूप कैसा है ? रमणता तो पर्याय हुई। आनन्द की रमणता मुनि को तो होती है। आ...हा... ! दिगम्बर भेष भी आत्मा का नहीं, वह तो जड़ का है। आ...हा...हा... ! महाव्रत का परिणाम भी आत्मा का नहीं, वह तो पुण्यतत्त्व और व्यवहार-राग है। आ...हा...हा... ! मुनिराज को... आ...हा... ! स्वरूपरमणता जागृत है। सदा जागती ज्योत विराजती है। आ...हा...हा... ! भले छट्ठे गुणस्थान में विकल्प आ जाये, फिर भी स्वरूप की रमणता है, वह तो कायम है। आ...हा...हा... ! तीन कषाय का अभाव, ऐसा शान्तरस निर्मल निर्मल सदा है। आ...हा... !

स्वरूप कैसा है ? कि जिसमें रमणता है। स्वरूप तो **ज्ञान, आनन्दादि गुणों से निर्मित है।** ज्ञान, आनन्द आदि गुणों से स्वरूप रचित है। भगवान ज्ञान, आनन्द से रहा है। आनन्दस्वरूप से निर्मित-रचित है। आ...हा...हा... ! ऐसे स्वरूप में रमणता (है)। इसका नाम मुनिपना। आनन्दादि, ज्ञानादि अनन्त गुणों (से) निर्मित है। आ...हा... ! **पर्याय में समताभाव प्रगट है।** मुनिराज को, वीतरागस्वरूप आत्मा तो सदा है ही, परन्तु पर्याय में मुनिराज को तो वीतरागता आ गई है। आ...हा... ! समता... समता... समता... शान्तरस... शान्तरस, समतारस, अकषायरस सदा ही है। आ...हा...हा... !

पर्याय में समताभाव प्रगट है। ऐसा क्यों कहा ? वस्तु तो वीतराग समतास्वरूप है ही, परन्तु पर्याय में समताभाव प्रगट है। आ...हा...हा... ! अरे... ! मुनि... णमो लोय सव्व साहूणं ! 'तुलसी' है न ? तेरापंथी ! णमो लोए में से लोए निकाल देना चाहते हैं। लोए नहीं चाहिए। णमो लोए सव्वसाहूणं ! आ...हा... ! क्या करता है ? लोक में अर्थात् भिन्न-भिन्न क्षेत्र में अरहन्त होते हैं, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय (होते हैं), उस अपेक्षा से लोक (कहा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है)। लोक में (इसका मतलब) जैनदर्शन के सिवा दूसरे साधु आ जायें – ऐसा नहीं। (कोई साधु) ऐसा कहते हैं न कि 'णमो लोए सव्वसाहूणं! (अर्थात्) सभी अन्यमती के साधु भी उसमें आ जाये। बिल्कुल झूठ बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है ? मिथ्यादृष्टि (है)। अन्यमती के बाबा... श्वेताम्बर, स्थानकवासी साधु सब गृहीत मिथ्यादृष्टि है, वे भी णमो लोए में नहीं आते। अरे... प्रभु! क्या हो ? भाई! एक सुशील कुमार, स्थानकवासी (साधु है, वह ऐसा कहता है कि) देखो! उसमें कहाँ कहा है कि जैन के ही साधु (है), अरे...! प्रभु!

यहाँ तो सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने, मुनिराज स्वरूप में आनन्द में रमणता करते हो, उस मुनि को मुनि कहते हैं। वे मुनि 'लोए' में आते हैं। अज्ञानी साधु–बाबा (नहीं आते)। अरे...! श्वेताम्बर के साधु भी णमो लोए सव्व साहूणं में नहीं आते। भाई! ऐसी बात है, भाई! सत्य तो यह है। आ...हा...! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आषाढ़ शुक्ल २, शुक्रवार, दिनाङ्क ०७-०७-१९७८
प्रवचन-३० वचनामृत - ८९-९०

'वचनामृत' का ८९ वाँ बोल (चल रहा है)। क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? **मुनिराज को एकदम स्वरूप रमणता जागृत है।** उसके अर्थ दो हैं कि जिन्हें तीन कषाय का नाश हुआ, वीतरागभाव उत्पन्न हुआ तो स्वरूप में रमणता, जागृति निरन्तर है, उस अपेक्षा से (कहा) और स्वरूप में उपयोग भी क्षण में तुरन्त लग जाता है। छट्ठे में आते हैं, विकल्प है, स्वरूप की रमणता भी है, परन्तु क्षण में उपयोग अन्तर में चला जाता है। एकदम रमणता है - ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा...! चौथे, पाँचवें गुणस्थान में स्वरूप की दृष्टि है, रमणता (का) अंश है; कभी महीने-दो महीने में उपयोग लागू पड़ता है। अन्तर निर्विकल्प उपयोग तो महीने-दो महीने में कभी लागू पड़ता है। मुनि को तो क्षण में लागू पड़ता है - ऐसा कहते हैं। एकदम! ऐसा शब्द है।

आ...हा...! **मुनिराज को एकदम स्वरूप रमणता जागृत है।** छट्ठे हो तो भी जागृत है और क्षण में एकदम उपयोग सप्तम में चला जाता है। आ...हा...हा...! मुनि किसको कहें! जैनदर्शन के सन्त! आ...हा...हा...! स्वरूप किसको कहें? स्वरूप रमणता कहा, तो स्वरूप किसको कहें? **ज्ञान, आनन्दादि गुणों से निर्मित...** स्वरूप जो आत्मा का है, वह तो जानन, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय प्रभुता, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय अनन्त गुण से निर्मित है - ऐसा बना हुआ है। आ...हा...हा...!

भगवान आत्मा, स्वरूप में रमण करते हैं - ऐसा मुनिराज को कहा। एकदम रमण करते हैं। (तो फिर) स्वरूप क्या? जहाँ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, वीतरागता, अनन्त स्वच्छता का पिटारा-भण्डार है। भगवान तो अनन्त गुण का भण्डार है, यह स्वरूप (है), उसमें रमणता (है)। समझ में आया? स्वरूप कैसा है कि

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जिसमें एकदम रमणता जागृत है ? कि, **ज्ञान, आनन्दादि गुणों से निर्मित है।** आत्मा भगवान। आ...हा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति-वीतरागता आदि अनन्त गुणों से निर्मित, ऐसा है। ऐसा अनादि से रचा हुआ ही है। आ...हा...हा...! भगवान स्व-रूप – अपना रूप, ज्ञान-आनन्द अपने रूप से तो भरा पड़ा ही है। आ...हा...हा...! यहाँ तक तो आया था।

पर्याय में समताभाव प्रगट है। यहाँ तक आया था। मुनिराज को... ओ...हो...हो...! अतीन्द्रिय आनन्द की जिसमें रमणता लगी है, अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ पर्याय में अपूर्व स्वाद आता है। सम्यग्दर्शन में तो अतीन्द्रिय आनन्द का अल्प स्वाद आता है। मुनिराज को अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद आता है। प्रचुर! ('समयसार' की) पाँचवीं गाथा में आया न! मेरा अनुभव – निज वैभव क्या ? मुनिराज 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं। मेरा निज वैभव क्या ? आ...हा...हा...! कि निरन्तर झरता सुन्दर आनन्द अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन, जिसकी मोहर छाप है, मुद्रा छाप है। आ...हा...हा...! ऐसा भगवान आत्मा अपने स्वरूप में रमणता करते हैं। मुनि तो विशेष (रमणता करते हैं)। आ...हा...हा...!

समताभाव प्रगट है। पर्याय – दशा में (समताभाव प्रगट है)। वस्तु तो वीतरागस्वरूपी है परन्तु मुनि को तो पर्याय में वीतरागता आ गई है। आ...हा...हा...! चौथे गुणस्थान में समकिती को थोड़ी कथञ्चित् वीतरागता है। जितना मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी गया, उतनी वीतरागता आंशिक है। आ...हा...हा...! श्रावक पञ्चम गुणस्थानवाले, उनको भी थोड़ी वीतरागता चौथे (गुणस्थान की अपेक्षा) पंचम में बढ़ी है। आ...हा...! और सप्तम में तो वीतरागता बहुत बढ़ी है और छट्ठे में आते हैं तो भी तीन कषाय के अभाव की वीतरागता वहाँ है। आ...हा...हा...! ऐसे मुनिराज (को) **पर्याय में समताभाव प्रगट है...** प्रगट है। समताभाव स्वभाव तो त्रिकाल है ही, परन्तु यह तो पर्याय में प्रगट है। आ...हा...हा...! वीतराग.... वीतराग... वीतराग... जिसकी परिणति में-दशा में, वीतरागता परिणमित हुई है। आ...हा...हा...!

शत्रु-मित्र के विकल्प रहित है;... यह मेरा मित्र है, भक्त है और यह मेरा शत्रु है – ऐसे विकल्प-राग से तो रहित है। आ...हा...हा...! यह मुझे माननेवाला है, मेरा भगत

www.vitragvani.com

है – ऐसा विकल्प है नहीं और यह प्रतिकूल है, दुश्मन है – ऐसा विकल्प / राग भी जिनको नहीं। आ...हा...हा... !

निर्मानता है;... निर्मान... निर्मान... निर्मान... आ...हा...हा... ! केवलज्ञान की दशा की जहाँ अभिलाषा है, वहाँ अपनी पर्याय में निर्मानता है। आ...हा...हा... ! कहाँ सर्वज्ञ पर्याय में प्रगट और कहाँ मेरी दशा! ऐसी तीन कषाय का अभाव(रूप) वीतरागता होने पर भी, पूर्ण वीतरागता सर्वज्ञ की नहीं। निर्मान... निर्मान... (हैं)। आ...हा...हा... !

'देह जाय पर माया होय न रोम में'.... 'श्रीमद्' का वाक्य है। 'अपूर्व अवसर'! 'देह जाय पर माया होय न रोम में' — देह जाय पर माया न होय रोम में। देह कौन बापू! मैं तो आनन्दकन्द प्रभु, शुद्ध चिदानन्द वीतरागस्वभाव में रमनेवाले सन्तों (को), देह जाय तो भी माया नहीं होती। यह मेरी देह थी और जाती है... (ऐसा नहीं), देह मेरी.. देह तो जड़ की है। आ...हा... ! पञ्च महाव्रत का विकल्प – राग उठता है, वह भी मेरी चीज नहीं; तो यह तो मिट्टी जड़-धूल है। आ...हा...हा... ! 'देह जाय पर माया होय न रोम में' बाल... बाल निकलता है न इतने; रोम में भी माया नहीं। आ...हा...हा... ! मुनिराज किसको कहें! दिगम्बर सन्त! आ...हा...हा... ! जिनको अन्तर में विकल्प से रहित नग्नता और बाहर से वस्त्र से रहित नग्नता। अकेले वस्त्र से रहित नग्नता तो अनन्त बार हुई, वह कोई चीज नहीं; और पञ्च महाव्रत का शुभविकल्प भी आया, वह कोई चीज नहीं; वह तो अनन्त बार हुआ परन्तु यह तो विकल्परूप वृत्ति से, वस्त्र से रहित। आ...हा...हा... ! 'द्रव्य-भाव' आता है न ? 'अपूर्व अवसर' में नहीं आता ? (द्रव्य-भाव) 'संयममय निर्ग्रन्थ सिद्ध जो' आ...हा...हा... ! बाह्य नग्नता, वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं। लो, 'श्रीमद्' तो इसमें ऐसा कहते हैं – वस्त्र का टुकड़ा नहीं। श्वेताम्बर (वस्त्र) सहित मानते हैं।

'देह जाए पर माया न होय' मैं अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु! वीतरागी आनन्द का स्वादी मुनि! आ...हा...हा... ! सम्यग्दृष्टि (को) भी वीतरागी आनन्द का स्वाद है किन्तु थोड़ा है। पञ्चम गुणस्थान (में) सच्चा श्रावक हो, उसको भी अतीन्द्रिय आनन्द का चौथे से थोड़ा विशेष आनन्द है। आ...हा...हा... ! सर्वार्थसिद्धि के देव को जो आनन्द है, वह चौथे गुणस्थान में है। सर्वार्थसिद्धि देव! एक भवतारी! (एक भव में) मोक्ष

www.vitragvani.com

जानेवाला। उससे भी पञ्चम गुणस्थान में श्रावक सच्चा हो, आत्मज्ञानसहित (हो, उन्हें), सर्वार्थसिद्धि के देव से भी आनन्द का अंश उन्हें बढ़ा है। आ...हा...हा...! निज वैभव में से - अन्तर में से आनन्द निकाला है। आत्मा आनन्द का ढेर (है), ठोस भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द का ठोस भरा है, पूर्ण (भरा है)। आ...हा...हा...! उसके अवलम्बन से, उसके आश्रय से, उसके सन्मुख होकर अतीन्द्रिय आनन्द की वेदना इतनी आयी है कि जिसमें देह जाय तो भी (माया होय न) रोम में 'यह मेरी चीज थी' ऐसा होता नहीं। आ...हा...हा...!

समकिती को भी देह जाय तो भी देह की एकता नहीं थी, किन्तु अभी थोड़ा राग है - आसक्ति का राग (है)। आ...हा...हा...! शरीर में थोड़ा राग है। चौथे, पाँचवें, छट्ठे (में) जितना राग है, इतना प्रतिकूलता में द्वेष का अंश आ जाता है। जितना राग है, इतना ही प्रतिकूलता की क्षण में थोड़ा अरुचि हो, द्वेष आ जाता है। ज्ञानी को तो वह अरुचि / द्वेष और राग, उसका ज्ञेय है। आ...हा...हा...! परन्तु थोड़ा वेदन है। पूर्ण आनन्द का वेदन नहीं (है) तो उस कारण से साधक में जितना राग या द्वेष का अंश आता है, उतना दु:ख का वेदन है। आ...हा...हा...! पूर्ण आनन्द का वेदन परमात्मा को, अरहन्त को (है)। पूर्ण दु:ख का वेदन मिथ्यादृष्टि को है। पूर्ण दु:ख का वेदन (है)। चाहे तो साधु होकर पञ्च महाव्रत पालता हो, किन्तु राग की एकताबुद्धि वहाँ है (तो) पूर्ण दु:ख है। केवली को पूर्ण आनन्द है; साधक को थोड़ा आनन्द और थोड़ा दु:ख है। आ...हा...हा...! जितनी आत्मा के अवलम्बन से आनन्द की शुद्धता प्रगट हुई, इतना आनन्द है और जितनी परलक्ष्यी रागादि होते हैं, उतना दु:ख है। समझ में आया? और उस दु:ख का कर्ता भी है और दु:ख का भोक्ता भी है। आ...हा...हा...! क्योंकि अपनी परिणति में समकिती को राग होता है, तो कहते हैं कि परिणमनेवाला मैं हूँ तो कर्ता भी मैं हूँ और उसका भोगनेवाला भी मैं हूँ। आ...हा...हा...!

धर्मी जीव को अपने स्वरूप के आनन्द का भी वेदन है और जितना राग है, उतना दु:ख का भी वेदन है। वीतराग परमात्मा (को) पूर्ण वीतराग और पूर्ण आनन्द है। वहाँ किञ्चित् भी राग नहीं और किञ्चित् भी दु:ख नहीं। इसी तरह मिथ्यादृष्टि, राग को

www.vitragvani.com

एकत्व मानकर, वही अस्तित्व मैं हूँ, उसको पूर्ण दु:ख है। अंश में भी आनन्द नहीं और दु:ख की कमी नहीं। आ...हा...हा... ! ये पैसेवाले को सब सुखी कहते हैं न ? किन्तु वह भी दु:खी है।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुख है नहीं। आकुलता है, आकुलता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़े कौन और रखे कौन ? जड़ चीज को रखे कौन दे कौन ? आ...हा...हा... ! उसके कारण से आया और रहता है और कोई दानादि में देना हो तो उसके कारण से वहाँ से चला जाता है। देनेवाला कहे कि मैंने उसको दिया। वह बात मिथ्या भ्रम है। आ...हा...हा... !

यहाँ कहते हैं, **देह जाय पर माया होय न रोम में; सोना हो....** सुवर्ण हो **या तिनका....** हो। छिलका (हो), मुनि को **दोनों समान हैं।** ज्ञेय, जड़ ज्ञेय है। आ...हा...हा... ! जंगल में मुनि जंगल जाते हो, उसमें पेशाब आदि करते हैं तो जंगल में हीरे का चरु देखा; हीरे से भरा हुआ चरु। चरु समझे ? चरु – बड़ा बर्तन। बड़ा चरु होता है न ? क्या कहते हैं ? चरा ! ऐसे देखा, उसमें लाखों हीरे हैं और एक-एक हीरे की कीमत करोड़ों है। (उसे) देखा, लेकिन जैसे पेशाब निकाल देते हैं, वैसे 'वह मेरी चीज नहीं' (– ऐसा हो जाता है)। उसको महिमा नहीं लगती कि लाओ, मैं ले जाऊँ तो दान में तो दूँगा। आ...हा...हा... ! सोना और तिनका दोनों समान दिखते हैं। हीरा और विष्टा दोनों समान दिखते हैं। आ...हा...हा... ! जगत की चीज ज्ञेय है। हीरा हो तो भी ज्ञेय-परज्ञेय है, विष्ट हो तो भी परज्ञेय है। आ...हा...हा... ! दोनों में जिसका समताभाव है। यहाँ हीरा निकला तो ठीक है और तिनका दिखता है तो ठीक नहीं – ऐसा है नहीं। आ...हा...हा... ! जंगल में नीचे सोये हो, धूल का पिण्ड हो वह भी समान है और कोई लकड़ी का पाट कुदरती पड़ी हो तो भी समान है। यह मुलायम है तो ठीक है और कठोर है तो ठीक नहीं, (– ऐसा है नहीं)। आ...हा...हा... ! ऐसा समताभाव जिन्हें अन्तर में आनन्दसहित प्रगट हुआ है। **दोनों समान हैं।**

www.vitragvani.com

चाहे जैसे संयोग हों... आ...हा...हा... ! **अनुकूलता में आकर्षित नहीं...** संयोग अनुकूल हो। स्त्री, पुत्र, पैसा, लक्ष्मी, मकान... आ...हा...हा... ! करोड़ों-अरबों रुपये का मकान हो, करोड़ो-अरबों रुपये की कमाई हो, उन सब चीज में... आ...हा...हा... ! **अनुकूलता में आकर्षित नहीं...** मुनि उसमें आकर्षित नहीं होते। आ...हा...हा... ! समकिती को थोड़ा राग आ जाता है, किन्तु वह मेरा है, ऐसी दृष्टि नहीं। यहाँ (मुनि को) तो राग भी नहीं। मुनिराज... आ...हा...हा... ! चलते सिद्ध हैं ! अरे... ! मुनि किसको कहना ! बापू ! जिनको अपना अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया हो; तदुपरान्त अतीन्द्रिय रमणता, वीतरागता प्रगट हुई हो... आ...हा...हा... ! उस वीतरागता में सोना और तिनका दोनों समान दिखते हैं। है ?

अनुकूलता में आकर्षित नहीं होते, प्रतिकूलता में खेद नहीं करते। आ...हा...हा... ! वह सर्व चीज तो... अपना ज्ञेय जो आनन्द और ज्ञान (है), उसको परचीज तो परज्ञेय है, बस ! जानने लायक है कि यह है, इतना... लेकिन यह ठीक है और यह अठीक है — ऐसी कोई चीज नहीं। आ...हा...हा... ! मार्ग कठिन (है), भाई !

'रावण' के मकान थे, 'रावण' के, संगमरमर नहीं लेकिन क्या कहते हैं ? स्फटिकमणि ! स्फटिकमणि के मकान थे। 'रावण... रावण !' अर्घ वासुदेव थे न ? स्फटिकमणि का बंगला ! स्फटिकमणि ! स्फटिकमणि की सीढ़ियाँ, स्फटिकमणि के सीढ़ी। ऊपर चढ़ते वक्त नीचे देखे तो (ऐसा लगे कि) गिर जाएगा। आ...हा...हा... ! स्फटिकमणि के मकान, स्फटिकमणि का फर्श। ये पत्थर का फर्श है न (वैसी) स्फटिकमणि का फर्श (था)। स्फटिकमणि का दादर... दादर (को) क्या कहते हैं ? सीढ़ी ! स्फटिकमणि की सीढ़ी। सीढ़ी पर चढ़ते हैं (तब) अन्दर देखे (तो ऐसा लगे कि) अन्दर जाता हूँ या ऊपर चढ़ता हूँ ?

मुमुक्षु : कैसा मजा आता होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसा मजा आता होगा ? आकुलता (है)। आकुलता का मजा है। आ...हा...हा... !

एक गरीब बाई थी, गरीब। (वह) झोपड़ी में रहती थी। झोपड़ी... झोपड़ी समझे ?

www.vitragvani.com

अब उसका पति कुछ कमाया होगा तो सोने का कड़ा लाया। सोना... सोना का कड़ा लाया। कड़ा समझे? कड़ा कहते हैं? अब उसको कोई देखने आये नहीं कि यह मेरा सोना है, देखो! (उसने) झोपड़ी जला दी। झोपड़ी जली तो लोगों ने देखा कि ओ...हो...! (तो वह चिल्लाने लगा), अरे... भैया! देखो, अरे... भैया! देखो! मेरी झोपड़ी! ऐसा कहकर (वह सोना दिखाने लगती है)। मेरी झोपड़ी जलती है। (वैसे) यहाँ बाहर की अनुकूलता देखे तो (बोलता है कि) देखो! मेरा पुत्र, मेरा पुत्र! वहाँ जल जाता है। आकुलता की अग्नि में तू जल जाता है। आ...हा...हा...! मेरा पुत्र कर्मी पैदा हुआ, होशियार हुआ, एक-एक लड़का महीने की दो-दो लाख की कमाईवाला पैदा हुआ। क्या कहता है तू? ए चन्दुभाई! आ...हा...हा...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे लड़के को जोड़ दिया? आया था न वहाँ? आ...हा...हा...! श्मशान में जैसे हड्डी का चमक होता है न? वैसे यह चमक है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु, इसका अस्तित्व जिसको दृष्टि में आया और पर का अस्तित्व मेरे में नहीं। आ...हा...हा...! चाहे तो चक्रवर्तीपने का राज हो, उसमें उसका अस्तित्व है, मेरे में उसका अस्तित्व नहीं। आ...हा...! ऐसा तो सम्यग्दृष्टि होता है (तो) दृष्टि हो जाती है। इतनी वीतरागता तो सम्यग्दृष्टि में है। मुनिराज की वीतरागता... आ...हा...हा...! फलीफूली है। जैसे कली खिल उठती है, वनस्पति की-फूल की कली होती है न? खिल उठती है। वैसे वीतरागता खिल उठी है। आ...हा...हा...! जो वीतरागता का स्वभाव अन्दर संकोचरूप पड़ा था, भगवान आत्मा में शक्तिरूप (पड़ा था), वह वीतरागता खिल उठी है। आ...हा...हा...! उसको यहाँ मुनिराज-मोक्ष के मार्ग के साधक कहने में आता है। अरे...रे...! ऐसा स्वरूप! यहाँ तो बाहर से थोड़े कपड़े छोड़ दे, नग्न हो जाये तो (माने कि) हो गया मुनिराज। अरे... भाई! जब द्रव्यलिंगी था (और) नौंवी ग्रैवेयक (गया), ऐसा द्रव्यलिंग तो वर्तमान में है भी नहीं। अनन्त बार नौंवी ग्रैवेयक गया, तब उसका (जो) द्रव्यलिंग और पञ्च महाव्रत थे, ऐसी चीज जो वर्तमान में है नहीं। आ...हा...हा...!

मुमुक्षु : ....

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कहा है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में 'टोडरमलजी' ने कहा है। श्रावक तो समकिती होता है और विशेष त्याग नहीं भी होता है। चक्रवर्ती राज में भी हो। 'श्रेणिक' राजा श्रावक कहने में आते हैं, उत्तम श्रावक! थे चौथे गुणस्थान में। व्रत का अंश नहीं था। आ...हा...हा...! सम्यग्दर्शन-क्षायिकसमकित (था) और तीर्थंकर गोत्र (नामकर्म) बाँधा था। 'श्रेणिक' राजा! किन्तु पहले नग्न साधु की अशातना की थी। सर्प... सर्प, मरा हुआ सर्प गले में डाला था। (खुद) बौद्ध धर्मी था। (सर्प) डाला था, उसमें सातवीं नरक का आयुष्य बँधा था। सप्तम नरक का आयुष्य बँध गया। घर आया, स्त्री 'चेलना' रानी समकिती थी, आत्मज्ञानी थी। आ...हा...हा...!

प्रश्न : समकिती बाई अन्य धर्म में शादी करती होगी?

समाधान : अन्य धर्म में जाती नहीं, अन्य धर्म में होता नहीं। जैनधर्म के सिवा अन्य धर्म में समकित होता ही नहीं।

प्रश्न : शादी करे?

समाधान : शादी करे। खुद तो बौद्ध था न, राजा! पहले क्षत्रिय में तो बहन की लड़की हो और खुद का पुत्र हो तो शादी करते थे। क्षत्रिय में (होता था)। अभी है न, रबारी, भरवाड़ में (होता है)। आ...हा...हा...! बहन की लड़की को और यहाँ भाई को पुत्र हो तो शादी करे। उस प्रकार की लौकिक लाइन। अपने यहाँ भी भरवाड़, रबारी हैं। ऐसे रिवाज, लेकिन वह सब पाप के रिवाज है। आ...हा...!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि 'श्रेणिक' राजा जैसा क्षायिक समकिती। पहले तो बौद्ध था, किन्तु 'चेलना' रानी के पास (आकर कहा), मैंने तेरे गुरु पर सर्प डाल दिया है। उसने निकाल दिया होगा। (तो रानी कहती है), अन्नदाता! मेरे गुरु ऐसे नहीं (होते), उपसर्ग आये वह निकाले नहीं, चलो! (वहाँ जाकर) देखा तो मुनि तो ध्यान में आनन्द में, यहाँ कहते हैं न! वीतरागी आनन्द में अन्दर रमते थे। सर्प पड़ा था। करोड़ों चींटियाँ। रानी लेकर (दिखाती है और कहती है), देखो प्रभु! मुनिराज तो ऐसे हैं। उनको पता भी नहीं। (सर्प) निकाले नहीं, लेकिन वह है यह नहीं, (उसका) ध्यान में पता नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर घुस गये हैं। आ...हा...हा...! उस वक्त (राजा को लगता है), ओ...हो...! जैनधर्म ऐसा!

फिर मुनि समझाते हैं, सम्यग्दर्शन पाया। वहीं सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। समकिती आत्मज्ञानी थे। भगवान के समवसरण में गये, वहाँ तीर्थंकरगोत्र उत्पन्न किया। समकिती को विकल्प आता है। अज्ञानी को तीर्थंकरगोत्र का बन्ध होता नहीं। आ...हा... ! नरक का आयुष्य बँध गया था, समकित पाया। सातवीं नरक का आयु बन्ध था, आत्मज्ञान पाया तो स्थिति तोड़ दी। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति रही। असंख्य अरब (वर्ष की) तैंतीस सागर की स्थिति बाँधी थी, वह आत्मसन्मुख होकर जहाँ दृष्टि हुई तो नरक की आयुष्य स्थिति तैंतीस सागर को तोड़कर चौरासी हजार रह गई। आयुष्य तो बदल सके नहीं। चौरासी हजार वर्ष नरक में जाना पड़ा। वहाँ तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। समकिती हैं और तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। नरक में ! व्रत नहीं था, तप नहीं था; आत्मज्ञान था, सम्यग्दर्शन-आत्मा का अनुभव (था)। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। वर्तमान में नरक में हैं। साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाकी है। वहाँ से निकलकर महा बड़ी राजा की रानी की कोख में (जन्म लेंगे)। इन्द्र आकर शरीर साफ करेंगे। समकित का इतना प्रताप है। उसका तो कोई पता नहीं, कीमत नहीं; बाहर की ये क्रिया की, ये क्रिया... वह क्रिया, मिथ्यात्व का पोषक है। समझ में आया ?

यहाँ तो मुनिराज को कहते हैं कि प्रतिकूलता में खेद नहीं, अनुकूलता में आकर्षण नहीं। **ज्यों-ज्यों आगे बढ़े...** आ...हा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र प्रभु, उसमें जैसे-जैसे अन्दर में डुबकी मारे, तैसे-तैसे आनन्द और वीतरागता की वृद्धि होती है। आ...हा...हा... ! **ज्यों-ज्यों आगे बढ़े त्यों-त्यों समरसभाव विशेष प्रगट होता जाता है।** आ...हा... ! छट्ठे-सातवें (में) आगे बढ़कर जैसे-जैसे स्थिरता बढ़ जाती है, वीतरागता... वीतरागता (बढ़ती जाती है)। पूर्ण वीतरागस्वरूप तो पड़ा है, प्रभु ! उसका अनुभव करके वीतरागता का अंश तो आया लेकिन बाद में स्थिरता कर-करके वीतरागता की क्रम-क्रम से बढ़त होती है। आ...हा...हा... ! है ?

ज्यों-ज्यों आगे बढ़े, त्यों-त्यों समरसभाव... अर्थात् वीतरागता **प्रगट होता जाता है।** आ...हा...हा... ! अतीन्द्रिय आनन्द की लहर, वीतरागी आनन्द बढ़ जाता है। आ...हा...हा... ! और जहाँ वीतरागी आनन्द पूर्ण हुआ, तब तो वीतराग हो गया। बारहवें

www.vitragvani.com

में (वीतराग हो जाता है) और अन्तर्मुहूर्त में स्थिर होकर केवल (ज्ञान) लेते हैं। केवलज्ञान जगमग ज्योति तीन काल-तीन लोक को एक समय में जाने ऐसी पर्याय... आ...हा...हा...! आत्मद्रव्य से प्रगट होती है। अन्दर में शक्तिरूप थी, सत्ता में पारिणामिकभावरूप से उसमें था। आ...हा...हा...! ऐसा भगवान!

चमड़ा, शरीर का चमड़ा, उसमें रहा हुआ प्रभु! यह शरीर ही मैं हूँ, राग की उत्पत्ति है तो विकृत अवस्था है, वही मैं हूँ — ऐसी अज्ञानी की दृष्टि में आत्मा भूल जाता है। आ...हा...हा...! वह ८९ (बोल पूरा) हुआ।

संसार की अनेक अभिलाषारूप क्षुधा से दुःखित मुसाफिर! तू विषयों के लिए क्यों तरसता है? वहाँ तेरी भूख शान्त नहीं होगी। अन्तर में अमृतफलों का चैतन्यवृक्ष लगा है उसे देख तो अनेक प्रकार के मधुर फल एवं रस तुझे प्राप्त होंगे, तू तृप्त-तृप्त हो जाएगा॥ ९०॥

९०। **संसार की अनेक अभिलाषारूप क्षुधा से दुःखित मुसाफिर!** एक भव से दूसरा भव, तीसरा भव (ऐसे) भव करते... करते... करते... मुसाफिर! तूने अनन्त भव किये, प्रभु! **संसार की अनेक अभिलाषा.... अनेक अभिलाषा...** विषय की, पुत्र की, आबरु की, पुत्र की, पुत्री की अरे...! उसके साले का साला की साली ठीक पड़े, उसकी अभिलाषा। **संसार की अनेक अभिलाषारूप क्षुधा....** अभिलाषारूप क्षुधा, उससे **दुःखित मुसाफिर!** आ...हा...हा...! परिभ्रमणा करते... करते... करते... तूने अनन्त भव किये, प्रभु! और परपदार्थ की अभिलाषा से दुःखित, हे मुसाफिर! तू दुःखी है। स्वपदार्थ का आश्रय लिया नहीं। आ...हा...हा...! चाहे तो इन्द्र का इन्द्रासन हो, चक्रवर्ती का राज हो, बलदेव, वासुदेव का राज हो। आ...हा...हा...! सोने का गढ़ और रत्न का कांगरा, 'द्वारिका' 'कृष्ण' के लिए देव ने बनायी। सोने के गढ़! सोना... सोना! बारह योजन चौड़ी, नव योजन लम्बी, ऐसी नगरी और सोने का गढ़ और उसके ऊपर रत्न का कांगरा! उसकी जब अन्तिम स्थिति थी... आ...हा...हा...! सब जलने लगा। सोना जलने लगा। समुद्र में से पानी निकालकर डालते हैं तो केरोसीन हो जाता है। आ...हा...हा...! बाहर की चीज क्या है? प्रभु! क्षण में कब पलट जाये। आ...हा...!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

हिम्मतभाई आये ? नहीं आये। हिम्मतभाई आये थे न भाई ! उनके रिश्तेदार... अब मैं जाता हूँ, जाता हूँ ऐसा करके... आये (श्रोता : हिम्मतभाई बैठे हैं) हिम्मतभाई बैठे हैं परन्तु वे आये नहीं। वे अन्दर... जब जाता हूँ... नीचे जब सीढ़ियाँ उतरने लगे हार्ट का दर्द होने लगा। अभी ही आया। सभी तैयारी करके भावनगर जाना, रेल में, अब जहाँ सीढ़ियाँ उतरने लगे वहाँ दर्द, नहीं जा सके। उनका लड़का अपने पूनमचन्द की लड़की, पूनमचन्द... (श्रोता : निहालभाई की लड़की) हिम्मतभाई के बड़े भाई की लड़की पाँच करोड़ रुपये, चार करोड़, छह करोड़ निहालभाई के पास चार करोड़। उन मलूकचन्दभाई का लड़का, इन हिम्मतभाई के बड़े भाई का (लड़का), इनकी लड़की वहाँ दी है और इनमें इनकी लड़की वहाँ दी है, हिम्मतभाई के लड़के के साथ। है तो मारवाड़ी, आये थे बेचारे... मुझे जाना है, नीचे उतरे वहाँ... अब नहीं जा सके, रेल में नहीं जा सके, प्लेन का टिकिट मिले (तो) जायेंगे। आहा...हा... ! यहाँ से जाने के लिए सीढ़ी उतर रहे थे, वहाँ हार्ट में दर्द हो गया। नहीं जा पाये। आ...हा... ! क्षण में शरीर (की अवस्था पलट जाये) । सब तैयारी की थी, जाना है। क्षण में क्या काम करे ? देह की स्थिति कब पलटे, कौन-से समय पलट जाये ? आहा...हा... ! नाशवान का भरोसा छोड़ ! अविनाशी प्रभु का भरोसा ले। आहा...हा... ! त्रिकाल आनन्द का नाथ प्रभु ! अविनाशी (है), उसकी दृष्टि कर और उसका विश्वास कर तो उसमें से सब निकलेगा। वह निधान है। तुझे तो वह निधान मिला। इस शरीर का विश्वास (मत रख), क्षण में पलटकर चला जायेगा। आ...हा...हा... !

कहते हैं, **संसार की अनेक अभिलाषा...** मेरी कीर्ति बढ़े, पैसा बढ़े, पुत्र बढ़े, कुटुम्ब बढ़े, पुत्र हो, उसे अच्छी कन्या मिले, कन्या हो तो अच्छा घर मिले, अच्छा वर मिला... अभिलाषा... अभिलाषा... जगत की आकुलता की अभिलाषा (है)। आ...हा...हा... !

प्रश्न : आत्मा में अनन्त शक्ति है, तो विकार में अनन्त शक्ति है ?

समाधान : विकार में अनन्त शक्ति नहीं है। इतनी (शक्ति) नहीं होती। इतनी आवे नहीं, विपरीत इतनी हो जाती नहीं। अविपरीत जितनी शक्ति प्रगट हुई हो, उतनी विपरीत शक्ति नहीं होती। आ...हा...हा... ! अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, अनन्त

www.vitragvani.com

पुरुषार्थ, अनन्त वीर्य का तो खजाना (है)। जिसमें से निकालो तो वीर्य खत्म न हो – ऐसा वीर्य अन्दर में है। उलटा पड़े तो भी इतना अनन्त उलटा न पड़ जाये। आ...हा...हा...! इसमें कहीं आया है न?

मुमुक्षु : विकार की मर्यादा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादित है। विकार मर्यादित है। विभाव है सो मर्यादित है। इसमें आया है। विभाव है, वह मर्यादित है; स्वभाव है, वह अमर्यादित है। आ...हा...हा...! अरे...! आत्मा में स्वभाव तो अमर्यादित है लेकिन उसका दर्शन, ज्ञान और चारित्र करने से जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी अक्षय-अमेय (है)। 'अष्टपाहुड़' में है। जिसकी पर्याय अक्षय और अमेय (है), मर्यादा नहीं। राग की तो मर्यादा है, चाहे जितना राग करे। आ...हा...हा...!

यहाँ कहते हैं, **संसार की अनेक अभिलाषारूप क्षुधा...** अभिलाषारूप क्षुधा। ये तेरी क्षुधा कभी छूटी नहीं। यह करूँ.... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ आ...हा...हा...! हे **मुसाफिर! तू विषयों के लिए क्यों तरसता है ?...** परपदार्थ की ओर के झुकाव में क्यों तरसता है ? वे सब विषय हैं। आ...हा...हा...! अपनी चीज है, उस ओर तेरा झुकाव क्यों नहीं होता ? कहते हैं। आ...हा...हा...! **तू विषयों के लिए क्यों तरसता है ? वहाँ तेरी भूख शान्त नहीं होगी।...** आ...हा...हा...! अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु! बाहर की अभिलाषा में तेरी क्षुधा / विषय की वासना की शान्ति नहीं होगी। आ...हा...हा...! इतना तो भोगूं, इतना तो भोगूं, फिर मेरी शान्ति होगी... तीन काल में होगी नहीं। आ...हा...हा...!

'रजनीश' कहता है न, 'रजनीश!' 'रजनीश' नहीं है ? भोगानन्द में भी ब्रह्मानन्द है, क्योंकि वहाँ आत्मा है न! लेकिन अरे...! भोगानन्द में तो दु:ख है, ब्रह्मानन्द कहाँ से आया ? आ...हा...हा...! 'रजनीश' (को) 'मुम्बई' से निकाला (तो) 'पूना' में गया, 'पूना' से निकाला तो अब 'कच्छ' में जाता था। 'कच्छ' वालों ने जगह नहीं दी। भटकता-भटकता (रहता है)। सब आत्माएँ हैं, सब आनन्दस्वरूप हैं, भोगानन्द के समय भी ब्रह्मानन्द आत्मा हैं। अरे...! धूल भी नहीं है, सुन न! आ...हा...हा...! तृष्णा की अभिलाषा की क्षुधा तुझे (है), बाहर के विषयों से तृप्ति नहीं होगी। आ...हा...हा...! ऐसा

www.vitragvani.com

कहते हैं। बहुत रोओ, बहुत रोओगे तो निर्विकल्प हो जाओगे। ऐसे भी (कहनेवाले) पड़े हैं और बहुत हंसो, खूब हंसो, हंसते... हंसते... हंसते... तेरा विकल्प छूट जाएगा तो निर्विकल्प हो जाएगा। आ...हा...! जगत है! उसे माननेवाले मिलते हैं। सौ-सौ रुपये देकर व्याख्यान सुनने (जाते हैं)। दुनिया भी पागल है न! आ...हा...हा...! पहले तो बाहर आया था (कि) भोगानन्द में ब्रह्मानन्द है, अंश है। धूल में है नहीं; जहर है। आ...हा...हा...!

पर के विषय में, समकिती को भी विषय का राग होता है तो जहर है। जितना आत्मा की ओर का लक्ष्य और आश्रय हुआ, उतना आनन्द है; जितना राग आता है, उतना जहर है। आ...हा...हा...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं न। भोग का त्याग करूँ, वह भी विकल्प है। चाण्डालनी का पुत्र ब्राह्मणी के यहाँ (आया तो कहता है न?) कि ये मुझे नहीं चलेगा, ये मुझे नहीं चलेगा। वैसे यह भी (कहता है कि), ये मुझे नहीं चलेगा, लेकिन है तो वह शुभराग। आ...हा...हा...!

वहाँ तेरी भूख शान्त नहीं होगी। अन्तर में अमृतफलों का.... आ...हा...हा...! **चैतन्यवृक्ष लगा है...** आ...हा...! अन्तर में अमृतफल का चैतन्यवृक्ष है, जिसका फल अमृत होता है - ऐसा चैतन्यवृक्ष है। अमृतफलों का चैतन्यवृक्ष है, जिसमें अमृत झरता है। उसका फल अमृत है, जैसे आम (के वृक्ष में) आम आते हैं, वैसे यहाँ आत्मा चैतन्यवृक्ष में अमृत फलता है। आ...हा...हा...! अमृतसागर भगवान! यह (समयसार) ९६ गाथा में आया न! मृतक कलेवर में अमृतसागर मूर्च्छित हो गया है। आ...हा...हा...! यह (शरीर) मृतक कलेवर है, उसमें अमृतसागर भगवान मूर्च्छित हो गया है। अमृत के फल का वृक्ष, चैतन्यवृक्ष तेरे पास है, जिसमें से अमृत पकता है। आ...हा...हा...! इस वृक्ष में से राग पके - ऐसा वह पेड़ नहीं। झाड़ कहते हैं? वृक्ष... वृक्ष...! आ...हा...हा...!

शरीर की आड़ में वह दिखता नहीं और राग के प्रेम में उसकी पहचान होती नहीं। आ...हा...हा...! ऐसा प्रभु, सर्वोत्कृष्ट चैतन्यमूर्ति चमत्कारिक वस्तु, अतीन्द्रिय आनन्द और अमृत का फल देनेवाला यह वृक्ष है। आ...हा...हा...! उसमें जितना पानी का सिंचन

www.vitragvani.com

करे, उतने फल आये और उसमें एकाग्रता हो, इतने अमृत के फल आते हैं। आ...हा...हा... ! ऐसी बात है।

चैतन्यवृक्ष लगा है, उसे देख... आ...हा...हा... ! चैतन्यफल जिसमें लगते हैं – ऐसा चैतन्यवृक्ष है। अमृतफल लगते हैं – ऐसा यह अमृतवृक्ष है। अमृत का वृक्ष है, उसमें तो अमृत के ही फल पकते हैं। आ...हा...हा... ! है ? देख ! तू राग और राग का फल संयोग, उसकी अभिलाषा छोड़ और अमृत फले – ऐसे चैतन्यवृक्ष को देख। आ...हा...हा... ! जिसके पाक में फल अमृत पकता है – ऐसा तेरा चैतन्यवृक्ष है, वह तो देख ! जहर को देखता है – राग और राग का फल ये मिला, पुण्य मिला, यह मिला, अनुकूलता मिले, वहाँ (खुश) हो जाये, प्रतिकूलता मिले वहाँ खेद हो जाये। आ...हा... !

उसे देख तो अनेक प्रकार के मधुर फल एवं रस तुझे प्राप्त होंगे,... है ? चैतन्य वृक्ष है अन्दर, चैतन्यरूपी वृक्ष (है)। अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध वस्तु, आत्मस्वभावरूपी वृक्ष है, उसको देख ! तुझे, कल्पवृक्ष में से जैसे फल आये, वैसा उसमें अमृतफल आयेगा। आ...हा...हा... ! (अज्ञानी कहते हैं), ये तो सब निश्चय की बात है परन्तु व्यवहार ? व्यवहार तो राग है, जहर है। आ...हा... ! व्यवहार प्रगट हो, उसका वह पेड़ है नहीं। भगवान वृक्ष ऐसा है नहीं। आ...हा...हा... ! उसमें तो – भोगानन्द में तो जहर है। आनन्द अमृत का स्वभाव का स्वाद में तो अमृतफल है और ये प्रभु चैतन्यवृक्ष ही अमृतफल देनेवाला है। अमृतफल कहीं बाहर से आता नहीं। आ...हा...हा... !

...देख तो अनेक प्रकार के मधुर.... आ...हा...हा... ! ज्ञान का आनन्द, श्रद्धा का आनन्द, शान्ति का आनन्द, वीतरागता का आनन्द, प्रभुता का आनन्द, अनेक प्रकार का आनन्द। मधुर फल और रस (प्राप्त होंगे)। मधुर फल, मीठा फल और उसका मीठा रस। आ...हा...हा... ! जिसकी कीमत करनी है, उसकी कीमत करता नहीं और कीमत नहीं करने योग्य चीज की कीमत करता है। शरीर बड़ा अच्छा है, आबरु बड़ी है, पैसा बड़ा है, मकान बहुत बड़ा है... आ...हा...हा... !

मुमुक्षु : दिख रहा है तो कीमत आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कीमत दिखे नहीं किन्तु अनुमान तो करे कि नहीं ? कि

www.vitragvani.com

पर की ओर के झुकाव में क्या है? आनन्द आता है? आनन्द नहीं आता है तो दुःख है। आ...हा...हा...! अपना स्वरूप आनन्ददायक, आनन्ददाता आनन्द के फल का दाता चैतन्यवृक्ष है। आ...हा...हा...! ये आप के कारखाने में पचीस-पचास हजार, लाख पैदा हुए, दो लाख पैदा हुए, धूल में भी है नहीं। वह तो जहर के वृक्ष हैं। यहाँ अमृत का वृक्ष कहा तो सामने जहर का वृक्ष है। विषवृक्ष का फल नहीं कहा? 'समयसार' में अन्त में (आता है)। १४८ प्रकृति! १४८ प्रकृति जहर का वृक्ष (है) पण्डितजी! 'समयसार' में पीछे आता है। १४८ प्रकृति है, वह जहर का वृक्ष है, उसमें से जहर फलेगा। तीर्थंकर प्रकृति भी जहर का वृक्ष है, क्योंकि उसमें संयोग मिलेगा। आ...हा...हा...! विषवृक्ष कहा है, विषवृक्ष! आत्मा के सिवा जितनी कर्म की प्रकृति पड़ी है, भले पुण्य की हो या तीर्थंकरगोत्र की हो, लेकिन वे सब जहर के वृक्ष हैं, क्योंकि उसमें तो संयोग मिलेंगे और भगवान अमृत का वृक्ष है, जिसमें से स्वभाविक अमृत फल खिलेंगे। आ...हा...हा...! अरे...रे...! ऐसा सुनने मिले नहीं; वह विचार कब करे? और मन्थन कब करे? आ...हा...हा...!

पूर्णानन्द की योग्यता तो मोक्ष होने की है। बन्ध होने की योग्यता उसकी है नहीं, वह तो पर्याय में योग्यता है। आ...हा...हा...! द्रव्य और गुण की योग्यता तो मोक्ष होने की योग्यता है क्योंकि वह तो मुक्तस्वरूप है। उसमें आता है न? कि बन्धस्वरूप है, वह तो बन्ध का कारण है। (समयसार) 'पुण्य-पाप अधिकार' में (आता है)। जो मुक्त स्वरूप है, वह मुक्ति का कारण होता है। आ...हा...हा...! राग तो बन्धस्वरूप है, उसमें से मोक्ष का मार्ग कहाँ से निकलेगा? आ...हा...हा...! जो मुक्त है, मुक्तस्वरूप है तो उसमें से मुक्तपर्याय निकलेगी। आ...हा...! भगवान तो अमृत का पेड़ है। देहदेवल में विराजता, चैतन्य-अमृत का नाथ! आ...हा...हा...!

जैसे कल्पवृक्ष में, वहाँ तो जितनी चीज है, (उसकी) चिन्ता करे तो मिले। वहाँ कहे कि दूधपाक लावो तो दूधपाक वहाँ लटकता नहीं। यहाँ तो अनन्त... आ...हा...हा...! इतनी संख्या से अपरिमित अनन्त गुण भरे हैं, वह अमृत का पेड़ है, अमृतफल देनेवाला वृक्ष है, वहाँ नजर कर न! उसे देख न!

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसे देख तो अनेक प्रकार के मधुर फल एवं रस तुझे प्राप्त होंगे,... तुझे मिलेगा। आ...हा...हा... ! आ...हा...हा... ! **तू तृप्त-तृप्त हो जाएगा।** विषय की अभिलाषा से तो कहीं तृप्ति होगी नहीं; दुःख की धारा चलेगी। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द अमृत पूर्णमिदं, उसकी दृष्टि करने से, उसको देखने से, उसमें एकाग्र होने से, शान्ति का फल, वीतरागता का फल आयेगा। आ...हा...हा... ! 'कलकत्ता' में तुम्हारे रतनलालजी है न ? रतनलालजी गंगवाल ! भैया ! उसके मकान में उतरे थे न ? वहाँ आम का पेड़ था। दस साल से आम नहीं पकता था (हम गये बाद में आम लगे) तो लोग (ऐसा कहने लगे), महाराज यहाँ ठहरनेवाले थे, इसलिए आम पके ! उनके पास पाँच करोड़ रुपये हैं, रतनलाल गंगवाल, पाँच करोड़ रुपये हैं, तो उनके घर ठहरे थे। वहाँ आम का पेड़ था। दस वर्ष से आम नहीं आते थे। पेड़ बड़ा था। अभी तो हमारा आने का था। अभी तो आने का था। वे लोग ऐसा माने न ! वहाँ (कहने लगे), आम पके, देखो ! देखा है, हजारों आम लटकते थे। आम का फल तो आम पके, वैसे भगवान चैतन्य के वृक्ष में तो अमृत पके। आ...हा...हा... ! है न ? **तू तृप्त-तृप्त हो जाएगा।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.